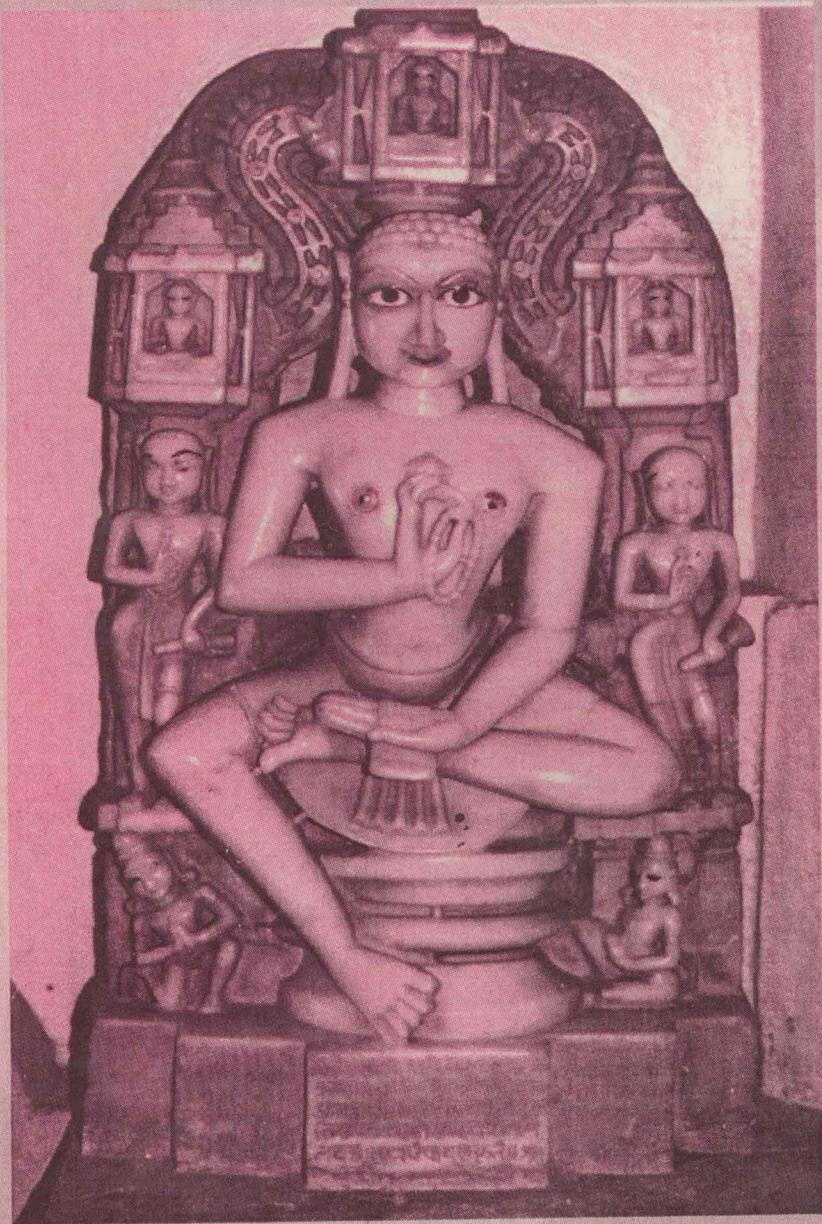


हीरसौभाग्य-लघुवृत्तिसमेतं  
श्री हीरसुन्दर महाकाव्यम्  
(संषिप्तकम्)  
कर्ता : पण्डित श्रीदेवविमलगणि



रान्नाधाकारणं  
पातमङ्गामतंगा  
दीपरवारिरात्रि  
नोमश्वयोलि  
महीवलयक  
निकायेष्वर

प्रकाशक :

श्री जैन ग्रन्थ प्रकाशन समिति  
खम्भात

जगद्गुरु-हीर-स्वर्गारोहण-चतुःशताब्दी ग्रन्थमाला-४

अहंम् ॥

पण्डित श्रीदेवविमलगणिविरचितं

# श्रीहीरसून्दर - माहाकाव्यम् ॥

सटिप्पणीकं

‘हीरसौभाग्य’ उपरि-लघुवृत्तिसमेतम् ॥

प्रथमो भागः

संपादक :

श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिकृतमार्गदर्शनानुसारेण  
मुनि रत्नकीर्तिविजयः

प्रकाशक :

श्री जैन ग्रन्थप्रकाशन समिति  
खम्भात

ई. १९९६

सं. २०५२

श्रीहीरसुन्दरमहाकाव्यम्-सटिष्पणीकं  
( हीरसौभाग्योपरि लघुवृत्तिसमेतम् ) ॥

कर्ता : पं. देवविमलगणि ॥

संपादन : मुनि रत्नकीर्तिविजयः

आवरण-चित्र-परिचय : देलवाडा-विमलवसही चैत्यस्थित जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरिनी सं. १६६१नी  
प्रतिमा तथा ईडरना भंडारनी प्रतिना अंतिम पृष्ठनो अंश.

प्रकाशक : श्री जैन ग्रंथप्रकाशन समिति,  
शाह शनुभाई कचरभाई  
जीरला पाडो, खंभात, ३८८६२०

### © सर्वाधिकार सुरक्षित

ई. १९९६ वि.सं. २०५२ प्रति : ५००

आर्थिक सहयोग : श्री हीरलाल परसोत्तमदास श्रोफ-परिवार, खंभात.

प्राप्तिस्थान : सरस्वती पुस्तक भंडार  
११२, हाथीखाना, रतनपोल,  
अहमदाबाद-३८०००१

मूल्य : रु. १२०-००

मुद्रक : हरजीभाई एन. पटेल  
क्रिश्ना प्रिन्टरी  
९६६, नारणपुरा जूना गाँव, अमदाबाद-१૩  
(फोन : ७४८४३९३)

## प्रकाशकीय

सम्राट् अकबर प्रतिबोधक, कलिकालगौतमावतार, जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरिदादाना ४००मा स्वर्गारेहणना वर्षे, तेमना भव्य जीवनचरित्रे वर्णवतो आ महान ग्रंथ प्रकाशित करवानुं सौभाग्य अमोने प्राप्त थयुं छे, ते बदल अमो अनहद धन्यतानो अनुभव करीए छीए. आ लाभ खंभातने मळे तेमां औचित्य ए छे के जगद्गुरुनो खंभात साथे गाढ अने ऐतिहासिक महत्त्व धरावतो संबंध हतो. तेमनो रास खंभातना ज श्रावक कवि ऋषभदासे रच्यो छे.

आ पूर्वे, आ ग्रंथमालाना प्रथम ग्रंथ तरीके मुनि विद्याविजयजीकृत “सूरीश्वर अने सम्राट्” ए ग्रंथना तथा तृतीय ग्रंथ तरीके “श्रीशांतिचन्द्रवाचककृत कृपारसकोश” ए ग्रंथना प्रकाशननो लाभ आ समितिने मळ्यो हतो. प्रसंगोपात्त जणावबुं जोईए के आ ग्रंथमालाना द्वितीय ग्रंथ “अमारिघोषणानो दस्तावेज” ना प्रकाशननुं श्रेय गोधराना श्री भद्रंकरोदय शिक्षण ट्रस्टने फाळे छे. ए पछी, आ ग्रंथमालाना चतुर्थ ग्रंथ तरीके आ महाकाव्यना प्रथम खण्डनुं प्रकाशन करवानो लाभ अमने मळे छे, तेनो अमने आनंद छे. आनी पाड्य, पूज्य आचार्य श्री विजयसूर्योदयसूरीश्वरजी म. तथा तेमना शिष्य आ. श्री विजयशीलचन्द्रसूरिजीनी कृपानो मुख्य फाळे छे.

आ प्रकाशन माटे, खंभातना श्रीस्तंभतीर्थ तपगच्छ जैन संघना आगेवान शेठ श्री हीरालाल परसोत्तमदास श्रोफ-परिवारे, सदृगत श्री रमेशचंद्र हीरालाल श्रोफना स्मरणार्थे, ग्रंथ प्रकाशननो सघळे खर्च अर्पण करीने श्रुतभक्तिनो, गुरुभक्तिनो तेम ज सुकृतना मार्गे धन केम वपराय ते माटेनो एक उमदा दाखलो पूरो पाड्यो छे, ते बदल ते परिवार लाख लाख धन्यवादनो अधिकारी छे.

पुस्तकना रूडा मुद्रणकार्य बदल क्रिशना प्रिन्टरी-अमदावादना हरजीभाई पटेलनो आ तके अमे आभार मानीए छीए.

प्रांते, जगद्गुरुनो आ जीवनचरित्र ग्रंथ, जगद्गुरुनी ४००मी स्वर्गारेहणतिथि भा.सु.११, २०५२ ना पावन दिने, पूज्य गुरुभगवंतोनी निश्रामां, जैन संघना अग्रणी शेठ श्री श्रेणिकभाईना हस्ते, श्री भावनगर जैन श्वे. मू. तपासंघना आश्रये, विमोचन पामे छे, ते पण एक चिरस्मरणीय घटना छे.

आयो लाभ अमारी समितिने वारंवार मळतो रहे तेबी भावना सह-

लि. जैन ग्रन्थप्रकाशन समिति-खंभात वती

शनुभाई के. शाह

बाबुलाल परसोत्तमदास कापडिया



## स्मरणांजलि

अमारा लाडीला भाई सदगत रमेश श्रोफनी  
पुण्यस्मृतिमां

सम्यग् ज्ञाननी उपासनास्वरूप  
आ ग्रन्थ-प्रकाशननो उत्तम लाभ  
मळवाथी

अमारो परिवार परम धन्यता  
अनुभवे छे.

स्व. रमेशने आ प्रकारनी स्मरणांजलि  
अर्पीने अमे अमारा भ्रातृप्रेमनी  
सार्थकता पण अनुभवी रहा छीए.

लि.

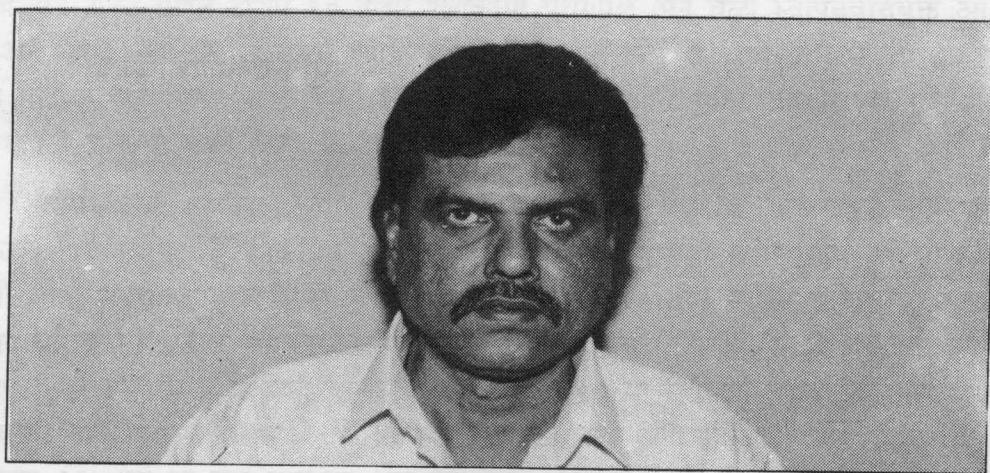
शेठ हीरालाल परसोत्तमदास श्रोफ-परिवार  
खंभात



શેઠ શ્રી હીરાલાલ પરસોતમદાસ



શ્રી કમાલાબેન હીરાલાલ શ્રોફ



શ્રી રમેશચંદ્ર હીરાલાલ શ્રોફ



## समर्पणम् ॥

यैः पूज्यसूर्योदयसूरिवर्यैः-रनादिसंसारमहाटवीतः ।  
भ्रमन्महाऽज्ञानतमोभरेषु, चारित्रदानादहमुद्घृतोऽस्मि ॥१॥

स्वकीयवात्मल्यसुधाभृताङ्के, यैः संस्कृतो निर्गुणशेखरोऽहम् ।  
मातृत्व-कारुण्यपरीतचित्तैः, श्रीशीलचन्द्राभिधसूरिराजैः ॥२॥

दुष्कर्मविच्छेदकरी प्रब्रज्या, कृपादशा भागवती च येषाम् ।  
लेभे मया दर्शन-चन्द्रकीर्त्ति-मुनीश्वराणामुपकारकाणाम् ॥३॥

तेषां समेषां गुरुपुङ्गवानां, स्मृत्वोपकारं हृदि नैकवारम् ।  
भक्त्या मुदा ग्रन्थमिमं हि तेष्यः, सद्भावयुक्तोऽहकर्मण्यामि ॥४॥

-मुनि रत्नकीर्त्तिविजयः

## प्रस्तावना

### जगद्गुरु अने 'हीरसौभाग्य'

जगद्गुरु श्री हीरविजयसूरीश्वरजी महाराज, ए १६मा शतकना एक प्रभावक धर्मपुरुष अने प्रतिभा-सम्पन्न जैनाचार्य छे. तेओना अहिंसापरायण, करुणा छलकता, अने विश्वकल्याणनी उदात्त भावनाथी मध्यमधता जीवन अने जीवनकार्यों विशे तेमनी विद्यमानतामां अने त्यार पछी आज सुधीमां अनेक ग्रन्थो रचाया छे. जैन संघना अने विशेषे तपगच्छना इतिहासमां आवी प्रशस्ति भाग्ये ज कोई गच्छनायकने सांपडी छे. तेमना जीवननो ऊँडाणथी अभ्यास करतां अने तेमना विशे जे लखायुं छे तेनुं अवलोकन करतां सहेजे समजाय छे के जगद्गुरु साचा स्वरूपमां लोकबल्भ युगपुरुष हता. तेओनी सिद्धान्तनिष्ठा, विद्याध्ययन, तपश्चर्या, चरित्ररमणता, प्रतिभा, हृदयनी विशाळता, गच्छनी तथा शासननी धुरानुं संचालन करवानी निपुणता, स्वपक्ष अने परपक्षनो सुमेल तथा संकलन साधवानी कुनेह, गंभीरता, समय आवे गच्छपति तरीके कडक अथवा मक्कम रीते काम लेवानी दुद्धता वगेरे विशिष्टाओं परत्वे तेमना विरोधीओमां पण बे मत नहोता. बल्के, आ बधी विशिष्टाओने लीधे ज तेओश्री स्वपरपक्षमां तेमज भक्तो अने विरोधीओमां पण मान्य अने आदरपत्र बनी गया हता. तेमना विशे रचायेली कृतिओमां-श्री जगद्गुरुकाव्य, श्रीहीरविजयसूरि गास जेवी प्रगल्भ रचनाओ उपरान्त हीरसूरि स्वाध्याय, अनेक सज्जायो, सलोका, मांडवणा (वहाण), प्रबन्ध, वगेरे विविध प्रकारनी अढळक रचनाओनो समावेश थाय छे. आ रचनाओ जोतां जगद्गुरुनी लोकबल्भतानी प्रतीति अनायास थई जाय छे.

आ बधी रचनाओमां शिरमोर समी रचना एटले-हीरसौभाग्य महाकाव्य. श्री जगद्गुरुना गुरुभगवंत तपगच्छनायक श्री विजयदानसूरीश्वरजी दादानी शिष्यपरंपरामां ऊतरी आवेल पंडितश्री सिंहविमलगणिना शिष्य पंडितश्री देवविमलगणिए जगद्गुरुनी हयातीमां ज रचेल आ महाकाव्य प्राचीन संस्कृत महाकाव्योनी परंपराने अनुसरुं एक समृद्ध अने प्रतिभासंपन्न महाकाव्य छे. महाकाव्यनां तमाम लक्षणो धरावतुं, सत्तर सर्गोमां अने टीका सहित आशेरे १० हजार श्लोकोमां पथराएलुं अने वली स्वोपज्ञवृत्तियुक्त आ महाकाव्य माघ अने नैषध जेवां प्राचीन महाकाव्योनी हरोळमां निःशंक ऊभुं रही शके तेम छे; तो आ महाकाव्यना प्रणेता श्रीदेवविमलगणिनी आ काव्यमां ऊपसती कविप्रतिभा तेओने पूर्वना प्रतिभासम्पन्न महाकविओ तेमज टीकाकारोनी पंक्तिमां मूकी आपे छे.

हीरसौभाग्य महाकाव्य तेना काव्यनायक महापुरुषना जेवुं ज सौभाग्यशाळी जणाय छे. आ महाकाव्य जेवुं रचायुं तेवुं लोकप्रिय अने लोकप्रसिद्ध बनी गयुं हतुं. महोपाध्याय श्री धर्मसागरजीगणिए पोतानी रचना-तपगच्छपट्टावली-नी स्वोपज्ञवृत्तिमां श्री हीरविजयसूरिनुं संक्षिप्त चरित्रवर्णन करतां नोंध्युं छे के 'तदव्यतिकरो विस्तरतः श्रीहीरसौभाग्यकाव्यादिभ्योऽवसेयः'. अर्थात्, श्री जगद्गुरुना चरित्रनो अधिक वृत्तान्त श्री हीरसौभाग्य वगेरे थकी जाणी लेवो. संवत् १६४८ मां रचायेली पट्टावलीमां पण हीरसौभाग्यनो, एक वरिष्ठ अने वृद्ध उपाध्यायजी भगवंत द्वारा, उल्लेख थाय अने हवालो अपाय ते सूचवे छे के आ महाकाव्य १६४८मां तो घणुं प्रचलित अने लोकप्रिय बनी गयुं हशे.

जो के, (भारत ना) अन्यान्य अनेक ग्रन्थभंडारोमां तपास करवा छतां हीरसौभाग्यनी सांपडती अति अल्पसंख्यक प्रतिओ जोतां पाछळथी आ महाकाव्यनुं अध्ययन घटी गयुं हशे, तेम मानी शकाय. परंतु तेनुं कारण पाछळना सैकाओमां संस्कृतनुं घटी गयेलुं अध्ययन-अध्यापन ज गणवुं जोइए, नहि के आ काव्य के तेना कथानायकनी लोकप्रियतानी ऊणप.

परंतु, छेल्लां थोडां वर्षोमां आ काव्यनुं पठन-पाठन पुनः विपुल प्रमाणमां थतुं जोवा मळे छे. ख्युवंश, किरात, माघ, जेवां महाकाव्यो, व्याकरणना तथा संस्कृतना बोधने दृढ़स्फुट करवा माटे जाणवां जोइए तेवी एक परंपरा आपणे त्यां छे, अने वर्षोथी ते प्रमाणे थतुं पण आव्युं छे. पण, निर्णयसागर प्रेसे सर्वप्रथम हीरसौभाग्य तथा विजयप्रशस्ति वगेरे काव्योनुं मुद्रण कर्यु, ते पछी विद्वद्वर्गने अहेसास थवा लायो के पंचमहाकाव्योनी हरोळमां के बराबरीमां ऊभां रही शके तेवां आ काव्यो पण छे, तो तेनुं अध्ययन संघमां थाय तो शुं खोटुं ? आ रीते धीमे-धीमे आ काव्योनुं अध्ययन संघमां प्रचलित थतुं गयुं, जे आजे तो व्यापक अने विपुल बन्युं छे. हीरसौभाग्यनो अनुवाद पण थयो छे, अने तेनुं पुनर्मुद्रण पण थई चूक्युं छे.

### हीरसुन्दर : हीरसौभाग्यनो पूर्वावतार

‘हीरसौभाग्य, ए, खरी रीते, ए महाकाव्यनो बीजो अवतार छे. आ काव्यनो पहेलो अवतार तो छे. ‘हीरसुन्दर’ महाकाय. एम समजाय छे के श्रीदेवविमलगणिए, आ काव्य रचनानो उपक्रम सर्वप्रथम हाथ धर्यो हशे त्यारे तेमणे आ काव्यने ‘हीरसुन्दर काव्य’ लेखे रचवानुं विचार्यु हशे. आनुं प्रमाण एटले :-

(अ) ‘हीरसौभाग्य’ नी हीरसुन्दर काव्यना नामे उपलब्ध थती विभिन्न प्रतिओ, तेमज, (ब) ‘हीरसुन्दर’ ना रूपमां कर्ताए करवा धारेला काव्यना काचा आलेख(Draft)नी हीरसौभाग्य करतां भिन्न पाठ धरावती-प्रतिओ. अलबत, आ (अ) अने (ब) बन्ने विभागनी जूज प्रतिओ ज मळे छे; तेमांये (ब) विभागनी उपलब्ध प्रतिओ एकाद सर्ग जेटला अंशने ज समजावनारी छे. परंतु, ते प्रतो उपरथी एटलुं स्पष्ट थई शके छे के कर्ताए पहेलां ‘हीरसुन्दर’ नामे काव्य सर्जवानुं विचार्यु हशे, अने पाछळथी ‘सोम सौभाग्य’ना अनुकरणरूपे होय, नाममां वधु सौन्दर्य लाववानी अभिलाषाथी होय के कर्तानां माता ‘सौभाग्यदे’ नुं नाम अमर करवानी भावनाथी होय-गमे ते कारणे कर्ताए नाममां परिवर्तन कर्यु छे; एटलुं ज नहि, पण (ब) विभागनी प्रतिओ तपासतां, तेमणे काव्यना पद्योनी वाचनामां पण महदंशे शाब्दिक-परिवर्तन कर्यु छे.

‘हीरसुन्दर’ काव्यनी जे प्रतिओ अत्यारे अमारी समक्ष छे, ते आ प्रमाणे छे :

१. शेठ डोसाभाई अभेचंद पेढी-भावनगर जैन तपा संघना ज्ञानभंडारनी प्रति.
२. श्री जैन आत्मानंद सभा-भावनगर ना भंडारनी प्रति.
३. ईडर-जैन संघना ज्ञानभंडारनी प्रति.

प्रस्तुत प्रकाशनमां मुख्यत्वे क्रमांक १ प्रतिनो ज उपयोग थयो छे. क्रमांक २ प्रति ते क्रमांक १नी नकल होवा उपरान्त अशुद्धिनो भंडार छे तेथी तेनो उपयोग करवो मुनासिब नथी मान्यो. क्र. ३ नी प्रति मात्र एक ज सर्ग धरावती प्रति छे. अने तेनी प्रतिलिपि आ पुस्तकमां परिशिष्ट-१ तरीके मूकी छे.

आ प्रतिनी नकल प्रकाशन कार्य दरम्यान छेक छेले मळी होई तेनो उपयोग आ रीते ज थई शक्यो छे.

आमां ऋ. १ वाढी प्रतिमां १५-१६ ए बन्ने सर्गोने पंदरमा सर्ग तरीके ओळखाव्या होई, कुल १६ सर्ग ज होवानु समजाय छे, पण वस्तुतः १७ सर्गो ज छे. ऋ. १ प्रतिनी वाचनामां तथा मुद्रित हीरसौभाग्यनी वाचनामां केटलेक स्थळे तफावत मळे छे, ते तमाम स्थळो तथा तफावतोनो निर्देश जे ते स्थळे पाठनोधो(Foot notes)मां दर्शविल छे.

मुद्रित हीसौ० मां केटलेक स्थळे टीका होवा छतां पद्यो नथी. ए पद्यो हीसुं० नी प्रति ऋ.१मां अकबंध जळवायां छे. ए उपरान्त, मुद्रित हीसौ० मूळ तथा वृत्तिमां घणी अशुद्धिओ जोवा मळे छे, तेनु मार्जन हीसुं० द्वारा महदंशे थई शके तेम छे : आ बे बाबतो हीसुं० द्वारा थती उपलब्धि गणाय.

ऋ. ३ नी प्रति ए शुद्धरूपेण हीरसुन्दर काव्यनो खरडो जणाय छे. खरडो एटला माटे के तेना प्रथम सर्गनी मुख्य वाचनानी साथे ज, ते ज प्रतिमां, हांसियामां ते वाचनागत घणां पद्योनां के पद्यांशोना पाठान्तरो पण आलेखायां छे. ईडरनी प्रतिमां मार्जनमां जोवा मळतां सूक्ष्म अक्षरो ते पादटीप नथी, पण पद्य-पद्यांशना, कर्त्ताना मनमां उद्भवेलां पाठान्तरो छे, ते नोंधवुं जरूरी छे. अने आज कारणे, ईडरनी प्रति ते काव्यना कर्त्ता पं. श्री देवविमलगणिना स्वहस्ताक्षर छे एवुं विधान जरा पण अंदेशा विना कही शकाय तेम छे. शुद्ध पाठ अने मूळपाठनां ज फेरफारोनी नोंध-आ लक्षणो ‘कर्त्तानो स्वहस्त’ होवा बाबते नक्कर आधार बनी शके. कर्त्ता सिवाय मूळपाठमां फेरफार कोण करे ? कोण करी शके ?

सारांश, ए के, कर्त्ता ए प्रथम हीसुं० रच्युं, ते पण तेना विविध आकार-प्रकारो बदलतां-बदलतां. छेले एक आकारमां स्थिर कर्युं हशे, अने ते पछी हीसुं० नुं हीसौ०मां रूपांतर सूझ्युं हशे. तेथी आपणने हीसौ०नुं मळतु स्वरूप सांपड्युं.

### हीरसौभाग्य/हीरसुन्दरनी टीकाओ

जेवुं मूळ हीसुं०/हीसौ० काव्य माटे, तेवुं ज तेनी टीका परत्वे पण छे. कर्त्ताए पोताना आ काव्यनी एक नहि, त्रण-त्रण वृत्तिओ रची छे, जे साहित्यना इतिहासमां एक विरल के अजोड घटना गणाय.

तेमणे पहेलां हीसुं० पर टिप्पणी रूप साव नानी टीका लखी. आपणे सगवड खातर तेने ‘हीसुं०’ नो पर्याय एवुं नाम आपी शकीए. ए पछी तेमणे हीसौ०नी लघुवृत्ति रची, जेनी एकमात्र प्रति अमदावाद - डेलाना उपाश्रयना भंडारमांथी उपलब्ध थई शकी छे, अने जेनी संपादित वाचना आ प्रकाशनमां आपी छे. अने त्यार पछी तेमणे हीसौ० नी बृहदवृत्ति बनावी, जे मुद्रित हीसौ०मां उपलब्ध छे.

एक ग्रन्थकारना, एक सर्जकना मनोव्यापारो केवी रीते सतत पलटाता रहे छे, अने पोताना सर्जनमां केवा अने केवी रीते सुधारा-वधारा-उमेरा-परिवर्तन करता रहे छे-तेनुं आ एक श्रेष्ठ दृष्टान्त गणी शकाय.

हीसुं० के हीसौ० नी आम तो अढळक विशेषताओ अने लाक्षणिकताओ छे. अने ए बधी विशेषताओनो ताग मेळववा माटे आ काव्यनो अनेक दृष्टिए अभ्यास थवो अत्यन्त जरूरी छे. आ काव्यमां धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, भाषाशास्त्रीय, तुलनात्मक, अलंकारिक, साहित्यिक-एम अनेक प्रकारे अध्ययन करवाजोगी सामग्री मळी शके ज. आम छतां, प्रथम नजरे आंखे ऊडीने वळगती

बे विशेषताओं ते आ :

(१) आमा कर्त्ताए टांकेलां अनेक ग्रन्थोनां अढळक उदाहरणो-अवतरणो.

(२) आमा मळता देश्य तेमज कर्त्ताना समकालीन व्यवहारोपयोगी भाषाकीय शब्दप्रयोगे.

थोडुं फुटकळ काम आ दिशामां थयुं छे खरुं. पण नक्कर काम हजी सत्रिष्ठ-रसिक अभ्यासीनी प्रतीक्षामां ऊभुं ज छे. हीसुं० ना द्वितीय भागमां आवा शब्दो तथा उदाहरणोनी एक नोंध मूकवानी धारणा छे, ए आशाए के कोई अभ्यासी तेनो उपयोग करी शके.

### प्रस्तुत प्रकाशन/संपादन परत्वे

संवत् २०४८मां ऊनाक्षेत्रनी स्पर्शना थई, त्यारे जगद्गुरुनी अंतिम भूमि रूप “शाहबाग” नी पण यात्रानो योग बन्यो. जगद्गुरुना स्पृहणीय जीवन-कार्य प्रत्येनो अहोभाव ते पल्ले प्रबळपणे अभिव्यक्त थतो अनुभवायो. तेओश्रीनी जीर्ण थएल समाधिनो पुनरुद्धार २०५२ सुधीमां कराववो - एवो एक संकल्प पण सहजभावे मनमां जाग्यो.

सं. २०५०मां जगद्गुरुनी जन्मभूमिना क्षेत्र ‘पालनपुर’मां चातुर्मासनो योग बन्यो. अपिरिचित क्षेत्र, पण एकमात्र आकर्षण ए के त्यां हजी जगद्गुरुनुं जन्मस्थान गणातुं मकान उपाश्रयरूपे मोजूद छे. चोमासामां पण आ सिवाय कोई ज बाबत एवी न मळी के जे त्यां अजाण्याने जवा के रहेवानुं आकर्षण बनी शके. पण ए चोमासामां जगद्गुरुना जन्मस्थान ‘नाथीबाईना उपाश्रय’ ना नित्यदर्शननो सरस स्थानो आजे पण मोजूद होय तेवा ऐतिहासिक पुरुष मात्र जगद्गुरु ज छे.

पालनपुरना वर्षावासमां ‘हीरसौभाग्य’ नुं वांचन करवुं आरंभ्युं. तो मुद्रित प्रतिमां आव्या करती क्षतिओ बहु खटकवा मांडी. शोधकवृत्तिनी प्रेरणाथी हीसौ०नी हस्तप्रतिओ मेलववा प्रयास कर्यो, तो हीसौ० नी बे त्रण ज प्रतिओ मळी, अने वधुमां हीसुं० तथा हील० नी कुल त्रणेक प्रतिओ सांपडी. ए बधी सामग्री तपासतां हीसुं० तथा हील०नी सामग्री हजी अप्रगट होवानुं जणातां तेनुं संपादन तथा प्रकाशन, चतुर्थ शताब्दीना अवसर्ने अनुलक्षीने, करवानो निश्चय कर्यो; अने मुनि श्रीरत्नकीर्तिविजयजीने ए काम भळाव्युं. तेमणे पण उल्लासभेर ए काम करवानुं स्वीकार्युं; अने तेमणे करेली दोढ वर्षनी महेनतनुं परिणाम आ ग्रंथरूपे आजे प्रगट थई रह्युं छे.

आ संपादनमां प्रथम हीसुं० काव्यनो मूळपाठ, तेनी नीचे तेनी टिप्पणी, अने ते पछी हील० (हीरसौभाग्य परनी लघुवृत्ति)नो पाठ-आ क्रमे वाचना आपवामां आवी छे. हील० प्रतिमां पण मूळ-काव्य पाठ छे ज; परंतु ते हीमु० (हीरसौभाग्य-मुद्रित)ने सर्वांशे मळतो ज पाठ छे, तेथी ते पाठ अत्रे आपेल नथी. ज्यां ज्यां हीसुं० अने हील० प्रति के हीमु० वाचनाना पाठमां फेरफार आवे छे त्यां ते पाठ यांग्य सूचनपूर्वक मूळमां के पादनोंधरूपे मूळेल छे. पद्योना क्रममां फेरफार होय, कोई पद्यो/पद्य हीसुं० मां न होय एवे स्थळे ते अंगेनी नोंध के पाठ मूकवामां आवेल छे. आवां स्थानोनी तालिका बीजा खण्डमां आपवानी धारणा छे.

प्रथम खण्डरूप आ प्रकाशनमां हीसुं० ना १ थी ८ सर्गों समाव्या छे. ९ थी १६/१७ सर्गों बीजा भागमां समावाशे. प्रांते आपेलां बे परिशिष्टेमां प्रथममां हीसुं०नी ईडर-भंडारनी प्रतिनी वाचना छे. ए प्रति हीसुं० ना प्रथम सर्गात्मक छे, तेमज तेमां कर्ताए स्वयं तेना पाठांतरे के रूपांतरे नोंधेलां छे. ए अक्षरे झेरेक्स नकलमां जेटला उकेली शकाया तेटला अहीं आप्या छे. परंतु, आ प्रतिनो पाठ अहीं प्रथम बखत प्रकाशमां आवे छे, जे अभ्यासीओ माटे खूब उपयोगी थशे तेवी श्रद्धा छे. द्वितीय परिशिष्टमां ८ सर्गोंमां पद्योनी अकायदि-सूचि आपी छे.

आ कार्य माटे पोताना भंडारेनी प्रतिओनी झेरेक्स नकलो आपवा बदल १. डहेलानो उपाश्रय-अमदावाद, २.रेठ डो. अ. घेढीनो भंडार-भावनगर, ३. श्री जैन आत्मानन्दसभा-भावनगर, ४. ईडर-संघ भंडार-आ बधाना कार्यवाहकोनो ऋणस्वीकार करीए छीए. ईडरनी प्रतिनी नकल माटे भन्याप श्रीमुनिचन्द्रविजयजी गणि (झींझुवाडा)नो पण आभार मानवो जोईए.

आ ग्रंथनुं संपादन मुनि रत्नकीर्तिविजयजीए खूब रस अने खंतथी कर्यु छे. संपादन-संशोधन माटेनो तेमनो आ प्रथम ज प्रयास होवा छतां आ कार्यमां तेमणे प्रशस्य गति अने निपुणता दाखवी छे, ते ग्रंथनुं अवलोकन करनारने अवश्य जणाई आवशे. आम छतां ‘गच्छतः स्खलनं क्वापि’ ए न्याये, तेमनो आ प्रथम ज अनुभव तथा प्रयास होई क्यांय पण क्षति जणाय तो सुझ जनो ध्यान दोरे तेवी तेमनी प्रार्थना, अहीं मार द्वाग तेओ प्रगट करे छे.

ग्रंथना प्रूफवाचन तथा अन्यान्या कार्योमां मुनिश्रीविमलकीर्तिविजयजी, मुनि श्री धर्मकीर्तिविजयजी तथा मुनि श्री कल्याणकीर्तिविजयजीनो भरपूर साथ मळ्यो छे, ते पण अहीं नोंधवुं जोईए.

प्रांते, जगद्गुरुनी ४००मी स्वर्गार्थेहण-तिथि उजवणीरूपे अने आगधनारूपे आ ग्रंथनुं प्रकाशन थई रह्युं छे, तेनी पाछल श्री गुरुभगवंतनी कृपा ज महत्वपूर्ण परिबळ छे, अने ते सदाय वरसती ज रहो तेवी प्रार्थना साथे-

भावनगर

पर्युषणमहापर्व-सं. २०५२

-विजयशीलचन्द्रसूरि

## अनुक्रमः

जम्बूद्वीप-देश-नगर-नृपादिवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः	१
कुंग-नाथी-गजस्वप्न-स्वप्नजागरिका-सखीगोष्यादिवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः	३६
गर्भधारण-दोहदोत्पादकथन-गर्भसमय-लक्षणाविर्भावन-जन्म-तन्महोत्सव -बालक्रीडा-पठन-सर्वाङ्गलक्षणरूपवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः	७२
श्री महावीरजिनेन्द्रमारभ्य श्रीविजयदानसूरीन्द्रं यावत्पृष्ठपरंपरादुर्भावनो नाम चतुर्थः सर्गः	१०९
हीरकुमारप्रतिबोध-स्वजनकृतमहोत्सव-पुण्ड्रनाचेष्टित-तत्सङ्गथा-दीक्षाग्रहणो नाम पञ्चमः सर्गः	१४६
दक्षिणदिग्गमन-द्विजसमीपपठन-गुरुसमीपागमन-पण्डितवाचकाचार्यपदप्रदान-नन्दिभवन-श्रीविजयसेनसूरिजन्मदीक्षादिवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः	१९५
वर्षा-शरत्-सूर्यास्त-सन्ध्याराग-तिमिर-तारक-चन्द्र-चन्द्रिका-वर्णनो नाम सप्तमः सर्गः	२३६
शासनदेवतासमागमन-तत्सर्वाङ्गवर्णनो नामाष्टमः सर्गः	२५८
परिशिष्ट-१ ईडरसत्कहीरसुन्दरप्रतेर्वाचना	२९७
परिशिष्ट-२ हीरसुन्दरकाव्यस्य १-८ सर्गगतपद्यानामकरणदिसूचिः	३१३

॥ श्री चिन्तामणिपार्श्वनाथाय नमः ॥  
पण्डितश्रीदेवविमलगणिकिरचितम्

**‘श्री हीरसुन्दर’ महाकाव्यम्**  
सटिप्पणीकम् ॥  
हीरसौभाग्यमहाकाव्योपरिलघुवृत्तिसमेतम् ॥  
ऐं नमः

॥ अथ प्रथमः सर्गः ॥

हीसु० श्रियं स पार्श्वाधिपतिः ॑प्रदिश्यात्॒सुधाशनाधीशवतंसितांह्रिः ॥  
॒जगन्निदिध्यासुरिव त्रिमूर्तिर्यत्कीर्तिरासीत्॒त्रि॑दशस्ववन्ती ॥ १ ॥

श्रीपार्श्वनाथाय नमः ॥

( १ ) लक्ष्मीं ददातु । ( २ ) देवेन्द्रशेखरितक्रमः । ( ३ ) त्रैलोक्यदिव्यक्षुः । ( ४ ) गङ्गा ॥१॥

हील० श्रीचिन्तामणिपार्श्वाधिपतये नमः ॥

स्वोपज्ञहीसौभाग्यकाव्यस्याव्यासशालीम् ।

कुर्वे वृत्तिं विदग्धानां ॑झटित्यर्थावबोधिकाम् ॥

इह हि ग्रन्थगम्भे ग्रन्थकर्ता स्वाभिमतार्थसिद्धये शिष्टाचारपरिपालनाय च सकलविघ्नविघातकं विशिष्टेष्टदेवतानमस्कारलक्षणं मङ्गलमाचरति । शिष्यशिक्षायै सूत्रान्तर्लिंगीकरोति । तदेव सूत्रम्-

श्रियमिति - सः अद्वैतमहिमा श्रिया चतुर्लिंगदतिशयरूपया युक्तः । पार्श्व एवाधिपति-स्त्रिजगदीश्वरः । यद्वा-पार्श्वनामा यक्षाना(णा)मष्टचत्वारिंशत्सहस्राणां नायकः पार्श्वनामा यक्षस्तस्याधिपतिः । लक्ष्मीं प्रदेयादित्याशीः । किंलक्षणः पार्श्वाऽधिपतिः ? । सुधाममृतमशननीति, सुधा अमृतमशनं येषां वा । सुधा पीयूषमश्यते एभिरिति सुधाशना देवाः । तेषामधीशैर्वतंसितौ । ‘तत्करोति तदाचष्टे’ इतीनक्तप्रत्यये ‘अवाप्यो’ रित्यकारे लुप्ते वतंसिताविति सिद्धौ । अवतंसौ कुर्वन्तीत्यवतंसयन्ति, अवतंस्येते स्मेत्यवतंसितौ । तादृशौ चरणौ यस्य । स कः ? यत्कीर्तिर्निध्यातुमिच्छुरिव गङ्गा आसीत ॥१॥

हीसु० ॑प्रीणाति या प्राज्ञदशश्वकोरीर्विं॒भावरीवल्लभमण्डलीव ।  
॒तमस्तिरस्कारकरीं सुरीं तां ॒न॒मस्कृतेगोंचरयामि वाच॑म् ॥२॥

( १ ) आह्वादयति । ( २ ) चन्द्रबिम्बम् । मण्डलशब्दस्त्रिलिङ्गः । ( ३ ) तमः अज्ञानमन्थकारं च तस्य भेत्रीम् । ( ४ ) नमस्करोमि ( ५ ) भारतीम् ॥२॥

1. झटित्य० हीमु० । 2. भेत्रीन्ते० हीमु०

- हील० गोचरं करेमीति गोचरयामीति । 'जिडित्करणे' इति जिः । प्रणमामीत्यर्थः ॥२॥★
- हीसुं० 'यच्चक्षुषा र्मातृमुखोऽप्यशेषविशेषवित्तोखरतानुषङ्गी ।  
‘गुरुं सुराणाम्’धरीकरोति भवन्तु ते मे । गुरवः प्रसन्नाः ॥३॥  
( १ ) यत्सौम्यनयननिरीक्षणात् । ( २ ) मूर्खोऽपि ( ३ ) निरिखलविशेषज्ञोत्तंसभावसङ्गी ।  
( ४ ) बृहस्पतिम् ( ५ ) पराजयति ॥३॥
- हील० ते गुरवः प्रसत्तिभाजो भवन्तु । यद्दृष्टिपाते तु जडोऽपि अशेषविशेषविदां शेखरतां प्राप्तः सन्बृहस्पतिं हीनीकरेति ॥३॥\*
- हीसु० कवित्वं निष्कं कथितुं कवीनां येषां र्मनीषा कषपट्टिकेव ।  
सन्तः प्रसन्ना मयि सन्तु शुद्धाशयाः प्रवाहा इव जाह्नवीयाः ॥४॥  
( १ ) सुवर्णम् । ( २ ) सम्यक्परीक्षितुम् । ( ३ ) मतिः ( ४ ) स्वर्णपरीक्षणपाणाशिलेव ।  
( ५ ) निर्मलचित्तमध्याश्र । ( ६ ) गङ्गासम्बन्धिनः ॥४॥
- हील० काव्यनिष्कं सुवर्णं परीक्षितुं येषां मतिः कषपट्टिकास्ति ते सन्तः शुद्धाशयाः शुद्धाभिप्रायाः निर्मलमध्या गङ्गाप्रवाहा इव मयि भवन्तु ॥४॥
- हीसु० 'अमन्दगन्धैरिव गन्धसारो दिशो यशोभिस्मुरभीकरोति ।  
वृत्तं व्रतीन्दस्य तनोमि तस्य कुरान्ववायाम्बरपद्मबन्धोः ॥५॥  
( १ ) प्रचुरपरिमलैः । ( २ ) चन्दनतरुः । ( ३ ) वासयति । ( ४ ) काव्यम् । ( ५ ) सूरीश्वरस्य ।  
( ६ ) करोमि । ( ७ ) कुरासाधुवंशाकाशभास्करस्य ॥५॥
- हील० अमन्दैर्बहुलैर्गन्धैश्चन्दनद्वूमो दिशः सुरभीकरेति तद्वद्यशोभिर्दिशः सुरभयति । तस्य वृत्तं तनोमि । करेमीत्यर्थः ।  
“कथिताः करणे तनने ग्रथने चोत्पादने च ये पूर्वम् ।  
ते धातवः स्पृशन्ति प्रायस्तुल्यार्थतामेव ॥१॥”  
किं च वृत्तनायकाश्चतुर्विधा वर्णन्ते । धीरेदात्ताः, धीरेद्धताः, धीरललिताः, धीरप्रशान्ताश्चात्र धीरप्रशान्तत्वेन वृत्तकरणं युक्तमित्यर्थः ॥५॥
- हीसु० 'पारे गिरां वृत्तमिदं क्व सूरेस्तनुप्रकाशा क्व च शेमुषी मे ।  
प्रक्रम्य मोहादहमङ्गुलीस्तत्प्रमातुमीहे चरणं मुरारेः ॥६॥  
( १ ) पारे गिराम् वाचामगोचरं वक्तुमशक्यमित्यर्थः । ( २ ) चरितम् । ( ३ ) कुत्र । ( ४ ) स्वल्पविषया मतिः । ( ५ ) प्रारभ्य । ( ६ ) अज्ञानात् । ( ७ ) तत्-तस्मात्कारणात् ।

---

★ एतच्चिह्नाङ्किताः श्लोका हीलप्रतौ हीमुवद्दृश्यन्ते । १. श्रीगुरवः हीमु० ।

(८) विष्णोः पदम्-गगनम् । (९) प्रमातुमिच्छुरस्मि अङ्गुलीभिव्योमप्रमाणं कर्तुमना वर्ते ॥६॥

हील० गिरं पारे वाचामगोचरमिदं वृत्तं क्व, मे स्वल्पा बुद्धिः क्व । तत्स्मात्कारणादहमङ्गुलीः प्रारभ्य विष्णुपदं मातुमिच्छामि । कश्चिदनन्तं नभः स्वाङ्गुलीर्मण्डयित्वा प्रमातुमारभते, न पुनः प्रभवति, तदज्ञानादेव ॥६॥

हीसुं० १यो ३वालुका ३हैमवतीप्रतीरे ४प्रमाति संख्याति च ५विष्णुषोऽब्धेः । तागः पुनः ६पारयति प्रमातुं गुणान्गाणेन्दोर्गणयेन्नं सोऽपि ॥७॥

(१) यः पुमान् । (२) गङ्गातटे । (३) सिकताकणान् । (४) प्रमाणीकरोति । (५) बिन्दून् । (६) समुद्रस्य । (७) समर्थीभवति । (८) गच्छनायकस्य । (९) इयत्तावच्छिन्न-संख्यागोचरीकुर्यात् ॥७॥

हील० यः गङ्गातटे वालुकाः प्रमाति । अब्धेर्जलबिन्दून् उत च तागः सङ्ख्याति । सोऽपि सूरेगुणान् गणयेत् ॥७॥

हीसुं० वृत्तं १विभोर्भार्षितुम्४प्रभुर्यज्ज॑५भारिसूरिस्तदहं५ ६किमीशो । यः ७शृङ्गिशृङ्गाग्रगतैर्दुरापः किं ८भूमिगस्तं विधुमा॑९ददीत ॥८॥

(१) सूरीन्द्रस्य । (२) वक्तुम् । (३) असमर्थः । (४) बृहस्पतिः । (५) तच्चरितं भाषितुम् । (६) कथमहमीशीभवामि । (७) गिरिशिखरोपरिगतैः । (८) दुष्प्राप्य । (९) पृथ्वीस्थः । (१०) गृहणीयात् ॥८॥

हील० विभोर्हीरविजयसूरीश्वरस्य यद्वत्तं वकुं बृहस्पतिरसमर्थः तर्हि तद्वत्तं वकुं अहं कथमीशे-समर्थीभवामि । अपि तु न । उक्तमर्थमर्थान्तरेण द्रढयति - यश्वन्दः शैलशिखरस्थैर्दुःप्रादुष्प्राप्य । तं भूचरः कथं गृहणीयात् ॥८॥

हीसुं० १प्रभोः २प्रभावादथवा॑ कथं न प्रभुर्भवामि ३प्रविधातुमेतत् ।

४स्वस्सत्प्रसादाऽत्रिदशाचलस्य ५शिखासु ६खेलायति किं न ७८खञ्जः ॥९॥

इति पीठपद्धतिः ॥

(१) सूरि:(रे:) । (२) माहात्म्यात् । (३) अथवेति स्मरणगर्भे पक्षान्तरे वा । (४) कर्तुम् ।

(५) एतच्चरितम् । (६) देवताप्रसन्न्याः । (७) मेरोः । (८) चूलासु । (९) क्रीडति ।

(१०) चरणविकलः ॥९॥

हील० तर्हि कथं करिष्यते । तत्सामर्थ्यमाह- प्रभो० अहं प्रभुप्रभावात्क्षमः । स्वःसद्वेष्टदनुग्रहान्मेरुशृङ्गे खञ्जिक(ञ्जः किं) न खेलति । अपि तु खेलतीत्यर्थः ॥९॥

हीसुं० १सुपर्वभिर्भोर्गिभिरङ्ग्निसंघैर्लीलां स्वयं बिः॒भ्रदिव त्रिः॒लोक्याः ।

४प्रेयानिव स्त्रीभिरिहास्ति॑ जम्बूद्वीपोऽब्ध्यवेलाभिरु॑पास्यमानः ॥१०॥

( १ ) देवैः पक्षे शोभनानि पर्युषणा-दीपालिकादिपर्वाणि येषाम् । ( २ ) नागकुमारैः पक्षे भोगो राज्यादिसुखप्रस्त्येषामिति । ( ३ ) जनसार्थैः । ( ४ ) दधत् । ( ५ ) त्रिभुवनस्य । ( ६ ) पतिः । ( ७ ) पार्थिवः रजत-हिमरत्नमयोऽनाहताभिधानद्वीपाधिदेवावासभूतोत्तर-कुरुवर्त्तिजम्बूद्धक्षेनोऽपलक्षितः । ( ७ ) सेव्यमानः ॥१०॥

हील० सुप० । इह जम्बूद्धीपोऽस्ति । तैस्तैस्त्रिजगत्या लीलां दधत् । अब्धिवेलाभिः संसेव्यो यथा प्रियः स्त्रीभिर्निषेव्यते ॥१०॥

हीसुं० १'नीराजयन्तीष्विव ३चित्रभानुमादाय ५दिग्वारविलासिनीषु ।

४'संवर्धयन्तीषु ५पयःपृष्ठद्विर्वेलासु कान्तास्त्विव ६मुक्तिकाभिः ॥११॥

यं ७शंभुशैलच्छविरोमगुच्छचन्द्रातपत्रोद्धत् ८वाहिनीकम् ।

वाद्धेस्तरङ्गा ९०मगथा इवोर्वीथवं स्तुवन्तीव गभीररावैः ॥१२॥ युग्मम् ॥

( १ ) आरात्रिकं कुर्वन्तीष्विव । ( २ ) सूर्यो वह्निश्च । ( ३ ) दिग्वारङ्गनासु । ( ४ ) वद्धापयन्तीषु ।

( ५ ) जलकणैः । ( ६ ) लघुमुक्ताफलैः । ( ७ ) कैलाशः । ( ८ ) चामरम् । ( ९ ) सेनानद्यौ ।

( १० ) बन्दिनः । ( ११ । १२ ) युग्मम् ॥

हील० यं जम्बूद्धीपम् । अब्धिकलोलाः । स्तुतिकारणं इव स्तुवन्ति । किंभूतो जम्बूद्धीपः ? । कैलास-कान्तिरेव, तद्वात् उज्ज्वला रेमगुच्छ यस्य । तथा चन्द्रतुल्यं, स एवातपत्रं यस्य । तथोद्धता वाहिन्यः सेना नद्यो यस्य । पश्चात्कर्मधारयः । कासु सतीषु ? दिग्वारङ्गनासु सतीषु । किंभूतासु दिग्वारङ्गनासु ? नीराजनां कुर्वन्तीति नीराजयन्ति । नीराजयन्तीति नीराजयन्त्यस्तासु । चित्रभानुं वह्निं अर्थात्सूर्यं गृहीत्वा । पुनः कासु ? वेलासु । किंभूतासु ? । अवकिरन्तीषु । कैः ? । पयोबिन्दुभिः । यथा अन्याः कामिन्यः क्षमाकान्तं लाजैवद्धापयन्ति तद्वत् ॥११-१२॥

हीसुं० चन्द्रार्कचक्रद्वयभृत्प्र॑भूतक्षेत्रप्रभू ३रत्निधानवाद्धिः ।

यः ४कोऽपि चक्रीव चक्रास्त्वसंख्यद्वीपा॑वनीपैः स समुपास्यमानः ॥१३॥

इति जम्बूद्धीपः ॥

( १ ) क्षेत्राणि भरतादिवर्षाणि कृषिभूमयश्च । ( २ ) मणीनां निधीनां च वार्द्धनामधेया संख्या यत्र, यद्वा रत्नोपलक्षितनिधानानि वार्द्धिः सगरचक्रिवचसा सुस्थितसुरानीतसागरो यत्र । ( ३ ) कोऽप्यद्धतवैभवः । ( ४ ) राजभिः ॥१३॥

हील० चन्द्रा० । यः जम्बूद्धीपः चक्रीवासङ्घैर्द्वीपावनीपास्तैः संसेव्यः शोभते । चन्द्रार्कयोः चक्ररूपयो-द्वयं विभर्तीति । अथ प्रचुरणां क्षेत्राणां निधीनां प्रकर्षेणोत्पत्तिस्थानं चाथवा मणीनां निधानानां वार्द्धिः संख्या यत्र ॥१३॥

हीसुं० १'यत्रोल्लसद्वौरिम॒तुङ्गिमश्रीर्झरप्र॑वृत्तिः ४स्फुटभद्रशालः<sup>1</sup> ।

५र॒वीन्दुधण्टाग्रहर्घरीको विभाति६ हेमशिशखरी करीव<sup>3</sup> ॥१४॥

1. ०शाली हीमु० । 2. करीव हेमः शिखरी विभाति रवीन्दुधण्टाग्रहर्घरीमान् हीमु० । 3. हीलप्रतौ हीमु० चैते १४-१५-१६ श्लोकाः १६, १४, १५, एवं क्रमेण दृश्यन्ते ।

(१) यत्र- जप्तूद्वीपे । (२) गौरः श्वेतपीतयोः श्वेतिम्नः पीतिमनश्च तुङ्गत्वस्य च शोभा यत्र ।  
 (३) निर्झराणां प्रवर्तनं यत्र पक्षे इरवत्प्रवृत्तिर्मदप्रवाहो यत्र । (४) भद्रत्वेन भद्रजातित्वेन  
 शोभते पक्षे वनम् । (५) सूर्यचन्द्रमसावेव घंटे तथा ग्रहा उपलक्षणान्नक्षत्र-तारा एव  
 किङ्किण्यो यत्र । (६) मेरुः ॥१४॥

हील० यत्र द्वीपे सुवर्णगिरिर्विभाति । क इव ? करीव । किंभूतः करी मेरुश्च ? । उल्लसन्ती गौरिम्नः  
 तुङ्गिम्नः श्रीयत्र । पुनर्झराणां प्रवर्तनं इरवत्प्रवृत्तिर्मदो यत्र अथवा स्फुटं विकसितं भद्रशालाख्यं वनं  
 यत्र । स्फुटं प्रकटं भद्रजातित्वेन शालते शोभते । तथा सूर्यचन्द्रमसौ घण्टे ग्रहा घर्षयो यस्मिन्  
 \*॥१६॥

हीमु० <sup>१</sup>अन्तःस्फुरन्मौक्तिकरत्नराजीविराजिकूल्येशदुकूलभाजः ।  
<sup>२</sup>भास्वज्जगत्यर्जुनमेखलाया <sup>३</sup>निशावशाऽहर्मणिकार्णिकायाः ॥१५॥

<sup>१</sup>संध्यारुचीकुङ्कमपङ्किलाङ्कप्राची<sup>२</sup> प्रतीचीक्षितिभृत्कुचायाः ।  
 द्वीपश्रियास्ताऽरकतारहोरे <sup>३</sup>किनायको राजति <sup>४</sup>रत्नसानुः ॥१६॥ युग्मम् ॥

(१) मध्ये द्योतमानमुक्ताफलमणिश्रेणिशोभनशीलसमुद्र एव वसनवत्याः । (२) कपिशीर्षक-  
 वर्जितप्राकारभित्तिः । (३) निशावशश्वन्दः “भूवलयोर्वशीवश” इति नैषधे, रविकुण्डलम्  
 ॥१५॥

(१) सन्ध्यारागधुसृणपङ्क्युक्तउदयास्ताद्रिस्तनायाः । (२) “तारो निर्मलमौक्तिके”<sup>४</sup> होरे ।  
 (३) मध्यमणिः । (४) मेरुः ॥१६॥ युग्मम् ॥

हील० यत्र मेरुविराजते । किमुत्रेक्षते । द्वीपलक्ष्म्यास्तारका एव तारा निर्मलमौक्तिकानि तेषां होरे  
 मध्यमणिः । किंभूताया द्वीपश्रियाः ? अन्तर्मध्ये स्फुरतां मौक्तिकानां रत्नानां रज्या श्रेण्या विराजते  
 इत्येवंशीलो यः कुल्येशोऽब्धि स एव दुकूलं भजतीति तस्याः । दीप्यमाना जगती एव सुवर्णमेखला  
 यस्याः । निशा वशा यस्यैतावता चन्द्रसूर्यौ कुण्डले यस्याः । संध्याराग एव कुङ्कुमं तेन पङ्किलौ  
 व्यासावङ्गो ययोस्तादशावुदयास्ताचलौ कुचौ यस्याः ॥१४-१५॥ युग्मम् ॥

हीमु० यत्रार्थिनो<sup>१</sup>र्थेशमिव प्रसार्य <sup>२</sup>करान्सुवर्णं <sup>३</sup>विवरीषवः किम् ।  
<sup>४</sup>प्रदक्षिणागोचरतां नयन्ति <sup>५</sup>ज्योतिर्गणा गैरिकसा<sup>६</sup>नुमन्तम् ॥१७॥ इति मेरुः ॥

(१) धनवन्तम् । (२) किरणान् हस्तांश्च । (३) याचितुंमिच्छवः । (४) प्रदक्षिणीकुर्वन्ति ।  
 (५) ग्रहनक्षत्रताराव्रजाः । (६) मेरुः ॥१७॥

हील० यत्रा० । यत्र द्वीपे ग्रहनक्षत्रतारासमूहाः सुमेरुं प्रदक्षिणयन्ति । किमुत्रेक्षते । किरणान्प्रसार्य सुवर्णं  
 वरीतुमिच्छवः । यथार्थिनो याचका धनिनं अनुकूलयन्ति ॥१७॥ इति मेरुः ॥

1. कुण्डलायाः: हील० । 2. पूर्व उदयाचल इति प्रतिपाश्वें ठि० । 3. आथमणोऽगस्ताचल इति प्रतिपाश्वें ठि० ।

4. लमौक्तिके इत्यनेकार्थः हीमु० ।

- हीसु० १ सवेशकेशायितकूलिनीशो ३ललामलीलायितसिद्धशैलः ।  
 द्वीपा॑वनीन्दोरिव भालपट्टो यस्मिन् व्यभाद्रारतनाम वर्षम् ॥१८॥  
 ( १ ) समीपे केशपाशवदाचरितो लवणसमुद्रो यस्य । ( २ ) तिलकलीलावदाचरितः शत्रुञ्जयो  
 यस्य । ( ३ ) द्वीपराजस्य ॥१८॥
- हील० सवे० । यस्मिन्द्वीपे भरतक्षेत्रं शोभते स्म । इवोत्प्रेक्ष्यते । द्वीपलक्ष्मीभालपट्टः । किंभूत् ?। समीपे  
 केशसमूह इवाचरितः सरिदीशो यत्र । तिलकशोभया चरितः शत्रुञ्जयो यत्र ॥१८॥
- हीसु० १ पराजितद्वीपतिप्रतीष्ठचिरत्वाद्युपदागणेन ।  
 द्वीपेन पृथ्वीपतिनेव ३वर्षं व्यधायि धामो॑पनिधेरिवैतत् ॥१९॥  
 ( १ ) निर्जितद्वीपावलीभ्यो गृहीतचिरकालोत्पन्नमणिप्रमुखप्राभृतप्रकरेण 'प्रतीष्ठकामज्वल-  
 दस्त्रजकं'॒ चिरत्वत्वाकि॑ ( चित् )मुच्चित्' मिति नैषधे । ( २ ) क्षेत्रं । ( ३ ) निक्षेपस्य ॥१९॥
- हील० परा० जम्बूद्वीपेन एतद्वरतक्षेत्रं उपनिधेन्यासस्य धाम गृहं व्यधायि चक्रे । इव यथा पृथ्वीपतिना  
 राजा निक्षेपस्य निकेतनं क्रियते । किंभूतेन द्वीपेन ? । पराजिता द्वीपानां ततिः श्रेणी तस्याः  
 सकाशात्प्रति(ती)ष्ठे गृहीतश्चिरत्वानि चिरकालोत्पन्नानि रत्नानि तदादिरूपदाप्रकरो येन स तेन ॥१९॥
- हीसु० वैताढ्यशैलो॑ १ विपुलां॒ द्विफालां॒ विनिर्मिमीते स्म॑ निजेन यस्य ।  
 २ यमीभ्रमीभङ्गिविभूष्यमाणां॑ ३स्त्रैणस्य सीमन्त इव॑ प्रवेणीम् ॥२०॥  
 ( १ ) भूमीम् । ( २ ) द्विभागाम् । ( ३ ) आत्मना । ( ४ ) यमुनाजलभ्रमणीरचनया मन्द्यमानां  
 'अपि भ्रमीभङ्गिभिरावृताङ्गं' मिति नैषधे, भ्रमीशब्दो दीर्घः । ( ५ ) स्त्रीगणस्य । ( ६ ) कबरी  
 ॥२०॥
- हील० वैता० । वैताढ्यगिरिभूमिं द्विभागां कृतवान् । केन । निजेनात्मना । किंभूतां विपुलां प्रवेणीं च ।  
 यस्या यमुनाया भ्रमणं तस्या भङ्गयो विलासास्ताभिस्तद्वालङ्गिक्रयमाणाम् । यथा स्त्रीणां समूहस्य  
 कबरीं द्विभागां कुरुते । 'केशवेषे सीमन्तः' सिद्धान्तकौमुद्यां शकन्ध्यादिमध्ये पाठात् । अन्यत्र  
 सीमान्त इत्येव स्यात् ।
- हीसु० वैताढ्यशैलेन विभ॑ज्यमानावुभौ॒ विभागौ॒ भरतस्य भातः ।  
 द्वीपावनीपं किमु॑पेत्य भूत्या॒ जितौ॑ ३भजन्तौ॑ ४फणिनाकिलोकौ॑ ॥२१॥  
 २इति भारतम् ॥
- ( १ ) विभागीक्रियमाणौ । ( २ ) द्वीपराजम् । ( ३ ) आगत्य । ( ४ ) सेवमानौ । ( ५ )  
 पातालस्वर्गौ ॥
- हील० वैताढ्यशैलेन० इति सुगमम् ॥२१॥

१. द्वीपेन्द्रिराया इव हीमु० । द्वीपेन्द्रिराया इत्यपि पाठः इति हीलप्रति पार्श्वे ठि० । २. इति भरतक्षेत्रस्य द्वौ भागौ हील० ।

- हीसुं० १स्वच्छन्दकेलीतरलीभवन्त्या: २स्त्रस्तं ३शिरस्तो भुवि वर्षलक्ष्म्याः ।  
किमुत्तरीयं ४मरुतोत्तरद्वीकृतं सितं यत्र ५बभस्ति गङ्गा ॥२२॥ १इति गङ्गा ।  
( १ ) स्वैरक्रीडया चपलीभवन्त्या 'केलीषु तद्वीतगुणात्रिपीये ति नैषधे, केलीशब्दः दीर्घः ।  
( २ ) पतितम् । ( ३ ) मस्तकात् । ( ४ ) वायुना । ( ५ ) चञ्चलीकृतम् । ( ६ ) भाति ॥२२॥
- हील० स्वच्छन्द० । यत्र भरतक्षेत्रे गङ्गा भासते । किमुत्रेक्ष्यते । स्वेच्छया क्रीडाभिशङ्खलाजायमानायाः ।  
क्षेत्रलक्ष्मीमस्तकात्पतितम् । मरुता तरङ्गयुक्तं कृतं प्रावरणम् ॥२२॥
- हीसुं० तद्व॑क्षिणाद्व॒द्वे ३सुरगेहगर्व्वसर्वकषो ४गूर्जरनीवृदास्ते ।  
श्रियेवरन्तुं ५पुरुषोत्तमेन ६जगत्कृताकारि ७विलासवेशम् ॥२३॥  
( १ ) दक्षिणभरते ( २ ) स्वर्गाभिमानसर्वापहारी । ( ३ ) गूर्जस्नामा देशः सन्तायामस्त्यासते  
इति । ( ४ ) पुरुषेषु श्रेष्ठेन- नारायणेन च । ( ५ ) धात्रा । ( ६ ) क्रीडागृहम् ॥२३॥
- हील० तद्व० । तस्य भरतस्य दक्षिणपार्श्वे । स्वर्गर्गर्वसर्वापहारी गुर्जर इति नामा नीवृदेशो वर्तते ।  
इवोत्त्रेक्ष्यते । सृष्टिकर्ता विभुना सह रहः क्रीडितुं लक्ष्म्या केलिगृहं कृतम् ॥२३॥
- हीसुं० अशेषदेशेषु १विशेषितश्रीर्यो २मञ्जिमानं वहते स्म देशः ।  
३आक्रान्तदिक्चक्र इवाखिलेषु ४वसुंधराभर्तृषु ५सार्वभौमः ॥२४॥  
( १ ) विशेषप्रकारं प्राप्ता श्रीर्लक्ष्मीः शोभा वा यस्य । ( २ ) मनोहरताम् । ( ३ ) स्वभुज-  
बलविजितदिग्निकरः । ( ४ ) राजसु । ( ५ ) चक्रवर्ती ॥२४॥
- हील० यो गूर्जरमण्डलः । अशेषदेशेषु विशेषयुक्ता श्रीः सम्पच्छेभा वा यस्य स । अत्र समासान्त-  
विधेरनित्यत्वात्कप्रत्ययाभावः । एतादृशो मञ्जुनो भावं वहते स्म । इव यथा भूपेष्वखिलेषु सार्वभौमः  
चक्रवर्ती । किंभूतो गूर्जरः सार्वभौमश्च ? । आक्रान्तं महत्वान्महिमा वा व्याप्तं चर्तुदिङ्मण्डलं येन  
स ॥२४॥
- हीसुं० १सुस्वामिभाजो २विबुधाभिरामास्मजिष्णा३वो यत्र पुरः स्फुरन्ति ।  
धृता दधानेन ४दिवाभ्य॑सूयां येनामरा॒वत्य इवाऽप्रमेयाः ॥२५॥  
( १ ) स्वामी-राजा कार्त्तिकेयश्च । ( २ ) विबुधाः पण्डिता देवाश्र । ( ३ ) जयनशील इन्दश्च ।  
( ४ ) स्वर्गेण । ( ५ ) ईर्ष्याम् । ( ६ ) इन्द्रपुर्यः । ( ७ ) असंख्याः ॥२५॥
- हील० सुस्वा० यत्र देशे पुरः नगर्यः राजन्ति । इवोत्त्रेक्ष्यते । दिवा स्वर्गेन सहेष्वा दधता येन गूर्जरेणेन्द्रनगर्ये  
धृताः । किंभूता नगर्यः इन्द्रपुर्यश्च ? । सुशोभनं स्वामिनं राजानं पुरन्दरं स्वामिकार्तिकं वा भजन्तीति ।  
विशेषेण बुधैर्विबुधैर्देवैर्वा रम्याः । तथा सह जिष्णुभिर्यनशीलैर्जिष्णुना शक्रेण कृष्णेन च वर्तन्ते  
यास्ताः ॥२५॥

1. इति गङ्गा । इति भरतक्षेत्रम् हील० ।

- हीसुं० शत्रुञ्जयादेस्तलहट्टिकायां यदा॑र्घभिर्वास॑यति स्म पूर्वम् ।  
 अद्विषत्रिव क्षोणिभृतां विनीतां यस्मिस्तदानन्दपुरं समस्ति ॥२६॥  
 ( १ ) भरतचक्री ( २ ) स्थापयामास । ( ३ ) इन्द्रः ॥२६॥।।।  
 शत्रुं० । भरतचक्री यत्रगरं पूर्वं वासयति स्म । यथा गिरिरुपुर्विनीतां वासितवान् । धनदेनेति शेषः ।  
 तत् आनन्दनाम्ना पुरम् । इदानीं बृहन्नगरनाम्ना पुरम् । यस्मिन्नूर्जरमण्डले विभाति ॥२६॥।।।
- हीसुं० यत्तुङ्गतारङ्गगिरौ॑ गिरीशशैलोपमे कोटिशिला समस्ति ।  
 स्वयंवरोर्वीव॑ शिवाम्बुजाक्षीपाणिग्रहे॒ कोटिमुनीश्वराणाम् ॥२७॥।।।  
 ( १ ) कैलाशसदृशे । ( २ ) सिद्धिवधूविवाहे । ( ३ ) कोटिसंख्यानां साधूनाम् ॥२७॥।।।
- हील० यतुङ्ग० । कैलाशोपमे यस्य देशस्याभ्रांतिलहे तारङ्गनाम्नि पर्वते कोटिशिला विद्यते । इवोत्प्रेक्ष्यते  
 कोटियतीनां मुक्तिमानिनीविवाहे स्वयंवरमण्डपमेदिनी ॥२७॥।।।
- हीसुं० यत्पर्वते॑ कल्पितसप्तभूमी॒ राजर्षिणाकार्यते॑ जैनगेहः ।  
 इवाधिरोद्धुं॑ शिवचन्दशालां॒ निश्रेणिकारोहणं॑ सप्तकाङ्गा ॥२८॥।।।  
 ( १ ) रचिताः सप्तक्षणा भूमयो यत्र । ( २ ) कुमारपालेन । ( ३ ) प्रासादः । ( ४ ) मुक्तिरूपोपरि-  
 गृहम् । ( ५ ) सोपानसप्तकमङ्गे॒ क्रोडे यस्याः ।
- हील० यत्प्य० । यस्मिन्यर्वते तारङ्गे॒ कुमारपालेन रचितसप्तभूमीकः॑ जैनप्रासादः॑ शिल्पभिरकार्यते॑ निर्मापितः ।  
 इवोत्प्रेक्ष्यते॑ । शिवशिरेगृहं॑ चटितुम् । आरोहणानां सोपानानां॑ सप्तकमङ्गे॒ यस्यास्तादशी अधिरोहिणी  
 कारितेव ॥२८॥।।।
- हीसुं० १ग॑भीरताथः॒ कृतवाद्विनेवे॑ ( वो )॒ पदीकृतं॑ ददत्तिनमुद्वहन्तम् ।  
 राजर्षिरस्मिन्वि॑ जयाङ्गजातं॑ तीर्थाधिष्ठं॑ स्थापयति॑ स्म चैत्ये ॥२९॥।।।  
 ( १ ) गाम्भीर्यजिनसागरेण । ( २ ) ढौकितम् । ( ३ ) गजम् । ( ४ ) अजितनाथम् ॥२९॥।।।
- हील० गम्भी० । कुमारपालः॑ अस्मिन्तारङ्गचैत्येऽजितनाथं॑ निवेशयामास । किंकुर्वन्तम् । लाञ्छनगजं  
 उद्वहन्तम् । किमुत्प्रेक्ष्यते॑ । गाम्भीर्येण पराभूतेन समुद्रेण ढौकितम् ॥२९॥।।।
- हीसुं० चैत्येन चूडामणिनेव॑ शीर्षं॑ विभूष्यं॑ राजर्षिरमुष्यं॑ शृङ्गम् ।  
 असिद्धाचलस्येव॑ सुमङ्गलाभूस्तीर्थत्वमुव्यां॑ प्रथयाञ्चकार ॥३०॥। इति तारङ्गगिरः ॥  
 ( १ ) मस्तकम् । ( २ ) तारङ्गगिरेः । ( ३ ) शत्रुञ्जयस्य । ( ४ ) भरतचक्री । ( ५ ) विस्तारयामास  
 ॥३०॥।।।
- हील० चैत्ये० राजर्षिरमुष्यं॑ तारणगिरेस्तीर्थत्वं॑ पृथिव्यां॑ विस्तारयामास । यथा भरतचक्री॑ शत्रुञ्जयस्य

तीर्थत्वं विस्तारयति । किं कृत्वा ? । चैत्येन शृङ्गं विभूष्य । मुकुटेन शोर्षं भूष्यते तथैव ॥३०॥

हीसुं० देशे पुनस्त्र समस्ति शंखेश्वरोऽन्तिकंस्थायुकनागंनाथः ।

३धात्रा ४धरित्र्यां जगदिष्टसिद्धै मेरोरिवादाय सुरद्वरुमः ॥३१॥

( १ ) तिष्ठतीत्येवंशीलः । ( २ ) धरणेन्द्रः । ( ३ ) ब्रह्मणा । ( ४ ) भूमौ । ( ५ ) ईहितपूरणाय ।

( ६ ) उत्खाय ॥३१॥

हील० गूर्जरदेशे धरणेन्द्रसेव्यः शङ्खेश्वरो जागर्ति । इवोत्प्रेक्ष्यते । मेरोः सकाशात्लात्वा । विधिना ।

कल्पतरुः प्ररोपितः । किमर्थम् ? जगदिष्टसिद्धै । तात्प्थात्तद्वयपदेश इति न्यायाज्जगज्जनानामभिलिषितपूर्तये ॥३१॥

हीसुं० विद्याधरेन्द्रौ १विनमिर्निश्च २यद्वं( द्विं )बमभ्यर्चयतः स्म पूर्वम् ।

स्वर्गे ततोऽपूजि ३बिडौजसा [ य ]त् ४स्वधाम एव स्यृहयेव सिद्धेः ॥३२॥

( १ ) ऋषभजिनसेवासन्तुष्टधरणेन्द्रदत्तगौरी-प्रज्ञसीप्रमुखविद्या-वैताव्यदक्षिणोत्तरश्रेणिद्वयैश्वर्यै  
नमि-विनमिनामानौ खेचरेन्द्रौ । ( २ ) पार्श्वप्रतिमाम् । ( ३ ) इन्द्रेण । ( ४ ) स्वर्गादेव ॥३२॥

हील० विद्या०। नमिविनमिरजानौ श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथप्रतिमां पूजयतः स्म । तदनन्तरमिन्द्रेण पूजितम् ।  
ईवोत्प्रेक्ष्यते । स्वगादेव, मनुष्यावतारं विनैव वैक्रियशरीरैव मुकेवर्ज्ञयेव ॥३२॥

हीसुं० तेनाथ मुक्तं १गिरिनारिशृङ्गेऽधिःगम्य ३माणिक्यमिवामराणाम् ।

नीत्वात्मधाम्नो४र्विधुपद्मपाणी यदार्चतां ५निर्वृतिमीहमानौ ॥३३॥

( १ ) काञ्छनबलानकनामि । ( २ ) ज्ञात्वा । ( ३ ) चिन्तामणिमिव । ( ४ ) चन्द्ररविमण्डले  
रविः ( ? ) । ( ५ ) मुक्तिम् ॥३३॥

हील० तेनाऽ। अथ तेन शक्रेण कियत्कालं गिरिनारिगिरे: काञ्छनबलानकारव्यशृङ्गे यत्तिम्बं मुक्तं सत  
चन्द्राकौं चिन्तारत्नमिव प्राप्य पुनरात्मगृहयोगनीय आर्चताम् ॥३३॥

हीसुं० १ताभ्यां २पुनः स्थापितमुज्जयन्ते पार्श्वं स्वसर्वस्वमिवावसाय ।

३आखण्डलः कुण्डलिनां ऋमेण ४सभाजनायानैयति स्म वेशम् ॥३४॥

( १ ) शशिसूर्याभ्याम् । ( २ ) ज्ञात्वा । ( ३ ) नागेन्द्रः । ( ४ ) पूजनाय ॥३४॥

हील० ताभ्यां०। नागेन्द्रः पार्श्वनाथमात्मगृहे अर्चनाय आनयति स्म । किं कृत्वा ? । चन्द्राकारभ्यां स्थापितं  
स्वकीयनिधिमिव पार्श्वं ज्ञात्वा ॥★३४॥

हीसुं० गिराथ नेमे आ[ र९ ]विन्दनाभिरु४पास्य ५पद्माप्रियमष्टमेन ।

आनाययत्तेन जिनं तमा५त्मद्विषज्जयं मूर्तिमिवाश्रयन्तम् ॥३५॥

( १ ) नारायणः कातन्त्रवार्त्तिकेऽप्युक्तम्, 'अरविन्दनाभि' रित्यादयो माधादिकाव्योक्ताः प्रयोगाः शिष्ठैरभ्युपगम्याः । ( २ ) संसेव्य । ( ३ ) धरणेन्द्रं पूर्वव्यावर्णितस्वरूपम् । ( ४ ) जरासन्धजयमिव ॥३५॥

हिल० गिरा० । अरविन्दनाभिर्नारयणो नेमिनाथवाचाऽष्टमभक्तेन धरणेन्द्रमाराध्य तेन धरणेन्द्रेन(ए) तं पूर्वव्यावर्णितं पार्श्वजिनमानाययत् । उत्प्रेक्ष्यते । मूर्त्तिमन्तं स्ववैरिणां विजयमिव ॥३५॥

हीसुं० ततो जर येन 'यदु( दू)द्वहनां न्यवारि बारा रूपनोद्धवेन ।  
'बाणस्य कुष्ठं वपुषस्त्वं षेव 'राजीविनीजीवितवल्लभेन ॥३६॥

( १ ) यादवानाम् । ( २ ) जलेन । ( ३ ) स्नपनजनितेन । ( ४ ) बाणनामः कवेः । ( ५ ) किरणेन । ( ६ ) रविणा ॥३६॥

हील० ततो० ततोऽत्रागमनानन्तरं येन श्रीपार्श्वदेवेन स्त्रात्रोत्पन्नेन जलेन यदुनन्दनानां जर निवारिता । यथा कमलिनीपतिना निजकान्त्या बाणकवेः शरीरात्कुष्ठरेणो निरकृतस्तद्वत् ॥३६॥

हीसुं० यत्रा'र्हताध्मायि॒ निजध्वजिन्यास्त्रा॑णाय कम्बुर्भ्रमता समन्तात् ।  
'तत्राच्युतेनारिजयप्रशस्तिरिवात्मजः शंखपुरं न्यधायि ॥३७॥

( १ ) अरिष्ठेनेमिना । ( २ ) वादितः । ( ३ ) स्वसेनायाः । ( ४ ) रक्षणाय । ( ५ ) कृष्णेन ।  
( ६ ) वासितम् ॥३७॥

हील० यत्रा० । यत्र स्थाने श्रीनेमिनाथेन सेनासमन्तादध्रमता सता निजसेनारक्षणाय शङ्खे वादितः तत्र स्थाने 'विष्णुना शङ्खपुरं वासितम् । उत्प्रेक्ष्यते । निजवैरिणां जयस्य प्रशस्तिर्लिखिता ॥३७॥

हीसुं० 'वसुन्धरायामिव वैजयनं निर्माण्य चैत्यं सुरगोत्रमित्रम् ।  
निवेशयामास 'सुवर्णबिन्दुरा॑नन्दसान्दोऽत्र॒ जिनेन्द्रबिम्बम् ॥३८॥

( १ ) स्वर्गे यथा इन्द्रप्रासादस्तथा भूमाविव । ( २ ) इन्द्रगृहम् । ( ३ ) मन्दरोत्तुङ्गम् । ( ४ ) नारायणः । ( ५ ) प्रमोदपल्लवितः । ( ६ ) शङ्खपुरे ॥३८॥

हील० वसु०। सुवर्णबिन्दुर्नारयणः । अत्र चैत्ये पार्श्वप्रतिमां स्थापितवान् । किं कारयित्वा ? मेरोमित्रं साहस्रेन चैत्यं विधापयित्वा । इवोत्प्रेक्ष्यते । पृथिव्याः इन्द्रप्रासाद इव । किंभूतः सुवर्णबिन्दुः । ? प्रमोदमेदुरः ॥३८॥

हील०→ स्वकारितेशाचलचारुचैत्ये निवेशितः सज्जनमन्त्रिणा यः ।

स रोपितः स्वःशिखरीव सौधाङ्गेऽस्य जज्ञेऽखिलसिद्धिदायी ॥३९॥

स्व० । आत्मकारिते कैलाशसुन्दरे चैत्ये सज्जननामा मन्त्रिणा स्थापितम् । शङ्खेश्वरपार्श्वनाथः । अस्य मन्त्रिण एव । सिद्धिं ददातीत्येवंशीलो । जज्ञे जातः । यथा गृहाङ्गणद्वारे केनचित्प्रयोपितसुरतरुस्त-स्यैव समस्तवाञ्छितार्थप्रदाता भवति तथैव । 'प्ररोपित' इत्यपि पाठे तात्पर्यार्थः ॥३९॥

→ एतदन्तर्गतः पाठो हीसुप्रतौ नास्ति ।

- हील० → निःस्वादिवैश्वर्यमनाप्य इंद्रूपूराकर्तो दुर्जनशत्यभूमान् ।  
रूपं यतः स्मारमिवाप्य देवसद्वेव यच्चैत्यमचीकरच्य ॥४०॥
- निःस्वा० । निःस्वाद्यथा एश्वर्य नाप्यते तद्बज्जन्द्वपुरे ग्रामे सूर्यतः रूपं अप्राप्य । यतः पार्श्वनाथात्स्मरसद्वशं रूपं प्राप्य दुजणसालनामा भूपः देवविमानमिव श्रीपार्श्वचैत्यं शिल्पिभिः कारयमास । च पुनरर्थार्थः ॥४०॥←
- हीसु० १पद्मावतीप्राणपतिः २प्रसूनाशनीभविष्णुश्वरणारविन्दे ।  
३तत्तन्यते यन्महिमानमुव्यां ४सरोजसौरभ्यमिवाहिकान्तः ॥३९॥
- ( १ ) धरणेन्द्रः । ( २ ) भ्रमरीभवनशीलः । ( ३ ) पदपद्मे । ( ४ ) अतिशयेन तनोति । ( ५ ) कमलपरिमलम् । ( ६ ) वायुः ॥३९॥
- हील० पद्मा० । क्रमकमले प्रसूनाशनो भृङ्गः स भविष्णुर्भवनशील एताहशधरणेन्द्रः पृथिव्यां यस्य महिमानमतिशयेन विस्तारयति । यथा सर्पवल्लभो वायुः कमलसौगन्ध्यं विस्तारयति, तद्वत् ॥४१॥
- हीसु० यो १ध्वंसतेऽष्टापि २दरान्नराणां ३व्यालान्ववायानिव ४वैनतेयः ।  
५शयेशयालूः पुनरष्टसिद्धीः ६प्रणेमुषां यः ७प्राथयाम्बभूव ॥४०॥
- ( १ ) नाशयति । ( २ ) भयानि । ( ३ ) नागकुलानीव ( ४ ) गरुडः । ( ५ ) पाणिपद्मस्था । ( ६ ) नमतां जनानाम् ( ७ ) विस्तारयति स्म ।
- हील० यः शङ्खेश्वरपार्श्वनाथः नगणां मनुष्यानां(णां) अष्टावपि भयानि नाशयति । यथा गरुडः व्यालकुलानि वासुकि१ अनन्त२ तक्षक३ कङ्गोलक४ पद्म५ महापद्म६ शङ्ख७ कुलीशशि८नामानि विध्वंसते । पुनर्यो दयावान्निजपादाब्जे नम्रीभूतानां अष्टसिद्धीः करे शयनशीला हस्तस्थिताः कुरुते सम्पादयति ॥★४२॥
- हीसु० १ऊर्जस्वलत्वं २कलयन्कलौ यो निधिर्महिमां महसामिवांशुः ३ ।  
जागर्त्ति शंखेश्वरपार्श्वनाथः ४श्रेयःपुरीप्रस्थितपांथसार्थः ॥४१॥
- इति शंखेश्वरपार्श्वनाथः ॥
- ( १ ) स्फूर्तिमत्ताम् । ( २ ) धारयन् । ( ३ ) सूर्यः । ( ४ ) मुक्तिनगरी प्रति चलितपथिकानां सार्थ इव ॥४१॥
- हील० ऊर्जस्व० । यः शङ्खेश्वरपार्श्वनाथः स्फूर्तिमत्तां धारयन्सन् जागर्त्ति । किंभूतः ? । माहात्म्यानां स्थानं । यथा सूर्यः प्रतापानां निधानं भवति । पुनः किंभूतः ?। श्रेयःपुरी मुक्तिनगरी तत्र चलिता ये पान्था भव्याध्वगास्तेषां सार्थ इव सार्थः ॥४३॥

\* एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति । 1. कुरुते कृपालूः हीसु० ।

- हीसुं० १त्रापि च स्फूर्तिमियर्त्यऽपूर्वा श्रीस्थंभने स्थम्भनपार्श्वदेवः ।  
२व्यध्वंसि ३धन्वन्तरिणोव येन ४कुष्टोपतापोऽभयदेवसूरेः ॥४२॥  
( १ ) अपि च पुनः तत्र गूर्जरमण्डले । ( २ ) निवारितः । ( ३ ) धन्वन्तरिनामा वैद्यः । ( ४ )  
कुष्टोरोगः ॥४२॥
- हील० तत्राऽ । तत्र गूर्जरमण्डले श्रीस्थम्भने स्थंभनपार्श्वः असाधारणी स्फूर्ति प्राप्नोतीति । येन पार्श्वनाथेन  
नवाङ्गीवृत्तिविधातुरभयदेवसूरेः कुष्टोपद्रवः निरस्तः । यथा धन्वन्तरिवैद्येन कुष्टादिरोगो विध्वंस्यते ॥४४॥
- हीसुं० १स्वक्षारतां २सूनुकलङ्कितां च ३माष्टुं क्रमाम्भोजरजोमृतेन ।  
४वेलाछलाद्यं जलधिर्द्विवेलं मुत्कण्ठितोऽ नन्तुमिवाभ्युपैति० ॥४३॥
- १इति स्थम्भनपार्श्वः ।
- ( १ ) आत्मनो लवणत्वम् । ( २ ) चन्द्रस्य कलङ्कपत्वम् । ( ३ ) स्फेटयितुम् । ( ४ )  
जलवृद्धिव्याजात् । ( ५ ) द्विवारम् । ( ६ ) उत्सुकितः । ( ७ ) समायाति । ४३॥
- हील० स्वक्षार० । समुद्रः उत्कण्ठितः सन् वारिवृद्धिव्याजाद्द्विवारं यं स्थंभनपार्श्वनाथं ननुं आगच्छति ।  
किंकर्तुम् ? । क्रमकमलरजोऽमृतेन कृत्वा स्वलवणभावं अपि च चन्द्रकलङ्कं अपनेतुमिव ॥४५॥
- हीसुं० तीर्थानि १तीर्थाधिपपावितानि २परस्सहस्राण्यपराण्यपीह ।  
स्फूर्ति परां बिभ्रति पूर्वदेशे ३जिनेशकल्याणकशालिनीव ॥४४॥<sup>१</sup>  
( १ ) जिनेन्द्रैः पवित्रीकृतानि । ( २ ) सहस्रात्पराणि । ( ३ ) तीर्थकृतां च्यवन-जन्म-दीक्षा  
केवल-सिद्धिगमनस्थानकरूपैः कल्याणकैः शालते इत्येवं शीले ॥४४॥
- हील० तीर्थ० । इहं देशे अपि पुनः अन्यानि अपरणि सहस्रात्पराणि अनेक सहस्रसङ्ख्यानि तीर्थानि  
पुण्यस्थानानि महिमानं कलयन्ति । किंभूतानि ? । जिनप्रतिमाभिः पावितानि । पवित्रितानोत्यर्थः ।  
कस्मिन्निव । पूर्वदेश इव । यथा पूर्वदेशे सहस्रसङ्ख्याकानि तीर्थानि स्फुरन्ति । किंभूते पूर्वदेशे ?  
जिनेशानां कल्याणकैः शालते शोभते इत्येवंशीलस्तस्मिन् ॥४६॥
- हीसुं० ३नवोदयं० हीरकुमारचन्द्रं निरीक्षितुं कौतुकिनीसमेता ।  
स्वयं ४स्वयंभूतनया किमेषा सरस्वती यत्र विभाति सिन्धुः ॥४५॥  
( १ ) उदयो जन्म-उद्घमनं च । ( २ ) विधातुः पुत्री ॥४५॥
- हील० नवोदय० । यत्र देशे सरस्वती नदी विभाति । किमुत्प्रेक्ष्यते । नवो नूतनो, भाविनि भूतोपचारदुदयो  
यस्य तं तथोक्तं हीरनामा कुमारेषु कुमाराणां मध्ये दीप्यमानत्वाच्चन्द्रम् । तं निरीक्षितुम् । कौतुकं  
विद्यते यस्या सा कौतुकिनी कुतूहलाकलिता समेता । एषा किं स्वयंभुवो ब्रह्मणस्तनया पुत्री  
सरस्वती समागतेव । अन्यापि पुरस्त्री कुतूहलात्रवोदयं चन्द्रं प्रेक्षितुं समेति ॥४७॥

1. इति स्थम्भनपार्श्वदेवः हील० । 2. इति पुण्यस्थानानि हील० । 3. अथ क्रीडास्थानानि । नवोदय० हील० ।

- हीसुं० १कपोलपालीमृगनाभिपत्रलताङ्कितेश्च रद्विजचन्द्रिकाङ्क्षैः ।  
२क्रीडन्मृगाक्षीवदनैर्बभू( भौ ) या सहस्रचन्द्रेव विरच्छिपुत्री ॥४६॥
- ( १ ) गल्स्थलेषु-कस्तूरिकापत्रवल्लिएव् अन्तश्चिह्नं जातमेष्विति । ( २ ) दशनकान्तियुक्तैः, द्विजाश्चन्द्रिका च ऋडे येषां ते । ( ३ ) जलकेलिकुर्वन्ती( ती )नां कान्तानां वदनैः ॥४६॥
- हील० कपो० या विरच्छिसुता नदी सहस्रचन्द्रा इव जाता । कैः कृत्वा ? । गल्स्थलेषु कस्तूरिकापत्रलताकलितैः पुनर्दन्तकान्तिसहितैश्चन्द्रवदनानां वदनैः कृत्वा ॥४८॥
- हीसुं० १यूनो रसिंसोपगतान्स॒कान्तान्हंसस्वनैः २स्वागतमुच्चरन्ती ।  
तरङ्गःहस्तस्थितपङ्कजैर्या विश्राणयामास ३किमर्थमर्ध्यान् ॥४७॥
- सरस्वती नदी । ( १ ) तरुणान् । ( २ ) रन्तुमिच्छया । ( ३ ) समेतान्-स्त्रीयुतान् । ( ४ ) सुखेनागमनं-कुशलप्रश्नम् । ( ५ ) पूजाम् । ( ६ ) पूजार्हान् ॥४७॥
- हील० या सरस्वतीनदी । स्वकल्पोला एव हस्तास्तेषु स्थितैः पङ्कजैः कृत्वा । किमुत्रेक्ष्यते । रन्तुमिच्छया आगतान् । पुनः स्त्रीसहितान् । पुनः पूजायोग्यान् । एतादृशान्यूनः प्रतिहंसशब्दैः सुखेनागतमिति उच्चरन्ती सती कमलैः कृत्वा पूजाविधिं दत्ते स्म ॥४९॥
- हीसुं० १विधोर्धिया मन्दमरन्दलीनशिलीमुखोन्मीलितपुण्डरीकम् ।  
२वीक्ष्याभितो यत्र चकोरिकाभिरध्मामि३ ३पीयूषरसाभिकाभिः ॥४८॥
- ( १ ) बहुलपरिमिलपातार्थं मध्यलीनमधुकरम् । ( २ ) स्मेरश्वेतकमलम् । ( ३ ) ध्रान्तम् । ( ४ ) सुधारसकाङ्गिक्षणीभिः ॥४८॥
- हील० विधोर्धि०। व्याख्या । यत्र सरस्वत्यां सरिति अमन्दमकरन्दार्थं लीना भ्रमय यत्रैवंविधं विकसितं सिताप्भोजं विलोक्यामृतरसकामुकाभिज्योत्सनप्रियजायाभिश्चन्द्रबुद्ध्या समन्तात् भ्राम्यते स्म ॥५०॥
- हीसुं० १मुक्तालताङ्केव २निजोपकण्ठश्रेणीभवलक्ष्मणपक्षिलक्ष्मैः ।  
३शिञ्चानमञ्जीरवतीव ४कूलानुकूलकूर्जत्कलहंसिकाभिः ॥४९॥
- १शिलीमुखाश्लेषिसरोरुहेव सनेत्रवक्त्रश्रियमाश्रयन्ती ।  
२था३ङ्गनामद्वितयेन तुङ्गपीनस्तनद्वन्द्वमिवोद्धन्ती ॥५०॥
- ३रोमावली४शैवलवल्लरीभिरिवादधानापि३ च यत्र देशे ।  
४स्वकेलिलोलान्वरवर्णनीव॑ युवव्रजान्साभ्रमती॑ तनोति ॥५१॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
- ५इति नदी ।
- ( १ ) हारयुक्तेव । ( २ ) तटे पडिक्तभूतसारसैः । ( ३ ) शब्दायमाननूपुरयुक्तेव । ( ४ ) तटे कण्ठासुखकृत्वणन्मरालीभिः ॥५१॥

1. इति सरस्वती नदी हील० । 2. भ्रम इति प्रतिपाश्वे टि० । 3. चक्रवाकस्तन इति प्रतिपाश्वे टि० । 4. इति साभ्रमती हील०।

(१) भ्रमरयुक्तपद्मनेव । (२) चक्रवाकमिथुनेन ॥५०॥

(१) रोमराजीः । (२) शेवालमालाभिः । (३) अपि चेति पुनरथे—एका सरस्वती नदी अपरा साभ्रमतीति । (४) स्वस्यां विषये क्रीडायां लालसान् । (५) प्रधानस्त्री । (६) नामनदी ॥५१॥

हील० मुक्ताल०। अपि च । यत्र देशे साभ्रमती नदी प्रधानस्त्रीव तरुणगणान्स्वस्मिन्विषये क्रीडाचपलान्करेति । किंभूता साभ्रमती ?। निजतटवर्त्तिनो लक्षणाः सारसविहङ्गमास्तेषां लक्षैः । मुक्तालताङ्केव मुक्ताहारः पूर्वभागे यस्याः सा । पुनः किंभूता साभ्रमती ? तटेऽनुकूलं शब्दायमानाभिर्हसीभिः रणज्ञणिति निक्वणायमाननूपुरमण्डतेव । पुनः किंभूता साभ्रमती ?। नेत्रेण सहितं यद्वक्त्रं तस्य श्रियमाश्रयन्तीव । केन ?। भ्रमरं आश्लिषति आलिङ्गतीत्येवंशीलं यत्सरेषु रूपदां तेन । पुनः किंभूता साभ्रमती ?। रथाङ्गनाम्नोर्युगलेन कृत्वा उतुङ्गै पुष्टै यौ स्तनौ तयोर्द्वन्द्वं दधतीव । पुनः किंभूता साभ्रमती ?। शेवाललताभिः कृत्वा रेमत्रेणिमादधानेव । वरमहेलाच्येतादृशी भवति ॥५१-५२ ५३॥

हीसुं० 'यत्रोन्नमद्वारिदर्विर्मिताङ्गास्तंडिल्लोपात्तनिशातशस्त्राः ।

अआखण्डलेन द्विषतेव रोषाद्योद्धुं 'व्यवस्थन्ति विलासशैलाः ॥५२॥

(१) नप्रीभूतघनेन सन्नाहयुक्तशरीराः । (२) विद्युदेव गृहीततीक्षणायुधाः । (३) इन्द्रेण ।

(४) उद्यमं कुर्वन्ति ॥५२॥

हील० यत्रोन्न०। यत्र देशे विलासशैलाः शक्रेण द्विषता वैरिण सह रोषात्स्ववंशयलक्षपक्षछेदोद्भूतात्कोपाद्योद्धुं सङ्घामं कर्तुं प्रगल्भन्ते । किंविशिष्टाः ?। उन्नमन्तमेघास्तैर्वर्मितं सन्नाहयुक्तं जातमङ्ग येषां ते । पुनः विद्युद्वितानान्येव गृहीतानि शाणोत्तेजिता[नि] शस्त्राणि यैस्ते ॥५४॥

हीसुं० 'इयत्तयानन्तमपि प्रमातुं 'प्रगल्भमाना इव कौतुकेन ।

शैलाः 'कृतव्योमवहावगाहा जगाहिरे 'निर्जरराजमार्गम् ॥५३॥

(१) एतावत्परिमाणत्वेन अन्तरहितमपि । (२) उद्यमं कुर्वणा । (३) विहितस्वर्गगङ्गाजल-विलोडनाः । (४) आकाशम् । "सुरेश्वराध्व" इति नैषथे ॥५३॥

हील० इय०। यत्र देशैः शैलाः पर्वताः कृतस्वर्गङ्गाप्रवेशाः निर्जरराजमार्ग आकाशं अवगाहते स्म । इवोत्प्रेक्ष्यते । एतावत्प्रमाणेनाकाशमिति मातुं कौतुकेन उद्यमं कुर्वणा इव । कौतुकिनो हि निर्विचारं यत्र तत्राप्युत्सहते ॥५५॥

हीसुं० 'सवाहिनीकाः 'स्मितनूतचूतच्छत्रा इरन्निज्जररोमगुच्छाः ।

अनिह्वाना 'धरणीधरत्वमिवात्मनो यत्र बभुर्गिरीन्द्राः ॥५४॥

(१) नदी सेना च । (२) नवसहकाराच्छत्राः । (३) प्रकटीकुर्वणाः (४) राजतां शैलत्वं च ॥५४॥

हील० सवा०। यत्र पर्वतपतयः भासिरे । इवोत्प्रेक्ष्यते । भूभृद्धावं स्वकीयं प्रकटीकुर्वणाः । किंभूता

गिरीन्द्राः ? । सह नदीभिः सेनाभिश्च वर्तन्ते । पुनविकसिता नवीनाः आप्ना एवातपत्राणि येषां ते । पुनः किंभूता गिरीन्द्राः ? । इत्तो वहन्तो ये निर्ज्ञरास्त एव रेमगुच्छशामरणि येषां ते । उत च रजानोऽपि छत्रचामरसेनायुक्ताः स्युः ५६॥

हीसुं० १विद्युन्मणी भूषणभूष्यमाणा २मिलद्वलाकाघनपुष्पनद्वा ।

कादम्बिनी बद्धशिखानुषङ्गा ३यद्वोत्रलक्ष्म्याः ४कबरीव रेजे ॥५५॥

( १ ) विशेषेण द्योतमाना मणयः पक्षे विद्युदेव मणिभूषणानि । ( २ ) मिलन्त्य आश्लिषन्त्य या बकाङ्गनास्ता एव प्रचुराणि कुसुमानि तैर्व्यासा पक्षे बलाकावदुज्ज्वलैर्मेघमालया रचितशूलायां संगो यस्याः । ( ३ ) गिरिलक्ष्म्याः । ( ४ ) वेणी ॥५५॥

हील० यत्र देशे शैलोपरि मेघमाला भाति स्म । उत्त्रेक्ष्यते । गूर्जरपर्वतानां लक्ष्म्या वेणी । किंभूता ? । कृतशिखप्रसङ्गा । किंभूता ? । विद्युदेव रत्नभूषणं, तेन शोभिता । पुनः मिलन्तीभिर्बलाकाभिघन-पुष्टैर्जलैर्नद्वा पक्षे शुभ्रत्वाद्वलाकातुल्यैः सान्द्रपुष्टैर्गुम्फता ॥५६॥

हीसुं० १नित्यातिवाहाद्विगतावलम्बाम्बरेम्बरद्वीपवती विखिन्ना ।

२प्रोत्तुङ्गयद्वूधरनिर्ज्ञराणां निभेन भूभागमिवाभ्युपैति३ ॥५६॥ इति गिरयः ॥

( १ ) सदातिशयेन प्रवहनात् निरलम्बा स्वर्गगङ्गा । ( २ ) अम्बरालम्बिगूर्जरगिरिनिर्ज्ञरव्याजेन । ( ३ ) समेति ॥५६॥

हील० नित्या० । अम्बर-नदी-गङ्गा-पर्वत-निर्ज्ञरकपटेन । इवोत्त्रेक्ष्यते । पृथ्वीं आयाति । किम् ? निरश्रये आकाशे अतिवहनात् खिन्ना इव ॥५८॥

हीसुं० १कै३दार्यमुज्जृम्भितशालि४ ५यस्मिन्विहङ्गवृन्दैर्व्यरुचच्चरद्धिः ।

६महीन्दिराया ७मणिगुम्फगर्भो नीलीविनीलः किमयं ८निचोलः ॥५७॥

( १ ) केदारनिकरः । ( २ ) विकसितकलमम् । ( ३ ) शुशुभे । ( ४ ) शालिकणानी( नि ) स्वादयद्धिः विचरद्धिश्च । ( ५ ) भूमिलक्ष्म्याः । ( ६ ) रत्नरचनामध्यः । ( ७ ) निचोलः ॥५७॥

हील० कैदा० । यस्मिन्देशे केदारसमूहः भाति स्म । इवोत्त्रेक्ष्यते । रत्नरचनागर्भितः । किंभूतः ? गलीव नीलः । कञ्जुकोऽसौ ॥५९॥

हीसुं० कैदारिकं ववापि समञ्जरीकशालि१ व्यलासीन्नदसन्निधाने२ ।

रोमावली३ नाभिविभासिमध्यदेशे किमेषा४ विषयेन्दिरायाः ॥५८॥

( १ ) बभौ । ( २ ) इह समीपे । ( ३ ) नाभिना शोभनशील उदरभागे । ( ४ ) देशलक्ष्म्याः ॥५८॥

1. गिरि इति प्रतिपार्श्वे ठि० । 2. वेण इति प्रतिपार्श्वे ठि० । 3. क्यार्या यत्र इति प्रतिपार्श्वे ठि० ।

- हील० कै०। क्वापि झरसमीपे । समञ्जरीका शालयो यत्र । ताहशं कैदारिं शोभते स्म । उत्प्रेक्ष्यते ।  
देशलक्ष्याः, नाभिना विभासिमध्यप्रदेशे रोमत्रेणीव ॥६०॥
- हीसुं० 'उत्तालतालं करतालिकाभिः सृजन्ति गीतीरह शालिगोप्यः ।  
श्रिया 'समग्रान्विषया'न्विजित्य कीर्त्तीः स्थितानामिव 'गूर्जरणाम् ॥५९॥  
इति केदारः ॥
- ( १ ) शीघ्रं तालो यत्र । ( २ ) हस्तद्वयवादनैः । ( ३ ) शालिरक्षिकाः ( ४ ) स्वैरभवेन । ( ५ )  
समस्तदेशान् ( ६ ) परिभूय । ( ७ ) सुखं स्थितानाम् । ( ८ ) गूर्जरणां यशांसीव ॥५९॥
- हील० उत्ता०। उत्तालस्त्वरितवादिनस्ताला यत्रैव स्यातथा क्रियाविशेषणम् । तालिकाभिः शालिरक्षिका  
गीतिभिर्गायन्ति । उत्प्रेक्ष्यते । सम[स्त] प्रदेशान्विजित्यैकस्थानस्थायुकानां गूर्जरणां गूर्जरस्य वा ।  
“देशानामग्रे बहुत्वमेव वाच्यम्” । कीर्त्तीर्यशासीव गायन्तीव ॥६१॥
- हीसुं० 'कुत्रापि 'दम्यैरनुगम्यमानाः' सरिद्वारायाः सखितां दधाना ।  
'यद्गोचरे' 'दोणदुधाश्वरन्ति मूर्त्ताः 'समाज्ञा इव 'मण्डलस्य ॥६०॥
- ( १ ) वत्सतरैः प्रौढतर्णकैः । ( २ ) गङ्गायाः । ( ३ ) यदेशस्य गवां चरणस्थाने । ( ४ )  
दोणप्रमाणं दुग्धं यासाम् । ( ५ ) कीर्त्य इव । ( ६ ) गूर्जरदेशस्य ॥६०॥
- हील० कुत्रा०। कुत्रापि स्थाने वत्सतरैः सेव्यमानाः । पुनः श्वेत्याहङ्गासाहशं दधानाः । पुनर्दोणपरिमाणं  
दुधमासां ता गावो गवां चरणस्थाने चरन्ति । इवोत्प्रेक्ष्यते । गूर्जरस्य मूर्त्तिमत्यः कीर्त्यः ॥६२॥
- हीसुं० गावः क्वचिद्दान्ति 'सुधामुधाकृत्यःस्ववन्त्यः प्रविभाव्य वत्सान् ।  
'यदीर्घ्यया 'निष्ठितनाकभाग्यैः<sup>३</sup> स्वर्धेनवः<sup>४</sup> क्षोणिमिवावतीर्णाः ॥६१॥
- ( १ ) अमृताधरीकरिष्णदुग्धम् । ( २ ) गूर्जरदेशेन सममसूयया ( ३ ) निःशेषेण गतैः स्वर्भाग्यैः ।  
( ४ ) कामगव्यः ॥६१॥
- गाव०। गावो भान्ति । किंभूता गावः ? । वत्सान्वष्ट्वा सुधानिष्फलकृदुग्धं क्षरन्त्यः । उत्प्रेक्ष्यते ।  
यदगूर्जरदेशेन समं ईर्ष्यापापेन क्षीणदेवलोकभाग्यैः कृत्वा पतिताः कामगव्यः ॥६३॥
- हीसुं० 'ब्रह्माण्डभाण्डोपरिभित्तिभागप्रोत्तानयानोद्दवदर्तिभाजः ।  
सातं चरन्त्यः किमुपेत्य धात्र्यां स्वर्धेनवो यत्र विभान्ति गावः ॥६२॥  
इति गावः ॥
- ( १ ) ब्रह्माण्डं लोक एव भाण्डं भाजनं गोपालकाकारविशेषस्तस्य ऊर्ध्वभित्तिसूत्रप्रोत्तानं  
ऊर्ध्वाः पादा अथः शरीरमिति यद्यानं गमनं तेन प्रकटा भवन्ती अर्तिः मानसा-शारीरकीव्यथा  
तां भजन्तीति ॥६२॥

१. गायवर्णनम् इति प्रतिपाश्चे ठि० । २. ०चरदोण० हीमु० । ३. ०यैरिवावतीर्ण भुवि देवगावः हीमु० ।

- हील० ब्र०। यत्र गावः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । स्वर्धेनवः । किंभूताः स्वर्धेनवः ? ब्रह्मा[ण्ड]भाण्डस्योपरितन-  
भित्तिभागे अम्बुप्रतिबिम्बवदूर्ध्वपादमधोवपुरेवंविधं यद्मनं तेनोद्भवन्तीं अर्तिं पीडां भजन्तीति ।  
तादशः सत्यः भूमौ आगत्य सुखं चरन्त्यः गच्छन्त्यः । ‘चर गतिभक्षणयो’ रिति धातोर्गमनभक्षणार्थत्वात्  
॥६४॥
- हीसु० १यस्मिंश्च १राजर्षियशोमैरन्दवृन्दारविन्दैः ३पुटभेदनान्तः ।  
द्वात्रिंशता ४श्रीऋषभादिसार्वचैत्यैर्विलेसे ५दशनैरिवास्ये ॥६३॥  
( १ ) कुमारपालः ( २ ) मकरन्दः ॥ ( ३ ) अणहिल्पत्तनमध्ये ( ४ ) ऋषभप्रमुखतीर्थ-  
कृद्वात्रिंशद्विहारैः । ( ५ ) दन्तद्वात्रिंशिकानामधिः ॥६३॥
- हील० यस्मिन्देशे । पत्तनान्तः राजर्षिनिर्मितैर्द्वात्रिंशत्सङ्ख्याकैर्जिनचेत्यैर्विलसितम् । इवोत्प्रेक्ष्यते । वदने  
रदनैः ॥६५॥
- हीसु० श्रीस्त( स्थ )भतीर्थ १पुटभेदनं च यत्रोभयत्र॒ स्फुरतः पुरे द्वे ।  
अहम्मदावादपुराननायाः किं कुण्डले गूर्जरदेशलक्ष्म्याः ॥६४॥  
( १ ) पत्तनम् । ( २ ) द्वयोः पार्श्वयोः ॥६४॥
- हील० श्रीस्थं०। यत्र देशे उभयोः पार्श्वयोः द्वे पुरे स्फुरतः शोभते । एकं स्तंभतीर्थं अन्यच्च पत्तनम् ।  
किमुत्प्रेक्ष्यते । अहम्मदावादपुरमेवाननं यस्या गूर्जरदेशलक्ष्म्याः किं कर्णाभरणे ॥६६॥
- हीसु० १विभूतिभाक्तालभिदङ्केरुर्गः ४क्रीडत्कुमारः सकलाधरश्च ।  
५अहीनभूषः स॑वृषः सु॑पर्वसरस्वतीभृद्धव॑वद्भौ यः ॥६५॥  
( १ ) लक्ष्मीर्भस्म च । ( २ ) कलियुगं दैत्यश्च । ( ३ ) उत्सङ्गे समीपे च पार्वती गिरि-  
शिखरस्थप्राकारश्च । ( ४ ) बालकः कार्त्तिकेयश्च । ( ५ ) शिल्पिनः सूत्रधारादयः शशिमश्च( ना  
च ) तैः सहितः ( ६ ) सम्पूर्णा शेषनागेन च शोभा यस्य । ( ७ ) धर्मो वृषभश्च । ( ८ )  
शोभनानि पर्युषणा-दीपालिकादिपर्वाणि सरस्वती नाम्नी नदी च पक्षे गङ्गा । ( ९ ) ईश्वर इव  
॥६५॥
- हील० विभु० । विभूतिं सम्पदं भस्म वा भजतीति । कालं कलिकालं, कालनामानं दैत्यं वा भिनत्ति ।  
अङ्के दुर्गः कोटृः पार्वती वा यस्य । तथा क्रीडत्तः कुमारः कुमारः स्वामिकार्त्तिको वा यत्र ।  
सह कलाधरैः ख्रीपुरुषैः चन्द्रेण वा वर्तते सः । तथा न हीना भूषा वा अहीनामिनः शेषः स एव  
भूषा यस्य । तथा सह वृषेण धर्मेण वा बलीवर्देन वर्तते । तथा सुशोभनानि पर्वाणि सरस्वतीनाम्नी  
नदीं अथवा देवनदीं गङ्गां बिभर्ति इति । एतादशो यो देशः शंकरेण सह साम्यं करोति ॥६७॥
- हीसु० ३तत्रैकदेशे॑ वपुषीव वक्त्रः श्रीधानधाराभिधमण्डलोऽस्ति ।  
४स्वलोकजैत्रैर्विभवैरिव ५स्वैरथःकृतो येन ६भुजङ्गलोकः ॥६६॥ इति देशवर्णनम् ॥

1. पटणादेसवर्णन इति प्रतिपाद्ये ठि० । 2. पटण इति प्रतिपाद्ये ठि० । 3. यत्रैक० हीमु ।

(१) एकत्र प्रदेशे उत्तरस्यां उत्तरपूर्वस्यां वा । (२) जयनशीलैः । (३) तिरस्कृतो नीचैः कृतश्च । (४) नागगृहम् ॥६६॥

हील० यत्रै०। यत्र गूर्जरदेशे । एकस्मिन्नदेशे नागलोकाभिधः धानधारदेशो विद्यते । यथा वपुषि वक्त्रः । अस्य पुंसुपुंसकत्वात् ॥★६८॥

हीसु० १ 'सवाडवे 'श्रीपुरुषोत्तमाङ्के 'नाथे नदीनामिव तत्र देशे ।

प्रह्लादनं नाम पुरं चकास्ति पुरः 'प्रतिच्छन्द 'इवादिदस्योः ॥६७॥

(१) वडवानलो ब्राह्मणश्च । (२) शोभायुक्ताः पुरुषेषु श्रेष्ठा लक्ष्मीकलितो विष्णुश्च । (३) समुद्रे । (४) प्रतिबिम्बम् । (५) इन्द्रस्य ॥६७॥

हील० सवाऽ०। सह वाडवेन वडवानलेन विप्रैर्वा वर्तते, तस्मिन् । तथा श्रीकृष्णौ अङ्के श्रीमहिताः पुरुषा अङ्के यस्य तादृशे समुद्रसदृशे देशेऽमरवतीसदृशं प्रह्लादनपुरं शोभते ॥६९॥

हीसु० 'इदं 'पुरा 'सारदलैः 'प्रणीय 'त्वष्ट्राव॑शिष्टैरिव तद्लांशैः<sup>१</sup> ।

'हुक्षर्णगीवर्णाणपुरे 'प्रणीते न चेत्किमा<sup>०</sup>भ्यामतिरिच्यते<sup>११</sup> तत् ॥६८॥

(१) प्रह्लादनपुरम् । (२) पूर्वम् । (३) प्रधानांशैः । (४) कृत्वा । (५) विधात्रा । (६) उद्भूतैः । (७) सारांशैः । (८) नागदेवनगरे । (९) कृते । (१०) नागनाकिपुराभ्याम् । (११) अधिकीभवति ॥६८॥

हील० इदं प्रह्लादनपुरं पूर्वं निष्पाद्य नागनाकिपुरे निर्मिते । न चेत्ताभ्यां तत्कथमधिकम् ॥७०॥

हीसु० 'रघूद्व्युपक्रमम्<sup>२</sup>ब्धिमध्यस्थायीव सेतुः<sup>३</sup> 'शशिकान्तकलु( कलृ )सः ।

'चन्द्रार्चिराश्लेषविनिर्यदर्पणःपूर्णान्तिकः क्वापि चकास्ति यस्मिन् ॥६९॥

(१) रामेणादौ उपक्रान्तः । (२) समुद्रजलान्तस्तिष्ठतीत्येवंशीलः । (३) पद्मा । (४) चन्द्रकान्तमणिनिर्मितः । (५) चन्द्रकिरणसङ्गमनिर्गच्छत्पयःपूरितसमीपः ॥६९॥

हील० क्वापि चन्द्रकान्तरचित्सेतुः शोभते । किंभूतः ? चन्द्रकिरणेन निर्यत्पानीयपूरितसमीपः । उत्प्रेक्ष्यते । रघुनन्दनेनादावुपक्रान्तः सेतुरिव ॥७१॥

हीसु० क्वचित्पुरं 'प्रत्यफलत्तटां<sup>४</sup>कोदरे जगत्पत्तनजित्वरश्चि<sup>५</sup> ।

येनाभिभूतिं 'गमिता 'महेन्द्रपुरीव दुःखादिह 'दत्तझम्पा ॥७०॥

(१) प्रतिबिम्बति स्म । (२) सरोजलमध्ये । (३) त्रिभुवननगरजयनशीललक्ष्मीकम् । (४) प्रापिता । (५) अमरावती । (६) सम्पातपाटवं झम्पा अथःपतमिति यावत् ॥७०॥

हील० क्वचित्टटके प्रह्लादनगरं प्रतिबिम्बति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । येन परभूति प्रापिता सती तदुदितदुः-

1. पालणपुरवर्णन इति प्रतिपार्श्वे ठि० । अथ प्रह्लादपुरवर्णनावसरः हील० ।

खाज्जगत्समक्षस्वविजयकरणजातासात्तटाकस्यागाधजलमध्ये दत्ता झंपा सम्पातपाटवं यया  
तादृशीन्द्रनगरी अमरावतीव दृश्यते ॥७२॥

- हीसुं० १कपालिमित्रं त्रिशिराः कुबेरः<sup>३</sup> पिशाचकी पुण्यजनः पतिर्मे ।  
४तन्नाभिगम्यः किमितीत्वरीव त्यक्त्वा तमागादलकेयमुव्याम् ॥७१॥
- ( १ ) योगिविशेषः ईश्वरश्च । ( २ ) त्रिमस्तकः कुत्सितवपुः । ( ३ ) पिशाचाः सन्त्यस्येति  
राक्षसो यक्षश्च ( ४ ) तस्मादभिगन्तु न अर्हः । ( ५ ) व्यभिचारिणी ॥७१॥

- हील० कपाठ० यत्पुरं भातीति सम्बन्धः । कपालिनो रुद्रस्य योगिनो वा मित्रम् । पुनस्त्रीणि शिरांसि यस्य ।  
कुत्सितं बेरं शरीरं यस्य । पिशाचा विद्यते यस्य । पुनः राक्षसः मे ईशस्तेन न सेव्यः । इति कारणात्तं  
धनदं त्यक्त्वा ऊर्वा अलका आगता ॥७३॥

- हीसुं० १रामायुतैस्तांक्षर्यशतै रमाभिः ४प्रद्युम्नकोट्या ५शतशूरवंशैः ।  
जितेन कृष्णेन ६पुरी स्वकीयोपदीकृतेयं किमु मण्डलस्य ॥७२॥

इति १पुरवर्णनं समुदायेन ।

( १ ) स्त्रीर्बलभद्रश्च । ( २ ) दशसहस्राणि अश्वो गस्त्रश्च । ( ३ ) लक्ष्मीभिः । ( ४ ) प्रकृष्टद्युम्नं  
द्रव्यं कामश्च । ( ५ ) शतसंख्या शूराणां वीराणां शूरनाम्नो राज्ञश्च । वशाः [ ? ] । ( ६ ) द्वारिका  
॥७२॥

- हील० रामा० पुरं भातीति सम्बन्धः । किमु ? कृष्णेन । जितेन । निजपूढौकिता । रामाणां अङ्गनानां  
अयुतैर्दशसहस्रीभिस्तत्र तु एक एव बलभद्रः । ताक्ष्याणां वाजिनां शतैस्तत्र एक एव गरुडः । पुना  
रमाभिः सम्पद्धिः । तत्रैका लक्ष्मीः । प्रकृष्टानां द्युम्नानां द्रव्याणां कोट्या । तत्र एक एव मदनः ।  
शतैः शूराणां सुभट्यानां अन्वयैः । तत्र तु शूरनामा यादवपूर्वजहरिवंश्यनृपः । कृष्णस्य तु एते  
सर्वेऽप्येकैके इति पराजयः ॥७४॥

### हीसुं० अथ पृथकवर्णनम्-२

१प्रह्लादनाच्चन्द्र इवाङ्गभाजाम् २न्वर्थनामाजनि यो जगत्याम् ।

प्रह्लादनः पार्श्वपतिः स तत्र ३प्रह्लादनाह्वे व्यलसद्विहरे ॥७३॥

( १ ) आनन्दोत्पादनात् । ( २ ) सत्यार्थः । ( ३ ) प्रह्लादननामप्रासादे ॥७३॥

- हील० प्रह्लाद० प्रह्लादनः पार्श्वनाथः शोभते स्म । शेषं सुगमम् ॥७५॥

- हीसुं० यदीयमूर्त्तिर्निरमापि भक्त्या ४प्रह्लादनाम्ना पुरि राणकेन ।

तस्याप्यजस्येव ५नृपस्य पार्श्वो ६गदापहः<sup>३</sup> स्नात्रजलेन ४जज्ञे ॥७४॥

1. इति समुदायेन प्रह्लादनपुरवर्णनम् हील० । 2. विहारवर्णनम् इति प्रति पार्श्वे टिं० । अथ प्रह्लादनपार्श्वनाथवर्णनम् हील० ।

3. प्यामापहः स्नान० हीसुं० ।

( १ ) प्रह्लादनामराणकेन । ( २ ) प्रह्लादनराणकस्य । ( ३ ) रोगनाशकः । ( ४ ) जातः । ॥७४॥

हील० यदी० । प्रह्लादराणकेन प्रह्लादनपार्श्वबिम्बं कास्तिम् । सोऽपि स्नात्राभिषेकजलेन भस्मकुष्ठपहो जातः । यथा अजयराज्ञः दशरथपितुः ससोत्तरशतरोगापहन्ता जातः तद्वत् ॥\*७६॥

हीसुं० प्रदेहि नः ॑साक्षरतामबाह्यां॒ बाह्यामिव॒ ख्यातुमितीव पाश्वर्व ।  
॑भोगैर्निर्दैष्य( जैः प )ञ्चशतीमिता॑भिः संसेव्यते ॑विश्वलयुक्त्युरीभिः ॥७५॥

( १ ) ज्ञानिताम् । ( २ ) आन्तराम् । ( ३ ) वक्तुम् । ( ४ ) पूजादिभिः । ( ५ ) विश्वलयुक्त्युरीनाम नाणकं 'पञ्चशती भोगो जिनस्य प्रह्लादविहारे' इति श्रुतिः ॥७५॥

हील० प्रदेहि० । यः पार्श्वः विश्वलयुक्ती नाणकैः पञ्चशतैः कृत्वा भोगैः सेव्यते । इवोत्प्रेक्ष्यते । नः अस्माकं बाह्यामिव अबाह्यां प्रदेहि । इति वक्तुम् ॥७७॥

हीसुं० ॑स्वचोक्षभावेन जिता जिनेन ॑निर्मातुकामा इव ॑तत्प्रसत्तिम् ।  
यत्राक्षता ॑मूढकसंमिता यच्चैत्येऽनिशं॒ ॑प्रागुपजग्मिवांसः ॥७६॥

( १ ) निजनिर्मलाशयत्वेन । ( २ ) कर्तुमनसः । ( ३ ) जिनस्य प्रसादम् । ( ४ ) मूढकप्रमाणाः ।  
( ५ ) अहर्निशम् अक्षता आयान्ति प्रह्लादविहारे इति श्रुतिः । ( ६ ) आगत्तुं( छन्ति ) स्म ॥७६॥

हील० स्वचो० । यस्मिन्नगरे पार्श्वचैत्ये मूढकप्रमाणा अक्षता निस्तुषाः कलमा आगच्छन्तो अभूवन् । उत्प्रेक्ष्यते । जिनेनात्मीयनिर्मलाशयत्वेन जिताः सन्तस्तत्सेवां निष्पादयितुकामा इव ॥७८॥

हीसुं० ॑उद्बेगभावं स्वमिवापकर्तुं श्रीपार्श्वभर्तुः ॑परिशीलनाभिः।  
॒चैत्ये ॑कलासंख्यमणप्रमाणान्यस्मिन्युनः॑ पूगफलान्युपेयुः ॥७७॥

( १ ) विषादितां पूगत्वं च । ( २ ) सञ्चाभिः । ( ३ ) षोडशमानः । ( ४ ) प्रह्लादविहारे षोडशमणप्रमाणानि ऋमुकफलानि नित्यमायान्ति स्मेति श्रुतिः ।

हील० उद्बे० । अस्मिंश्चैत्ये षोडशमणप्रमाणानि पूगफलान्यागच्छन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । पार्श्वनाथस्य सेवाभिर्निजं उद्बेगत्वं निर्वेदत्वं निर्गर्तुमिव । "पूरो ऋमुकगूवाकौ तस्योद्बें पुनः फलम्" ॥\*७९॥

हीसुं० ॑अशीतिरस्मिन्नधिकाश्तुर्भिर्भर्तुभ्यमुख्याः॑ श्रितशीकरीकाः ।  
सुरा विमानैरिव ॑याप्ययानैः स्मागत्य शृणवन्ति गिरं गुरुष्णाम् ॥७८॥

<sup>४</sup>इति प्रह्लादविहारः ।

( १ ) चतुराशीतिर्भर्तुभ्याः । ( २ ) श्रीकरिकलिताः ( ३ ) शिविकारूढाः पार्श्व प्रणिपत्य

1. अभिर्यः सेव्यते हीमु० । 2. नित्यं कलां हीमु० । 3. याप्ययानं-शिविका । हीमु० तु याप्ययानैः इति अशुद्धः पाठो दृश्यते । 4. इति प्रह्लादनपार्श्वनाथः हील० ।

गुरुव्याख्यानं श्रृण्वन्तीति श्रुतिः ॥७८॥

- हील० अशी० । अस्मिन्नगरे चतुरशीतिर्महेभ्याः शिविकाभिः समागत्य वाचंयमानां वाचं श्रृण्वन्ति स्म । किंभूता महेभ्याः ?। श्रिताः श्रीकर्यः महेभ्यताया वा राजमात्यताया वा छत्राकृतयो यैस्ते । यथा सुरा आगच्छन्ति ॥८०॥
- हीसुं० १'वपुःश्रिया २भर्त्सितमत्स्यकेतुरद्वैतवैराग्यरसाम्बुराशिः ।  
लब्धीर्दधानो विविधाश्च वज्रस्वामीव ४विश्वागमपारदृशा ॥७९॥  
५सोमादिमः सुन्दरसूरिसिंहः ३प्राग्वाटवंशयो निजजन्मना यत् ।  
३सा॒केतमिक्ष्वाकुकुलावतंसो महोक्षलक्ष्मेव ४पुराऽपुनीत ॥८०॥ युग्मम् ॥
- इति रत्नरभूमिः ॥
- ( १ ) तनुलक्ष्म्या । ( २ ) जितस्मरः । ( ३ ) असाधारणः । ( ४ ) समस्तशास्त्रपारगामी ॥६९॥  
( १ ) श्रीसोमसुन्दरसूरि । ( २ ) प्राग्वाटान्वयजन्मा । ( ३ ) अयोध्याम् । ( ४ ) ऋषभजिनः ।  
( ५ ) पवित्रीकरोति स्म पूर्वम् ॥८०॥
- हील० वपु० । प्राग्वाटवंशे भवः श्रीसोमसुन्दरसूरीन्दः स्वोत्पत्त्या यत्पुरं पूर्वं पवित्रीचकार । यथा ऋषभनाथः अयोध्यां पावनीकरोति स्म । किंभूतः ?। स्वशरीरसौन्दर्येण जितमदनः । असाधारणो यो वैराग्यरसस्तस्य समुद्रः । लब्धीर्दधानः । पुनर्विश्वाशस्त्राणां पारं दृष्टवान् इति पारदृशा । क इव ? वयरस्वामीव ॥८१-८२॥
- हीसुं० ५विभाति ६यत्रोपवनं विनिद्रृत् ] ३सान्ददुपदोणिमिलद्विहङ्गम् ।  
३भूवास्तुपौलस्त्यपुरीभ्रमेण ४तामन्वितं ५चैत्र६रथं किमेतत् ॥८१॥
- ( १ ) प्रह्लादनपुरे । ( २ ) स्निग्धतस्त्रेणीसमागच्छत्खगम् । ( ३ ) भूमिनिकेतन अलकाधिया धनदपुरी । ( ४ ) पृष्ठे समायातम् । ( ५ ) वनम् ॥८१॥
- हील० विभा० । यत्र विनिद्रन्तः सान्द्रा ये द्वुमास्तेषां द्रोणीषु मिलन्तो विहङ्गा यत्र तत्तादृशं वनं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । भुवि पृथिव्यां वास्तुगृहं यस्यास्तादृशी धनदनगरी तस्या भ्रमेण शङ्क्या तां पुरीं अनु पृष्ठे समेतं एतच्चक्षुर्गोचरतां(ताम)गच्छत् । चैत्ररथं वैश्रवणोद्यानमिव ॥८३॥
- हीसुं० ५आमुष्मिकामैहिकवत्समीहां३ ६निर्माहि नः ५पूरयितुं ६प्रभूष्णून् ।  
७विज्ञीप्सवः पार्श्वमितीव ८यत्र प्राप्ता द्वुमाङ्गा९ इव कल्पवृक्षाः ॥८२॥
- ( १ ) परलोकसम्बन्धिनी । ( २ ) इहलोकसम्बन्धिनी । ( ३ ) वाज्ञा । ( ४ ) कुरु । ( ५ ) दातुम् । ( ६ ) समर्थान् । ( ७ ) विज्ञसिं कर्तुमिच्छवः । ( ८ ) यन्नगरोपवने । ( ९ ) तरुदेहाः ॥८२॥

1. नररत्नवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टिं० । अथ रत्नपुरुषोत्पत्तिस्थानं दर्शयति हील० । 2. अयोध्या इति प्रतिपार्श्वे टिं० ।  
3. वनखण्डवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टिं० । अथ नगरे वर्णने उपवनं वर्णयते हील० । 4. चैत्र, हीमु०

- हील० आमुष्मि० । यत्रोपवने द्रुमा वृक्षास्त एव शरीरं येषां ते । कल्पवृक्षाः समेताः । इवोत्त्रेक्ष्यते । विज्ञसिकां कर्तुमिच्छवः । इति किम् ?। हे पार्श्वनाथप्रभो ! त्वं नोऽस्मान् । ऐहिकवत् इहलोक-सम्बन्धिनीमिव । आमुष्मिकां परलोकसम्बन्धिनीं वाञ्छां पूरयितुं समर्थान्निर्माहि ॥८४॥
- हीसु० 'श्री॑नन्दनं भीरकुमाररूपं यस्यां भविष्यन्ते॒मवेत्य मन्ये ।  
 \*साहायकायास्य समं 'समेत्य सर्वत्तिवस्तद्विपिनं भजन्ते ॥८३॥  
 ( १ ) कामदेवम् । ( २ ) भीरकुमार एव रूपं यस्य । ( ३ ) ज्ञात्वा । ( ४ ) साहाय्याय ।  
 ( ५ ) आगत्य ॥८३॥
- हील० श्रीनं० । मदनसदृशं भीरकुमारं यस्यां नगर्या भाविनं ज्ञात्वाहमेवं मन्येऽस्य मदनस्य साहाय्याय समं समकालं आगत्य षड्ग्रन्थवस्तद्वनं श्रयन्ते ॥८५॥
- हीसु० 'यत्रभ्रमद्भूङ्गरसालमाला विलोक्य कूजत्कलकण्ठबालाः ।  
 श्रतीशवीरस्तृणवत्रिलोकीमै॒जीगणन्निस्तुलशस्त्रलाभात् ॥८४॥  
 ( १ ) मकरन्दपानाम( थं ) पर्यटन्तो मधुकरा यत्र तादृशीर्माकन्दमण्डलीः । ( २ ) पञ्चमरागं कुर्वन्त्यः पिकाङ्गना यासु । ( ३ ) स्मरसुभटः । ( ४ ) गणयति स्म । ( ५ ) असाधारणा-युथलब्ध्यः ॥८४॥
- हील० यत्र० । भ्रमन्तो भृङ्ग यस्यां सा चाप्रत्रेणी । विलोक्य । मदनशूरः जगत्र्यो तृणमात्रां गणयति स्म । कस्मादमूल्यशस्त्रप्राप्तेः ॥८६॥
- हीसु० 'चूतप्ररोहायुधकिंशुकार्द्धचन्द्राशुगानां दलवर्मितानाम् ।  
 यद्भूरुहां स्वर्दुजयोद्यतानामदु॒न्दुभीयन्त पिकाः॑ क्वणन्तः॒ ५ ॥८५॥<sup>12</sup>  
 ( १ ) माकन्दाङ्गुरा एव शस्त्राणि तथा किंशुककुसुमान्येवार्द्धचन्द्रनामानो बाणा येषाम् । ( २ ) पत्रैः कृत्वा सन्नाहयुक्तानां कटकैः सांकं वा कवचकलितानाम् । ( ३ ) कल्पवृक्षाणां विजयार्थं प्रगल्भमानानाम् । ( ४ ) दुन्दुभय इवाचरन्ति स्म । ( ५ ) पञ्चमस्वरमालपन्तः ॥८५॥
- हील० चूत० । सुखुमाणां जयने प्रगल्भमानानाम् । यस्य वनस्य भूरुहां तरुणाम् । क्वणन्तः कूजन्तः । कोकिलाः । अदुन्दुभीयन्त दुन्दुभय इवाचरन्ति स्म । किंभूताः ?। चूतानामङ्गुरा एवायुधानि येषां ते । तथा पलाशकुसुमान्येवार्द्धचन्द्राकारा बाणा येषां तेषाम् । पुनर्दलैः पत्रैः सन्नाहितानां, कवचयुक्तानाम् ॥८७॥
- हीसु० बभे॑ 'नभस्याम्बुधरायमाणतमालधारागृहधोरणीभिः ।  
 तपर्तुताम्ब्यत्तनुकुञ्जलक्ष्म्याः॑ सुसीमतायै किमनुष्टिताभिः ॥८६॥<sup>13</sup>  
 ( १ ) भाद्रपदमेधायमानतमाला एव धारागृहाणि येषु केनापि शिल्पेन स्तोकाः स्तोका

1. अथ ऋतवः हील० । 2. इति वसन्तः हील० । 3. इति ग्रीष्मः हील० ।

- जलकणवृष्टयो जायन्ते तानि तमालधारागृहाणि तेषां श्रेणीभिः । ( २ ) ग्रीष्मेण ग्लानिं प्राप्नुवद्वनश्रिया: । ( ३ ) शीतलताकृते । ( ४ ) कृताभिः ॥८६॥
- हील० बधे० । भाद्रपदस्याम्बुधरो मेघस्तट्टदाचरन्तीभिस्तापिच्छतरूपाणां धाराभिर्यत्रविशेषकृतजलधाराभिरुपलक्षितानां गृहानां(णां) धोरणीभिः रेजे । उत्त्रेक्ष्यते । तपर्तुना ताप्यन्ती ग्लानिं गच्छन्ती तनुः शरीरं यस्यास्तादृश्या वनश्रियाः शीतलताकृते । कृताभिरथर्थाज्जनैस्तया वा ॥८७॥
- हीसु० १श्रीहीरखीक्षोत्सुकिता इवान्तर्नेत्राणि विस्मेरमणीचकानि ।  
२धाराकदम्बा दधते३त्र ३सत्रा ४सान्दापनिद्रत्कुटजावनीजैः ॥८७॥
- ( १ ) श्री हीरकुमारं द्रष्टुमुत्कंठिताः । ( २ ) ये जलधरधारासारमधिगम्य प्रफुल्लन्ति ते धाराकदम्बाः । ( ३ ) सादर्धम् । ( ४ ) स्निग्धविनिद्रविगिरिमल्लिकातरुभिः “कुडउ” इति प्रसिद्धाः ॥८७॥
- हील० श्रीहीर० । स्निग्धा विकसन्तो ये कुटजा गिरिमल्लिका एवावनीजास्तैः सत्रा सह धाराभिराहताः कदम्बाः विकचानि मणीचकानि कुसुमानि धारयन्ति । उत्त्रेक्ष्यते । अन्तश्चित्ते श्रीहीरकुमारस्य दर्शने उत्कण्ठिताः सन्तो नेत्राणीव दधते ॥८९॥
- हीसु० १सपच्छदान्स्पर्दिधतदानगन्धानो३लम्ब॒रोलाकुलितान्विलोक्य ।  
२विरोधिकुमिभभ्रममा॑दधाना धावन्ति मुग्धा इह सिन्धुरेन्द्राः ॥८८॥<sup>3</sup>
- ( १ ) सपष्टान् द्रुमविशेषान् । ( २ ) स्पदर्धायुक्तः कृतः गजगण्डस्थलगलन्मदजलपरिमलो यैः । ( ३ ) भृङ्गध्वनिभिर्व्याकुलीकृतान् । ( ४ ) प्रतिगजबुद्धिम् । ( ५ ) धारयन्तः कुर्वन्तो वा । ‘भूयो बभौ दर्पणमादधाना’ तद्वृत्तौ विभ्राणेति कुमारसंभवसप्तमसर्गाद्विवशतितमवृत्तैः( त्तौ ) ॥८८॥
- हील० सप० । स्पद्धाविषयीकृतो मदगन्धो यैस्तादशान् । पुनः भ्रमणुज्जितैः सशब्दान् । तादृशान्सपर्णवृक्षान्दृष्ट्वा वैरिकस्थिरान्ति कुर्वाणा मदोद्भृतया मूर्खाः सन्तो यन्त्रिकुञ्जे हस्तिनो धावन्त्यभिमुखं गच्छन्ति ॥★९०॥
- हीसु० १शाखाविशेषोन्मिषितप्रसूनान् २शार्दूलबालानि[ व ] लोदसालान् ।  
३दृष्ट्वा ४हृदुत्पिञ्चलितैर्निकुञ्जे ५ललङ्घे॑तत्ककुभः॒कुरङ्गैः ॥८९॥<sup>4</sup>
- ( १ ) शिखाग्रेषु स्मितकुसुमानि । ( २ ) व्याघ्रडिष्मान् । ( ३ ) हृदये भृशमाकुलितैः । ( ४ ) उत्कण्ठिताः । ( ५ ) वनदिक्प्रदेशाः । ( ६ ) भयात्पलायितैः ॥८९॥
- हील० शाखा० । तेषां लोद्रुमाणां दिशो मृगैरुलङ्घिताः । पलायितैरित्यर्थः । किंभूतैः कुरङ्गैः ?। शाखाग्रेषु विकसितानि पुष्पानि(णि) येषां तादृशान्लोद्रवृक्षान् सिंहशावकान् इव दृष्ट्वा हृदि आकुलितैः ॥९१॥
- हीसु० १पद्मिक्तप्रसूङ्गैः॒प्रचलत्पतङ्गपोतैः॒प्रियद्रुप्रकर्बभेऽस्मिन् ।  
२वनश्रियाः प्रावरणैरिवान्तर्विच्छित्तिमद्विस्तुहिनद्विषद्विः ॥९०॥

1. इति वर्षा हील० 2. बरावकुलिं हीसु० । 3. इति शरत् हील० । 4. इति हेमन्तः हील० ।

( १ ) श्रेण्या उद्भूतैः । ( २ ) चलद्विहङ्गमबालैः । ( ३ ) फलिनीपटलैः । ( ४ ) रचनायुक्तैः ।  
 ( ५ ) हिमनिवारकैः ॥१०॥

हील० पडिक्त० । श्रेणीभूतैः । पुनरन्तःसञ्चरन्तः विहङ्गमाना बालका येषु ते । तादृशैः फलिनीपटलैः  
 शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । रचनाज्ञितैः शीतशत्रुभिर्वनलक्ष्म्याः प्रच्छादनैरिव ॥१२॥

हीसुं० ॑दृगदानदासीकृतदेववन्या ॒प्रगल्भसे त्वं पुरतः कियन्मे ।  
 वनश्रियाश्वैत्ररथं किमित्थं दन्ता हसन्त्या इव भान्ति कुन्दाः ॥११॥  
 ( १ ) विलोकनमात्रेणैव किङ्करीकृतनन्दनवनया । ( २ ) उत्साहं कुरुषे ॥११॥

हील० दृगदा० । किमुत्प्रेक्ष्यते । चैत्ररथं प्रति इत्थं हसन्त्या वनश्रिया दन्ता इव कुन्दा भान्ति । इत्थमिति  
 किम् ? । हे चैत्ररथ ! समुखावलोकनेनैव दासीकृता देवानां वन्यो यया तादृश्या मम पुरस्तात् त्वं  
 कियदुत्सहसे । मत्पुरस्त्वं न किमपीत्यर्थः ॥१३॥

हीसुं० ॑ऋीडत्तुरङ्गद्विपपद्मनेत्राः ॒ऋीडासरस्यो विपिने विरेजुः ।  
 ॑उच्चेऽसृ( श्र )वः स्वर्द्धिरदाप्सरस्काः ॑सुधापयोधेः ॑प्रतिमा इवैताः ॥१२॥  
 ( १ ) जले विलसद्धयगजवर्जिवाजिः ) ताः । ( २ ) किंकिलिकृते महासरांसि महत्सरः ।  
 ( ३ ) इन्द्रस्याश्व-करि-इभप्रमुखदेव्यः । ( ४ ) क्षीरसमुद्रस्य । ( ५ ) प्रतिबिम्बानीव ॥१२॥

हील० ऋीड० । जलकेलिं कुर्वन्तः । अश्वा हस्तिनः विलासवत्यो यासु ताः । ऋीडार्थं सरस्यः सरांसि  
 भान्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । क्षीरब्ध्यैः प्रतिबिम्बानि इन्द्राश्व-ऐरवण-अप्सरःसहितानि ॥१४॥

हीसुं० ॑मधुप्रधावन्म॒धुकृत्रिरुद्धै॑र्जाम्बूनदैर्यत्र बभेऽरविन्दैः ।  
 सरःश्रियामाभरणैरिवान्तःस॒न्दर्भगब्धीभवदशमगब्धैः ॥१३॥  
 ( १ ) मकरन्दकृते धावद्धिः शीघ्रमागच्छद्धिः । ( २ ) भृङ्गव्याप्तैः । ( ३ ) स्वर्णसम्बन्धिभिः ।  
 ( ४ ) मध्ये रचनाया गब्धे अन्तराले भवन्तः अश्मगर्भा मरकतमणयो येषु ॥१३॥

हील० मधु० । मध्वर्थं प्रधावद्धिर्भ्रमैर्व्याप्तैः । पुनः सौवर्णैः कमलैर्बभासे । उत्प्रेक्ष्यते । अन्तर्मध्ये सन्दर्भे  
 येषां तादृशा गर्भीभवन्तः कुक्षौ सम्पद्यमाना अश्मगर्भा मरकतत्रेणयो येषु तैस्तादृशैरभूषणैः ॥१५॥

हीसुं० ॑पत्रान्तराजज्जलविन्दुवृन्दैः सरस्मु यस्मिन्स्मितपुण्डरीकैः ।  
 अदीपि मुक्ताकलितातपत्रैन्दीसरः श्रीजयिनामिवैषाम् ॥१४॥  
 ( १ ) पर्णप्रान्ते शोभमानपयःकणगणैः । ( २ ) देवतडागलक्ष्मीजैत्राणाम् ॥१४॥

हील० पत्रान्त० । यस्मिन्वने सरस्मु कमलैः शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । शक्रसरेजेतृणमेषां सरसां मौक्किकछत्रैरिव  
 ॥१६॥

1. इति शिशिरः । इति षडपि ऋतवः हील० । 2. इति ऋीडातडागः हील० ।

- हीसुं० १दूष्कर्णविणी २कलकण्ठकण्ठी ३बिम्बाधरा ४सिन्धुराजयाना ।  
 ५प्रसूननेत्रा ६स्तबकस्तनी च भुक्ता वनश्रीरहि ७गन्धवाहैः ॥१५॥ १इति वनम् ॥
- ( १ ) भुजङ्गरूपा वेणी यस्या पक्षे तत्तुल्या । ( २ ) कोकिलकण्ठ एव कण्ठो यस्या मध्य-  
 पदलोपीसमासः पक्षे तद्वत् । ( ३ ) गोहृक एव तद्वच्च ओष्ठो यस्या । ( ४ ) गजेन्द्राणां तद्वच्च  
 गमनं यस्यां यस्या वा । ( ५ ) पुष्पाण्येव तत्तुल्यानि नयनानि यस्या । ( ६ ) गुच्छा एव तत्तुल्या  
 कुच्छा यस्या । ( ७ ) पवनैः गन्धधारिभिर्भौगिजनैः ॥१५॥
- हील० दृक्क० । इह वने वायुभिर्वनश्रीभुक्ता । किंच । गन्धं चन्दनादिकं वहन्ति तैर्गन्धवाहैर्युवभिरन्यापि  
 स्त्री भुज्यते । किंभूताः ? भुजङ्गा एव वा भुजङ्गतुल्या वेणी यस्याः । पुनः कोकिलानां कोकिलवद्वा  
 ध्वनिर्यस्यां यस्या वा सा । बिम्बमेव बिम्बसदृशो वा ओष्ठो यस्याः । गजेन्द्राणां गमनं तद्वच्च  
 गतिर्यस्याः । पुष्पमेव तत्समानं च नयनं यस्याः । कुसुमगुच्छै एव तत्सरूपौ स्तनौ यस्याः  
 सा ॥१७॥
- हीसुं० १स्वर्जिष्णुपुर्याः २परिखाप्र३वङ्गरावैरुद४स्यात्मतरङ्गहस्तान् ।  
 अदःपुरस्ते कियती विभूतिर्व५स्वोकसारामिति ६गर्हतीव ॥१६॥
- ( १ ) स्वर्गजैत्रायाः । ( २ ) दर्दुशब्दैः । ( ३ ) ऊर्ध्वीकृत्य । ( ४ ) अलकाम् । ( ५ ) निन्दति  
 ॥१६॥
- हील० कप्रे० । वनश्रीः पुरस्य परिखां दूरीं कर्तुमिच्छुः सती प्रतिबिम्बेन स्थिताऽर्थात् प्रतिबिम्बिता । किं  
 कुर्वती ?। कोटेन सह सङ्गं कर्तुमिच्छुः । यथाऽसती स्त्री यूना सङ्गं कर्तुकामा कामपि दूरीं  
 कर्तुमिच्छन्ती तद्वहे समेत्य तिष्ठन्ति । किंभूतेन यूना वप्रेण च ?। कप्रेण स्वकामुकेन कमनीयेन  
 वा वसुभिर्द्रव्यैर्भातीति वा वसुनां मणीनां प्रभा यत्र ॥१८॥
- हीसुं० १पिपासितं २रोचकितं च ३रङ्गुं ४वाष्पा॑( वा: पा )यितुं चारयितुं च॒ शष्पान् ।  
 चन्दः किमागात्परिखेऽनुबिम्बपश्यैर्वर्यमशीति जनै रजन्याम् ॥१७॥  
 ( १ ) तृष्णितम् । ( २ ) क्षुधितम् । ( ३ ) मृगम् । ( ४ ) पानीयम् । ( ५ ) स्वादयितुम् ।  
 ( ६ ) नीलतृणान् । ( ७ ) चन्दप्रतिबिम्बविलोककैः ॥१७॥
- हील० स्व० । स्वर्गजैत्रायाः प्रह्लादनपुर्याः खातिका स्वकलोलरूपान्हस्तानुद्यम्योर्धीकृत्य अलकामिति निन्दति ।  
 इति इति किम् ?। अस्या अग्रे ते ऋद्धिर्न किमपि ॥१९॥
- हीसुं० १कप्रेण २वप्रेण ३वसुप्रभेणासतीवॄ ४यूना सह ५संसिसृक्षुः ।  
 दूरीं चिकीर्षुष्प( : प )रिखामिर्वास्याः स्थितानुबिम्बेन निकुञ्जलक्ष्मीः ॥१८॥  
 इति परिखा ।

1. इति प्रह्लादपुरेषवनम् हील- । 2. पालणपुर खाइ वर्णन इति प्रतिपाश्वे टिं । 3. ०खाल्पवङ्ग० हीमु० । 4. इति परिखा  
 हील० । 5. ०मिवास्य स्थिता० हीमु० ।

( १ ) अभिलाषुकेण । ( २ ) प्राकारेण । ( ३ ) सुवर्णकान्तिना द्रव्येन( ण ) प्रकर्षेण भातीति  
वा ( ४ ) व्यभिचारणीव । ( ५ ) संसर्गकर्तुमिच्छुः ॥९८॥

हील० पिपा० । परिखायामिन्दुबिम्बं प्रतिबिम्बितं पश्यन्ति । तादृशैर्नैरकं तर्कितम् । चन्द्रः तृष्णितं पुनः  
क्षुधितं मृगं प्रति नीरं पायितुं तृणाश्च चारयितुं इहागतः ॥१००॥

हीसु० १९नभःपरीरम्भणलोलुभैर्यद्वप्रो ३मणिश्रेणिमहः प्ररोहैः ।  
घनान्विनारेखण्डलधन्वदण्डैमकाण्डमाडैम्बरयन्निवास्ते ॥१९॥

( १ ) आकाशालिङ्गनलालसैरभ्रंलिहैरित्यर्थः । ( २ ) रत्नकिरणाङ्कौरैः । ( ३ ) इन्द्रचापचक्रम् ।  
( ४ ) असमये ( ५ ) प्रकटीकुर्वन् ॥१९॥

हील० नभ० । आकाशे आलिङ्गनलालसै रत्नकिरणैः कृत्वा कोट्टः अकाण्डमिन्द्रधनुरारम्भयन्दृश्यते ॥१०१॥

हीसु० सालोऽदसीयः ससनांतनश्रीः कपाटैपक्षश्च सुवर्णैकायः ।  
विगाहमानो गगनं कथं न लभेत ताक्ष्येनै( ण )२समानभावम् ॥१००॥

( १ ) एतस्याः सम्बन्धी । ( २ ) सदा विष्णुना च शोभा यस्य । ( ३ ) कपाटा एव पक्षा यस्य ।  
( ४ ) स्वर्णेन निर्मितः कायः स्वरूपं भित्तिलक्षणं यस्य । पक्षे गस्तः उच्चैस्त्वेन व्योमस्पृशन्  
गरुडपक्षे गत्या गगनं गाहमानः । ( ५ ) गरुडेन तुल्यत्वम् ॥१००॥

हील० सालो० । अस्याः कोट्टः । गरुडेन सह साम्यं किं न प्राप्नुयादपि तु प्राप्नोत्येव । किंभूतः  
प्राप्नुयात् ?। सह सनातनया नित्यस्थायुक्या श्रिया वर्तते वा । सनातनः कृष्णः श्रीश्च ताभ्यां  
सहितः । "सदा सनानिशं शश्व" दिति हैम्याम् । कपाटावेव ततुल्यौ पक्षौ यस्य । तथा सुवर्णस्य  
कायोऽङ्गं यस्य । गगनं गाहमानः उच्चैस्त्वेन भ्रमणेन च अत एव गरुडसदृशः ॥१०२॥★

हीसु० १मणीघृणिश्रेणिधुतान्धकारैरभ्रङ्गैर्यत्कपिशीर्ष्य( ष )कौदैः ।  
२यानश्वरोदी( दि )त्वरकर्मसाक्षिलक्षेव ३पूर्दक्षजनैरलक्षिः ॥१०१॥

( १ ) रत्नस्विराजीनिहतध्वान्तैः । ( २ ) शाश्वता उदयनशीलाः सूर्यलक्षा । ( ३ ) पण्डितैः ।  
( ४ ) ज्ञाताः ॥१०१॥

हील० मणि० । रत्नकान्तिदलितान्धकारैः । पुनर्गगनोलेखिभिः । अद्वालकानां उच्चैः कृत्वा या नगरी ।  
शाश्वता । उदयनशीलाः कर्मसाक्षिणो भास्करास्तेषां लक्षा यस्यां तावशीव । पण्डितैर्दृष्टा ॥१०३॥

हीसु० १चन्द्राश्मवेशमस्मितमुद्घहन्ती २कटाक्षयन्ती ३सितकेतनैश्च ।  
युवेव ४जायां नगरीमिवैतां ५क्रोडीकरोति ६प्रणयेन वप्रः ॥१०२॥

इति प्राकारः ॥

( १ ) चन्द्रकान्तमणिनिर्मितगृहाण्येवोज्ज्वलत्वात् हसितम् । ( २ ) कटाक्षान् कुर्वन्ती( ती )व ।

( ३ ) धवलध्वजैः । ( ४ ) प्रियाम् । ( ५ ) आलिङ्गति । ( ६ ) स्नेहेन ॥१०२॥

हील० चन्द्रा० । कोट्टः पुर्णे आलिङ्गतीत्यर्थः। “परीरम्भः क्रोडीकरेति” रिति हैम्याम् । यथा युवा पल्नैं स्नेहेन क्रोडीकुरुते । किंभूतां पुर्णे जायां च? । चन्द्रकान्तघटितगृहणि तान्येव ततुल्यं हास्यं बिश्रती । उज्ज्वलकेतुभिः कट्कान्कुर्वन्ती(ती) ॥१०४॥

हीसुं० ११स्वव्यालवेशमावनिवास्तुशस्तवस्तुव्रजात्मम्भरिगर्भगेहैः ।

‘यत्रापणैः कुत्रितयापणानां वंश्यैरिवावाप्यत कापि लक्ष्मीः ॥१०३॥

( १ ) स्वर्गे नागलोके भूलोके च स्थानं येषां ते प्रशस्तपदार्थसाथैर्भृतमध्यानि गर्भागाराणि येषां । ( २ ) हृष्टः । ( ३ ) कुत्रिकापणानां वंशे अन्वये भवानि वंश्यानि तैः ॥१०३॥

हील० स्वः । स्वर्गे नागलोके अवनौ वास्तुस्थानं येषां तावशा वस्तुव्रजास्तैरात्मम्भरयो भृतमध्या गर्भगेहा येषां तावशैरहृष्टैः शोभा(भां) आसा ॥१०५॥

हीसुं० १२बाह्लीककालागुरुगन्धसारसारङ्गनाभीहिमवालुकाभिः ।

‘सद्ग्रिस्समाज्ञाभिरिवादसीयापणैरवास्यंत दिशोऽप्यशेषाः ॥१०४॥

( १ ) केसर-कृष्णागरु-चन्दन-कस्तूरिका-कपूरैः “गोरोचनाचन्दनकुङ्कुमैणनाभीविलेपा” दिति नैषधे कस्तूरिकायामपि नाभीशब्दो दीर्घः । ( २ ) यशस्विभिः । ( ३ ) कीर्तिभिः । ( ४ ) पुरीसम्बन्धिभिः । ( ५ ) सुगन्धीक्रियन्ते स्म ॥१०४॥

हील० बाह्ली० । कुङ्कुमकृष्णागुरुचन्दनकस्तूरिकाकपूरैः कृत्वा हृष्टैर्दिशः सुरभीक्रियन्ते स्म । यथोत्तमैः कीर्तिभिर्दिशो वास्यन्ते ॥१०६॥

हीसुं० यदापणश्रेणिषु १३सान्दचान्दक्षोदेषु गाङ्गास्विव वालुकासु ।

‘मौगध्येन नीलैरिव काचगोलैः क्रीडन्ति १४डिम्भाः स्फुरदिन्दनीलैः ॥१०५॥

इति हृष्टः ॥

( १ ) कर्पूरसम्बन्धिरेणुषु । ( २ ) अज्ञानभावेन । ( ३ ) बालाः ॥१०५॥

हील० यदा० । प्रह्लादनपुरी हृषेषु स्त्रिगधकर्पूरक्षोदेषु काचगोलैरिव मरकतरलैः कृत्वा रमन्ते । यथा वालकासु अज्ञानाद्वालकाः खेलन्ति । एतावता मणिरलकर्पूरदिवाहुल्यमपि प्रतिपादितम् ॥१०७॥

हीसुं० १४यच्चान्दचामीकरवेशमचन्दचण्डार्चिषौ १५गर्भगताङ्गिरावैः ।

मिथः किमुत्यु( मित्यु )न्नयतोऽभिया( घा )तिर्जेयः कथं राहुरजव्यवीर्यः ॥१०६॥

( १ ) चन्द्रकान्त-कनकगृहावेव विधुभानू । ( २ ) मध्यगतजनशब्दैः । ( ३ ) मन्त्रयतः । ( ४ ) वैरी । ( ५ ) जेतुम्( श )क्यः पराक्रमो यस्य ॥१०६॥

हील० यश्चा० । यस्याः पुर्याः । चन्द्रकान्तैः सुवर्णैर्घटितगृहे एव चन्द्रसूर्यैः मध्यवर्ति मनुष्यशब्दैः कृत्वा

1. हाटवर्णन इति प्रतिपाश्चे ठि० । 2. घर्वर्णन इति प्रतिपाश्चे ठि० ।

मिथो विचारयत इव । यद्राहुर्वैरि कथं जेतव्यः ॥१०८॥

हीसुं०	१ शशाङ्कबिष्मं कुलिशाङ्गणान्तर्दृष्ट्वा वृणानानिह मुग्धडिम्भान् । २ विलोभ्य केलीकलहंसबालैराश्वा सयन्ति स्म कथञ्चिदम्बाः ॥१०७॥ ( १ ) चन्द्रप्रतिबिष्मम् । ( २ ) हारकरचितगृहप्राङ्गणमध्ये । ( ३ ) याचमानान् । ( ४ ) लोभयित्वा । ( ५ ) श्वसीकुर्वन्तिस्म ( ६ ) जनन्यः ॥१०७॥
हील०	शशा० । इह पुरे मुग्धान्बालकान् केल्यर्थं राजहंसबालकैर्लोभयित्वा मातरः कञ्चिन्महता कष्टेनास्वा(श्वा)सयन्ति । किं कुर्वणान्बालान् ?। वृणानान्याचमानान् । हीरकनिबद्धेऽङ्गणमध्ये बिष्मितमिन्दुविष्मं विलोक्य ॥१०९॥
हीसुं०	२ चैत्येऽशमगर्भाङ्कसिताशमकुम्भं निभाल्य मुग्धाभ्रधुनीरथाङ्ग्यः । शशी स विश्रेण इले षष्ठियिता द्विषष्टः क्रुधेतिं तं घन्ति किमद्विग्राघातैः ॥१०८॥ ( १ ) मरकतमणिशिल्पं मध्ये यस्य तादृशं स्फटिकरत्नकलशम् । ( २ ) वीक्ष्य । ( ३ ) स्वर्गगङ्गाचक्रवाक्यः । ( ४ ) वियोगोत्पादयिता । ( ५ ) शत्रुः । ( ६ ) अस्माकम् । ( ७ ) चरणप्रहारैः । ( ८ ) ताडयन्ति ॥१०८॥
हील०	वेशम० । यद्देशमनि ववापि गृहे अश्मगर्भाणां मरकतरत्नानामङ्गो मध्यं यस्य तादृशं सिताशमनां स्फटिकरत्नानां कलशं निभाल्य दृष्ट्वा मूर्खा आकाशगङ्गाया चक्रवाक्यः अङ्गीणां प्रहारैर्घन्ति- प्रहरन्ति । नो अस्माकं वियोगकारकः स प्रसिद्धः शत्रुमृगाङ्गोऽयमिति चेतसि रुषा ॥११७॥
हीसुं०	१ अर्कांशुसंपर्कचयार्ककान्तोऽद्वूतानलोमावनसन्निभस्य । २ चैत्यांग्रशृङ्गस्थगजद्विषद्विद्वैष्यैरधृष्यस्य कथंचनापि । १०९॥ भिया भ्रमूवलभवाहनारेः प्रणश्य शङ्के शरणं श्रयन्तः । ३ लघूभवन्मन्दरमुख्यशैलाः पुरस्य रेजुर्मणिहेमगेहाः ॥११०॥ युग्मम् ॥ ( १ ) सूर्यकिरणसंयोगात्माकारकल्पितसूर्यकान्तरलप्रकटीभूतवह्निभिरभितो । बाणासुरन- गरतुल्यस्य, 'बाणपुरे हि अग्निप्राकार आसी' दिति श्रुतिः ॥ ( २ ) प्रासादोपरि शृङ्गः स्थितकेसरिभिः । ( ३ ) वैरिभिः । ( ४ ) अनाकलनीयस्य ॥१०९॥ ( १ ) ऐरावणयानस्य शत्रोः इन्द्रस्य । 'अभ्रमू' दीर्घोऽप्यस्ति-यथा काव्यकल्पलतायां 'गजानामभ्रमूपति' रिति । ( २ ) वपुषाऽत्पीभवन्तो मेस्ममुखा गिरयः ॥११०॥
हील०	अर्का० । भ्रिया० । जिनगेहा रेजुरुत्रेक्ष्यते । ऐरावणं वाहनं यस्य स इन्द्रः । स एव वैरी । तस्य भयेन नंष्ट्वा पुरीशरणं कुर्वतः । लघूभवन्तः मेरुप्रधाना: पर्वता इव । किंभूतस्य अभ्रमूवलभवाहनारेः ?। सूर्यकिरणसङ्कटेन च यस्य वप्रस्यार्ककान्तेभ्यः उद्भूतो योऽनलोवह्निस्तेन बाणासुरपुरसदूशस्य । पुनः

1. व्यालोक्य हीमु० । 2. वेश्माश्म० हीमु० । 3. गेहाप्रश० हीमु० ।

शिखरस्थसिंहैः कृत्वा शत्रुभिरनाकलनीयस्य । गजयानस्य हि सिंहाश्रितमार्गे दुष्करम् । कृशानौ तु सर्वदाप्यशक्यम् ॥११८-११९॥

हीसुं० चन्द्रोदये १चन्द्रिरकान्तगर्भसन्दर्भशृङ्गस्त्रवदम्बुपूरे: ।

२शिरःस्फुरत्सद्वधुनी ३धेरन्द्रो यत्रानुचक्रे कलधौतसौधैः ॥१११॥

( १ ) चन्द्रकान्तमणीनामन्तराले रचना येषां तथाविधानि शिखराणि तेभ्यो गलज्जलस्त्रवैः । चन्द्रिर इति शेषनाममालायां चन्द्राभिधानं माकन्दवत्प्रसिद्धम् । ( २ ) मूर्द्धनि वहन्ती गङ्गा यस्य । ( ३ ) तादृक्षहिमाद्रिः । ( ४ ) रजतगृहैः ॥१११॥

हील० चन्द्रो० । यत्र पुरे चन्द्रोदये जाते रूप्यमन्दिरैः, शिरसि स्फुरन्ती गङ्गा यस्य तादृशो हिमाचलः सदृशीकृतः । किंभूतैः कलधौतसौधैः ? । चन्द्रकान्तानां गर्भे मध्ये सन्दर्भो रचना येषाम् । तादृशेभ्यः शृङ्गेभ्यो निस्सरन्तः स्वन्तोऽम्बुपूराः पयःप्रवाहा येषु तैः । चन्द्रिर इति चन्द्रः शेषनाममालायाम् ॥११०॥

हीसुं० १वातातिवेल्दध्वजयल्लवाग्रकरेण रावेण च किङ्कणीनां ।

या वैभवस्पद्धितया मधोनः २पुरीं ३स्मयादाऽह्वयतीव योद्धुम् ॥११२॥

( १ ) पवनेनाधिकं कप्पमानकेतुवसनप्रान्तपाणिना । ( २ ) अपरावतीम् । ( ३ ) गर्वात् । ( ४ ) आकारयति ॥११२॥

हील० वाता० । या पुरी इन्द्रपुरीं । स्मयादहङ्कारद्योद्धुं सङ्घ्रामं कर्तुं आकारयतीव । केन ? । वायुनातिशयेन वेलतश्चञ्चलीभवन्तो ये ध्वजपल्लवाः पताकावस्त्राणि तेषामग्रं स एव करो हस्तस्तेन । पुनः क्षुद्रघण्टिकानां शब्देन ॥१११॥

हीसुं० १श्रीवत्सरामाङ्गजकम्बुताक्ष्यचक्राङ्कितैःमरकतैर्निकेतैः ।

जग्ने २मुकुन्दैरिव यत्र चित्रमेतत्परं ४धेनुकमद्विषद्धिः ॥११३॥

( १ ) लक्ष्मी-तर्णक-वनिता-पुत्र-शङ्का-५श्वसमूहकलितैः, हृदयलक्षण-बलभद्र-कन्दर्प-पाञ्चजन्यशङ्कु - गरुड - सुदर्शनचक्रयुतैः । ( २ ) मरकतरलसम्बन्धिभिः ( ३ ) गृहैः । 'शङ्के स्वसंकेतनिकेतमाप्ताः' इति नैषधे । ( ४ ) कृष्णैः । ( ५ ) दैत्यं धेनुसमूहं च ॥११३॥

हील० श्रीव० । मरकतरलघटितगृहैः कृष्णैरिव जातम् । बहुवासुदेवापेक्षया बहुत्वम् । किंभूतैः गृहैः कृष्णैश्च ? । श्रीर्लक्ष्मीर्वत्सास्तर्णकाः श्रीवत्सो हृदयचिह्नम् । रामाः स्त्रियः, अङ्गजा नन्दना रामाङ्गजः कामः । कम्बवः शङ्का: पाञ्चजन्यश्च । ताक्ष्या अश्वा गरुडश्च । तेषां चक्राणि समूहाः, चक्रं सुदर्शनम् । तैः सहितैः । परमिदमाश्र्यम् । यद्देनूनां समूहं गोकुलं पालयद्धिः । स तु धेनुकासुरद्विट ॥११२॥

- हीसुं० 'एतज्जगज्जित्वरलक्ष्मवीक्षाक्षणोदिताद्वैतकुतूहलेन ।  
शङ्के त्रिदश्यः स्तिर्मितीभवन्त्यो विभान्ति यद्वेशमसु ३शालभञ्ज्यः ॥११४॥  
( १ ) पुर्या जगन्नगरजयनशीलश्रिया दर्शनोत्सवेनोद्भूतासाधारणकौतुकेन । ( २ ) निश्चला  
भवन्त्यः । ( ३ ) पुत्रिकाः ॥११४॥
- हील० एत० । पुरीगृहेषु पुत्रिका भान्ति । तत्रैव शङ्के-मन्ये । एतस्याः पुर्याः जगज्जेतृशोभाया या  
वीक्षालोकनं तदेवोत्सवस्तेनोद्भूतं यत्कुतूहलं तेन निश्चला जायमानाः ॥११३॥
- हीसुं० विष्णोर्निहन्तुं<sup>१</sup> नरकं गतस्यौ॒त्सुक्यात्कृ॑मान्त्रिगलितेव गङ्गा ।  
'ज्यौत्स्नीषु यच्चान्दगृहच्युताभ्योधारा भुवं भूषयति स्म यस्मिन् ॥११५॥  
( १ ) नरकासुरम् । ( २ ) राभस्यात् । ( ३ ) पदात् । ( ४ ) पतिता ( ५ ) पूर्णिमारात्रिषु ।  
( ६ ) चन्द्रकान्तमणिनिर्मितभवननिष्ठतत्पयःप्रवाहः ॥११५॥
- हील० विष्णो० । यस्मिन्पुरे पूर्णिमासु चन्द्रकान्तगृहेभ्यो निःसृता वारिधारा भूमीमलङ्कुरुते स्म । उत्प्रेक्ष्यते ।  
राभस्यान्नरकनामानं दैत्यं मारयितुं गतस्य कृष्णस्य चरणान्निर्गत्य पतिता गङ्गा भूमीमध्येतीव ॥११४॥
- हीसुं० 'ज्योतिस्तरङ्गीकृतयन्निकेतहरिन्मणीशालिशिखा चकासे ।  
'इदंपदव्येव ३पतङ्गपुत्री नभः प्रयान्ती मिलितुंॄस्वतात्म ॥११६॥  
( १ ) कान्तिप्रतार्पैर्मिलज्जलकलोलकलितेव यद्भवनानां नीलरत्नशोभायमानशिखरम् ।  
( २ ) एतद्वहमार्गेण । ( ३ ) यमुना ( ४ ) भास्करं पितरम् ॥११६॥
- हील० ज्यो० । कान्तिभिः कलोलीकृतानां पुरीगृहाणां नीलरत्नशालिनी शिखा उपरितनप्रदेशं शुशुभे ।  
उत्प्रेक्ष्यते । एतन्नगरमन्दिरशिखरमार्गेण स्वतातं सूर्यं मिलितुं गच्छन्ती सूर्यपुत्री यमीव ॥११५॥
- हीसुं० 'गाङ्गेयगारुत्मतपद्मारागचन्द्राशमवेशमावलिरुङ्ग्लास ।  
'प्रेयांसमुद्दिश्य ३महीमहेन्दं पुरश्रिया ४क्लृप्त इवाङ्गरागः ॥११७॥  
( १ ) सुवर्ण-हरिन्मणि-रक्तरत्न-चन्द्रकान्तनिर्मितभवनपटिक्तः । ( २ ) कान्तम् । ( ३ ) राजानम् ।  
( ४ ) रचितः ॥११७॥
- हील० सुवर्णहिरण्यरक्तोपलचन्द्रकान्तघटितगृहश्रेणिः दिदीपे । उत्प्रेक्ष्यते । राजानं प्रत्युद्दिश्य पुरलक्ष्या  
विलेपनं कृतम् ॥११६॥
- हीसुं० 'बालारुणज्योतिरखर्वगर्वनिर्वासिमाणिक्यनिकाव्यकोटिः ॥  
व्यक्तीभवन्भात्यनुभूपकान्तं पुरश्रियोद्गीर्ण इवानुरागः ॥११८॥  
( १ ) उदयन् रविरुणः बालश्च उच्यते, लघुभास्करप्रभाणां समग्राभिमानस्य धिक्कारणां  
माणिक्यानां गृहकोटिः, माणिक्यानि पद्मारागा उच्यन्ते । यथा नैषधे 'शिशुतरमहोमाणिक्यानाम-  
हर्मणिमण्डली' ति । प्रत्यग्रकिरणपद्मारागाणां रविबिम्बमिति तद्वत्तिः ॥११८॥

- हील० बालसूर्यकान्तीनामतिगर्वं निर्नाशयन्तीत्येवंशीलानि माणिक्यानि । तेषां कोटिर्भाति । भूकान्तमनु-  
लक्षीकृत्य पुरीश्रिया उद्घार्णः । अत एव प्रकटीभवस्नेह इव ॥१२०॥
- हीसुं० १प्रीतादु॒पास्त्या॑धिगता॒ ४गिरिं॒ री॒ )शान्त्रि॑रङ्कनैकाङ्गं॒ विधानविद्या॑ ।  
५प्रपञ्चिता॒ कौतुकिना॒ किमेषा॒ चन्द्रेण॒ ६यच्चान्दृगृहच्छ्लेन॒ ॥११९॥ इति गृहाः ॥  
( १ ) सन्तुष्टत् । ( २ ) सेवया । ( ३ ) प्राप्ता । ( ४ ) ईश्वरात् । ( ५ ) निर्गतलाज्ञनं  
ये भ्यस्तादृशानामनेककायानां निर्माणस्य कारणं विद्या । ( ६ ) विस्तारिता । ( ७ )  
चन्द्रकान्तमणिभवनव्याजेन ॥११९॥
- हील० प्री० । सेवया प्रीतादीश्वरात् निःकलङ्कअ(ङ्क)नेकरूपकरणविद्या प्राप्ता सती चन्द्रेण चन्द्रकान्तरत्नघटित-  
गृहमिषाद्विस्तारिता किं एषा ॥१२१॥
- हीसुं० १यस्मिन्दिदीपे॒ २मधुदीपरूपश्रीगर्वनिर्वासिविलासिवृन्दैः॑ ।  
रूपस्मयं वीक्ष्य॑ जयस्य तस्य मदच्छिदे किं विधिना॒ ३प्रणीतैः॑ ॥१२०॥  
( १ ) स्मररूपशोभाभिमानप्रवासकारिभिस्तर( रुणगणैः ( २ ) इन्द्रपुत्रस्य ( ३ ) कृतैः ॥१२०॥
- हील० यस्मिन्पुरे माररूपसम्पन्निर्दलननिपुणव्यवहारिव्यूहैभ्राजितम् । उत्प्रेक्ष्यते । जयस्येन्द्रसुतस्य रूपाहङ्कार  
हृष्ट्वा तत्रिकृतेर्थात्रा विहितैः ॥१२२॥
- हीसुं० मेरोः॑ १शिखाग्रावसथव्यथाभिरुत्तीर्य सात॑स्थितिमीहमानाः॑ ।  
यस्मिन्समेताः॑ किमु॑ ३नाकिशाखिव्रजा॑ ४वदान्या॑ व्यत्लसन्युवानः॑ ॥१२१॥  
( १ ) अत्युच्चचूलोपरि निवसनकष्टैः॑ । ( २ ) सुखस्थानम् । ( ३ ) कल्पतरुनिकराः॑ । ( ४ )  
दानशीलाः॑ ॥१२१॥
- हील० मेरो० । शिखरोपरि आवसथो वसतिस्तेनोद्भवन्तीभिः॑ पीडाभिष्कृ(ः कृ)त्वा मेरुपर्वतादुत्तीर्य  
सुखनिवासमीहमानाः॑ यस्मिन्पुरे समागताः॑ देवतरुव्रजा इव दानशीलास्तरुणाः॑ स्वच्छन्दं शुशुभिरे  
॥१२३॥
- हीसुं० जितस्मरान्यौ॑रजनान्निपी॒य मा॑ ३तद्वषस्यन्त्यसती॑ ४सती॑ स्यात्॑ ।  
इतीव योषावपुषा॑ ५स्ववर्ष्म द्विषा॑६मखस्य॑ व्यतिसीव्यते स्म ॥१२२॥ इति नागरा॑ः॥  
( १ ) नागरजनान् । ( २ ) सादरमवलोक्य । ( ३ ) तेषां कामुकी तदभिलाषिणी॑ । ( ४ )  
पार्वती॑ । ( ५ ) स्त्रीशरीरेण ( ६ ) स्वशरीरम् । ( ७ ) शंभुना॑ । ( ८ ) परस्परं स्यूतम् ॥१२२॥
- हील० जित० । मखनामो दैत्यस्य वैरिणा शंभुना॑ । उत्प्रेक्ष्यते० । इति हेतोः पार्वतीशरीरेण समं स्ववर्ष्म  
निजशरीरं व्यतिसीव्यते स्म परस्परं स्युतं योज्यते स्म । इतीति किम् ?। यत् जितः स्मरे  
यैस्तादृशान्तरुणान् सादरमवलोक्य सती पार्वती तद्वषस्यन्ती रागोद्रेकात्कामातुरा तेषां कामुकी भवन्ती

1. नगरजनवर्णनमाह इति प्रतिपार्श्वे ठि० । 2. स्तात् हीमु० । 3. इति पौरा॑ः हील० ।

- सती, सती पतिव्रता असती व्यभिचारिणी मा स्ताद्ववतात् ॥१२४॥
- हीसु०** १यस्मिन्विभान्ति स्म विलासवत्यः ३स्मरावरोधभ्रममुद्वहन्त्यः ।  
किं शक्तयो ३मन्मथमेदिनीन्दोरमूरमोघास्त्रिजगद्विजेतुः ॥१२३॥  
( १ ) रतिभ्रान्ति "स्मरावरोधभ्रममावहन्ती" ति नैषधे । ( २ ) स्मराजस्य । ( ३ ) सफला:  
अप्रतिहतवीर्या: ॥१२३॥
- हील०** यस्मिन्० । यस्मिन्पुरे प्रमदा भान्ति स्म । किंभूताः ?। कन्दर्पान्तःपुरं रतिस्तस्य भ्रान्ति बिभ्रन्त्यः ।  
उत्प्रेक्ष्यते । त्रिभुवनजेतुः कामभूपस्यामूः प्रत्यक्षाः अवन्ध्याः शक्तयः प्रहरणविशेषाः ॥१२५॥
- हीसु०** त्य॑क्ता श्र॒वः ३कञ्चुकिकामुकाभिः<sup>४</sup> सकर्णयन्नागरागिणीभिः ।  
स्वमन्दिरात्कुण्डलिनीभिरस्मिन्किमीयुषीभिः शुशुभेऽङ्गनाभिः ॥१२४॥  
( १ ) उज्जिताः । ( २ ) अकर्णा बधिराः । ( ३ ) सौविदल्लाः कञ्चुकयुक्ता वा अभिलाषिणः  
कान्ता वा यकाभिः । ( ४ ) कर्णयुक्ताः पण्डिता वा यस्या नागरिकास्तेषु रागिणीभिः रक्ताभिः ।  
( ५ ) कुण्डलं कर्णवेष्टिका तद्युक्ताभिः नागाङ्गनाभिर्वा ॥१२४॥
- हील०** त्यक्ता० । स्त्रीभिः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । निजमन्दिरान्नागलोकादीयुषीभिरस्मिन्नगे आगताभिः  
नागाङ्गनाभिः । किंभूताभिः ?। त्यक्ता अश्रवसः । अकर्णाः, बधिरा इत्यर्थः । कञ्चुकिनः सौविदल्लाः  
कुञ्जवामना इत्यर्थः । कृत्रिमकलीबा वा कामयितारो याभिस्ताभिः । पुनः किंभूताभिः ?। सकर्णाः  
प्राज्ञाः श्रोतारः यस्या; पुर्याश्छेकास्तेषु रागिणीभिः ॥१२६॥
- हीसु०** भान्ति स्म यस्मिन् १सुमनोभिरामा रामा ३रमाधःकृतकामरामाः ।  
स्वस्पद्विनं ३येन रुषेव देव॑गृहं ५निगृह्याप्स॑रसो गृही॑ताः ॥१२५॥  
( १ ) सुमनस्त्वेन-विशुद्धचित्तत्वेन पातिव्रत्येन सतीत्वेनेत्यर्थः, पुष्पैर्वा मनोज्ञाः । ( २ ) स्वलक्ष्म्या  
तिरस्कृतरथः । ( ३ ) नगरेण । ( ४ ) स्वर्गम् । ( ५ ) निग्रहं कृत्वा-पराजित्य । ( ६ ) रम्भा-  
घृताचीप्रमुखाप्सरसः । ( ७ ) हठादुपात्ताः ॥१२५॥
- हील०** भान्ति० । यस्मिन्पुरे निष्पापत्वेनाभिरामाः । पुना रम्या शोभयाधःकृते कामस्य रामे रतिप्रीत्यो(ती)  
याभिस्ताहश्यः रामा भान्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । येन पुरेण स्वेन सह स्पद्विनाभिर्विशेषां देवलोकं बन्दीकृत्य  
गृहीताः स्वर्गिवध्वः ॥१२७॥
- हीसु०** किमग्रदूत्यो॑ मदनावनीन्दोः सख्योऽथ वा ३स्वर्वरवर्धिणीनाम् ।  
३नागाङ्गनानां किमुताः॑नुवादा यत्राब्जनेत्रा मदयन्ति चेतः ॥१२६॥ इति स्त्रियः ॥  
इति पुरवर्णनम् ।

1. नगरस्त्रीवर्णनमाह हील० । 2. भुजङ्गमीनां हीसु०

- ( १ ) प्रथमा: शासनहारिका: । ( २ ) देवीनामप्पसां वा । ( ३ ) अनुकारा: ॥१२६॥
- हील० किम० । यत्र पुरे कमललोचना मनो मदयन्ति । अर्थाद्यूनां मदयुक्तं कुर्वन्ति । शेषं सुगमम् ॥१२८॥
- हीसु० <sup>१</sup>त्रास्ति <sup>१</sup>भूमान्महमुन्दनामा <sup>२</sup>स्थामैकभूर्भूवृत्त्यैकवीरः ।  
वधूर्नवोदेवॄ दिने दिने भूः <sup>५</sup>श्रियं दधौ <sup>६</sup>यत्करपीडितापि ॥१२७॥
- ( १ ) पातिसाहिः । ( २ ) बलानामद्वैतस्थानम् । ( ३ ) भूमीमण्डलाद्वैतसुभटः । ( ४ )  
नवपरिणीतेव । ( ५ ) लक्ष्मीं शोभां च । ( ६ ) करो राजदेयांशः । पक्षे आलिङ्गनादिभिः  
॥१२७॥
- हील० तत्रा० । तत्र देशे महमुन्दपातिसाहिरस्ति । किंभूतः ?। स्थामां परक्रमाणामेकाद्वितीया भूः-  
स्थानम् । यत्करेण देयांशेन पीडिता सती नवोदेव भूः शोभां धत्ते स्म ॥१२९॥
- हीसु० प्रजां <sup>१</sup>द्विजिह्वैरिव पीड्यमानां कलेविलासैरवृत्त्यैविश्वाम् ।  
तां <sup>२</sup>शासितुं <sup>३</sup>दाशरथिः<sup>२</sup> <sup>४</sup>किमात्तजन्मा स्वयं साहिरसौ बभासे ॥१२८॥
- ( १ ) दुर्जनैः । ( २ ) ज्ञात्वा । ( ३ ) भुवम् । ( ४ ) पालयितुम् । ( ५ ) रामः । ( ६ ) गृहीतजन्मा  
॥१२८॥
- हील० प्रजां० । पातिसाहिर्भाति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । कलिविलासैर्विश्वां पृथ्वीं पीड्यमानां ज्ञात्वा तां पृथ्वीं  
पालयितुं गृहीतावतारे रामः किमयम् । यथा खलैः पीड्यमानां प्रजां कक्षित्प्रशास्ति ॥१३०॥
- हीसु० <sup>५</sup>निस्तृं( स्त्रि )शमन्थानगमथ्यमानमहाहवक्षीरधिजन्मना यः ।  
वत्रे <sup>६</sup>बलिध्वंशी( स )विधानधुर्यो जयश्रिया शत्रुरिवा<sup>७</sup>सुराणाम् ॥१२९॥
- ( १ ) खड्ग एव क्षुब्धाचलो मेरुस्तेन मथ्यमान आलोड्यमानो यो महासङ्ग्राम एव दुर्घसमुद्रः  
तस्माज्जन्म यस्याः । ( २ ) बलिदैत्यो बलवांशं तद्धातकरणे गृहीतव्रतः । ( ३ ) कृष्णः ॥१२९॥
- हील० निस्त्रिंशं खडः स एव मन्थापर्वतो मेरुस्तेन मथ्यमानो यो महासङ्ग्रामसमुदस्तस्मादुत्पन्नया जयश्रिया  
स वत्रे । किंभूतः सः ? । बलिनां बलवतां बले दैत्यस्य वधकरणसमर्थः । उत्प्रेक्ष्यते । दैत्यानां  
शत्रुः कृष्णः जयेनोपलक्षितया लक्ष्म्या त्रियते । बलं-सैन्ये परक्रमे च ॥१३१॥
- हीसु० <sup>८</sup>अश्यामितास्यं <sup>९</sup>कमलातिदानैर्जितैः प्रसत्तिप्रणिनीषयास्य ।  
<sup>१०</sup>अभ्रैरिवाभ्राद्गुवमभ्युपेतैर्यद्गुभुजो गन्धगजैर्विरेजे ॥१३०॥
- ( १ ) नकृष्णं कृतं मुखं येन । ( २ ) जललक्ष्म्योरतिशयविश्राम ] यनैः । ( ३ ) प्रसादं कर्तुमिच्छ्या ।  
( ४ ) मेघैः । ( ५ ) गगनात् । ( ६ ) आगतैः ॥१३०॥
- हील० अश्या० । यस्य राज्ञो गन्धहस्तिभिः शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । उज्ज्वलवक्त्रं यथा स्यात्तथा । लक्ष्मीदानैर्जितैः ।  
अस्य राज्ञः प्रसादस्य कर्तुमिच्छ्या गगनादागतैर्वर्द्दलैः ॥१३२॥

1. देशाधिराजावरण इति प्रतिपार्थे टि० । 2. प्रजापालनार्थं रामावतारे गृह्णः इति प्रतिपार्थे टि० ।

- हीसुं० १विश्वैकधन्वी शरसान्नपोऽसौ मा क्वापि कुर्यात्परराजवन्माम् ।  
 २जिजीविषुभीत इतीव राजा नभो ध्रमीगोचरयाञ्चकार ॥१३१॥  
 ( १ ) भुवने पार्थ इवाद्वैतधनुर्धरः । ( २ ) बाणायत्तं बाणहतमित्यर्थः । ( ३ ) अन्य राजमिव ।  
 यथा अन्यं राजानं रणे बाणायत्तं करोति तथा राजशब्दधारिणं मामपि मा शरसात्करोतु । ( ४ )  
 जीवितुमिच्छुः । ( ५ ) चन्द्रः । ( ६ ) गोचरं करोति इति गोचरयति, गोचरयति स्म इति  
 गोचरयाञ्चकार, भ्रमण्या गोचरयाञ्चकार, "विधेः कदाचित् भ्रमणीविलासे" इति नैषधे ॥१३१॥  
 हील० विश्वै० । इति अमुना प्रकारेण भीतः सन्राजा चन्द्रः गगनं भ्रम्या भ्रमणस्य गोचरयाञ्चकार । इतीति किम् ?।  
 विश्वेऽद्वितीयधन्वी असौ नृपः परेये राजानस्तानिव मां राजानमपि क्वापि स्थाने शरसाद्वाणविद्धं मा कुर्यात्  
 ॥१३५॥
- हीसुं० १जम्बालयद्विर्जलदैरिवोर्वीं मदाम्बुभिर्यस्य बभे द्विपेन्दैः ।  
 २दिग्जैत्रयात्रासु जितैर्दिग्गीशैर्दिग्वारणेन्द्रैरुपदीकृतैः किम् ॥१३२॥  
 ( १ ) कर्दमयुक्तां कुर्वद्विः । ( २ ) दिशां जयनशीलेषु प्रयाणेषु । ( ३ ) दिग्गजैः । ( ४ ) ढोकितैः  
 ॥१३२॥
- हील० जम्बा० । जम्बालान्कुर्वन्तीति जम्बालयन्ति । जम्बालयन्तीति जम्बालयन्तस्तैर्जम्बालयद्विरुद्धीं कर्दमयुक्तां  
 कुर्वद्विर्यस्य गजन्द्रै राजितम् । कैः ?। मदपानीयैः । यथा जलदैर्मेघैः पृथ्वीं जम्बालकलिता विधीयते ।  
 उत्प्रेक्ष्यते । जितैर्दिव्यालैढाँकितैर्दिग्जेन्द्रैः ॥१३४॥
- हीसुं० १अजय्यवीर्य निजनिर्जयायोद्यतं यमालोक्य विपक्षलक्षैः ।  
 २स्वक्षत्रवृत्तीरपहाय भेजे क्षेत्रस्य वृत्तिः कृषिकैरिवात्र ॥१३३॥  
 ( १ ) जेतुमशक्यः पराक्रमो यस्य । ( २ ) स्वपराभवनाय । ( ३ ) प्रादुर्भूतम् । ( ४ ) वीरव्यापारं ।  
 रणकर्मपारीणातां शस्त्रग्रहणात्मिकां वृत्तिम् । ( ५ ) त्यक्त्वा । ( ६ ) आजीवम् । ( ७ ) कर्षुकैः  
 ॥१३३॥
- हील० अज० । अजेयपराक्रमम् । पुनरन्यजयायोद्यतं यं भूपं दृष्ट्वा वैरिलक्षैः स्वक्षत्रस्य आजीविका विहाय  
 कृषिकारकैरिव केदारजीवनोपायो भेजेऽङ्गीकृतः ॥१३३॥
- हीसुं० यस्य द्वेषिनिषूदनव्रतजुषः प्रत्यर्थिपृथ्वीभुजां  
 १सन्त्रासेन कलिन्दभूधरगुहागर्भं किमा सेदुषाम् ।  
 २स्त्रैणस्याञ्च ननीलिमाङ्कितपतद्वाष्पाम्बुपूरैरिव  
 ३श्मापीठप्रसरद्विराविरभवत्याथोजबन्धोः सुता ॥१३४॥  
 ( १ ) वैरिणामुन्मूलनमेव व्रतभाजः । ( २ ) वैरिनृपाणाम् । ( ३ ) अत्याकस्मिकभयेन ( ४ )  
 कलिन्दनामा गिरिस्तस्य कन्दरमध्योत्सङ्गम् । ( ५ ) प्रासवताम् ( ६ ) स्त्रीसमूहस्य ( ७ )  
 कज्जलकालिमकलितनिर्गलदोदनजलप्लवैः । ( ८ ) भूमण्डले विस्तरद्विः ( ९ ) प्रकटीभूता  
 यमुना ॥१३४॥

हील० यस्य० । द्वेषिणां मूलादुन्मूलनव्रतं जुषते-सेवते । तस्य सन्नासेनाकस्मिकभयेन कलिन्दपर्वत-  
मध्यप्रविष्टानां वैरिज्ञां ल्लोसमूहस्य पृथ्वीतलविस्तृतैः कज्जलनीलिम्नाङ्कितैः पतञ्जिर्बाष्पाम्बुपुरैः  
कृत्वा पद्मबन्धोः सूर्यस्य सुता यमुनाविरभवत्प्रकटीभूता ॥१३६॥

हीसुं० **‘सुत्रामाम्बुधिधामदिगिरिकुचद्वन्द्वाभ्यनेमीधवः**

**पृथ्वीपालललाटचुम्बितपदप्रोद्धामकामाङ्कुशः’ ।**

**‘द्यां ‘स्वर्णाचलसार्वभौम इव यो निशेषविश्वमध्यरं**

**शासत्वा’त्रवगोत्रजिद्विजयते ‘श्रीगूर्जरोर्वीपतिः ॥१३५॥’**

इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसुन्दरनाम्नि महाकाव्ये प्रथमप्रारम्भे जम्बूद्वीप-देश-नगर-  
नृपादिवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥

( १ ) प्राचीप्रतीचीशैलावेव स्तनद्वयं यस्यास्ताद्वभूमेऽपतिः । ( २ ) नखः । ( ३ ) स्वलोकम् ।

( ४ ) इन्द्रः “जाम्बुनदोर्वीधरसार्वभौम” इति नैषधे । ( ५ ) वैरिणां वंशं जयतीति शत्रव एव  
गोत्राः । ( ६ ) महमुन्दपातिसाहिः ॥१३५॥

**इति प्रथमसर्गावच्चूरिः ॥**

हील० **सूत्रा०** । श्रीगूर्जरोर्वीपतिर्विजयति(ते) । किंभूतः ? सुत्रामा शक्रः अम्बुधिधामा वरुणस्तयोर्दिशोर्गिरी  
पर्वतौ उदयास्ताचलाभिधानौ, तावेव कुचद्वन्द्वं यस्यास्ताद्वश्या अब्धिनेमेखलाया भूमेर्धवो भर्ता । पुनः  
किंभूतः?। पृथ्वीपालानां ललाटैश्चुम्बिताः पदयोः प्रकृष्टाः कामाङ्कुशा नखा यस्य । किं कुर्वन् ? ।  
निःशेषपृथ्वीं शासत् पालयन् । यथा स्वर्णाचलसार्वभौमशक्रवर्ती द्यां दिवं शास्ति ।  
“जाम्बुनदोर्वीधरसार्वभौम” इति नैषधे । राजा इन्द्रश्च किंभूतः ?। शात्रवाणां गोत्राणि-वंशान् । शात्रवा  
रिपव एव गोत्राः-पर्वतास्तान् जयतीति ॥१३५॥

हील० → यं प्रासूतशिवाह्वासाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः

**श्रीमत्कोविदसिंहसी( सिं )हविमलान्तेवासिवास्तोष्यतिम् ।**

तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयु

क्सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गोऽयमाद्योऽभवत् ॥१३८॥

इति पण्डितश्रीसी(सिं)हविमलगणिशिष्यपंदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये प्रथम  
प्रारम्भे जम्बूद्वीप-भरतक्षेत्र-गूर्जरदेश-प्रह्लादनपुर-महमुन्दपातिसाहिवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥

हील० → यं प्रा० । हीरशब्देन युनक्ति इति हीरयुक्तादृशं सौभाग्यमित्यऽभिधा यस्य तावता हीरसौभाग्यकाव्ये  
अयं प्रत्यक्षलक्षः प्रथमः सर्गः बभूव । किंभूतेन ? । स पूर्वोक्तश्वासौ ब्राम्याः क्रमै सेवत इत्येवंशीलश्च ।  
तादृशेन देवविमलेन व्यावर्णिते । स कः ? । पं.देवविमलं शिवा इत्याह्वा यस्य तादृशः साधुः । साधुरिति  
वणिजां नाम । प्राकृते तु साहा, तेषु मघवा । पुनः सौभाग्यदेवी जनयामास । पुनः किंभूतः?।  
श्रीमत्कोविदशार्दूलसी(सिं)हविमलस्य शिष्याणां मध्ये अग्रणी प्रथमशिष्यत्वेन प्रधानम् ॥१३८॥

**इति प्रथमः सर्गः ॥**

1. इति नुपवर्णनम् हील०- । →← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुं प्रतौ नास्ति ।

ऐं नमः

अथ द्वितीयः सर्गः ॥

- हीसुं० १<sup>१</sup>पुरेऽथ तस्मिन्व्यहारि<sup>२</sup>पुङ्गवो बभूव कुंगा इति नाम धामवान् ।  
महीरुहां <sup>३</sup>स्वःशिखरीव विश्रुतो<sup>४</sup> रसा<sup>५</sup>स्पृशां न्यकृतविश्वनिःस्वतः ॥१॥  
( १ ) प्रह्लादनपुरे । ( २ ) श्रेष्ठः वृषभो वा । ( ३ ) कल्पतरुः । ( ४ ) द्रुमाणां विष्वातः ।  
( ५ ) जनानाम् । ( ६ ) निराकृतजगदरिद्रभावः ॥१॥
- हील० न्यकृता विश्वस्य निःस्वता येन सः । तादृशः कुंगा श्रेष्ठी बभूव । अन्यत्सुबोधम् ॥
- हीसुं० २<sup>१</sup>अरिष्टकेतुं <sup>२</sup>नवभोगसङ्गिनं <sup>३</sup>त्रिरेखपाणिं <sup>४</sup>पुरुषोत्तमं पुनः ।  
<sup>५</sup>भ्रमाद्विवोदुर्जलधेरिवोद्ध्रहा<sup>६</sup> महेभ्यमभ्येत्य<sup>७</sup> बभाज यं मुदा ॥२॥  
( १ ) उपसर्गे दैत्ये च धूमकेतुः । ( २ ) विलासः सर्पकायश्च तत्सङ्गेऽस्त्यस्य । ( ३ ) आकृतिशङ्कुः  
पाञ्चजन्यश्च हस्ते यस्य । ( ४ ) पुरुषेषु श्रेष्ठः कृष्णश्च । ( ५ ) भर्तुः । ( ६ ) लक्ष्मीः ।  
( ७ ) आगत्य ॥२॥
- हील० अरि० । जलधेरुद्ध्रहा पुत्री लक्ष्मीः स्वपतिभ्रमात्कुंगासाधुं बभाज । किंभूतम् ? । अरिष्टेषु उपद्रवेषु  
अण्णिनामि वृषभरूपे दैत्ये धूमकेतुम् । नवभोगस्य सर्पस्य वा सङ्गिनम् । त्रिरेखः शङ्कुः आकृत्या  
पाणौ यस्य तम् । पुनरुत्तमम् ॥२॥
- हीसुं० २<sup>१</sup>कुबेर <sup>२</sup>इत्यात्म<sup>३</sup>जनावमाननां <sup>४</sup>व्यपोहितुं <sup>५</sup>किंपुरुषेश्वरः स्वयम् ।  
<sup>६</sup>वितीर्णसौवर्णमणीगणोऽर्थिनां <sup>७</sup>प्रणीय <sup>८</sup>यन्मूर्तिमिवावतीर्णवान् ॥३॥  
( १ ) कुत्सितदेहः ( २ ) इत्यमुना प्रकारेण । ( ३ ) स्वस्य लोके अवहेलनाम् । ( ४ ) निराकर्तुम् ।  
( ५ ) धनदः । ( ६ ) याचकानां दत्तकनकरत्ननिकरः । ( ७ ) कृत्वा । ( ८ ) कुंगासाधुरूपम्  
॥३॥
- हील० कुबे० । कुत्सितवपुरित्यात्मनां जनेऽवगणनां अपकर्तुम्, प्रदत्तसुवर्णसमूहः रत्नगणः सन् यन्महेभ्यमूर्ति  
निष्पाद्य स्वयं धनदो वसुन्धरायां अवतीर्णवान् ॥३॥
- हीसुं० १तमःसपलः <sup>२</sup>श्रितशम्भुशीलनः <sup>३</sup>कुमुद्विकासी<sup>४</sup> <sup>५</sup>वचनामृतं <sup>६</sup>किरन् ।  
शशीव योऽशीलि <sup>७</sup>कलाभिरभ्यराङ् <sup>८</sup>विमुक्तदोषः स तदत्र <sup>९</sup>कौतुकम् ॥४॥  
( १ ) अज्ञानस्यान्धकारस्य च शत्रुः । ( २ ) शंभोस्तीर्थकृत ईश्वरस्य च सेवा येन ( ३ )  
पृथिव्या: प्रमोदं कैरवाणि च विकासयतीत्येवं शीलः । ( ४ ) वचनमेवरूपं वा अमृतम् ।

1. हीरपिता 'कुंगा' वर्णनम् इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. धनदावतार इति प्रतिपार्श्वे टि० । 3. ०काशी हेमु० । 4. शिवावतार  
इति प्रतिपार्श्वे टि० ।

( ५ ) किरति विस्तारयतीति । ( ६ ) <sup>१</sup>द्वासपतिमिताभिः उदयांशैश्च सेवितः । ( ७ ) त्यक्तापगुणः । सरानिकः ( ? ) ॥४॥

हील० तमःस० । यो व्यवहारी ७२कलाभिः शशीव सेवितः । किंभूतः स इभ्यः शशी च ?। तमसोऽज्ञानस्य ध्वान्तस्य च वैरी । पुनः श्रितं शंभोर्जिनस्य शिवस्य च शिरःस्थायुक्त्वाच्छीलनं सेवनं येन । कौ पृथिव्यां मुदं कुमन्दि विकाशयति । पुनर्वचनमेव ततुल्यममृतं वर्षन् । परमेतच्चित्रं यन्मुक्ता दोषा अपगुणा येन । शशी तु सह दोषया रत्ना वर्तते स सदोषः \*॥४॥

हीमु० <sup>१</sup>अलम्भिः <sup>२</sup>द्वासपतिमिताभिः उदयांशैश्च सेवितः । <sup>३</sup>शरत्प्रसन्नीकृतचन्द्रगोलिका सुधामरीचेर्गहतारकैरिव ॥५॥

( १ ) प्राप्ताः । ( २ ) वज्रपाणिस्तस्य गजस्तद्वत् श्वैत्यात् शोभते इत्येवंशीला । ( ३ ) घनात्ययेन निरश्रीकृता चन्द्रचन्द्रिका । ( ४ ) चन्द्रस्य ॥५॥

हील० अ० । ऐशवणनिभा एतत्कीर्तिः पैरनासा । यथा ग्रहैश्चन्द्रिका नाप्यते ॥५॥

हीमु० <sup>१</sup>वहन्सुपर्वद्वुमरामणीयकं <sup>२</sup>सनन्दनो <sup>३</sup>गोत्रपराधर्यतां दधत् । <sup>४</sup>सुजातरूपः सुमनोमनोरमो<sup>५</sup>नुयाति यः स्वेन <sup>६</sup>सुपर्वपर्वतम् ॥६॥

( १ ) कल्पतरुरिव वपुषा रमणीयतां कल्पद्रुमैश्च चारुत्वम् । ( २ ) भाविनि भूतोपचारात्सह पुत्राभ्यां हीरजी—श्रीपालाभ्यां वर्तते यः । पक्षे-वनम् । ( ३ ) वंशे शैलेषु च प्रकृष्टात्म् । ( ४ ) शोभनमुत्पन्नं रूपं यस्य पक्षे स्वर्णम् । ( ४ ) सुमनोभिर्हारादिकुसुमै रम्यः निष्पां मनसां सतां मनसि सुगुणधर्मित्वेन रमते वा । सुमनस्त्वेन मनोरमः सुमनसां मध्ये मनोज्जः । पक्षे-दैव्यै रम्यः । ( ५ ) अनुकरोति । ( ६ ) मेरुम् ॥६॥

हील० वह० । कल्पवृक्षास्तद्वत्तैश्च रम्यभावं वहन् । पुनः सह नन्दनाभ्यां हीरकुमारश्रीपालाभ्यां नन्दनवनेन [वा] वर्तति(ते) तथा गोत्रे वंशेऽचलेषु प्रकृष्टां दधत् वा सुशोभनं जातं रूपं वा सुषु जातरूपं स्वर्णं यत्र । सुमनसां सुमनस्त्वेन रम्यः । एतादृशो य इभ्यः मन्दरमनुकरोति ॥६॥

हीमु० <sup>१</sup>जगज्जनावाङ्मनसावगाहिना <sup>२</sup>गम्भीरभावेन जितेन साधुना । <sup>३</sup>सुधास्त्रवन्तीपतिना हृदा दधे किमेष रोषो <sup>४</sup>बडवानलोपथेः<sup>५</sup> ॥७॥

( १ ) विश्वलोकस्य वचनमनोगोचरातीते । ( २ ) क्षीरसमुद्रेण । ( ३ ) कपटात् ॥७॥

हील० जग० । जगज्जनानां न वाङ्मनसौ अवगाहते इत्येवंशीलस्तेन वकुमशक्येनेत्यर्थः । गम्भीरस्त्वेन कृत्वा इभ्येन जितेन क्षीराद्यन्विता बडवाग्निरूपः । किमु कोपः धृतः \*॥७॥

1. कला-७२ । इति प्रतिपाद्ये टि० । 2. गम्भीर० हीमु० । 3. बडवार्चिषो मिषात् हीमु० ।

- हीसुं० १समाप्य २कामान्मरुतां३ ४स्वदारुतां५ निरस्य तेषां च वगत्प्रसेदुषाम्६ ।  
मिषादमुष्ये७प्सितदित्सया८ विशां९ मरुत्तरुः क्षोणिमिवावतीर्णवान् ॥८॥
- ( १ ) सम्पूर्णीकृत्य । ( २ ) मनोरथान् । ( ३ ) देवानाम् । ( ४ ) निजकाष्ठत्वम् । ( ५ )  
अपाकृत्य । ( ६ ) प्रसन्नीभूतानाम् । ( ७ ) नराणां कामितानां दातुमिच्छ्या कुंरास्तपेण । ( ८ )  
कल्पद्रुमः ॥८॥
- हील० देवानामभिलाषान्पूरयित्वा । पुनस्तेषां देवानां वगत्काष्ठत्वमपास्य । विशां नरणामीहित दातुमिच्छ्या  
एतदिभ्यमिषात्किं कल्पतरुरागतः ★ ॥८॥
- हीसुं० १अतिस्मरै१ स्त ] त्तनुकामनीयकैस्सहाभ्यसूयां२ दधतौ३ निजश्रियाम् ।  
३अनौचितीक्रुद्धजगत्कृतार्कजावकारिषातां४ वडवासुताविव ॥९॥
- ( १ ) अतिक्रान्तः स्मरो यैः स्मरपराभविष्णुभिः कुंरारागीरस्य कमनीयताभिः । “कामनीयकमधः  
कृतकाम” मिति नैषधे । ( २ ) ईर्ष्याम् । ( ३ ) योग्यत्वाभावेन कुपितेन विधिना । ( ४ ) अश्वौ  
कृतौ शब्दच्छलादिति, तत्त्वतस्तु अश्विनीसुतौ ॥९॥
- हील० अतिक्रान्तः स्मरो यैस्ताहृशैस्तस्य शरीरसौन्दर्यैः सहेष्या दधतौ प्रति अनौचित्या क्रुद्धेन धात्रार्कजौ  
हयासुतावश्वौ कृतौ ॥९॥
- हीसुं० मिथः परिस्पर्द्धितया१ वदान्यतागुणैर्विजित्य व्यवहारिणामुना ।  
इमार( अ )रक्ष्यन्ते२ सुधाशधेनवः३ स्वगोधनस्योपधिनेव धामनि ॥१०॥
- ( १ ) दानशीलत्वगुणैः । ( २ ) कामगव्यः । ( ३ ) निजगोकुलकपटेन ॥१०॥
- हील० मिथः० । अमुना व्यवहारिणा स्वगोकुलमिषेण धामनि गृहे सुरधेनवः रक्षिताः । शेषं सुगमम् ॥१०॥
- हीसुं० १सुपात्रसस्नेहगुणाग्न्यवृत्तिभृत्तमःप्रतीपः२३ स्वकुलप्रकाशकृत् ।  
प्रदीपदेश्योऽपि परं नॄ४धूमभावुक्तलं नॄ५चाध्यामलयत्कदापि यः ॥११॥
- ( १ ) शोभनानि पात्राणि चतुर्विधसंघो यस्य । पक्षे-अमत्रं शरावकं प्रीतिस्तैलं च  
औदार्यादिगुणैर्मुख्यां वृत्तिं बिभर्त्तीति । ( २ ) अज्ञानध्वान्तयोः शत्रुः । ( ३ ) स्वस्य कुले-गोत्रे  
गृहे च प्रकाशकर्ता । ( ४ ) कोपः । ( ५ ) मलिनीचकार न ॥११॥
- हील० सु० । सुशोभनानि पात्राणि यस्य, स्नेहेन सहितः । पुनर्गुणैरैदार्यादिभिर्मुख्यां आजीविकां बिभर्त्ति  
तादृशः । पुनस्तमःशत्रुम् । स्वस्य कुलस्य-वंशस्य गृहस्य वा प्रकाशकः । अत एव प्रदीपसमानोऽपि  
परं धूमं कोपं भजति तादृशो न । पुनर्यः कुलं वंशं गृहं कदापि नाध्यामलयत् न मलिनीचकार ।

1. विशामिवावतीर्णवान् हीमु० ।

प्रदीपस्तु धूमभाक् कुलं चाध्यामलयति । “कुलं कुल्यगणे गेहे देहे जनपदेऽन्वये” इत्यनेकार्थः ॥

हीसुं० १धुनीधवं येन गभीरनिःस्वेनैर्विजित्य मुक्तामणिविद्वमावली॑ ।

ततः समग्रा जगृहे तदाद्यसौ बभूव किं निःस्थित्य तया ४जडाशयाः ॥१२॥

( १ ) समुद्रम् । ( २ ) गम्भीरध्वनिभिः । ( ३ ) दरिद्रत्वेन । ( ४ ) जडः ॥१२॥

हील० धुनी० । येन व्यवहारिणा गम्भीरशब्दैर्नदीपतिं जित्वा ततः समुद्रामुक्तादिगृहीतम् । उत्प्रेक्ष्यते ।

तदादि तद्विनमारभ्य निःस्वतया दरिद्रत्वेन आशयो यस्य । अथ किं करिष्यते, क्व गमिष्यते, क्व पूत्करिष्यते । डलयोरैक्यादियं घटना ॥१२॥

हीसुं० ५व्यमोचि नामुष्य कदाचिदन्तिकं रथाङ्गपाणेरिव ३पद्मसद्यना ।

४गुणवज्जेनेव ५नियन्त्र्य मुक्तया ६वितीर्णवाचेव ७यद्वच्छयाथ वा ॥१३॥

२इति कुंरावर्णनम् ॥

( १ ) मुक्तम् । ( २ ) विष्णोरिव । ( ३ ) लक्ष्म्या । ( ४ ) औदार्यादयो रज्जवश्च ( ५ ) बध्वा ।

( ६ ) दत्तवाग्बन्धयेव ( ७ ) स्वेच्छया ॥१३

हील० व्य० । चक्रपाणेरिवास्य समीपं पद्मवासिन्या लक्ष्म्या न मुक्तम् । उत्प्रेक्ष्यते । स्वगुणेन निबद्धयाथवा स्वैरं दत्तवाचया इव ॥१३॥

हीसुं० ३मनः १समुत्कण्ठयतस्तनूमतां॒ पयःप्लवं ३शैवलिनीपतेरिव ।

अमुष्य नाथी सुमुखी॑ ४बभूवुषी॑ ५कुमुद्वतीव॑ ६द्विजचक्रवर्त्तिनः ॥१४॥

( १ ) उत्सुकं कुर्वतः । उत्प्राबल्येन कण्ठं तटं नयतः । ( २ ) जनानाम् । ( ३ ) समुद्रस्य वारिपूरम् । ( ४ ) जातां । ( ५ ) कैरविणी । ( ६ ) चन्द्रस्य ॥१४॥

हील० मनः । शरीरिणां चित्तमुत्कण्ठयतोऽस्य नाथी पत्री बभूवुषी जाता । यथा नदीपतेष्य(ः प)यःपूरं कण्ठादूर्ध्वं नयतो द्विजराजस्य कुमुदिनी पत्री भवति ॥१४॥

हीसुं० ८चलेति विश्वे॑ ९वचनीयताश्रुतेः॑ प्रियेण॑ ३बाणद्विषता॑ ४तिरस्कृता॑ ।

५उदीतदुःखादिदमात्मनां॑ ६परं जनुः॑ प्रपेदे किमु॑ ७पद्ममन्दिरा ॥१५॥

( १ ) इयं चपला, अस्थिरा, न कस्यापि गृहे स्थिरीभवतीति । ( २ ) अपवादश्रवणात् ( ३ ) कृष्णेन । ( ४ ) धिक्कारिता । ( ५ ) उत्पन्नदुःखात् । “उदीतमातङ्कितवानशङ्किते” ति नैषधे ( ६ ) नाथीस्वरूपेण । ( ७ ) लक्ष्म्याः( लक्ष्मीः ) ॥१५॥

1. वलिः हीमु० । 2. इति कुंरामाहः हील० । 3. हीरमता ‘नाथी’ वर्णनम् इति प्रतिपाद्ये टिं । 4. जनुः परंप्रपेऽ हीमु०

- हील० चले० । नाथी भातीति सम्बन्धः । उत्प्रेक्ष्यते । इयमस्थिरेत्यपवादश्रवणात् । प्रियेण कृष्णेन  
तिरस्कृता सती उत्पन्नदुःखादस्याः शरीरेण किं लक्ष्मीरन्यजन्म प्रपेदे-प्रपन्ना \*॥१५॥
- हीसुं० <sup>१</sup>ततं वचो <sup>२</sup>यस्य <sup>३</sup>घनं <sup>४</sup>पदाङ्गुदध्वनिश्च <sup>५</sup>काञ्च्या: <sup>६</sup>सुषिरं <sup>७</sup>पुनः स्वनः ।  
तया बभे <sup>८</sup>जङ्गमरङ्गशालया किमत्र शृङ्गारनटस्य नृत्यतः ॥१६॥  
( १ ) ततं वीणाप्रभृतिकम् । ( २ ) तालप्रभृतिकम् । ( ३ ) नूपुर[र]वः । ( ४ ) मेखलायाः ।  
( ५ ) वंशादिकं सुषिरम् । ( ६ ) चलन्तर्तनस्थानम् ॥१६॥
- हील० ततं० । तया बभे । उत्प्रेक्ष्यते । शृङ्गारनटस्य जङ्गमया चलन्त्या रङ्गशालया यत्र वीणाप्रभृतिकं ततं  
वचनम् । पुनर्यत्र घनं तालादिकम् । पदाङ्गुदानां नूपुराणां ध्वनिः । काञ्च्या रवः । सुषिरं वंशादिकं  
भाति ॥१६॥
- हीसुं० <sup>१</sup>जगत्त्रयीजन्मजुषां मृगीदृशां विजित्य राजीर्निजजित्वरश्रिया<sup>२</sup> ।  
अधारि किं मूर्द्धनि <sup>३</sup>पद्मचक्षुषा <sup>४</sup>जयाङ्गुबालव्यजनं <sup>५</sup>कचच्छटा ॥१७॥  
( १ ) त्रैलोक्योद्भूतानां । ( २ ) जयनशीलशोभया । ( ३ ) नाथीदेव्या । ( ४ ) विज[य]सूचकं  
चामरम् । ( ५ ) केशपाशः । छटाशब्दः समूहवाची “तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटा” इति नैषधे  
॥१७॥
- हील० जग० । त्रिजगति उत्पन्नानां खीणां श्रेणीर्निजस्यात्मनो जित्वर्या श्रिया कृत्वा विजित्वा(त्य) । अनया  
केशपाशः जयसूचकं बालव्यजनं चामरं धृतम् । छटाशब्दः श्रेणीवाचकः । “तटान्तविश्रान्त-  
तुरङ्गमच्छटा”इति नैषधेऽपि ॥१७॥
- हीसुं० विधुं <sup>१</sup>द्विधाकृत्य विधिर्व्यधत्त[य]ङ्गलाटमद्देन<sup>२</sup> शिवे न्यधात्परम् ।  
न <sup>३</sup>चेन्मृगाङ्गाङ्गार्द्धधरः कथं हरः <sup>४</sup>किमर्धचन्द्रोपर्गमिर्तिं<sup>५</sup> च तद्वहेत ॥१८॥  
( १ ) द्वौ भागौ । ( २ ) भालम् । ( ३ ) अर्द्धचन्द्रधरः । “ लब्धार्द्धचन्द्र ईश” इति  
चम्पूकथायाम् । ( ४ ) अर्द्धचन्द्रसाम्यम् ॥१८॥
- हील० विधुं० । विधाता चन्द्रं द्विधा कृत्वाद्देन यस्या भालं चक्रे । अन्यदर्ढं शिवे । उपलक्षणाच्छिवशिरसि  
स्थापयामास । एवं तस्मातदा लब्धार्द्धचन्द्रो हरः कथं तङ्गलाटं अर्द्धचन्द्रोपमानं अष्टमीचन्द्रोपमानं,  
कथं-कया रीत्या, वहेद्वरेत् ॥१८॥

1. यत्र हीमु० । 2. स्वनः पुनः हीमु० । 3. इति नाथी हील० । 4. अथ नाथीसर्वाङ्गवर्णनावसरः हील० । 5. मितं  
च हीमु० ।

- हीसुं० मृगीद्वशो ३हेलितकेलतीश्रियो ललाटपट्टे ४कुरलेन निर्बधे ।  
स्मितारविन्दस्य धियेव तस्थुषा यदानने पौष्ण॑पिपासयाऽलिना ॥१९॥  
( १ ) अवगणितरतिशोभाया: “केलतीमदनयोरुपाश्रये” इति नैषधे । ( २ ) भ्रमरालकेन  
भ्रमराकारेणालकनिकरेण । ( ३ ) मकरद्वपानस्पृह्या ॥१९॥
- हील० मृगी० हेलितावगणिता केलत्याः कन्दर्पपत्या रत्याः श्रीः शोभा यया । तादृश्यास्तत्याः कुरलेन  
भ्रमरालकेन निर्बधे शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । यदानने पौष्णं मरन्दं पातुमिच्छ्या तस्थुषा  
विकसितकमलबुद्ध्या स्थितेन भ्रमरेण ॥१९॥
- हीसुं० १४अमूदृशाम्भोजदृशा स्म भूयते न ५जातुचिद्यौवत॒निर्मितौ मम ।  
“इतीव रेखेय॑मिदंमुखे ६मषेर्मिषादभ्रुवोर्नाभिभुवा व्यथीयत ॥२०॥  
( १ ) ईदृशाया । ( २ ) स्त्रिया । स्त्रिया [ ? ] ( ३ ) कदाचिदपि । ( ४ ) युवतीसमूहनिर्माणे ।  
( ५ ) इति हेतोः । ( ६ ) अस्या वदने । ( ७ ) भ्रुवोः । ( ८ ) कपटेन । मषे रेखा नाभिभुवा  
विहिता “इदं यशासि द्विषतः सुधामुच” इति नैषधे ॥२०॥
- हील० अमू० अस्या मुखे भ्रुवोर्दम्भाद्वात्रा । इर्य मषे: कञ्जलस्य रेखा विहिता । इतीति किम् ?। मम  
युवतीनिकरनिर्माणे एतत्सदृशया पद्मनेत्रया जातुचित्कदाचिदपि न जातम् ॥२०॥
- हीसुं० १५स्वकामिनी कैरविणी तनूभवे ७विरञ्जिना लो[च]नताम॑वायिते ।  
विधातुमङ्गे किमु लोलके( कै)रवे ८यदास्यभावः ९शरदिन्दुना १०दधे ॥२१॥  
( १ ) स्वप्रियायाः कुमुद्वत्याः शरीरादुत्पन्ने कैरविणीपतिश्चन्दः । ( २ ) धात्रा । ( ३ )  
नाथीनयनीकृते । ( ४ ) नाथीवदनभावः । ( ५ ) शारदशशिना । शारदि कमलकुमुदानामुद्धवात्  
शरच्चन्द्रेणेति सार्थकविशेषणम् । ( ६ ) धृतः ॥२१॥
- हील० स्वपत्न्याः कुमुद्वत्याः अङ्गजाते । धात्रास्या नेत्रभावं प्रापिते । लोलकैरवे प्रति किमूत्सङ्गे कर्तुम् ।  
शरच्चन्द्रे[ण] यन्मुखत्वं धृतम् ॥२१॥
- हीसुं० १६विभाति यदभ्र॑युगभासिनासिका विजित्य विश्वत्रितयं १७मनोभुवा ।  
१८यदङ्गरू॑पपूरपयोधिसन्निधौ कृतो १९यशस्तम्भ इव २०ध्वजाङ्कितः ॥२२॥  
( १ ) उपरि पार्श्वद्वयविलसद्बूयुगलशोभनशीला नासिका । ( २ ) स्मरेण । ( ३ )  
नाथीशरीरसुचिनिचयसमुद्रसमीपे । ( ४ ) कीर्तिस्तम्भ इव । ( ५ ) ध्वजकलितः ॥२२॥
- हील० विभा० यस्या भ्रुवोयुगेन भासते इत्येवंशीला नासिका भाति । उत्प्रेक्ष्यते । मनोजेन जगज्जित्वा ।

1. वदनवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टिं० । 2. नेत्रनासीकावर्णन इति प्रतिपार्श्वे टिं० । 3. ०रुब्युङ्ग० हीसु० ।

यस्या अङ्गस्य रुचां कान्तीनां पुञ्ज एव जलधिस्तन्निकटे पताकाच्छ्रितः कीर्तिस्तम्भः कृतः ॥★२२॥

हीसुं० १वि॑डम्बिताखण्डमृगाङ्कमण्डले कपोलपाली स्फुरतः तदानने ।

२मणीमये ३दर्पणिके ४यदोकसोरिमे रतिप्रीतिमृगीदृशोरिव ॥२३॥

( १ ) स्वश्रिया अनुकृतं पूर्णं चन्द्रबिम्बं याभ्याम् । ( २ ) रत्ननिर्मिते । ( ३ ) आदर्शिके "यन्मतौ विमलदर्पणिकाया" मिति नैषधे । ( ४ ) नाथीदेव्येव गृहं ययोः ॥२३॥

हील० विड०। विडम्बितं अनुकृतं वा सम्पूर्णचन्द्रमण्डलं याभ्यां तादृशे गल्लरथले तस्या मुखे लसतः । उत्प्रेक्ष्यते । या नाथी एवौको गृहं ययोस्तादृश्योः कामकान्तयोः इमे दृग्लक्ष्ये रत्नरचिते आदर्शिके इव ॥२३॥

हीसुं० १किमिच्छता २पाशयितुं ३जगत्रयीयुवव्रजान्वा४गुरिकेन( ण ) ५रङ्कुवत् ।

स्मरेण ६यादष्प( :प ) तिपाशजित्वरी दधे ७द्विपाशी सुदृशः श्रुतिद्वयी ॥२४॥

( १ ) पाशपतितान् कर्तुम् । ( २ ) त्रैलोक्यतरुणगणान् । ( ३ ) जालिकेन । ( ४ ) मृगानिव ।

( ५ ) वरुणपाशस्य जयनशीला । ( ६ ) पाशद्वयम् ॥२४॥

हील० किमि० । सुनयनायाः श्रुतिद्वयी भाति । उत्प्रेक्ष्यते । जगत्तरुणव्रजान्पाशयितुं कामेन यादःपतिपाशवरुणपा[श]जैत्री । द्वयोः पाशयोः समाहारे, द्विपाशी धृता ॥२४॥

हीसुं० ३१वियोगवत्योषधि४योषया ५यदाननीभवत्कान्तसितद्युतिं प्रति ।

स्थितस्तृदङ्के प्रहितस्तृनूजवत्४प्रवाल ५आह्रातुमिवाधरोपधे: ॥२५॥

( १ ) नाथीदेव्या: विरहिण्या औषधिरेव कान्ता तया । ( २ ) नाथीवदनरुपजातं स्ववलभं चन्द्रम् । ( ३ ) वदनचन्द्रोत्सङ्के । ( ४ ) पुत्र इव । ( ५ ) पल्लवः प्रकृष्टबालश्च बवयोरैक्यात् । ( ६ ) आकारयितुम् ॥२५॥

हील० वियो० । वियोगो विरहः । वीनां भुङ्गयादीनां योगस्सम्बन्धो यस्यास्तादूशी औषधिरेव योषा स्त्री तया । यदाननी भवत्तं नाथीवक्रं सम्पद्यमानं स्वभर्तारं चन्द्रं प्रति आकारयितुं प्रेषितस्तनूजवत्पुत्र इव । प्रवालः प्रकृष्टे दक्षो बालः-शिशुः पल्लवश्च । उत्प्रेक्ष्यते । ओष्ठमिषाच्चन्द्रोत्सङ्के स्थित इव बालः-सुतः पितुरुत्सङ्के तिष्ठतीति स्थितिः ॥२५॥

हीसुं० नि॑पातुकेन द्विज॒कान्तिमिश्रितस्मितेन यस्या ३रदनच्छदे बभ्ये ।

जलेन ४वातूलतरङ्गितात्मना ५सुधापयोधेरिव हेम॑कन्द॑लः ॥२६॥

( १ ) पतनशीलेन । ( २ ) दन्तद्युतिमिलित । ( ३ ) अधरे । ( ४ ) वायुसमुहेन कल्पेलित

1. कपोलस्थलवर्णन इति प्रतिपाश्चे टिं० । 2. मस्तककेसवर्णन इति प्रतिपाश्चे टिं० । 3. होठवर्णन इति प्रतिपाश्चे टिं० ।

4. ऊवत्यौ० हीमु० । 5. ऊदले० हीमु० ।

स्वभावेन । (५) क्षीरसमुद्रस्य । (६) विद्वुमः ॥२६॥

हील० निं० । यस्या दन्तवस्त्रे पतनशीलेन दन्तकान्तिमिश्रितेनेषद्धसितेन बभे । उत्प्रेक्ष्यते । क्षीरसमुद्रस्य प्रवाले निपातुकेन पुनर्वातत्रजेन तरङ्गयुक्तीकृतं स्वरूपं यस्य तादृशेन जलेन शोभितम् ॥२६॥

हीसुं० ३स्वकान्तवक्त्रामृतकान्तिदर्शनात् ३हृदन्तरुद्वेलितरागसागरात् ।  
अनिरी(रि)त्वरी विद्वुमकन्दलीव<sup>२</sup> यद्विलासवत्या ४दशनच्छदो बभौ ॥२७॥

(१) निं० कुंरा भिधवल्भवदनचन्द्रवीक्षणात् । (२) मनोमध्ये वेलामतिक्रान्तादनुराग-समुद्रात् । (३) निर्गमनशीला । (४) नाथीदेव्याः । (५) अधरे ॥२७॥

हील० स्वका० । यस्या विप्रमवत्या ओष्ठे बभौ । उत्प्रेक्ष्यते । स्वभर्तुर्यो मुखचन्द्रस्तस्य दर्शनात् मनोमध्ये वेलामतिक्रान्त उद्वेलः उद्वेलत्वं सञ्चातमस्मिन्स तस्मादुद्वेलिताद् रागसमुद्रानिर्गमनशीला प्रवाललतेव ॥२७॥

हीसुं० ३द्विजाधिपत्यं मुख एव ३मुख्यतो मृगीदूशो<sup>३</sup> यो न<sup>३</sup> कुमुद्वतीपतौ ।  
४द्विजैरमीभिर्यदसौ दिवानिशं निषेवॄणागोचरतांॄ स्म नीयते ॥२८॥  
(१) द्विजानां राजता । (२) प्राधान्यतः । (३) न चन्द्रे । (४) दशनैः । (५) सेव्यते ॥२८॥

हील० द्विजा० । अस्या मुखे द्विजानामाधिपत्यं न चन्द्रे । मुख शब्दः पुनपुंसके । यस्मादसौ मुखः दन्तैः सेवाया गोचरं प्रापितः ॥★२८॥

हीसुं० ५१यदाननान्तर्वसतेः सुधारसादिवोऽद्रृतः पाटल एष कन्दलः ।  
विलासदोलेव निखेलितुं ४गिरोऽथवा ३मृगाक्षीरसना स्म ६भासते ॥२९॥  
(१) यद्वक्त्रमध्ये । (२) प्ररूढः । (३) रक्तः । (४) सरस्वत्या । (५) नाथीजिह्वा ॥२९॥

हील० यदा० । तस्या जिह्वा शोभते स्म । उत्प्रेक्ष्यते । यदाननमध्ये वसितात्सुधारसा-प्ररूढो रक्त एषोऽङ्गुः वायवा सरस्वत्या: प्रेष्ठेव ॥★२९॥

हीसुं० ६१यदीयवाचं विधिना ७विधित्सुना ३सुधामुपात्तामधि४गत्य४ ५निस्तुषाम् ।  
६२सुधाशना ७अध्वरभोजिनस्तदादितो४ बभूवस्तद४भावतः किमु ॥३०॥  
(१) नाथीवाणी । (२) कर्तुकामेन । (३) गृहीताम् । (४) ज्ञात्वा । (५) समग्राम् । (६) देवाः । (७) यज्ञभुजः । (८) तद्विनादारभ्यः । (९) सुधाया अभावात् ॥३०॥

हील० यदी० । यद्वाचं विधातुमिच्छुना धात्रा सुधां समग्रां गृहीतां ज्ञात्वा देवा यज्ञांशभोज्यकारकाः किं तत्प्रभृति जाता ॥३०॥

1. प्रवाल इति प्रतिपार्श्वे ठि० । 2. च हीमु० । 3. शोऽस्या न० हीमु० । 4. वणाया विषयं हीमु० । 5. जिह्वावर्णन इति प्रतिपार्श्वे ठि० । 6. शोभते हीमु० । 7. नाथीवाणीवर्णन इति प्रतिपार्श्वे ठि० । 8. गम्य हीमु० ।

- हीसुं० १<sup>०</sup>कुशेशयादर्शसुधांशुजित्वरं विधाय वेधा ३इदमीयमाननम् ।  
इदं दृशा मा कुदृशां प्रदुष्यतादितीव चक्रे भचिबुकेन ४दन्तुरम् ॥३१॥  
( १ ) कमल-दर्पण-चन्द्रजयनशीलम् । ( २ ) नाथीसम्बन्धिमुखम् । ( ३ ) क्षुद्रदृष्टीनां दृष्ट्या  
मा दुष्यतात्, दृष्टिदोषो मा स्तादित्यर्थः । ( ४ ) विषमोन्नतम् ॥३१॥
- हील० कु० । कमलदर्पणचन्द्रजैत्रं मुखं निष्पाद्य दुर्जनानां दशा मा विकृतिं गच्छतादिति चिबुकेन  
विषमोन्नतं चक्रे ॥३१॥
- हीसुं० विजित्य ५कान्त्या जगृहे क्रुधा यदाननेन लक्ष्मीः ६क्षणदापतेस्तथा ।  
हृदस्फुटच्चेन्न कुतस्ततस्सुधा निरो( रि)त्वरि ७क्षुद्रतदङ्करन्ध्रतः ॥३२॥  
( १ ) शोभया । ( २ ) चन्द्रस्य । ( ३ ) लघुचन्द्रवक्षछिदतः लाञ्छनरूपं वा छिदम् ॥३२॥
- हील० विजि० । यस्या मुखेन निशापतेश्चन्द्रस्य श्रीस्तथा गृहीता यथा तस्य हृदयं स्फुटितम् । इति चेन्न  
तर्हि तस्य क्षुद्रलघुकलङ्करन्ध्रात् ततश्चन्द्रात्सुधा कुतो निर्गच्छति ॥३२॥
- हीसुं० समं यदास्येन ८मृथे ९महोजसा० १०निरोजसा० ११भाजि किमेण० १२लक्ष्मणा ।  
यतोऽमुनाऽद्यापि०, तदङ्कबोधिका० १३व्यमोचि ना० १४भ्रमणी कदाचन ॥३३॥  
( १ ) सङ्ग्रामे । ( २ ) अतिबलवता । ( ३ ) निर्बलेन । ( ४ ) पलायितम् । ( ५ ) चन्द्रेण ।  
( ६ ) तस्य भङ्गस्य चिह्नापयित्री । ( ७ ) मुक्ता । ( ८ ) गगनपर्यटनम् ॥३३॥
- हील० समं० । महाबलेन यन्मुखेन सह मृथे रणे निर्बलेन मृगाङ्केन भग्नम् । यत अमुना चन्द्रेण तस्य  
भङ्गस्य चिह्नापयित्री अप्रभ्रमणी अद्यापि न मुक्ता ॥३३॥
- हीसुं० १५त्रिनेत्रनेत्रानलभस्मितात्मभूप्रभोर्जग० १६त्रिर्जयवादनोचितः ।  
१७जगत्कृतादाय० १८यदङ्गनिर्मितौ किमेष० १९कम्बुर्गलकन्दलीकृतः ॥३४॥  
( १ ) ईश्वरभाललोचनवह्निना भस्मीभूतमकरथ्वजराजस्य । ( २ ) त्रिभुवनविजयं कृत्वा  
वादनयोग्यः । ( ३ ) विधिना । ( ४ ) नाथीशरीरनिर्माणे । ( ५ ) स्मरशङ्कः कण्ठपीठः कृतः  
॥३४॥
- हील० त्रिनेत्र० । ईश्वरनेत्राग्निदग्धकामनृपस्य जगज्जये वादनार्हः एषः शङ्कः । अस्यास्तनुनिष्पादने कण्ठपीठां  
धात्रा प्रापितष्किः किमु ॥३४॥
- हीसुं० २०स्फुर० २१त्रभापूगतरङ्गचङ्गतां० २२नितम्बलीलापुलिनं च बिभ्रती ।  
धुनीव० २३रोधौ[ धो ]विहसन्मृणालिकां भुजाद्वयीं या बिभ० २४राम्बभूवुषी ॥३५॥  
( १ ) दीप्यमानकान्तिप्रतानकल्पोलच्चारुताम् । ( २ ) नितम्ब एव क्रीडाकरणार्थं  
जलोज्जिततीरम् । ( ३ ) नदीतटे विकसन्त्यौ मृणालिके यस्याः । ( ४ ) दधौ ॥३५॥

1. गलस्थलवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. त्राजुर्याच्छुदांच्छे (?) इति प्रतिपार्श्वे टि० । 3. अनन्यलावण्यतर० हीम० ।

- हील० अनन्य० । या बाहुयुगलीं बिभत्ति स्म । यथा धुनी नदी उम्निषन्तीं बिसलतां धत्ते । या किं कुर्वती ? । असाधारणलावण्यतरङ्गाणां चारुतां पुनर्नितम्बावेव लीलातटं बिभ्रती ॥★३५॥
- हीसुं० **‘सकुङ्कुमैतद्वदनेन॑ निर्जितं रजिगीषया तच्छलदर्शनोत्सुकम् ।**  
किमागतं कोकनदं तदन्तिके चकास्ति तस्या नवपाणिपल्लवः ॥३६॥
- ( १ ) घुसृणयुक्तम् । ( २ ) नाथीवक्त्रपराभूतम् । “अयमुदयति घुसृणारुणतरुणीवदनोपमश्नन्दः”  
इति विदग्धमुखमण्डने । ( ३ ) जेतुमिच्छया । ( ४ ) नाथीमुखच्छदान्वेषणे उत्कणितम् ।  
( ५ ) रक्तकमलम् ॥३६॥
- हील० तस्या नवनं नवः स्तुतिः । तद्युक्तो यः करपल्लवश्चकास्ति । उत्प्रेक्षयते । सकुङ्कुमेन निर्जितं सत् जेतुमिच्छया मुखछलालोकनोत्कं मुखपार्श्वे आगतं रक्तोत्पलम् ॥३६॥
- हीसुं० **‘पृथक्यृथवपञ्चमुखद्विषन्मुखान्निहन्तुकामेन रुषा मनोभुवा ।**  
शराश्रये र्यत्करनाम्नि कल्पिता अमी शराः पञ्च किमङ्गुलीमयाः ॥३७॥
- ( १ ) ईश्वर एवारिस्तस्य पञ्चापि मुखानि पृथक् पृथक्छेत्तुकामेन । । ( २ ) तूणीरे । ( ३ ) नाथीहस्ताभिधाने । ( ४ ) निर्मिताः । ( ५ ) नाथीदेव्याः पञ्चाङ्गुलिरूपाः ॥३७॥
- हील० पृथ० । क्रुधा भिन्नानि भिन्नानि कृत्वा शंभुमुखान् छेतुमिच्छता कामेन यस्या: कर एव नाम यस्य तादृशे तूणीरे अङ्गुलीरूपाः किं एते बाणाः ॥३७॥
- हीसुं० **‘यदीयपृष्ठे कनकत्विषि रस्मितप्रसूनशून्येतरकुन्तलच्छटा ।**  
शिलातले र्खर्गिगिरेत्वि ग्रहाङ्गिताभ्रवीथी प्रतिबिम्बिता व्यभात् ॥३८॥
- ( १ ) तनोश्वरमे भागे वंशके इत्यर्थः । ( २ ) विकचल्कुसुमकलितकेशपाशः । ( ३ ) मेरोः ।  
( ४ ) शिलोत्सङ्गे । ( ५ ) तारकयुक्तं गगनस्थलम् । “स्वःसोपानपरंपरामिव वियद्वीथीमलङ्कुर्वते”  
इति चम्पूकथायाम् ॥३८॥
- हील० यदी० । यस्याः पृष्ठभागे विकसितपुष्पभूता केशश्रेणिर्भाति स्म । इवोत्प्रेक्षयते । मेरोः शिलातले ग्रहयुक्ता प्रतिबिम्बिता गगनपद्धतिरिव । किंभूते पृष्ठे शिले ? । कनकत्विषि कनकेन कनकत्वेन त्विषते दीव्यते इति काञ्चनत्विट् । तर्स्मिस्तादृशे ॥३८॥
- हीसुं० **‘परानवाप्यान्निजवारापत्तनामन्मदनावनीभुजः ।**  
जगद्विजेतुं चलितस्य हृत्सुमस्त्रजा पुरो वन्दनमालिकायितम् ॥३९॥
- ( १ ) अन्यनैः प्रासुमशक्यात्तस्याः सतीत्वेन आत्मनः कन्दर्पस्य वसनार्थं पत्तनात् । ( २ )  
मनोनामनगरात् । ( ३ ) वक्षःस्थलस्थायुक्तकुसुमहरेण । ( ४ ) मङ्गल्यमालेवाचरितम् ॥३९॥
- हील० परा० । परैर्वैरिभिष्काः का) मुकैर्वा नावापुं योग्यात्माथीचित्तनाम्नः जगजेतुं चलितस्य प्रस्थितस्य  
कामराजः पुरस्तात् हृदि पुष्पमालया मङ्गलाय जातम् । परानवाप्येति पदेन सतीत्वमुद्भाव्यते ॥३९॥

- हीसुं० १यदीयहृत्केलिनिकेतखेलिनं झङ्गाङ्गमाकारयितुं ३सुहृत्या ।  
२सितांशुनेव प्रहितोङ्गमण्डली विभाति यद्वक्षसि मौक्तिकावली ॥४०॥  
( १ ) नाथीहृदयं एव ऋडागृहे लीलायमानम् । ( २ ) स्मरम् । ( ३ ) मित्रत्वेन । ( ४ ) शशिना ।  
( ५ ) नक्षत्रश्रेणिः ॥४०॥
- हील० यदी० । यस्या हृदि हारलता भाति । उत्प्रेक्ष्यते । यदीयहृदेव ऋडानिकेतं तत्र खेलते इत्येवंशीलं  
कामं सुहृत्या आह्वयितुं प्रेषिता तारकश्रेणिरिव । झङ्गाङ्गं मकरध्वजमिति ॥४०॥
- हीसुं० १स्थाङ्गलीलां दधतौ २प्रभाष्मसि स्तनौ तदीयौ स्फुरतः सचूचुकौ ।  
३मरन्दलुभ्यदध्मराभिषङ्गिनौ( णौ ) ४सुवर्णपङ्केसुहकुइमलाविव ॥४१॥  
( १ ) चक्रवाकशोभाम् । ( २ ) शरीरसुविजले । ( ३ ) मकरन्दपानार्थं लोलुपीभवतां ध्रमरणां  
संयोगयोः । ( ४ ) कनककमलकोशौ ॥४१॥
- हील० प्रभानीरे चक्रवाकयोर्लीलां धारयन्तौ तदीयौ स्तनौ स्फुरतः । उत्प्रेक्ष्यते । मकरन्देषु लुभ्यतां  
लोलुपीभवतां ध्रमरणां सङ्गो ययोस्तादृशौ कनककमलकोशौ इव ॥४१॥
- हीसुं० १तनूलतागाधतरङ्गितप्रभाप्रतानपाथोधिपयस्तिर्षया ।  
२हरिन्मणीसेतुरिवात्मैजन्मना व्यधायि रोमावलिरेणचक्षुषः ॥४२॥  
( १ ) नाथीदेवीशरी( र )यष्टेः अतिशायिकस्त्रोलयुक्तं जातं यत्कान्तिकदम्बकं तदेव  
समुद्रस्तज्जलस्य तरीतुमिच्छ्या । ( २ ) परकतमणिमया पद्मा । ( ३ ) स्मरेण ॥४२॥
- हील० तनू० । मृगदृशः लोमा श्रेणी भाति । उत्प्रेक्ष्यते । स्मरेण नीलरत्ननिबद्धः सेतुर्विहितः । परं किमर्थं  
कामयष्टेरगाधं तरङ्गितं यत्कान्तिवितानं स एव समुद्रस्तस्य पथसां तरीतुमिच्छ्या ॥४२॥
- हीसुं० द्रवीभवद्वृरिसिताभ्रचन्दनप्रगल्भवाहीककुरङ्गनाभिभिः ।  
विलिप्य काचित्कुत्कात्पृथग्वलीः कदाचिदेतामिदमूचुषी सखी ॥४३॥  
त्वया स्वकीत्या सुमनस्तरङ्गिणी २वचोविलासेन पुनः ३सरस्वती ।  
४यमस्वसा ५कुन्तलभङ्गिभिर्जिता ६भजन्त्युपेत्य ७त्रिवलीच्छलादिव ॥४४॥युग्मम्॥  
( १ ) जलीभवन्त्यः बहुलं कर्पूरं यत्र तादृक् श्रीखण्डं तथा प्रकृष्टं यत्कुङ्गमं तथा कस्तूरिका-  
स्ताभिः । ( २ ) उदरे मांससङ्गेचलक्षणाः । ( ३ ) भाषितवती ॥४३॥  
( ४ ) गङ्गा । ( २ ) वाक्चातुर्येन( ण ) । ( ३ ) वाग्वादिनी । ( ४ ) यमुना । ( ५ ) केशरचनया ।  
( ६ ) गङ्गा-सरस्वती-यमुनाः सेवन्ते । ( ७ ) त्रिवलीकपटेन ॥४४॥
- हील० द्रवी० । द्रवीभवन् । भूरिः कर्पूरे यत्र तादृक्चन्दनं पुनर्मनोऽन् कुङ्गमं च कस्तूरिका च ताभिः  
कृत्वा । भिन्ना भिन्ना वली(विं)लिप्य सिताभ्रेण चन्दनेन प्रथमां, कुङ्गमेन द्वितीयां, कस्तूरिकया

तृतीयां लिप्त्वा सखीदमूचुषी ब्रुवास(णा) । हे सखि ! त्वया कीर्त्या गङ्गा, वाचा सरस्वती, केशरचनाभिर्यमी जिता एता त्रिवलीमिषादेत्य त्वां सेवते ॥४३-४४॥

**हीसुं०** निरीक्ष्य लक्ष्मीं निजभर्तुमातरं स्थितां सदाध्यास्य विकासि पङ्कजम् ।  
इवानुकर्तुं रतिरात्मनापि तां४ यदीयनाभीनलिने निषेदुषी ॥४५॥

(१) निजभर्तुः कामस्य जननीं तस्य श्रीनन्दनत्वात् । (२) स्मेरकमलम् । (३) स्वेन । (४) श्रियम् । (५) नाथीनाभिकमले । “नाभीमथैष श्लथवाससा नुतिः” नैषधे (६) स्थिताः ॥४५॥

**हील०** निरी० । रतिः कामपली यन्नाभिकमले निषेदुषी स्थितवती । किंकृत्वा ? । निजभर्तुः कामस्य जननीं विकसितपुष्पमाश्रित्य स्थितां दृष्ट्वा तां स्वेन सदृशीभवितुम् ॥\*४५॥

**हीसुं०** अगण्यलावण्यतरङ्गचङ्गिमानुषङ्गिशोचिःसुरसिन्धुसन्निधौ ।  
निखेलितुं किं पुलिनं स्मराभ्रमूप्रियस्य यस्या जघनं विधिव्यधात् ॥४६॥  
(१) प्रमातुमशक्याया यद्वपुःसुभगतायाः कलोलानां लावण्यलहरीणां रमणीयतायाः सङ्गोऽस्त्यस्य तादृक्षोचिरेव गङ्गा तस्याः समीपे । (२) क्रीडितुम् । (३) जलोज्जितं तीरम् । (४) मदनरूपैरावणस्य ॥४६॥

**हील०** अगा० । यस्या जघनं धाता चक्रे । उत्प्रेक्ष्यते । अगण्यं यल्लावण्यं तस्य तरङ्गाणां चारुता यत्र तादृक् । शोचिरेव सुखदी तस्या; पार्श्वे स्मर एवैरावणस्तस्य क्रीडितुं किं तटम् ॥४६॥

**हीसुं०** अजस्यवीर्यं मृडैमन्यहेतिभिर्विजित्वरीभिर्जगतोऽपि जानता ।  
स्मरेण धात्रा किमु कार्यते स्म यन्नितम्बचक्रं युवयोगिधैर्यजित् ॥४७॥  
(१) जेतुमशक्यपराक्रमम् । (२) ईश्वरम् । (३) अपरप्रहरणैः । (४) जयनशीलाभिः । (५) अवधारयता । (६) निर्मापितम् । (७) तस्णाश्च योगिनो वशीकृतात्मानश्च, अथ तरुणाः सन्तो योगिनस्तेषां धैर्यं ब्रह्मव्रतं जयति ध्वंसते इति न हि प्रायो वृद्धानां मदनाभिलाषः स्यात् ॥४७॥

**हील०** अन० । अन्यशस्त्रैर्जग्जयनशीलैरपि । ईश्वरं अजेयपराक्रमं जानता स्मरेण विश्वसृष्टिकृतां पार्श्वे यस्या नितम्बचक्रं कारितम् । यदि अन्यैर्जग्जेतृभिर्न जातं तर्हि चक्रेणापि किं भावि । अतश्चक्रं युवयोगिधैर्यजित् ॥४७॥

**हीसुं०** करीन्द्रहस्तात्कदलीप्रकाण्डतो निरस्य कार्कश्यमसारतां पुनः ।  
इमौ किमादाय परस्परोपमं यदूरुयुग्मं विधिना विनिर्ममे ॥४८॥  
(१) करिशुण्डादण्डात् । (२) रम्भास्तम्भाच्च । (३) अपाकृत्य । (४) कठिनताम् । (५) प्रकाण्डो मूलशाखानिर्गमनप्रदेशयोरन्तरालवर्तीं विभागस्तत्रासारतां निर्बीजत्वम् ।

( ६ ) अन्योन्यमेव साम्यं ययोः अन्यतदुपमेयपदार्थभावात् ॥४८॥

हील० करी० । भद्रगजशुण्डादण्डात्कार्कशं निरकृत्य । पुनः रम्भास्तम्भात् असारतामपास्य । पश्चादद्वौ गृहीत्वा यस्या ऊरुयुग्मं धात्रा निर्मितम् ॥४८॥

हीसुं० यदूरुम्भञ्जायुगयोर्विवृत्संतोष्यै( : प)रम्पराद्वैतंतया विरोधिनोः ।  
‘द्विराजताया भयतस्तंदन्तरानिवासिजानू किमलक्ष्यतां गतौ ॥४९॥

( १ ) वर्द्धितुमी( मि )च्छतोः । ( २ ) अन्योन्यासाधारणलक्ष्मीकत्वेन । ( ३ ) वैरभाजोः । ( ४ ) द्वयो राजोर्भावो द्विराजता । ( ५ ) ऊरुजञ्जायुगयोर्मध्ये निवसनशीलौ जानू । ( ६ ) अदृश्यताम् ॥४९॥

हील० यदूरु० । अन्योन्यं विरुद्धभावधारिणोः । पुनर्वर्द्धितुमिच्छतो यस्या ऊरुजञ्जायुगयोर्द्वैराज्यं तस्य भयतः । तयोर्जञ्जायुगयोर्मध्ये निवासिनौ जानू ऊरुपर्वणी किमदृश्यतां प्राप्तौ ॥★५०॥

हीसुं० ‘रतीशगेहेऽजनि यत्र जड्योर्गृहा’ श्रयस्थूणिकयोरिव द्वयम् ।  
‘यदीयगुल्फावपि गुप्ततां गतौ किमंहि॒शोचिः सलिले निमज्जनात् ॥५०॥

( १ ) नाथीतनुरुपे मदनमन्दिरे । ( २ ) भवनाधारस्तम्भयोः । ( ३ ) नाथीदेव्याश्वरणग्रन्थी ।  
( ४ ) पदक्षान्तिसलिले ॥५०॥

हील० रती० । यत्र देहे जड्योर्द्वयमजनि । उत्प्रेक्ष्यते । कामसद्वानि गृहस्याश्रयो यस्मिन् तादृशस्तम्भयोर्द्वयमिव । पुनर्यस्या गुल्फौ अदृश्यतां गतौ । उत्प्रेक्ष्यते । अङ्ग्रयोः कान्तिरेव सलिलं, तस्मिन्निमज्जनादेव ॥★५०॥

हीसुं० ‘पदारविन्दोन्नतताभिरात्मनः पराजितैः कुञ्चराजयानया ।  
‘अगोपि ‘मन्दाक्षविलक्षितात्मभिर्वैने वसद्विः कमऽठैः किमाननम् ॥५१॥

( १ ) क्रमकमलोन्नत्यैः । ( २ ) गजेन्द्रगमनया । ( ३ ) गुप्तीकृतम् । ( ४ ) लज्जा । ( ५ ) वनं जलं का [ ? ] कान्तारश्च । ( ६ ) कच्छपैः ॥५१॥

हील० पदा० । गजगमतया तया स्वस्य चरणकमलयोरुन्नतवेन जितैस्सद्विः । ह्रिया विमनीभूतस्वरूपैषु-  
( : पु)नवने पानीय तिष्ठद्विः । कच्छपैः मुखं गुप्तीकृतमिव ॥★५१॥

हीसुं० यदीयपादौ सरलाङ्गुली द्युंता करम्बितौ झांकृतिकारिनूपूरौ ।  
श्रियानुयातः४ कमले दलदले मरन्दनिःस्यन्दिनदत्सितच्छदे ॥५२॥

( १ ) कान्त्या । ( २ ) मिश्रितौ । ( ३ ) रणज्ञाणितिशब्दं कुर्व( रु )त इत्येवं शीले नूपुरे ययोः । ( ४ ) सदूशीभवतः । ( ५ ) विकसन्ति दलानि ययोः । ( ६ ) मकरन्दरसोऽस्त्यनयोस्तथा शब्दायमाना हंसा ययोः ॥५२॥

1. द्वैतविरोधिताजुषोः हीमु० । 2. गताविवाङ्गशो० हीमु० । 3. मठैरिवाननम् हीमु० ।

- हील० यदी० । सरलाङ्गुलीदीप्त्या व्यासौ । पुनर्ज्ञाकृतिकारिणी नूपेरे ययोस्तादृशौ । यस्या: पादौ कमलेऽनुकरुतः सदृशौ भवतः । कमले किंभूते ? । दलदले दलन्ति विजृम्भमाणानि पत्राणि ययोः । पुनः किंभूते ? । मरन्दं निःस्यन्दते-क्षरते इत्येवंशीले । नदन्तो वदन्तो हंसा ययोस्तौ ॥५२॥
- हीसु० <sup>१</sup>स्फुरत्प्र<sup>१</sup>भातैलकरम्बितान्तरे <sup>२</sup>यदंहिपात्रेऽगुलिवृत्तिः [ वर्त्ति ] वर्त्तिनः । नखाः प्रदीपा इव विस्फुरत्त्वषोऽपुष्टन्विभूषाम<sup>३</sup>भिभूततामसाः ॥५३॥  
( १ ) दीप्यमानकान्तितैलभृतमध्ये । ( २ ) नाथीचरणरूपशरावके । ( ३ ) अङ्गुलय एव दशास्तासु वर्त्तन्ते इत्येवंशीलाः । ( ४ ) भिन्नतमः समूहाः ॥५३॥
- हील० कान्तिवितानमेव तैलं, तेन व्यासमन्तरं यस्य तादृशे चरणपात्रेऽगुलीदशा वर्त्तिनः नखाः प्रदीपा इव शोभां पुष्टामकारुः ॥★५३॥
- हीसु० <sup>४</sup>व्यलीलसत्याऽटलिमा पदाम्बुजद्वयस्य <sup>५</sup>यस्याः सरसीजचक्षुषः । <sup>६</sup>स्वमार्द्वेनाभिभवं <sup>७</sup>विधित्सतः <sup>८</sup>प्रवालपुञ्जैरुप<sup>९</sup>दीकृतः किमु ॥५४॥  
( १ ) शुशुभे । ( २ ) रक्तत्वम् । ( ३ ) नाथीदेव्याः । ( ४ ) निजसुकुमालतया । ( ५ ) कर्तुमिच्छन्ति ( मिच्छतः ) । ( ६ ) पल्लवपटलैः । ( ७ ) ढौकितम् ॥५४॥
- हील० व्यली० । यस्या: कमललोचनायाश्वरणकमलद्वयस्य रक्तता विलसति स्म । किमुत्रेक्ष्यते । स्वमृदुतया पराभवं कुर्वतः चरणद्वयस्य किसलयौधैः पाटलिमा प्राभृतीकृतः ॥५४॥
- हीसु० असौ जयन्ती <sup>१</sup>जलजं <sup>२</sup>स्वपाणिना <sup>३</sup>रदैश्च <sup>४</sup>तारश्रियमात्मना <sup>५</sup>श्रियम्<sup>२</sup> । <sup>६</sup>मृगाङ्गमास्येन रुचाऽपि<sup>३</sup> चम्पकं स्मरस्य <sup>७</sup>हेतिष्क(ःकिमु) <sup>८</sup>विश्वजित्वरी ॥५५॥
- <sup>४</sup>इति नाथी ॥
- ( १ ) कमलम् । ( २ ) करेण ( ३ ) दन्तैः । ( ४ ) तारकशोभाम् । ( ५ ) लक्ष्मीम् । ( ६ ) चन्द्रम् । ( ७ ) शत्रम् । ( ८ ) जगज्जैत्रम् ॥५५॥
- हील० किमुत्रेक्ष्यते । असौ विश्वे जयनशीला स्मरस्य हेतिः शत्रम् । असौ किंकुर्वती ? । कमलं स्वकरेण जयन्ती । पुना रदैस्तारणां निर्मलमौक्तिकानां शोभां, पुनर्लक्ष्मी स्वस्वरूपेण मुखेन चन्द्रं कान्त्या चम्पकं जयन्ती ॥★५५॥
- हीसु० अथो मिथः<sup>१</sup> प्रीतिः<sup>२</sup>परीतदम्पती इमौ <sup>३</sup>कलाकेलिविलासशीलिनौ । <sup>४</sup>विलेसतुः केलि<sup>५</sup>सरस्सरिद्वनीगिरीन्द्रभूमीषु रतिस्मराविव ॥५६॥  
( १ ) परस्परम् । ( २ ) प्रेमकलितौ नाथीकुरुख्यौ । ( ३ ) कन्दर्पक्रीडाकारिणौ । ( ४ ) खेलत(ः)स्म । ( ५ ) क्रीडातडाक-नदी-कानन-शैल-क्षितिषु ॥५६॥
- हील० अथो० । कलाकेले: स्मरस्य विभ्रमं शीलतो भजन्त इत्येवंशीलौ । पुनः प्रमोदेन व्यासौ दम्पती
- 
1. प्रभाप्रथातैल० हीमु० । 2. रमाम् हीमु० । 3. च हीमु० । 4. इति नाथीसर्वाङ्गबर्णनम् हील०- ।

स्त्रीभर्तार्थे इमौ नाथीकूंगै क्रीडार्थं ये सरांसि सरितो वन्यः बनानि पर्वताश्व, तेषां भूमीषु स्थानकेषु  
विलेसतुर्विविधां क्रीडां केलतीकामाविव चक्रतुः ॥५६॥

हीसु० 'सकाकतुपैणमदद्रवाङ्कितोरसोः परिक्षालनतः कदापि तौ ।

'सुतामिवार्कस्य विहारवाहिनीं 'विनिर्मिमाते 'जलकेलिलालसौ ॥५७॥

( १ ) कृष्णागुरुमिश्रितकस्तूरिकापङ्कवितिस [ व्यास ? ] वक्षसोः । ( २ ) यमुनाम् । ( ३ )  
क्रीडानदीम् । ( ४ ) चक्राते । ( ५ ) सलिलखेलनलोलुपौ ॥५७॥

हील० सका० । कदापि कस्मिन्नपि समये सह कृष्णागुरुणा वर्तते । तादृशो यष्टः ( : क)स्तूरिकापङ्कस्तेन  
व्यासयोरुरसोर्धावनतः विलासनदीं यमुनोपमां कुर्वते । "विहारस्तु जिनालये लीलायां भ्रमे रस्कन्थे"  
इत्यनेकार्थः ॥५७॥

हीसु० 'कुमुत्सिता ३षट्पदपङ्कितकुन्तला ३स्मितोत्पलाक्षी ४कजकुड्यमलस्तनी ।

प्रियेव ४पाथःप्लवने ४सहंसका ४२तरङ्गहस्ता सरिदालिलिङ्गं तम् ॥५८॥

( १ ) कुमुदेव तद्वद्वा हसितं यस्याः । ( २ ) भृङ्गश्रेणिरेव तद्वच्च केशा यस्याः । ( ३ )  
विकचत्कुवलयमेव तद्वद्वा नयने यस्याः । ( ४ ) कमलस्य कोशावेव तद्वच्च कुचौ यस्याः ।  
( ५ ) जले केलिसमये । ( ६ ) सह नूपुरेण मरालेन वा वर्तते या । स्वार्थे 'क' प्रत्ययः । ( ७ )  
कल्पेला एव तद्वद्वा करौ यस्याः । ( ८ ) कुंराञ्जनम् ॥५८॥

हील० कुमु० । पाथःप्लवने जलकेलिसमये । नदीं प्रियेव तं आलिलिङ्गं । यथा पती स्वभर्तारमाशिलष्यति ।  
किंभूता नदी प्रिया च ?। कुमुदेव तद्वद्वा स्मितं यस्याः । पुनर्प्रमणां पङ्कलय एव तद्वद्वा कुन्तला  
यस्याः । स्मितकमलमेव तद्वदक्षिणी यस्याः । कमलमुकुलावेव तद्वत्स्तनौ यस्याः ।  
सहंसकैर्मरगलैर्नूपुराभ्यां च वर्तते सा । उभयतटस्थौ तरङ्गौ एव तद्वद्वा बाहू यस्याः ॥★५८॥

हीसु० विं४जृमिभजाम्बूनदपद्मनिष्पत्तपरागपिङ्गीकृतवारिशालिनि ।

समं करिण्या करिणेव पङ्कजाकरे उमुना॑क्रीडि ४कुरङ्गचक्षुषा ॥५९॥

( १ ) स्मेरसुवर्णकमलनिर्गलदजः पीतीकृतसलिलशोभा भासिते । ( २ ) सरसि । ( ३ )  
क्रीडितम् । ( ४ ) नाथीदेव्या समम् ॥५९॥

हील० विकसितसुवर्णरविन्देभ्यो निष्पत्तपरागपीतवारिणा शालिनि कमलाकरे । अनेन कुरङ्गाक्ष्या समं  
क्रीडितम् । यथा हस्तिन्या समं हस्तिना क्रीडयते ॥५९॥

हीसु० 'स्मितारविन्दोदयदिन्दुविभ्रमादिवाम्बु॒लीलासमये ३तयोर्मुखे ।

'विमुग्धसारङ्गचकोरशावका ३भजन्ति ४पौष्यामृतयोष्णिः ( : पि) पासया ॥६०॥

( १ ) विकचत्कमलस्य तथा उदयच्चन्दस्य च भ्रान्त्याः । ( २ ) जलक्रीडासमये । ( ३ )

१. सहंसिका हीमु० । २. तरङ्गबाहुः हीमु० । ३. मरन्दपीयूषपिपासयाभजन् हीमु० ।

नाथीकुंराख्ययोः । (४) अज्ञभ्रमरचकोरबालौ( ला: ) । (५) मकरन्दपीयूषयोः । (६) पातुमिच्छ्या ॥६०॥

हील० स्मिता० । जललीलासमये मकरन्दाणा(ना)ममृतानां च पातुमिच्छ्या । अचतुरा: सारङ्गाणां भृङ्गाणां चकोरणां च । “सारङ्गा हरिणे शैले कुञ्जे चातके खगे । शबले चिञ्चरिके चे”त्यनेकार्थः । पोतास्तयोर्मुखे प्रति सेवन्ते स्म । इवोत्प्रेक्ष्यते । विकसितं यत्कमलं उदयन् य इन्दुस्तयोर्भ्रमादिव ॥★६०॥

हीसुं० ‘प्रफुल्लकङ्केल्लिरसालमल्लिकाकदम्बजम्बूनिकुरम्बचुम्बिते ।

‘अलीव साकं ३सुदूशा स ४निष्कुटे कदापि रेमे ५श्रितसूनशीलनः ॥६१॥

( १ ) विनिद्राशोकः-सहकारो-विचकिलनामा पुष्पजातिविशेषः-नीपः-जम्बूः प्रसिद्धः श्यामफलः निकरकलिते । ( २ ) भृङ्गः । ( ३ ) नाथीदेव्या । ( ४ ) गृहारामे । ( ५ ) आश्रितः पुष्पावचयो येन सः ॥६१॥

हील० प्रफु० । प्रफुल्ला कुसुमिता ये किङ्केल्लयोऽशोकाः, सहकाराः, मल्लिका विचकिलाः, कदम्बाः, जम्बूः, श्यामफलास्तेषां वृन्देन चुम्बिते कलिते । एतादृशे निष्कुटे गृहारामे स्वस्त्रिया सह कस्मिन्नपि स रेमे क्रीडिति स्म । यथाली भ्रमरः सीमारामे रमते । किंभूतः स अली च ?। श्रितं सूनानां कुसुमानां सेवनं येन सः ॥६१॥

हीसुं० रसालसालस्यै तले ३विलासिना ४प्रणीय वीणां ५वर्णनानुवादिनीम् ।

अगीयत ६श्रोत्रसुधारसोपमं ७वचिन्मृगाक्ष्यां सह किंनरेन्द्रवत् ॥६२॥

( १ ) आप्रतरेधस्तात् । ( २ ) कुंरामहेभ्येन । ( ३ ) कृत्वा । ( ४ ) स्वशब्दमनुगच्छतीत्येवंशीला, आत्मध्वनितुल्यां विधाय । ( ५ ) कर्णयोरमृतरसनिषेकतुल्यम् । ( ६ ) नाथीदेव्या सार्वम् ॥६२॥

हील० रसा० । वर्णनं निजध्वनिमनुकरेतीत्येवंशीलां वीणां सज्जीकृत्य अमुना तथा सममगीयत गीतम् ॥६२॥

हीसुं० कदापि मन्दारै इव स्मितद्वये ३विलासदोलाम् ४वलम्ब्य लीलया ।

५न्यखेलि तेनोपवने ६मृगीदूशा ७समं स्वदेव्या ८द्युसदेव ९नन्दने ॥६३॥

( १ ) मन्दारनाम्नि सुरतरौ । ( २ ) क्रीडाप्रेइ-खोलनाम् । ( ३ ) आश्रित्य । ( ४ ) स्त्रिया । ( ५ ) सार्वम् । ( ६ ) देवेन । ( ७ ) मेरुवने स्वर्गवने वा ॥६३॥

हील० कदा० । मन्दारः कल्पवृक्षस्तस्तदृशे स्मिततरौ लीलया विलासार्थं प्रेष्ठोलनमाश्रित्य तेन स्वस्त्रिया समं न्यखेलि । उपवने क्रीडितम् । यथा द्युसदा देवेन स्वदेव्या समं दोलां बध्वा नन्दनवने क्रीडियते ॥६३॥

हीसुं० कदाचिदिभ्यः ॑कलधौतभूधेरे ॒चिखेल सार्व्वं ॓परमाणुमध्यया ।  
ॄमृगाङ्क्षूडामणिरद्विचक्रिण॑स्तनूजयेवा॒द्भुतभूतिभासुरः ॥६४॥

इति दम्पतीक्रीडा ॥

( १ ) क्रीडार्थं रजतशैले कैलाशे च । ( २ ) रमते स्म । ( ३ ) परमाणुरिकोदरं यस्याः ।  
कृशोदर्याः । "अध्यापयामः परमाणुमध्या" इति नैषधे । ( ४ ) ईश्वरः । "मृगाङ्क्षूडामणिवर्जनार्जित" मित्यपि नैषधे । ( ५ ) हिमाचलस्य पुत्र्या पार्वत्या । ( ६ ) आश्रव्यकरिणी  
भूतिः-लक्ष्मीर्भस्म च तया भासुरो दीप्यमानः ॥६४॥

हील० कदा० । इभ्यः कलधौतं रूप्यं तस्य वा श्वेतत्वेन तनुल्ये गिरौ परमाणुवन्मध्यमुदरं यस्यास्तादृश्या  
तया समं चिखेल, खेलति स्म । यथा चन्द्रचूडः अद्रीशस्य पुत्र्या समं रूप्याचले खेलति । किंभूतः  
स इभ्यः ? । अद्भुतया भूत्या-सम्पदा भस्मना वा भासुरः ॥६४॥

हील० → विनोदमेवं सृजतोरहर्निंशं तयोः स्मराङ्गैकवशंवदात्मनोः ।  
दिनानि दोगुन्दकदेवयोरिव प्रमोदभाजोरतिचक्रमुः क्रमात् ॥६५॥←

विनो० । अनिंशं क्रीडां कुर्वतोषु(ः पु)नः स्मरस्य आज्ञाया वशंवद आत्मा ययोस्तादृशयोः  
स्वयोर्नाथीकुरुव्यवहारिणोर्दिनानि दोगुन्दकदेवयोः इव अतिचक्रमुरतिक्रामन्ति स्म । किंभूतयोः ? ।  
प्रमोदभाजिनोः ॥६५॥

हीसुं० कदाचिदभोरुहिणीव निद्रया सुखं ॑प्रसुसा प्रहरेऽन्तिमे॒ निशः ।  
ॄतदङ्गना॑स्वप्नसरोऽवगाहिनं न्यभालयज्जभनिशुभ्यकुम्भिन्म् ॥६५॥

( १ ) पद्मिनी । ( २ ) शयाना । ( ३ ) रात्रेश्वरमे यामे । ( ४ ) कुरुसाहप्रिया नाथी । ( ५ ) स्वप्न  
एव सरोऽवगाहते आश्रयतीत्येवंशीलम् । ( ६ ) ऐरावणम् ॥६५॥

हील० कदा० । कस्मिन्नपि समये सा पद्मिनी रात्रौ यथा स्वप्निति तथा सुसा सती निशाचतुर्थे यामे तस्या  
नाथ्या: स्वप्न एव सरस्तमवगाहते इत्येवंशीलं जम्भस्य निशुभ्यनं हिंसनं यस्मात्स इन्द्रस्तस्य हस्तिनं  
पश्यति स्म ॥६६॥

हीसुं० श्रियेव निर्जित्य समग्रदिग्गजान्धृतैर्जयाङ्क्षैश्चर्मैर्विराजितम् ।  
प्रभुं॑ धराणामिव धात्वधि॒त्यकां ॄस्वमूर्धिनि सिन्दूरुचिं च बिभ्रतम् ॥६६॥

( १ ) जयसूचकैः । ( २ ) हिमाचलम् । ( ३ ) गैरिकमयोर्धर्वभूमीम् । ( ४ ) कुम्भस्थले ॥६६॥

हील० श्रिये० । चतुर्भिः काव्यैर्जं निशिनष्टि । किंभूतं गजम् ? । शोभया सर्वं दिग्गजान्विजित्य  
धृतैर्जयसूचकैः शोभितम् । पुनर्जिः(ः किं)कुर्वन्तम् ? । सिन्दूरकान्ति धारयन्तम् । यथा धराणां  
प्रभुर्हिमाद्विर्गैरिकस्योद्भर्वभूमीं धत्ते ॥६७॥

- हीसु० अ॑खण्डचण्डेतरधाममण्डलान्तरालतो निर्गतम्<sup>१</sup>क्लव्वर्त्मना ।  
महीतले<sup>२</sup> स्त्यानतया कथञ्चनावति<sup>३</sup>ष्टुमानं किमु वा सुधारसम् ॥६७॥  
( १ ) सम्पूर्णचन्द्रबिम्बमध्यात् । ( २ ) लाञ्छनमार्गेण । ( ३ ) पिण्डत्वेन । ( ४ ) तिष्ठन्तम् ॥६७॥
- हील० अख० । अखण्डो यस्तीक्ष्णेतरकिरणः शशी, तस्य बिम्बमध्यालाञ्छनमार्गेण निःसृतम् पुनर्निश्चलतया स्थितिं कुर्वाणं अमृतद्रवं इव ॥६८॥
- हीसु० <sup>१</sup>सृजन्तमुच्चैः<sup>२</sup> स्वकरं मदोदयात्कुलादि<sup>३</sup>सान्द्रप्रतिनादमेदुरैः ।  
स्वर्गर्जिज्ञतैः “स्पर्दिधतया पयोमुचां<sup>४</sup> चमूं विगायन्तमिवातिकोपतः” ॥६८॥  
( १ ) कुर्वन्तम् । ( २ ) ऊर्ध्वम् । ( ३ ) निजशुण्डादण्डम् । ( ४ ) मन्दरप्रमुखशैलेषु निबिड-प्रतिशब्देन पृष्ठे । ( ५ ) स्पन्दनशीलत्वेन । ( ६ ) घनानाम् अप्यतां “नवाम्बुदानीकमुहूर्तलाञ्छने” इति रघुवंशे । ( ७ ) निन्दन्तम् । ( ८ ) अधिकऋोधेन ॥६८॥
- हील० सृज० । किं कुर्वन्तम् ? उच्चैः करं कुर्वन्तम् । पुनर्जिकः ( किं ) कुर्वन्तम् ? । महत्पर्वतेषु प्रतिच्छन्देन पुष्टेर्गर्जितैर्मेघानां सेनामवगणयन्तम् ॥६९॥
- हीसु० कुतूहलेनेव <sup>१</sup>महीविहारिणं <sup>२</sup>महीधरं कैरवबन्धुधारिणः ।  
किमेत<sup>३</sup>योर्भाग्य<sup>४</sup>नभोमणोरहः<sup>५</sup> शारद्विधोर्वा किमु विपिण्डितं महः ॥६९॥  
इति गजस्वन्नः ॥ <sup>१</sup>पञ्चभिःकुलकम् ॥  
( १ ) भूमण्डलचारिणम् । ( २ ) पर्वतम् । ईश्वरस्य कैलाशमित्यर्थः । ( ३ ) नाथीकूराख्ययोः ।  
( ४ ) पुण्यसूर्यस्य । ( ५ ) दिवसः । ( ६ ) शारदशशिनो वा । ( ७ ) पिण्डीभूतम् । ( ८ ) कान्तिनिकरः ॥६९॥
- हील० कुतू० । उत्त्रेक्षयते । चन्द्रधारिणः ईश्वरस्य कौतुकान्महां चरन्तं कैलासमिव । किमथवा तयोर्भाग्यसूर्यस्य दिनम् । अथवा शरच्चन्द्रस्य पिण्डीभूतं तेज इव ॥७०॥
- हीसु० <sup>२</sup>अमोचि तं स्वज्ञमवेक्ष्य <sup>३</sup>संलये <sup>४</sup>विलोचनाभ्योरुहमुदणानया ।  
<sup>५</sup>पयोरुहिण्येव <sup>६</sup>पयोजबान्धवोदये <sup>७</sup>शचीकान्तहरिन्महीधरे ॥७०॥  
( १ ) मुक्ता । ( २ ) निद्रायाम् । ( ३ ) नयनकमलमीलनम् । ( ४ ) पद्मिन्या । ( ५ ) सूर्योदमे ।  
( ६ ) पूर्वाचले ॥७०॥
- हील० व्यमो० । अनया तं स्वप्नं दष्ट्वा, संलये निद्रायां, नयनकमलयोर्मुदणा निमीलनं, व्यमोचि मुक्ता । यथा इन्द्रहरितः पूर्वायाः, पर्वते उदयगिरौ सूर्योदयं विभाव्य पद्मिन्या नेत्रतुल्ययोः पयोजयोर्मुदणा मुकुलनं विमोच्यते ॥★७१॥

1. आदितः पञ्चभिः० हील० । 2. व्यमोचि हीमु० ।

- हीसु० सुखं 'शयाना निशि निद्रयाऽङ्गना भेनभाल्य तं स्वप्नमवाप संमदम् ।  
यथा ३परब्रह्म ४समीरुन्ध(रोध)नैर्निबद्धं धी१रासनयोगिमण्डली ॥७१॥
- (१) सुखेन स्वपन्ती । (२) वीक्ष्य । (३) परमज्योतिः । (४) प्राणापानादिवायूनं  
वशीकरणैः । (५) रचितपद्मासना योगभाजां रजिः ॥७१॥
- हील० सुखं सुसा सा स्त्री स्वप्नं दृष्ट्वा मुदमाप । यथान्तर्वायुनिरोधे परमात्मानं दृष्ट्वा पद्मासनस्थिता  
योगिनां श्रेणिष्य(ः प)रमां मुदमाप्नोति ॥\*७२॥
- हीसु० १गभीरिमाणं दधतः स॒पल्लवस्मितप्रसूनव्रजिराजितान्तरात् ।  
३स्वहंसतूलीशयनोदरादसौ क्षणादु॔दस्थात्करिणीव सै॑कतात् ॥७२॥
- (१) निमताम् । (२) प्रवालकलितविकचत्कुसुमनिकरशोभितमध्यात् । (३) आत्मनो  
हंसेनोपलक्षिता तूली प्रस्तरणोपकरणविशेषस्तसंयुक्तं यत् । शयनीयं शय्या तस्य मध्यात् ।  
(४) उत्थिता । (५) तटात् ॥७२॥
- हील० गभी० । गम्भीरात् । पुनः किसलयसहिता विकसिता ये पुष्पब्रजास्तै रजितं अन्तरं यस्य तादूशं  
यत्स्वकीयं हंसतूलीनामा शयनम् । तम्भ्यात् नाथी तत्कालमुत्थिता । यथा हस्तिनी तटादुत्थिते  
॥७३॥
- हीसु० १मरालबालेव २विलासगामिनी क्षितौ ३क्षिपन्ती पदपद्मयामलम् ।  
ततः समुद्दिश्य पर्ति ४पतिव्रता ५महेभ्यपन्ती ६पदवीं ७व्यभूषयत् ॥७३॥
- (१) हंसीव । (२) मन्थरगमनशीला । (३) स्थापयन्ती । (४) सती, पतिव्रत ब्रतं यस्याः ।  
का ? तमेव त्रिधा कामयते नान्यं सा पतिव्रता । (५) नाथी । (६) मार्गम् । (७) शोभयति  
स्म ॥७३॥
- हील० मरा० । हंसीव लीलगतिः । पुनः पृथिव्यां चरणकमलयुगं स्थापयन्ती सती पर्ति उद्दिश्य ततः  
शयनादुत्थितानन्तरं इभ्यपली मार्गमलङ्कृतवती ॥७४॥
- हीसु० क्षणादथो॑व्वीवलयोव्वसी ३मणीविभूषणध्वंसितरोदसीतमाः ।  
असौ पुरस्तात्प्रकटीबभूषी प्रियस्य मूर्त्तेव ४कुलाधिदेवता ॥७४॥
- (१) महीमण्डलोर्वसी । “विशति विशति वेदीमुर्वसी सेयमुर्वा” इति नैषधे । (२)  
रत्नाभरणकिरणनिर्दलितभूमीनभोध्वान्ता । (३) कुलाधिष्ठात्री सुरी ॥७४॥
- हील० क्षणा० । भूवलयस्य उर्वसी नामाप्सरा ताहशी । पुनः रत्नभूषणैर्निर्दलितं रोदस्योर्द्यावाभूम्योस्तमो  
यया ताहशी । सा प्रियस्याग्रे प्रकटिता । यथा मूर्त्तिमती कुलदेवी ॥७५॥

- हीसुं० १तया क्रमादि॒भ्यविभावरीवरो विमु॒द्रणा॑गोचरतामवापितः ।  
२वचोविलासैरुपांशुभिर्यथाऽविन्दवृन्दं जिवसाननश्रिया ॥७५॥
- ( १ ) नाथीदेव्या । ( २ ) कुंराख्यः पतिः । ( ३ ) जागरितः । ( ४ ) सुकुमारवाणीभिः । ( ५ ) सूर्यकिरणैः । ( ६ ) कमलाकरः । ( ७ ) प्रभातलक्ष्या ॥७५॥
- हील० तया० । तया स इभ्यचन्द्रः वनविभ्रमैः विमुद्रणाया जागरणस्य गोचरं गमितः । प्रबोधित इत्यर्थः । यथा प्रभातलक्ष्या सूर्यकिरणैः पदानिकरः प्रबोध्यते ॥★७६॥
- हीसुं० १सुमध्वजोर्वीधरजैत्रशस्त्रया २रहस्यवत्स्वप्नं ३उदात्तनेत्रया ।  
४विनिद्रितां लोचनयोर्वितन्वते ५न्यवेदि ६तस्मै व्यवहारिभास्वते ॥७६॥
- ( १ ) स्मराजजयनशीलप्रहरणया । ( २ ) गुप्तवृत्तिमिव । ( ३ ) विशालचक्षुषा । ( ४ ) प्रबुद्ध्यमानाय । ( ५ ) कथितम् । ( ६ ) कुंरामहेभ्याय ॥७६॥
- हील० सुम० । कामभूपस्य जैत्रं यत्सत्रं तदूपया । पुनः स्फारनेत्रया । तस्य नेत्रयोर्निद्राभावात्स्मेरतां कुर्वते । इभ्यसूर्याय रहस्यवत्रिवेदितम् ॥७७॥
- हीसुं० किमावयोरेष॑ फलं प्रदास्यति ३स्वपाणिसिक्तस्मयमानशाखिवत् ।  
इदं निगद्य॒ प्रमदाद्व॑सुन्धराप्सरा व्यरंसीद्व॑यवहारिवर्णिनी ॥७७॥
- ( १ ) स्वप्नः । ( २ ) निजहस्ताभ्यां जलसेकात् विकसत्तरुरिव । ( ३ ) कथयित्वा । ( ४ ) पृथिव्या अप्सरा इव । ( ५ ) कुंराख्यमहेभ्यस्य प्रिया नाथी ॥७७॥
- हील० किमा० । एषः स्वप्नः आवयोः स्वकरसिक्तप्रफुल्लितरुवर्तिं फलं दास्यति ?। इदं कथयित्वा उर्वसी सदृशा सा इभ्यस्त्री विरमति स्म ॥७८॥
- हीसुं० १तदाननेन्दोरमृ॒तोर्मिमालिनो गिरं सुधाया भगिनीमिवोद्धृताम् ।  
२निपीय ३कर्णैः ४पुटकैरि॑वान्तरा स ५कूणिताक्षष्य॑(: प)रमां ६मुदं दधौ ॥७८॥
- ( १ ) नाथीवदनचन्द्रात् । ( २ ) सुधासमुद्रात् । “तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ” इति नैषधे । ( ३ ) प्रकटीभूताम् । ( ४ ) सादरं निशम्य । ( ५ ) श्रवणैः । ( ६ ) नितरां पीत्वा च पुटकैः । ( ७ ) अन्तरा मनोमध्ये । ( ८ ) किञ्चित्त्रिमीलिते नयने येन । ( ९ ) वचनागोचरम् । ( १० ) हर्षम् ॥७८॥
- हील० तदा० । अमृतस्य उर्मिमाली समुद्रस्ताहशान्नाथीवदनचन्द्रादुद्धतां प्रकटीभूताममृतसदृशां वाचं पुटकसदृशैः कर्णैः श्रुत्वा कूणि[ते] निमीलिते अक्षिणी येन स इभ्यः परमां मुदं धारयति स्म ॥७९॥
- हीसुं० १द्विजावलीचन्द्रिकयानुविद्धया स्मितश्रिया २श्रेतितसृक्वदेशया ।  
३भुजान्तराभोगविलासिनीरिवो४पचिन्वता ५चञ्चुरमौक्तिकावलीः ॥७९॥

1. ०णाया गमितः सगोचरम् हीसुं० ।

निगद्यते॑ स्म व्यवहारिणा क्षणं ३विमृश्य सा॒ तेन॑ ४सुकेशमानिनी ।  
ैरथाङ्गनाम्नेव ॉरथाङ्गबान्धवोदये रथाङ्गी ॑स्वसमीपमीयुषी ॥८०॥ युग्मम् ।

( १ ) दन्तसन्ततिज्योत्सनया व्यासया । "दशनचन्द्रिकया व्यवभासित" मिति रघुवंशे । ( २ ) धवलीकृताधरप्रान्तविभागया । ( ३ ) वक्षोविस्तारे विलसनशीला ( ४ ) वर्द्धयता । ( ५ ) प्रकृष्टहारान् ॥७९॥

( १ ) भाषिता ( २ ) विचार्य । ( ३ ) नाथी । ( ४ ) कुंगाख्येन । ( ५ ) सुकेशी स्वां मन्यत इति सुकेशमानिनी "व्यङ्गमानिनोश्वे" ति पुंवद्वावः । ( ६ ) चक्रवाकेण । ( ७ ) सूर्योद्गमे । ( ८ ) आगता ॥८०॥

हील० द्विजा० । तेन व्यवहारिणा सा सुकेशीमानिनी निगद्यते स्म । भाषितेत्यर्थः । यथा भानोरुदये चक्रवाकेन समीपागता सती चक्रवाकी निवेद्यते । किं । तेन दन्तज्योत्सनया व्यासया । पुनर्धवलीकृत औष्टप्रान्तदेशो यया । तादृश्या ईषद्वसितलक्ष्या कृत्वा हृदयस्याभोगो विस्तारस्तत्र विलसन्तीत्येवंशीला । प्रधानमुक्तावलीहारानुपचिन्वता पुष्णता ॥८०-८१★॥

हीसुं० १अनेकपस्वप्ननिरीक्षणार्थिये सुतं ३तदन्वर्थमवाप्यसेऽचिरात् ।  
३महो४दयं विन्दति मण्डली यथा ६समाधिभाजां ९परमात्मदर्शनात् ॥८१॥

( १ ) गजस्वप्नावलोकनात् । ( २ ) तस्यानेकपस्यान्वर्थोऽनेकान् पाति रक्षति इत्यनुगतार्थो यस्य । ( ३ ) स्तोककालेन । ( ४ ) मोक्षम् । ( ५ ) लभते । ( ६ ) योगिनाम् । ( ७ ) परमब्रह्मस्वरूपदर्शनात् । ध्यानावस्थायां परमज्योतिःस्वरूपावलोकनात्प्रिंदिं प्राप्नोति । योगिनो हि यदा ध्यानेन हृदि परमात्मानं पश्यन्ति तथा(दा) ध्यानाद्विरमन्ति' इति श्रुतिः ॥८१॥

हील० अनेऽ । हे अम्भोजलोचने ! गजस्वप्नप्रदर्शनात्वया तस्यानेकपस्यान्वर्थो अनेकान्पाति रक्षति स्वामितया इत्यनुगतार्थो यस्य तादृशः पुत्रः लप्यते । यथा यतिसमया केवलज्ञानलाभान्मोक्षो लभ्यते ॥★८२॥

हीसुं० १जयन्तवज्जजम्भै२निशुम्भभामिनी पर्तिंृ चमूनामिव ४सर्वमङ्गला ।  
वशेवॄ शौरैः ५सुमनशशरासनं ऋमाच्च पुत्रं ॉप्रसविष्यसि प्रिये ॥८२॥

( १ ) इन्द्रपुत्रः । ( २ ) इन्द्राणी । ( ३ ) स्कन्दम् । ( ४ ) पार्वती । ( ५ ) लक्ष्मीः । ( ६ ) प्रद्युम्नम् । ( ७ ) जनयिष्यसि ॥८२॥

हील० जय० । यथा शची जयन्तं सूते । पुनर्यथा पार्वती स्वामिकार्तिं सूते । यथा लक्ष्मीः कामं प्रसूते । तथा त्वं सुतं प्रसविष्यसि ॥८३॥

1. सविधे समीयुषी हीमु० । 2. ०णादवाप्यते तदन्वर्थसुतोऽचिरात्त्वया हीमु० । 3. महोदयः केवललम्भतो मनिसमज्ययेवाम्बुजमञ्जुलोचने हीमु० ।

- हीसु० इति प्रणीयै श्रुतिगोचरं वचः प्रियस्य दधे ॐपुलकोद्गमस्तया ।  
 तदिद्वितामुव्वरयेव जीवनं निपीयै ३सस्याङ्गुराजिराजिता ॥८३॥  
 (१) कृत्वा श्रवणगतम्, श्रुत्वेत्यर्थः । (२) रोमाञ्चकञ्चुकः । (३) मेघानाम् । (४)  
 सर्वसस्यभुवा । (५) पानीयं (६) पीत्वा (७) धान्यप्ररोहश्रेणिशोभिता ॥८३॥
- हील० इति० । इति प्रियवचः श्रुत्वा तया रोमाञ्चाविर्भावो धृतः । यथा मेघानां पानीयं पीत्वा सर्वसस्या-  
 (यया)भुवा सस्याङ्गुरश्रेणिशोभनं ध्रियते ॥८४॥
- हीसु० १धवः ३सुधाधामसगोत्रवक्त्रयेत्यवादि ३बद्धाञ्जलिपाणिपद्मना(या) ।  
 वरे ४सुरेन्दोरिव कान्त तावके वचः प्रपञ्चेऽव्यभिचारितास्तु मे ॥८४॥  
 (१) भर्ता । (२) चन्द्रोपममुखया । (३) रघितोऽञ्जलिर्येन तादृक्करकमलं यस्याः । (४)  
 प्रकृष्टदेवस्य । (५) सत्यता ॥८४॥
- हील० धवः० । चन्द्रसमवक्त्रया तया इति रीत्या धवः पतिर्भाषितः । इति किम् ? हे कान्त ! त्वदीये  
 वचोविस्तारे मे सत्यतास्तु । यथा इन्द्रादिवरे सत्यता भवेत् ॥★८५॥
- हीसु० मिथः१ प्रथाभिर्वचसां ३वचस्विनौ ४कियच्चिरं तस्थतुरत्र ५दम्पती ।  
 ६वसन्तफुलस्तसहकारकानने ७पिकाविवोदी८रितपञ्चमस्वनौ ॥८५॥  
 (१) परस्परम् । (२) वचनविस्तारैः । (३) प्रगल्भवचनौ । (४) कियन्तं समयम् । (५)  
 जायापती । (६) वसन्तसमयेन विकसन्माकन्दवने । (७) कोकिलौ । (८)  
 प्रकटीकृतपञ्चमालापौ ॥८५॥
- हील० मिथः० । अत्रेभ्यगृहे वाग्विस्तारैस्तौ दम्पती कियद्वेलां स्थितौ । इवोत्प्रेक्ष्यते । वसन्तेन फुलतां  
 सहकाराणां वने प्रकटीकृतः पञ्चमरागस्य धनिर्याभ्यां, तादशौ पिकौ । “पिकी च पिकश्च पिकौ” ।  
 तथा च सिद्धान्तकौमुद्याम्-पुमान् स्त्रिया तलक्षणश्चेदेव विशेषः । स्त्रिया सहोकौ पुमान् शिष्यते न  
 स्त्री । स्त्रीपुंलक्षणश्चेदेव विशेषे । ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च ब्राह्मणौ । तलक्षणः किम् ? कुकुटमयूर्यौ  
 ॥८६॥
- हीसु० मुदाथ१ नाथी ३श्यानीयमन्दिरं क्रमेण१ ३पौरन्दरसद्वासुन्दरम् ।  
 व्यभूषयत्किं४पुरुषप्रभोरिवारविन्ददृ५मन्दरकन्दरोदरम् ॥८६॥ इति स्वजर्खिचारः ॥  
 (१) भर्तुरनुज्ञानन्तरम् । (२) श्यागृहम् । (३) वैजयन्तसदृशम् । (४) किंनरेन्द्रस्य कान्ता  
 मेरुगुहामध्ये ॥८६॥
- हील० मुदा० । इन्द्रमन्दिरसुन्दरं श्यागृहं नाथी अलङ्करेति स्म । यथा इन्द्रस्य स्त्री मेरुगुहामध्यमलङ्कृते  
 ॥★८७॥

1. ०मेण सदङ्कन्दनसद्वा० हीमु० । 2. ०नविचारकथनम् हील० ।

- हीसुं० सुखं स्वकीये<sup>१</sup> शायने निषेदुषी मुदं महास्वप्नजुषं प्रपेदुषी ।  
इदं कलाकेलिमरालमानसे व्यचिन्तयत्सा विदुषीव मानसे ॥८७॥  
( १ ) शत्यायाम् । ( २ ) उपविष्ट । ( ३ ) प्राप्ता । ( ४ ) स्मर एव हंसस्तस्य क्रीडार्थं  
मानससरःसदृशं ( ५ ) विज्ञा । ( ६ ) चित्ते ॥८७॥
- हील० सुखं स्वमन्दिरे स्थिता सती । पुनर्महास्वप्नोद्भवां मुदं प्रपत्ता सती सा काम एव हंसस्तस्य  
मानसनामि सरसि चित्ते । इदं वक्ष्यमाणं चिन्तयति स्म ॥★८८॥
- हीसुं० १पुनः सृजन्त्यां मयि मुदणां दृशोष्य(ः प)रैरप स्वप्नविजृभितैरसौ ।  
निहन्यतां माऽसहजैरिव ग्रहैस्त्रिकोणकेन्द्रोपगतः शुभग्रहः ॥८८॥  
( १ ) द्वितीयवारम् । ( २ ) कुर्वन्त्याम् । ( ३ ) निदाम् । ( ४ ) कुस्वप्नविलसितैः । ( ५ )  
वैरिभिः । ( ६ ) नवपञ्चमं त्रिकोणं चतुरस्त्रिणि तेषु प्राप्तः । ( ७ ) प्रशस्यग्रहः ॥८८॥
- हील० पुनर्द्वितीयवारं दृशोर्निद्रां कुर्वत्यां मयि असौ सुस्वप्नः कुस्वप्नविलसितैर्मा हन्यताम् । यथाऽसहजैः  
शत्रुभिग्रहैर्भौममन्दादिभिस्त्रिकोणं नवपञ्चमं प्रथमचतुःसप्तमदशमाख्यानि केन्द्राणि तेषु भवनेषु गतः  
शुभग्रहो गुरुबुधादिर्यथा हन्यते निर्बलीक्रियते ॥८९॥
- हीसुं० १इदं विमृश्येयम जूहैवन्मुदा सखीरशेषाः स्वकपारिपार्श्वं( श्वि )काः ।  
द्विरेफगुञ्जारवमञ्जुवादिनी वसन्तलक्ष्मीष्य(ः पि)ककामिनीरिव ॥८९॥  
( १ ) पूर्वोक्तम् । ( २ ) विचार्य । ( ३ ) आकारयामास । ( ४ ) निजसमीपवर्त्तिनीः । ( ५ )  
भ्रमरगुञ्जितमिव मनोज्ज्ञं वदतीत्येवंशीला । ( ६ ) कोकिलाः ॥८९॥
- हील० इदं विमृश्य इयं निजसमीपवर्त्तिनीः सखीरकारयामास । यथा भ्रमरगुञ्जितेन मनोज्ज्ञवादिनी वसन्तलक्ष्मीः  
कोकिलाः आकारयति ॥९०॥
- हीसुं० ततो वयस्योऽन्तिकमागता मधुब्रताङ्गनाश्वूतलतामिव स्मिताम् ।  
बभाषिरे कोकिलकामिनीगणकवणाऽद्वयीवादनिनादयाऽनया ॥९०॥  
( १ ) सख्यः । ( २ ) भृंगा ( भृङ्ग्यः ) । ( ३ ) आप्रतरम् । ( ४ ) कोकिलकामिनीनिकरस्य  
कलकूजितमिवाद्वयीवादः असाधारणता ( तया ) यस्मिस्ताद्वग्धवनिर्यस्याः ॥९०॥
- हील० ततो० । यद्वद्भ्रगङ्गना आप्रलतां आश्रयन्ते । तद्वत्समीपं आश्रिताः सख्यः अनया भाषिताः । किं-  
भूतया अनया ? । कोकिलागणानां कवणेन रवेण सहाद्वयीवादे एकीभावे यस्य ताहशो निनादो  
यस्यास्तादृश्या ॥★९१॥
- हीसुं० चकोरिके चन्दकले लवद्धिके मृणालिके पुष्पकले कुरद्धिके ।  
कुरङ्गनाभे सुरभे शशिप्रभे विनोदिके मोदिनि वन्दि सुन्दरि ॥९१॥

1. वये सदने हीमु० । 2. वक्ततः सखी० हीमु० । 3. माश्रिता हीमु० । 4. पुष्पलते हीमु० ।

‘तथा प्रथन्तां कथकाः यथा कथा ममाग्रतः ४श्रीजिनचक्रिसंकथाः ।

यथा शुभस्वप्नदृशा मया निशा५पनीयते ७पद्धतिवत्यथिस्पृशा ॥१२॥ युग्मम् ॥

(१) एतानि सखीनामानि चम्पूकथायामेवंविधान्येव सखीनामानि दृश्यन्ते ॥११॥

(२) तेन प्रकारेण । (३) विस्तारयन्तु कथयन्त्वित्यर्थः । (४) कथाकथयितार इव । (५) श्रीतीर्थकृच्छ्रकर्वत्तिवार्ताः । (६) प्रकृष्टस्वप्नावलोकिन्या । (७) पूर्णोऽक्रियते । (८) मार्ग इव । (९) पान्थेन ॥१२॥

हील० पूर्वकाव्ये सखीसम्बोधनान्येव सन्ति । तथा० । हे सख्यः ! यूयं ममाग्रतः जिनानां चक्रिणां वार्तास्तथा प्रथन्तां विस्तारयन्तु यथा कथकाः कथयन्ति । यथा शुभं स्वप्नं पश्यतीत्येवंशीलया मया रात्रिरपनीयते । यथा पथिकेन पद्धतिर्वर्तम् अपनीयते ॥\*१२-१३ ॥

हीसुं० १कथानु[ष]ङ्गेषु मिथस्सखीजनो॒दितेषु काचिद्व्यै॒सीदमा॑लपत् ।

परेषु २गान्धर्वरसेषु ३पञ्चमप्रपञ्चि॒(ञ्च) गीतिं ४विदुरेव ५गायनी ॥१३॥

(१) कथाप्रस्तावेषु । (२) कथितेषु । (३) सखी । (४) उवाच । (५) गीतिरसेषु । (६) पञ्चमरागालापविस्तारम् । (७) चतुरा । (८) गानकारिका ॥१३॥

हील० क० । कथाप्रसङ्गेषु सखीकथितेषु काचित्सखी॑ इदं कथयति स्म । यथान्येषु गान्धर्वरसेषु सत्सु काचित्पण्डितगायनी पञ्चमगीतिं विस्तारयति ॥१४॥

हीसुं० १पुराभवन्नां॒भिमहीहिमद्युतेस्त॒३नूभवः श्रीवृषभध्वजो४ जिनः ।

इवात्मभू५६राजसभावभासितः स०सर्ज्ज यो०७विष्टपसृष्टिमात्मना८ ॥१४॥

(१) युगस्यादौ । (२) नाभिर्नामराजा । (३) पुत्रः । (४) ऋषभजिनः । (५) विधाता । (६) राजसभा या राजन्यव्रजेनावभासितः वेधाः तु राजसभावेन राजगुणस्वभावेन शोभितः । (७) चकार । (८) लोकनिर्माणम् । (९) स्वेन ॥१४॥

हील० पुरा० । हे स्वामि[नि] ! पुरा-पूर्वं नाभिर्भूचन्द्रस्य सुतः श्रीऋषभदेवः अभवत् । यः स्वयंभूरिव जगत्सृष्टिं चकार । किंभूतो यः आत्मभूश्च ? । राजां सभासु अवभासितः । अथवा रजोगुणस्वभावेन भासितः ॥१५॥

हीसुं० अमुष्य॑८नाभेयजिनावनीनभोमणेरजायन्त शतं॒३तनूभवाः॑ ।

१८पवेरिवास्त्राः॒४क्रतवः॒५शतक्रतोरिवच्छ॑दानीव पुनः॒६पयोरुहः ॥१५॥

(१) ऋषभराजस्य । “मध्यंदिनाद्॒(व)थ॒(थिविधेर्वसुधाविवस्वाशा॒(न्))” इति नैषधे । (२) पुत्राः । (३) वज्रस्य । (४) कोणाः । (५) यज्ञाः । (६) इन्द्रस्य । (७) पत्राणि । (८) कमलस्य ॥१५॥

1. ०रुहः हीसुं० ।

- हील० अमु० । एतस्य ऋषभदेवजिनसूर्यस्य शतं पुत्रा जाताः । वत्रस्य कोटयः, इन्द्रस्य यज्ञाः प्रतिमा वा । यथा कमलस्य पत्राणि शतमेवाभूवन् तथा ॥★१६॥
- हीसु० ॑जिनावनीन्दोष्किल(ः किल) ॒धर्मकर्मणोव्यवस्थयास्मादुदृभावि भूतले ।  
 ॑रथाङ्गपाथोरुहयोर्मुदोदितारविन्दिनीवल्लभमण्डलादिव ॥१६॥  
 (१) ऋषभदेवात् । (२) धर्मव्यवस्था कर्मव्यवस्था । (३) प्रकटीभूता । १४)  
 चक्रवाककमलयोः । (५) हर्षेण । (६) उदयं प्राप्तात् सूर्यबिम्बात् ॥१६॥
- हील० जिना० । अस्माज्जिनाङ्गर्मकर्मरीत्या प्रकटितम् । यथोदितसूर्यमण्डलात् चक्रवाककमलयोर्मुदा  
 हर्षेणोद्भूयते ॥१७॥
- हीसु० बभूव ॑नाभेयविभुः स ॒आदिमः क्षितौ ॑समग्रावनिभामिनीभुजाम् ।  
 ॑पुलोमजाप्राणपतेर्म॒तङ्गजो महामृगाणामिवै दानशालिनाम् ॥१७॥  
 (१) ऋषभजिनः । (२) प्रथमः । (३) समग्रभूपानाम् । "वसुमतीयुवतीभुजङ्ग़" इति  
 काव्यकल्पलतायाम् । (४) इन्द्रस्य । (५) ऐरावणः । (६) परगजानां मध्ये  
 मदवारिशोभितानाम्, दानेन च ॥१७॥
- हील० बभू० । क्षितौ समग्रराज्ञां मध्ये आद्यः ऋषभनाथः अभूत् । यथा मदवारिधारिणां गजानां मध्ये  
 शचीपतेरिन्द्रस्य गजः ऐरावणो भवति ॥१८॥
- हीसु० ॑पयोधिपुत्रीतनयावनीपतेरिवा॒नुबिम्बेषु ॑महीविहारिषु ।  
 ॑शताङ्गजातेषु तदा॒दिमप्रभोर्बभूव ॑मुख्यो भरताभिधो॑उग्रजः ॥१८॥  
 (१) स्मरराजस्य । (२) प्रतिमूर्तिषु । १३) भूमण्डलविवरणशीलेषु । (४) शतसङ्घ्याङ्गजेषु,  
 पुत्रेषु । (५) ऋषभदेवस्य । (६) प्रथमः श्रेष्ठश्च ॥१८॥
- हील० पयो० । लक्ष्मीसुतप्रतिबिम्बेषु महां विहरन्तीत्येवंशीलेषु ऋषभदेवपुत्रेषु भरतः आद्योऽभूत् ॥★१९॥
- हीसु० ॑यदीययात्रासु ॑चमूसमुत्थितैर्दिव॑सृथिव्योः ॑प्रविसारिपांशुभिः ।  
 ॑अहस्त्रियामीयति ॑पद्मिनीपतिः ॑पतङ्गति ॑ध्वान्तति ॑तत्प्रभाभरः ॥१९॥  
 (१) भरतसम्बन्धिदिविजयप्रयाणेषु । (२) कटकचलनादुद्भूतैः । (३) आकाशभुवोः ।  
 (४) विस्तरणशीलधूलीभिः । (५) दिवसः । (६) रात्रिरिवाचरति । (७) सूर्यः । (८)  
 खद्योत इवाचरति । (९) अन्थकार इवाचरति । (१०) सूर्यकान्तिवजः ॥१९॥
- हील० यदी० । यस्य भरतस्य दिग्विजयप्रयाणेषु सेनोद्भूतैषु(ः पु)नगकाशभुवोर्विषये विस्तरणशीलै-  
 रेणुभिरहो रात्रिवदाचरति सूर्यः खद्योतवज्जातः, पुनः सूर्यकान्तितिस्तम इवाचरति ॥१०॥

- हीसुं० हरेर्महिष्यां<sup>३</sup> हरिति प्रयातवान्य<sup>२</sup>आदितः सार्थिदितगोत्रशात्रवः ।  
पतिः<sup>४</sup> सुराणामिव दानवारियुगजेन्द्रसिन्धूद्ववाजिराजितः ॥१००॥
- ( १ ) पूर्वदिशि । “निजमुखमितः स्मेरं धने हरेर्महिषी हरि” दिति नैषधे । ( २ ) प्रथमतः ।  
( ३ ) हता वंशा येषां तादृशा वैरिणो यस्य । ( ४ ) इन्द्रः । ( ५ ) मदजलकलितकरिगाजसिन्धु-  
देशोत्पन्नहयश्रेणिशोभितः । देवब्रजयुतैरावणसमुद्रोत्पन्नोच्चैःश्रवोराजितः इन्द्रपक्षे ॥१०७॥
- हील० हरे० । यः प्रथमत इन्द्रपत्यां दिशि प्राच्यां गतः । यथा सुराणां पतिः प्राच्यां याति । किंभूतो यः  
शक्रश्च ? । उच्छेदिता गोत्रसहिता गोत्राः पर्वता एव वा शात्रवा येन सः । पुनः किंभूतो यः  
शक्रश्च ? । दानवारिभिर्मदजलैर्युज्ञन्ति योगं प्राप्नुवन्ति । तादृशा गजेन्द्राः । सिन्धुदेशोद्ववा वाजिन-  
स्तै रजितः । पक्षे-दानवानां दैत्यानामरिभिर्देवैर्युनकीति । देवयुक्त इत्यर्थः । तथा ऐगवणः सिन्धूद्ववः  
समुद्रोत्पन्नः उच्चैःश्रवा अक्षस्तेन शोभितः ॥१०१॥
- हीसुं० स<sup>१</sup>सार्वभौमो<sup>२</sup>ध्वजदण्डशेखरीकृतस्फुरत्काञ्चनकुम्भकान्तिभिः ।  
३मतङ्गजैरञ्जनशैलमांसलैः<sup>४</sup> क्षितौ<sup>५</sup>तनोतीव<sup>६</sup>सविद्युदम्बुदम् ॥१०१॥
- ( १ ) भरतचक्रवर्ती । ( २ ) पताकादण्डेषु उत्तंसा विहिता ये दीप्यमानकनकलशास्तद-  
रुचिभिः । ( ३ ) गजैः । ( ४ ) कज्जलगिरिवन्मांसलैः पुष्टैरुन्नतैश्च । ( ५ ) करोतीव । ( ६ )  
तडिलकलितमेघम् ॥१०१॥
- हील० स चक्री ध्वजानां दण्डेषु उपरिस्थितानां, पुनः स्फुरतां दीप्यमानानां कनककुम्भानां कान्तिर्येषु,  
तादृशैः । पुनरञ्जनाचलवत्पुष्टैर्गजैः पृथिव्यां विद्युत्सहितं मेघं करोतीव ॥ १०२॥
- हीसुं० १दशामवास्यन्ति<sup>२</sup>यदन्तिमामिमेऽस्मदाश्रया<sup>३</sup> लक्ष्मिताः<sup>४</sup>क्षामाक्षितः ।  
५विवर्णतेर्तीव दिगङ्गनागणैर्मुखे<sup>६</sup>निषेवेऽस्य<sup>७</sup>चमूरजोभरैः ॥१०२॥
- ( १ ) अवस्थाम् । ( २ ) यस्मात्कारणात् चरमां मरणलक्षणामित्यर्थः । ( ३ ) वयमेवाश्रय  
आवासस्थानं येषाम् । ( ४ ) राजानः । ( ५ ) विच्छायता । ( ६ ) भेजे । ( ७ )  
चतुरङ्गदलचलनोद्भूतधूलीभिः ॥१०२॥
- हील० दशा० । वयमेवाश्रयो येषां तादृशाः, पुनर्लक्षबद्धाः क्षितिपाः । अन्तिमां दशां मरणावस्थां लप्यन्ते ।  
इतीव कारणाद्विग्रामाभिः सेनरेणुभिः कृत्वा मुखे विवर्णता विच्छायता निषेवे धृता ॥★१०३॥
- हीसुं० १चमूर्धवनिः<sup>२</sup>प्राग्गिरिकन्दरोदरे प्रियोपगूढं<sup>३</sup>सुखसुसकिन्त्र( न )रान् ।  
४इदंयशो गापयितुं<sup>५</sup>गुहागतप्रतिस्वनै र्जाग<sup>६</sup>[ र ]यन्निवो<sup>७</sup>दतः ॥१०३॥
- ( १ ) कटककोलाहलशब्दः । ( २ ) उदयाचलगुहामध्ये । ( ३ ) प्रियां किन्न( न )रीमुपगूहालिङ्गय  
सुखेन सुमान् किंपुरुषान् । ( ४ ) भरतकीर्तिः । ( ५ ) कन्दरोदरप्रसरतप्रतिशब्दः । ( ६ )  
विनिदीकुर्वन् । ( ७ ) प्रकटीबभूव ॥१०३॥

- हील० चमूध्वनिरुद्धतः प्रकटितः । उत्प्रेक्ष्यते । उदयाद्रिगुहामध्ये प्रियामुपगुह्यालिङ्गं आलिङ्गं सुखेन सुसान्किनरण् प्रति इदंयशः-अस्य यशः गापयितुं गह्यप्राप्तगर्जिज्जैः उत्थापयन्निव ॥१०४॥
- हीसुं० 'प्रगल्भफालैर्गगने नखैष्णु( : पु)नर्महीतलस्योत्खननैर्हयव्रजः ।  
जयं॒ सृज स्वर्बलिवेशमनोद्भ्योरथेति संज्ञापय॑तीव यं पतिम् ॥१०४॥  
( १ ) उच्चैः सत्पत्तनैरुल्लनैः । ( २ ) हे सार्वभौम ! त्वया भूः साधिता, अथ स्वर्लोकपातालयो-विजयं कुरु । ( ३ ) इति संज्ञां कुर्वन्ती( ती )व ॥१०४॥
- हील० प्रग० । गगने उच्छलनैः पुनर्नखैः कृत्वा भूमिक्षोदनैरथ्यौघः निजपतिं इति ज्ञापयतीव । इति किम् ? हे चक्रिन् ! त्वं स्वर्गपातालयोर्जयं सृज ॥★१०५॥
- हीसुं० 'पयोधिरोधःस्थलरोधिभिर्विभोरंसर्जिञ्ज ३गज्जाञ्जनबन्धुसिन्धुरैः ।  
४चराचरे वर्षितमुन्मुखैरितः किमन्बुदैरम्बुजिघृक्षयागतैः ॥१०५॥  
( १ ) समुद्रोपकण्ठस्थलरुन्धनशीलैः । ( २ ) कृता । ( ३ ) कज्जलाचलतुल्यैर्वपुषा श्यामत्वेन च । ( ४ ) जगति । ( ५ ) उत्सुकैः । ( ६ ) जलग्रहणेच्छया ॥१०५॥
- हील० पयोधेस्तटस्थलं वेलागमनभूस्तद्वन्धन्ति इत्येवंशीलैः । अञ्जनाचलसहोदरैर्जैर्जां गर्जितमसर्जिनिष्पादिता । उत्प्रेक्ष्यते । सर्वजगति वर्षितुं उत्कण्ठितैरितः समुद्रादम्बुग्रहणेच्छया आगतैर्मेघैः किम् ? ॥★१०६॥
- हीसुं० इवेक्षु॑डिभान्ध॑तिरक्षिणो ३महौजसा ४समुत्खाय पुनः प्रोपयन् ।  
स 'पूर्वपाथोनिधिसैकतक्षितिं क्षिते॑र्विवोढा व्रजति॑ स्म 'सस्मयः ॥१०६॥  
( १ ) बालेक्षून् । ( २ ) राज्ञः । ( ३ ) उत्कटप्रतापेन । ( ४ ) राज्याद् भ्रंशयित्वा । ( ५ ) पूर्वसागरस्य जलोज्ज्ञततारभूमीम् । ( ६ ) भरतचक्री । ( ७ ) गतः । ( ८ ) सर्ववैः । "पलालजालैः पिहितेक्षुडिभ्म" इति नैषधे ॥१०६॥
- हील० स भूपः पूर्व समुद्रते व्रजति स्म । किं कुर्वन् ? महाप्रतापेन क्षितिपान् राज्याद् भ्रंशयित्वा पुनर्ज्ये स्थापयन् । यथा कृषिकः इक्षुडिभानुस्थानादुत्खायान्यत्र रोपयति ॥१०७॥
- हीसुं० 'अजिहमता ३सुह्ननृपैर्बिले॑ ४बिलेशयैरिवैतद्वसुधाधवे॑ दधे ।  
विनम्रता च ध्रियते स्म वेतसै॒ ये॑ 'स्ववन्त्या इव भूरिवैतसैः ॥१०७॥  
( १ ) सरलता । ( २ ) सुह्नामदेशस्तत्रायकैः । ( ३ ) भुजगनिवसनस्थाने । ( ४ ) सर्पैः । ( ५ ) भरतचक्रिणि । ( ६ ) नामदुमैः । ( ७ ) प्रवाहे । ( ८ ) नद्याः । ( ९ ) वेतस्वद्वेशभूपैः ॥१०७॥
- हील० अजि० । एतस्मिन्नपै सुह्नदेशनृपैः अकुटिलता दधे-धृता । यथा भुजद्वैर्बिले सरलत्वं ध्रियते । पुनर्भूरिभिर्वैतसदेशीयनृपैर्विशेषेण नम्रता ध्रियते स्म । यथा नद्याः ये प्रवाहे वेतसवृक्षेनम्रता ध्रियते,

1. यति स्वयं पतिम् हीमु० । 2. मुत्सुकैरितः हीमु० ।

तद्वत् ॥१०८॥

- हीमु० अवापितो गोचरतां स मागधैरिव स्तवस्य प्रमदेन ३मागधैः ।  
 ३सृजद्विरिन्द्रो४५दिगणैः ६कर्लिं गजैरिवोपलै७ ८रुद्धनतः ९कलिङ्गजैः ॥१०८॥  
 (१) बन्दिभिरिव स्तुतः । (२) मगधदेशनृपैः । (३) कुर्वद्विः । (४) शक्रः । (५)  
 गिरिणैः । (६) सङ्ग्रामम् । (७) प्रस्तरैः । (८) पूर्व रुद्धः पश्चान्तः । (९) कलिङ्गदेशभूपैः  
 ॥१०८॥
- हील० स भरतचक्री बन्दीजनैरिव मगधदेशोद्धवैनृपैः स्तुतेर्विषयतां प्रापितः । पुनः गजैः कर्लि सृजद्विः,  
 कलिङ्गदेशनृपैः पूर्व रुद्धः पश्चान्तः । यथोपलैः कर्लि कुर्वद्विः पर्वतैः रुद्धः नतश्च ॥१०९॥
- हीमु० १नि॒( दि॑)शां चतुर्णामयमर्ण॑वावधीनिति प्रदेशान् ३ध्वजिनीभिरानशो३ ।  
 विभासिताभिः४ स्मितसिन्थुरश्रिया यथा॑भ्रिकाभिः५ प्रसरत्पयोधरः ॥१०९॥  
 (१) समुद्रपर्यन्तान् । (२) सेनाभिः । (३) व्याप्तोति स्म । (४) ध्वलगजैः ऐरावणेन वा  
 शोभिताभिः । ऐरावणो हस्तिमलः श्वेतगजोऽभ्रमुप्रियः । “प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावतावि-  
 वे”ति रघुवंशे । (५) वर्द्धलैः । (६) विस्तरन्मेघः ॥१०९॥
- हील० चतु० । शुभ्रगजशोभया शोभिताभिः सेनाभिश्चतुर्दिग्वयवान्व्याप्तोती(ति) स्म । यथा विस्तृतो मेघो  
 वर्द्धलैर्दिग्वयवान्व्याप्तोति ॥\*११०॥
- हीमु० अथैष॑ वेलातटतः समं॒ भट्ट॑वीकृतनीर॑धिनेमिनायकः ।  
 ४गभीररावैरु॑द्दरं ५भरन्भुवो रयः॒ पयोधेरिव यादसां॑ भरैः ॥११०॥  
 (१) पूर्वसमुद्रजलवेलातीरात् । (२) सैनिकैः साद्वंम् । (३) निवर्तते स्म । पश्चाद्वले ।  
 (४) भरतचक्री । (५) सेनागम्भीरशब्दैः । (६) पृथिव्या मध्यम् । (७) पूरयन् । शब्दाद्वैतमयां  
 भुवं कुर्वन् । (८) पयःप्रवाहः । (९) जलजन्तुनिकरैः ॥११०॥
- हील० अथेत्यनन्तरं गम्भीरस्वरैः पृथ्व्या मध्यं भरन् । पृथ्वीनाथो भट्टैः समं समुद्रतयन्त्रिवर्तते स्म । यथा  
 गर्जितैः पृथ्वीं पूरयन् जलधिप्रवाहो मत्स्यौधैः समं तटे आगत्य पश्चात्निवर्तते । एतावता सेना समुद्र  
 इव जातः(ता) ॥१११॥
- हीमु० स चक्रिणां॑ ४भारतभूमिभामिनीविशेषकानां॒( णां ) ५वृषभाङ्गजोऽग्रणीः३ ।  
 ४तदीयवसेव जिना॑वनीभुजामभूत्पुर॑श्रेणिनिषेवितक्रमः ॥१११॥  
 (१) भरतभूमिलक्ष्मीनां तिलकानां द्वादशचक्रिणाम् । (२) भरतः । (३) मुख्यः । (४)  
 भरततातो युगादिदेवः । (५) सामान्यकेवलिनां चतुर्विंशतितीर्थकृतां वा । (६)  
 अपरनिकरपरिचरितचरणः ॥१११॥

1. चतुर्दिशामव्ययमर्ण० हीमु० ।

- |       |   |
|-------|---|
| हील०  | स च० । भरतभूमितिलकायमानानां चक्रिणां मध्ये आद्यो भरतचक्र्यभूत् । यथा भरतपिता ऋषभनाथः जिनराजां मध्ये आद्यः अभूत् ॥११२॥   |
| हीसु० | य ३आदिमोद्वारकरे २जिनालयं ४व्यधापयन्मूर्द्धनि सिद्धभूभृतः । समग्रतीर्थेच्चपि ४सार्वभौमता५ममुष्य वक्तुं किमु ६हेमशेखस्म् ॥११२॥<br>( १ ) प्रथमोद्वारविधाता । ( २ ) अत एवं शत्रुञ्जयशिखरे ऋषभप्रासादम् । ( ३ ) कारयति स्म । ( ४ ) चक्रवर्त्तिताम् । ( ५ ) शत्रुञ्जयस्य । ( ६ ) सुवर्णोत्तंसम् ॥११२॥                                |
| हील०  | य आ० । यो भरतः श्रीशत्रुञ्जयपवति जिनगृहं निर्मापयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । एतस्य तीर्थेषु चक्रवर्त्तित्वं वक्तुं हेमशिखाम् ॥११३॥  |
| हीसु० | मृगाक्षि ! सो१पारककु१ल्पाकयोरै८मूल्यमाणिक्यविनीलरत्नयोः । ३स्वतात्मूर्तीर्भ( भ )रतेन कारिते दृशाविवैते४ भरतावनीश्रियः ॥११३॥<br>( १ ) सोपारकनाम पत्तनं कुल्पाकनाम नगरं, तयोः । ( २ ) महर्घ्यपद्मरागमरकतरत्नयोः । ( ३ ) ऋषभदेवप्रतिमे । ( ४ ) भरतक्षेत्रलक्ष्म्या नयने इव ॥११३॥   |
| हील०  | हे मृगाक्षि ! भरतेन अमूल्येन रक्तरत्नेन नीलरत्नेन [न] च स्वतात्मस्य ऋषभदेवस्य मूर्ती कारिते । तेऽद्यापि शत्रुञ्जयतलहट्टिकायां सोपारकं नाम पत्तनं, पुनः कुल्यपाकं नाम नगरं, तयोः पुरयोर्विषये विद्येते इत्याध्याहारः । उत्प्रेक्ष्यते । भा(भ)रतक्षेत्रक्षोणिलक्ष्म्या एतेऽप्रतिमे दृशौ नेत्रे इव ॥११४॥                           |
| हीसु० | तथा १चतुर्विंशतितीर्थकृदगृहं धराधवो१ष्टै८पदभूधमूर्द्धनि । २३व्यधापयै८त्त्वाश्वै४तजैनवेशमवत्तदद्यै५ यावदध्युवै६[ व ]द्वितिष्ठुते ॥११४॥<br>( १ ) तुल्यनासाग्रचतुर्विंशतिजिनप्रतिमं सिंहनिष्ठानामप्रासादम् । ( २ ) अष्टापदोपरि । ( ३ ) कारयति स्म । ( ४ ) शाश्वतचैत्यतुल्यम् । ( ५ ) अधुनापि । ( ६ ) ध्रुवतारक इव यस्तिष्ठति ॥११५॥ |
| हील०  | तथा० । तथा, पुनः स भरतभूपतिः कैलाशशैलशिखरे तुल्यनासाग्रस्वस्ववर्णप्रमाणपदासनाद्यङ्कितप्रतिमालङ्कृतसिंहनिष्ठानामप्रासादम् । अन्यतसुखोत्तेयम् ॥११५॥   |
| हीसु० | परान्परः१ कोटिजिनालयानयं हिरैण्यमाणिक्यमयानचीकरत् । जिनेन्द्रमूर्तीर्पि कोटिशस्तरीरिवाङ्ग्निनां४ संसृतिसिन्धुपातिनाम् ॥११५॥<br>( १ ) कोटिशः प्रासादान् । ( २ ) स्वर्णरत्नमयान् । ( ३ ) दण्डा इव । ( ४ ) संसारसमुद्रे पतनशीलानाम् ॥११५॥  |
| हील०  | परा० । अयं भरतचक्री कोटिमितान्॑ जिनालयान्कारयमास । पुनः कोटिमिता; प्रतिमा; कारयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । संसारसमुद्रपतनशीलानां मनुजानां नाव इव ॥११६॥  |

१. ॐ कल्पं हीमुः । २. व्यधापयत्साश्वतसार्ववेशमवत् तच्चैत्यमद्य ध्रुववद्यथास्थितम् हीलं । ३. ॐ श्वतसार्ववे० हीमुः ।

- हीमु० नृपोऽयमाद्योऽजनि १सङ्घनायकः कृशाङ्गि ! २शत्रुञ्जयरूप्यशैलयोः ।  
३क्षमाभृतां ४भोगभृतां च योऽग्रणीरभूत्युनः कुण्डलिनामि५वाधिभूः ॥११६॥  
( १ ) सङ्घपतिः ( २ ) शत्रुञ्जयाष्टापदयोः । ( ३ ) पृथ्वीधराणाम् । ( ४ ) भोगं सर्पशरीरं  
राज्यादिसुखं च तद्वाजाम् । ( ५ ) शेषनागः ॥११६॥
- हील० नृपो० । अयं भरतः शत्रुञ्जयाष्टापदयोः सङ्घपतिष्ठु(ः पु)नः पृथ्वीपतीनां भोगिनां मध्ये मुख्योऽभृत् ।  
यथा क्षमाभृतां गिरीणां भोगः सर्पकायस्तद्वृतां सर्पाणां मध्ये शेषः मुख्यो भवति ॥११७॥
- हीमु० असौ॑ २प्रकामप्रमदं ददानया॒ ३प्रसूतया॒ ४ध्यानसुधापयोधिना॑ ।  
शिवश्रिया “अग्रजयेव केवलश्रिया श्रितो॑ ।दर्पणिकानिकेतने ॥११७॥  
( १ ) अतिशयर्हषि सिद्धिं प्रकर्षेण मदनस्य प्रमोदम् । ( २ ) जनितया । ( ३ ) ध्यानरूपक्षीर-  
सागरेण । ( ४ ) वृद्धभगिन्या । ( ५ ) आदर्शगृहे । “यन्मतौ विमलदर्पणिकाया” मिति नैषधे  
॥११७॥
- हील० असौ० । ध्यानमेव क्षीराधिस्तज्जातया । पुनः प्रकाममत्यर्थम्, अथवा प्रकृष्टकामस्य स्वसुतस्य  
प्रमोदं ददानया केवललक्ष्या यः आदर्शिकाभुवने वृत्तः । उत्प्रेक्ष्यते । मोक्षलक्ष्या ज्येष्ठभगिन्येव  
प्रथमोत्पन्नत्वेन केवलज्ञानानन्तरं मोक्षप्राप्तेः ॥११८॥
- हीमु० दिग॒॑न्तवासं किम॑पास्य॒ ३काश्यपी॑विहारशीलैः ककुभां॑ ४पुरन्दरैः ।  
५तदष्टपट्टक्षितिपैरवाऽप्यताऽमुनेव सीमन्तिनि॑ ॆकेवलेन्दिरा ॥११८॥  
( १ ) दिशां प्रान्ते वसतिम् । ( २ ) त्यक्त्वा । ( ३ ) भूमीविवरणस्वभावैः । ( ४ ) दिगीशैः ।  
“आखण्डलो दण्डधरः शिखावान्यतिः प्रतीच्या इति दिग्महेन्द्रे” रिति नैषधे । ( ५ )  
भरतादारभ्याष्टपट्टधरैः राजभिः । ( ६ ) अवापे । ( ७ ) आदर्शगृहे । ( ८ ) केवलश्रीः ॥११८॥
- हील० दिग० । हे सीमन्तिनि ! तस्य भरतस्य अष्टपट्टक्षितिपैः भरतेनेव केवललक्ष्मीः प्राप्ता । उत्प्रेक्ष्यते ।  
दिशां प्रान्ते वासं त्यक्त्वा पृथ्व्यां विलासिभिः अष्टदिव्यालैः ॥★११९॥
- हीमु० ततोऽस्य॑ २सङ्घ्यातिगपट्टपद्मिक्तभिः॑ ३प्रपद्य॑ ४शत्रुञ्जयमूर्द्धिन॑ केवलम्॑ ।  
५महोदयश्रीः॑ ॆसमसेवि॑ ७भास्करैरिवोदयं॑ ८द्यौरुदयावनीधरम्॑ ॥११९॥  
( १ ) भरतपट्टधरैसङ्घ्यश्रेणिभिर्भूपैः । ( २ ) शत्रुञ्जये । ( ३ ) केवलज्ञानम् । ( ४ ) अधिगम्य ।  
( ५ ) मोक्षलक्ष्मीः । ( ६ ) भेजे । ( ७ ) यथा सूर्यैः । ( ८ ) उदयाचले उदयं प्राप्य गगनं सेव्यते  
॥११९॥
- हील० ततोऽष्टमपट्टधरदण्डवीर्यराजानन्तरं सङ्घ्यामतिगच्छन्त्यतिक्रामन्ति । तादृशाः पट्टपद्मियस्ताभिः  
सिद्धाचलशिखरे केवलज्ञानमासाद्य मुक्तिलक्ष्मीः संसेविता । यथा सूर्यैरुदयाचले उदयं प्राप्य द्यौरकाशं

सेव्यते ॥★१२०॥

- हीसुं० बभूवुरिक्षवाकुकुले सहस्रशः ॑सहस्रशोचिःसदृशा ॒महौजसा ।  
ततः क्षितीन्द्रा ॑जगदीहितावहा ४महेन्द्रशैले ॑सुरभूरुहा इव ॥१२०॥  
‘इति भरतदिग्विजयादिः ।
- ( १ ) सूर्यतुल्याः । ( २ ) स्फुरत्प्रतापैः । ( ३ ) विश्वाञ्छतविधायिनः । ( ४ ) मेरो । ( ५ )  
कल्पतरवः ॥१२०॥
- हील० ततोऽनन्तरं प्रतापेन सूर्यसदृशाः धरेन्द्रा अभूवन् । यथा जगत्कामितदाः कल्पवृक्षा भवन्ति ॥१२१॥
- हीसुं० ‘इदं वदन्त्यामर॑विन्दचक्षुषष्पुः पुरोऽथ तस्यामपरा॒॑निपस्तनी ।  
गिराननं॑ योजयति स्म कौतुकान्मरा॑लिकायामिव कीरकामिनी ॥१२१॥
- ( १ ) पूर्वोक्तं भरतदिग्विजय-चैत्यनिर्मापणादि । ( २ ) नाथीदेव्याः । ( ३ ) अन्या । ( ४ )  
घटस्तनी । ( ५ ) जगाद । ( ६ ) हंस्याम् ॥१२१॥
- हील० इदं० । कमलाक्ष्याः पुरः इदं वदन्त्यां तस्यां सत्यामन्या घटस्तनी वदति स्म । यथा हंस्यां वदन्त्यां  
सत्यां शुकी वक्ति ॥१२२॥
- हीसुं० मृगाक्षि ! पश्यामर॑सिन्धुसारणी त्वमध्वीर्थी॒॑सुमनोबनीमिव ।  
॑मयूखलेखामकर्णितारकामणीचका मे॑चकिमालिमण्डलाम् ॥१२२॥
- ( १ ) स्वर्गद्वैव कुल्या यस्याम् । ( २ ) पुष्पवाटिकाम् । ( ३ ) किरणश्रेणिरेव मकरन्दो  
विश्व( द्य )ते येषु तादृशास्तारका एव कुसुमानि यस्याम् । ( ४ ) गगनस्य श्यामलत्वमेव  
भृङ्गमाला यस्याम् ॥१२२॥
- हील० हे मृगाक्षि ! स्वर्नदीसारणी यस्यां तादृशी पुष्पवाटिकामिवाभ्रपद्धतिं पश्य । किंभूताम् ? । किरणश्रेणिरेव  
मरन्दो यस्यां, तारः पुष्पानि(णि) यस्यां, मेचकिमा गगनश्यामत्वमलिमण्डलं यस्यां, ताम् ॥१२३॥
- हीसुं० ॑मृगेन्द्रमध्ये ! ॑मृगयस्व तारकान्॒॑श्रमोदविन्दुस्तबकानिवा॑ङ्गके ।  
॑विभावरीकैरवचक्षुषोऽमुना॒॑निखेलयन्त्या॒॑दयितामृतांशुना ॥१२३॥
- ( १ ) पञ्चाननोदरि ! । ( २ ) पश्य । ( ३ ) परिक्लमजलकणनिकरान् । ( ४ ) शरीरे । ( ५ )  
रात्रिस्त्रियाः । ( ६ ) क्रीडयन्त्या । ( ७ ) भर्ता॑ चन्द्रेण ॥१२३॥
- हील० हे सिंहोदरि ! तारकान्पश्य । उत्प्रेक्ष्यते । अमुना दृश्यमानेन दयितेन चन्द्रेण सह क्रीडन्त्या॑  
रात्रिरामायाः॑ श्रमजलविन्दून्शरीरे पश्य ॥१२४॥

1. इति ऋषभदेव-भरतदिग्विजयादिः हील० ।

- हीसुं० १कुशेशायामोदिनि ! वीक्ष्यतामसौ शनैश्शनैष्य(ः प)॒ङ्गजकाननानिलः ।  
३त्वदाननामभोजजनुःप्रभञ्जनैर्जित॑ष्किः(ः कि)म॑भ्यर्णमुपैति सेवितुम् ॥१२४॥  
(१) कमलपरिमले । (२) कमलवनवायुः । (३) भवन्मुखपद्मजन्मानिलैः । (४) पार्श्वम् ॥१२४॥
- हील० हे कमलामोदिनी(नि) ! । पद्मिनीत्यर्थः । विलोक्यतां असौ स्पर्शानुमेयः नलिनवनवातः शनैः शनैः श्रीमत्याः अन्तिके आगच्छति । उत्प्रेक्ष्यते । तब वदनारविन्दाञ्जनुरुत्पत्तियेषां ताहशैर्वातैर्जितः सन्सेवितुम् ॥★१२५॥
- हीसुं० १करेणुकुम्भस्तनि ! पश्य दीप्यतेऽन्तिके ॒मणीकुट्टिमबिम्बतारकैः।  
३त्वदाननस्वामिसितांशुसेवनाकृते ॑नभस्तः किमु॑पागतैर्द्विह ॥१२५॥  
(१) कुम्भकुम्भपीनपयोधरे । (२) मणीनिबद्धप्राङ्गणप्रतिबिम्बतज्योतिर्णैः । (३) तब वदनमेव स्वस्वामिनो निजनायकस्य विधोः पर्युपासनाकृते । (४) गगनात् । (५) समागतैः । (६) त्वदगृहाङ्गणे ॥१२५॥
- हील० हे करेणुकुम्भकुचे ! यच्छ्रीमत्समीपे रत्ननिबद्धप्राङ्गणे बिम्बानि येषां ताहशैस्तारकैर्दीप्यते । तत्वं पश्य । उत्प्रेक्ष्यते । तब मुखमेव स्वामी चन्द्रस्तस्य सेवां कर्तुं गगनादिह त्वदगृहाङ्गणे समेतैरिव ॥१२६॥
- हीसुं० १त्वदीयवापीतपनास्तमुद्रिताप्बुजन्मकोशव्यसनानुपातिनः ।  
३क्षपाक्षयायौ॑कृतिमन्त्रवर्णकानिव ॑द्विरेफा॑गणयन्ति गुञ्जितैः ॥१२६॥  
(१) तब क्रीडादीर्घिकायां सूर्यास्तमनेन निर्मीलितकमलमुकुले यदव्यसनमापत् कोशान्तर्दुः-खस्थितिविपत्तिस्तामनुलक्ष्यीकृत्य ज्ञावैव पद्ममुद्रणायां रात्रौ कोशान्तर्दुःखेन स्थातव्यमेवेति विचार्यैव पतन्तीत्येवंशीलाः । (२) रात्रिविरामाय । (३) औंकृतिरूपाणि मन्त्राक्षराणि । (४) भृङ्गः । (५) गणयन्ति ॥१२६॥
- हील० त्वदी० । हे स्वामिनि ! तब वाप्यां सूर्यास्तेन निर्मीलितकमलकोशेषु व्यसनमनुलक्षीकृत्य पतनशीलाः । पतित्वा स्थिता इत्यर्थः । भ्रमरा गुञ्जितैः कृत्वा रात्रिक्षयाय ऊँकारमन्त्रवर्णनाणयन्ति जपन्ति इव । ऊँकारमन्त्रादिः सुखं दत्ते इति ॥१२७॥
- हीसुं० १नभःश्रियास्तारकमौक्तिकस्त्रजष्किः॑(ः कि)मेणनाभीशितिमाङ्गनायकम् ।  
दृशा॑विनिर्दिश्य भनि॑शीथिनीपतिं परा ददे कापि गिरं मृगेक्षणा ॥ १२७॥  
(१) गगनलक्ष्याः । (२) तारका एव मौक्तिकमाला-तस्याः । (३) कस्तूरिकायाः श्यामत्वेनाङ्गितमध्यमणिः । (४) दर्शयित्वा । (५) चन्द्रम् ॥१२७॥

1. तोऽन्तिकैः किं समुपैति० हीमु० । 2. शशाङ्गमादरात्० हीमु० ।

- हील० नभः । अन्या गिरमाददे । वदति स्मेत्यर्थः । किंकृत्वा ?। नेत्रेण चन्द्रं दर्शयित्वा । उत्प्रेक्ष्यते । गगनलक्ष्म्या निर्मलमुक्ताहारस्य कस्तूरिकायाः शितिमा श्यामत्वमङ्गे ओडे यस्य तादृशो नायको मध्यमणिरिव ॥\*१२८॥
- हीसु० 'निजाक्षिलक्ष्मीहसिताब्जखञ्जने!ऽधरीकृतः<sup>२</sup> सुभ्रु! तवास्यविभ्रमैः ।  
 'विवर्णताश्लेषिमुखं स्त्रपाभरादिवास्ततां याति ॑तमस्विनीपतिः ॥१२८॥  
 ( १ ) निजनयनशोभया भर्त्सितकमलखञ्जरीटे । ( २ ) हीनीकृतः । ( ३ ) वदनशोभाभिः ।  
 ( ४ ) विच्छायताया आश्लेषो यत्र तादृक् मुखं यस्य । ( ५ ) लज्जातिशयात् । ( ६ ) चन्द्रः ॥१२८॥
- हील० हे निजचक्षुःशोभाहसिताब्जखञ्जने ! हे सुभ्रु ! त्वमुखविभ्रमैर्हीनीकृतश्चन्द्रः लज्जया विच्छायताया आश्लेषो यत्र, तादृग्मुखं यस्य तादृशः सन्नस्ततां याति । १२९॥
- हीसु० 'निजास्यदासीकृतशारदोदयतिसतद्युते! ॒भृङ्गिततारतारके ।  
 'विनिद्रतां वीक्ष्य तवेक्षणाम्बुजे<sup>४</sup> ॑ह्रियेव ॑निद्राति ॑कुमुद्वनं वने ॥१२९॥  
 ( १ ) स्ववदनकिङ्करीकृतशारदीनोद्धच्छच्चन्द्रे । ( २ ) भृङ्गविवाचरिते । प्रधानकनीनिके यस्याः ।  
 ( ३ ) विकाशताम् । ( ४ ) नयनकमले । ( ५ ) लज्जयेव । ( ६ ) सङ्कुचति । ( ७ ) कैरवकाननम् ॥१२९॥
- हील० हे निजास्यदासीकृतचन्द्रबिम्बे ! भृङ्गविवाचरिते तारे निर्मले तारिके कनीनिके यत्र तादृशे तव लोचनकमले विकस्वरत्वं दृष्ट्वा वने कैरववनं निद्राति-सङ्कुचितम् । यदा कमलं विकसति तदा कुमुदं सङ्कुचति, इति स्थितिः ॥१३०॥
- हीसु० कृशाङ्गि ! ॑राजन्यपयातवैभवेऽपराश्रये ॑शोच्यदशावशंवदे ।  
 शनैः शनैस्तारगणा ॑इवानुगा विभावयाऽध्रे ॑विरलीभवन्त्यमी ॥१३०॥  
 ( १ ) चन्द्रे गतलक्ष्मीके सति । ( २ ) अन्या स्त्री आश्रयो यस्य, पश्चिमायां च गते । ( ३ ) शोचयितुं योग्यामवस्थां प्राप्ते । ( ४ ) सेवका इव । ( ५ ) स्तोका भवन्ति ॥१३०॥
- हील० हे कृशाङ्गि ! राजनि चन्द्रे गतश्रीके । पुनरपेषां सश्रीकाणां अपरस्यां पश्चिमायामाश्रयो यस्य तस्मिन् । पुनः शोच्यावस्थां प्राप्ते सेवका इव ताराः स्तोका जातास्तत्वं विभावय-पश्य ॥१३१॥
- हीसु० ॑तनूभवत्तारकतारभूषणा ॑प्रपूर्णपाथोरुहबन्धुगर्भिणी ।  
 ॑हरेहरित्पाण्डु॑रिमान( ४ )मानने बिभर्ति ॑मत्तेभगतेव ॑सुस्मिते ॥१३१॥  
 ( १ ) स्तोकीभवन्ति तारका एव तारभूषणानि मौक्तिकाभरणानि यस्याः । ( २ ) प्रपूर्ण उदय-समयोन्मुखः सूर्य एव गर्भोऽस्यस्याः । ( ३ ) पूर्वा दिग् । ( ४ ) पाण्डुरताम् । ( ५ ) युवतीव । ( ६ ) शोभनहसिते ॥१३१॥

1. प्रपूर्णपाथोरुहबन्धुगर्भिणी तनूभवत्तारकतारभूषणा हीम० ।

- हील० सूर्यगम्भिणी । पुनः स्तोकनक्षत्राभरणा पूर्वा दिग् वशेव पाण्डुरतां धते ॥\*१३२॥
- हीसु० <sup>१</sup>तमस्विनीशेऽस्तमिते प्रकाशतां<sup>२</sup> विलोकयास्ये दधतेऽखिला दिशः ।  
<sup>३</sup>कलङ्किदोषाकरुदसङ्ग्निनां वहन्ति केन <sup>४</sup>व्यसनोदये मुदम् ॥१३२॥  
(२) चन्द्रे । (२) प्रकटताम् । (३) कलङ्कवतां अपवादभाजां, निर्गुणानां, रौद्रं चण्डं  
श्रितानां, पाप्वतीपतीनाम् । (४) आपद आविर्भवे ॥१३२॥
- हील० चन्द्रेऽस्तमितेऽखिला दिशः प्रकाशं बिभ्रति, तत्त्वं पश्य । अपवादिनामपगुणवतां चन्द्र-  
सङ्ग्निनामापत्प्रकटी[भावे] के मोदं न वहन्ति ॥१३३॥
- हीसु० <sup>५</sup>इतः श्रिया<sup>६</sup> निर्जितविश्वयौवते ! <sup>७</sup>समुज्जिहानः <sup>८</sup>सविता <sup>९</sup>निपीयताम् ।  
किमु स्फुरद्वाग्यभरो <sup>१०</sup>विभावरीवियुज्यमानद्विजसन्ततेरसौ ॥१३३॥  
(१) अस्मिन्याश्वे । (२) वपुर्लक्ष्म्या पराजितजगद्युवतीजनव्रजे ! । (३) उदयन् । (४)  
सूर्यः । (५) सादरमवलोक्यताम् । (६) रात्रौ वियोगं प्राप्नुवन्त्याः द्विजानां-पक्षिणां श्रेण्याः  
चक्रवाकपद्मक्ते: ॥१३३॥
- हील० इतः० । हे प्रियानिर्जितविश्वयुवतीसमूहे ! । इतः अस्मिन्याश्वे प्राच्यां दिशि अभ्युदयन् सूर्यस्त्वया  
सादरमवलोक्यताम् । किमुत्प्रेक्ष्यते । विभावर्या वियुज्यमानानां वियोगं प्राप्नुवतां द्विजानां-पक्षिणां  
अर्थाच्चक्रवाकाकानां सन्ततेः श्रेण्या असौ सूर्यरूपः स्फुरन्प्रकटीभवन्भाग्यभर इव ॥१३४॥
- हीसु० निर्शी( रि)त्वरीभिर्घटुपीभिरु<sup>११</sup>ल्लसत्परोजकोशात्सर्विख ! मञ्जु गुज्ज्यते ।  
किं <sup>१२</sup>गायनीभिर्धर्वलस्य<sup>१३</sup> वासर्णश्रियाब्जबन्धोः<sup>१४</sup> करपीडनोत्सवे ॥१३४॥  
(१) निर्गमनशीलाभिः । (२) भ्रमरीभिः । (३) विकसत्कमलमुकुलात् । (४) श्रवणसुखकृ-  
द्यथा स्यात्तथा गायनकर्त्तीभिर्गान्धर्वी[भि]र्वा । (५) धवलमङ्गलस्य गानकर्त्त्वः । (६)  
दिनलक्ष्म्या । (७) सूर्यस्य । (८) पाणिग्रहणमहोत्सवे ॥१३४॥
- हील० निरि० । हे सखि ! विकसत्कमलमुकुलान्निर्गमनशीलाभिर्घटमरीभिर्गुज्ज्यते । किमुत्प्रेक्ष्यते । सूर्यस्य  
दिनलक्ष्म्या सह पाणिग्रहोत्सवे धवलमङ्गलगायनीभिः ॥१३५॥
- हीसु० <sup>१५</sup>हले ! <sup>१६</sup>हिमाम्भष्य(: प)तिं विहङ्गमव्याहारलीलायितवल्लिपल्लवे ।  
<sup>१७</sup>गायन्मृगाक्षीदशनच्छदे <sup>१८</sup>द्विजज्योत्सनास्मितश्रीरिव <sup>१९</sup>लक्ष्यते क्षणम् ॥१३५॥  
(१) सखि ! । (२) हिमजलम् । (३) पक्षिणां कूजितानां गिरां लीलया आचरितं यत्र  
तादृग्लतायाः किसलये । (४) गानं कुर्वत्या युवत्या अधरे । (५) दन्तचन्द्रिकाकलित-  
हसितलक्ष्मीः । (६) दृश्यते ॥१३५॥
- हील० हे हले ! पक्षिणां भाषितवचनानां लीलयाचरितं यत्र । तादृशे वल्लिपल्लवे पतिं हिमाम्भः दृश्यते ।  
यथा रामाधरे दन्तकान्तिकलितस्मितशोभा दृश्यते ॥ १३६ ॥
- हीसु० <sup>२०</sup>हैमाब्जनिर्यासपिशङ्गितैः सि<sup>२१</sup>तच्छदैर्वतंसैरिव भान्ति <sup>२२</sup>पल्वलाः ।  
क्रौञ्चैरपि क्रेदिःक्रयते <sup>२३</sup>कजाश्रये <sup>२४</sup>श्रियाः <sup>२५</sup>प्रवेशे किमु <sup>२६</sup>तूर्यनिस्वनैः ॥१३६॥

( १ ) कनककमलपरागपिङ्गीभूतैः । ( २ ) हंसैः । ( ३ ) शेखरैरिव । ( ४ ) सरांसि । ( ५ ) पद्माकरे  
पद्मसद्यनि वा । ( ६ ) लक्ष्म्याः । ( ७ ) प्रवेशोत्सवे । ( ८ ) तूर्यशब्दैः, वादित्र- निर्घोषैः ॥१३६॥

हील० है० । कनकाम्बुजसेन पीतैर्हसैः सरांसि भान्ति । कौञ्जैरपि केङ्गारको विधीयते । उत्प्रेक्ष्यते । पद्मगृहे  
लक्ष्मीप्रवेशे वादित्रनिर्घोषैः ॥ १३६ ॥

हीसु० वाता वान्ति १स्मितकजसरिद्वारि २कल्लोलयन्तो  
मन्दं३मन्दं ४स्खलितगतयः ५स्त्रैणवक्षोजशैलैः ।  
६जातिस्त्वेहात्किं७मिह मिलितुं ८कम्पितैराननाना-  
९माजानेया अपि १०हरिह्याना११ह्यन्ते विभाते ॥१३७॥

( १ ) विकसितानि कमलानि यस्यां तादृग्नद्या जलम् । ( २ ) तरङ्गयुक्तं कुर्वन्तः । ( ३ ) शनैः  
शनैः । ( ४ ) भग्नं गमनं येषाम् । ( ५ ) युवतीवजविकशुकितकुचाचलैः । ( ६ ) अश्वानां  
ज्ञातेः प्रेष्णाः । ( ७ ) भुवि । ( ८ ) वक्त्रवेलैः । ( ९ ) कुलीनाश्वाः । ( १० ) इन्द्रस्य रवेवा  
तुरगान् । ( ११ ) आकारयन्ति ॥ १३७ ॥

हील० वाता० । विकस्वरकमलसहितनदी[जलं] कल्लोलयन्तः । एतेन शीतसुरभित्वम् । पुनः  
स्त्रीसमूहकुचाचलैर्मन्दा गतिर्येषां, तादृशा । एतेन मन्दत्वम् । वाता: प्रभाते वान्ति । पुनः आजानेया:  
कुलीनाश्वाः इह पृथिव्यां मिलितुं मुखकम्पनेन सूर्याश्वानाकारयन्तीव ॥ १३८ ॥

हीसु० १चन्द्रानने॒।२३मन्दमरन्दबाष्पा॑ कुमुद्वती॒ ४मुद्रितनेत्रपत्रा ।  
५विधोर्वियोगादिव॑ कोशमध्यावरुद्धगुञ्जन्मधुपै॒र्विरौति ॥ १३८ ॥

( १ ) शशिमुखि ! । ( २ ) बहुलमकरन्दप्रेष रोदनजलं यस्याः । ( ३ ) कैरविणी ( ४ )  
निर्मीलितलोचनसद्वप्तर्णा । ( ५ ) शशिविरहतः चन्द्रास्तमनात् । ( ६ ) मुकुलमध्ये बद्धैर्मध्य  
एव स्थितैः शब्दायमानैः भृङ्गैः । ( ७ ) रोदिति ॥ १३८ ॥

हील० हे चन्द्रानने ! बहुलमकरन्द एव नेत्राम्बु यस्याः । पुनर्निर्मीलिते नेत्रे इव पत्रे यस्यास्तादृशी कैरविणी  
गुञ्जदध्रमरैश्चन्द्रवियोगाच्छब्दायते ॥ १३९ ॥

हीसु० १०उपगतमिहान्यस्माद॑द्वीपा॒त्प्रगेऽ॑धिपर्ति त्विषा-  
॒मनुरतिपरीरम्भारम्भप्रसारिकरं पुरः ।

॑विकचवदना॒ ११राजीविन्यः॒ स्फुटोद्रूतकण्टका  
॒१२नलिननयनैरा॑लोकन्ते वशा इव॑१३वल्लभम् ॥ १३९ ॥

३इति सखीकथितरात्रिविग्रामविभातदिनकरोदयः ॥

( १ ) आगतम् । ( २ ) द्वीपान्तरात् । ( ३ ) प्रभाते । ( ४ ) भास्करम् । ( ५ ) अनुरागेणालिङ्गन-  
प्रारम्भाय प्रसारिताः हस्ताः किरणाश्व येन । ( ६ ) हसितमुखाः । ( ७ ) पद्मिन्यः । ( ८ ) प्रकटं

1. आगमने गमनार्थाः समभ्युपाङ्गम्यः पराः कथिताः । इति हीलप्रति पाश्वे टिं० । 2. नयनकमलै० हीमु० ।

3. इति विभातदिनकरोदय वर्णनम् हील० ।

प्रकटीभूतकण्टका रोमाञ्छस्य यस्याः । (९) कमललोचनैः । (१०) पश्यन्ति । (११) भर्तारम् ॥१३९॥

हील० उप०। प्रगे-प्रातरन्यद्वीपादागतं पुरः-अग्रे अनुरागेणालिङ्गनार्थं प्रसारिणः किरणः हस्ताश्च यस्य । तं सूर्यं विकसितमुखाः उद्गतरोमहर्षाः पद्मिन्यः नेत्रतुल्यैर्विलोकन्ते ॥★१४०॥

हीसुं० १आनन्दाद्वयवादमेदुरमना मध्ये सखीनामिति  
२प्रारब्धाभिनवोक्तियुक्तिरचनावान्देवताश्रीजुषाम् ।

३देवीनां ४जयवाहिनीव सुमनोवल्लीव ५वा वीरुधां  
ताराणां ६विधुमण्डलीव ७महिला ८कामप्यवाप ९श्रियम् ॥१४०॥

इति पण्डितदेवविमलगणि विरचिते हीरसुन्दरनाम्नि महाकाव्ये कुंरा-नाथीगजस्वप्न-स्वप्नजागरिका-सखीगोष्ठ्यादिवर्णनो नाम द्वितीयस्सर्गः ॥

(१) प्रह्लादस्याद्वैततया पुष्टमानसी । (२) प्रक्रान्तनवीनवार्तायुक्तिसन्दर्भैः शारदाशोभा-भाजाम् । (३) इन्द्राणी । (४) कल्पलता वल्लीनाम् । (५) चन्द्रबिम्बम् । (६) नाथी । (७) अनिर्वचनीयाम् । (८) लक्ष्मीम् ॥ १४० ॥

॥ इति द्वितीयः सर्गः ॥

हील० आनन्दाधिक्येन पुष्टचेताः सा सरस्वतीशोभाभाजां सखीनां मध्ये स्थिता सती अनिर्दिष्टवचनीयां शोभां प्राप । यथा देवीनां मध्ये इन्द्राणी, वल्लीनां मध्ये कल्पवल्ली, ताराणां मध्ये चन्द्रमण्डलीव । ताय पुंखीलिङ्गे । मण्डलशब्दस्त्रिलिङ्गे ॥ १४१ ॥

हील० →१ प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः  
श्रीमत्कोविदसिंहसी( सिं )हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।  
तद्ब्राह्मी ऋमसेविदेवदिमलव्यावर्णिते हीरयु-  
क्सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गो द्वितीयोऽभवत् ॥ १४२ ॥

इति पं. श्री सीहविमलगणिशिष्यं पं. देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये कुंरा-नाथी-गजस्वप्न-तज्जागरिका-सखीकथित-भरतदिग्विजयादि-रत्नविराम-दिनकरोदयवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः ॥

इति पं. देवविमलगणिव्यावर्णिते हीरसौभाग्याभिधे महाकाव्ये हीरविजयसूरिचरिते द्वितीयः सर्गः अभवत्-जातः ॥ १४२ ॥

॥ इति द्वितीयः सर्गः ॥

ऐं नमः ॥

अथः तृतीयः सर्गः ॥

- हीसुं० १कल्पद्रुमाङ्कुरमिवामरशैलभूमी रत्नं विदूरधरणीव ४घनस्वनोत्थम् ।  
२अन्तर्मदोदयमिवेभकपोलपाली नाथी ततोऽवहत दोहदलक्षणं सा ॥ १ ॥
- ( १ ) कल्पतरुप्ररोहम् । ( २ ) मेरुमही । ( ३ ) वैदूर्यरत्नम् । ( ४ ) विदूरशैलावनिः । ( ५ ) मेघगज्जाश्रवणोद्भूतम् । 'प्रावृट्काले जल[ द ]गर्जितश्रवणात् विदूरशैलभूमी वैदूर्यरत्नशिलाका उद्भवतीति श्रुतिः' । ( ६ ) मध्ये दानवारिण उद्भवम् । ( ७ ) गजेन्द्रगण्डस्थलम् । ( ८ ) गर्भम् ॥ १ ॥
- हील० कल्प० । ततः स्वप्नदर्शनानन्तरं नाथी दोहदलक्षणं गर्भं धते स्म । यथा मेरुमही सुरतरुप्ररोहं वहते । पुनर्यथा विदूरपर्वतपृथ्वी मेघगर्जारवश्रवणसमुदूरं वैदूर्यं नाम रत्नं बिर्भति । यथेभग्नस्थलीमध्ये मदानां दानं जलानामुदयं प्रादुर्भावं धते ॥ १ ॥
- हीसुं० १श्रीमन्महेष्यपुरुहूतपयोरुहाक्षी नीराज्यमानवदना शरदिन्दुलक्ष्म्या ।  
२आसेदुषी शशिमुखी सुषमां दधाना गर्भं पलालपिहितेक्षुशिशुं क्षमेव ॥ २ ॥  
३शुक्तीरसोद्भवमिवाम्बु धनावलीव माणिक्यपदिक्तमिव शैवलिनीशवेला ।  
४विद्याविशेषमिव विज्ञतितजिनेन्द्र-बिम्बं व्रजं जिननिकेतनमालिकेव ॥ ३ ॥  
५रक्ताङ्कपदिक्तरिव कृष्णालताप्ररोह-मात्रेयदृष्टिरिव वल्लभमौषधीनाम् ।  
६धात्री निधानमिव नन्दनमेदिनी च मन्दारभूमिरुहमादिगुहेव सिंहम् ॥ ८ ॥  
इति गर्भाधानम् । त्रिभिर्विशेषकम् ।
- ( १ ) लक्ष्मीकलितव्यवहारिशक्तकमलाक्षी नाथी नामा । ( २ ) आरात्रिकं क्रियमाणवक्त्रया ।  
( ३ ) शरत्कालसम्बन्धिविधुश्रिया । ( ४ ) प्रासवती । ( ५ ) नाथी । ( ६ ) सातिशायिनी शोभाम् । ( ७ ) काण्डरहिततृष्णारच्छादितः बालेक्षुः इक्षुप्ररोहः । "पलालजालैः पिहितः स्वयं हि प्रकाशमासादयतीक्षुडिम्बं" इति नैषधे ॥ २ ॥
- ( १ ) मौक्तिकम् । ( २ ) जलम् । ( ३ ) मेघमाला । ( ४ ) रत्नमालाम् । ( ५ ) समुद्रवेला ।  
( ६ ) चेतश्शमत्कारकारिणी विद्याम् । ( ७ ) पण्डितराजी । ( ८ ) प्रासादश्रेणी ॥ ३ ॥
- ( १ ) वव( वि )द्रुममालिका । ( २ ) कृष्णावल्लभप्ररोहम् । ( ३ ) अत्रिनामो मुनेर्नयनम् । ( ४ ) शशिनम् । "अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेत्रिव द्यौः" । ( ५ ) भूमी । ( ६ ) नन्दनवनावनिः ।  
( ७ ) मन्दारनामानं कल्पद्रुमम् । ( ८ ) गिरिकन्दण ॥ ८ ॥

1. ओबिम्बः हीमु० । 2. ओराशिं० हीमु० । 3. सभासबिम्बं प्रासादभूमिरिव वायुसखं शमीव० हीमु० ।

4. शैलगुहेव सिंहं कंसारिनाभिकजकोशकुटीव शंभुम् हीमु० ।

- |       |  |
|-------|--|
| हील०  | श्रीम० । श्रीमन्तो ये महेभ्यास्तेषु इन्द्रस्य कमलनयना नाथी पत्नी सुषमां सातिशायिर्नीं शोभामासेदुषी प्राप्तवती । लेखे इत्यर्थः । किंभूता ? चन्द्रानना । किं क्रियमाणा ? । शरत्कालीनचन्द्रमण्डलैगरात्रिकं क्रियमाणं वदनं यस्याः । पुनः किं कुर्वाणा ? । गर्भं दधाना । यथा धान्यत्वाग्भिराच्छादितं इक्षुप्रग्रहं धरा धते । यथा शुक्तिका मुक्ताफलम् । यथा मेघमाला जलम् । नदीपतेवेला रत्नमण्डलीमिव । पण्डितसभा विद्याविशेषं रहस्यमुपनिषदं वां । यथा जैनविहारभूमी आसस्यार्हतो बिम्बं प्रतिमाम् । यथा शमी ‘खेजडी’ तरुवायुसखमग्निम् । यथा विद्रुममालिका कृष्णलतायाः ‘कालीवेलि’ नाम्या: अङ्गरम् । अत्रित्रैषिसम्बन्धिनी दृक् । औषधीपतिम् । धात्री निधानम् । शैलगुहा सिंहम् । यथा कंसारे: कृष्णस्य नाभिस्तत्रोद्भूतं यत्कमलं तस्य कोश एव कुटी पर्णाच्छादितगृहं ब्रह्माणं धते । तद्वत् ॥★२-३-४॥ |
| हीसु० | ‘एकातपत्रमिह ३यत्तनुजो ३विधाता ४साप्राज्यमिन्दु॒विशदं जिनशासनस्य । ५शीतांशुमण्डलमितीव ६सितातपत्री-कर्तु॒स्वमूर्धनि तया ७स्यृह्यांबभूवे ॥५॥<br>( १ ) एकछत्रम् । ( २ ) यस्याः पुत्रः । ( ३ ) करिष्यति । ( ४ ) सप्त्याग्राज्यम् । ( ५ ) चन्द्र इव निर्मलम् । ( ६ ) चन्द्रबिम्बमेव । ( ७ ) श्वेतच्छ्रवं कर्तुम् । ( ८ ) काङ्क्षिक्षतम् ॥५ ॥  |
| हील०  | एका० । यस्याः सुतः । इह जगति जिनशासनराज्यं एकछत्रं विधास्यति । इति कारणादेव तया चन्द्रमण्डलं छत्रीकर्तुं वाञ्छितम् ॥५॥   |
| हीसु० | प्रेम्णा गुणाननु॑गुणीकृतवेणुवीणा ३एणीदृशः ४सुमनसाम॑दसीयसूनोः । गास्यन्ति ताभिरिति कीव ( किन्तु ? )तया विधातुं ५सौहार्दमम्बुजदृशा हृदि काम्यते स्म ॥६॥<br>( १ ) स्वध्वनिसदृशीकृतवंशवीणाः । ( २ ) स्त्रियः । ( ३ ) देवानाम् । ( ४ ) नाथीपुत्रस्य । ( ५ ) मैत्र्यम् ॥६॥   |
| हील०  | प्रेम्णा० । अस्याः सुतस्य गुणान् आत्मस्वरसदृशीकृतवंशवीणाः देवाङ्गना गास्यन्ति । इति कारणादेव ताभिर्देवीभिः सह सख्यं कर्तुं तया वाञ्छ्यते स्म ॥६॥   |
| हीसु० | ६शौण्डीर्यचड़क्रमणवारिमदानलीला-श्रीभिर्यतो मम सुतस्तमधो॑विधाता । ७आरोढुमन्तरिति ८जाम्भनिशुम्भकुम्भ-कुम्भस्थले किमनया हृदि का॑इक्ष्यते स्म ॥७॥<br>( १ ) शूरत्वगतिमञ्चिमदानं मदो विश्राणनं च तस्य लीलाग्राभिः । ( २ ) ऐरावणम् । ( ३ ) अधो विधाता अधो नीचैः करिष्यति । ( ४ ) अध्यासितुम् । ( ५ ) ऐरावणकुम्भस्थलोपरि ॥७॥   |
| हील०  | शौण्डी० । यतः यस्मात्कारणाम्बे पुत्रः पराक्रमगतिचारुतामदशोभाभिस्तमैरावणमधः करिष्यति । इति कारणादिन्द्रहस्तिकुम्भस्थले चटितुं अनया अन्तःकरणे काम्यते स्म ॥★७॥   |

हीसु० ३यत्तत्सुतो ३मधुरिवाव॑निजव्रजानां कर्त्ता ४यशःसुरभिदिग्वलयः ५प्रबोधम् ।  
प्रीतिं ६प्रणोतुमृतुना किमिति ७स्मितास्या ८ग्रीष्माग्रजेन सह ९कामयते स्म चित्त  
( ते ) ॥८॥

( १ ) यस्याः पुत्रः । ( २ ) वसन्त इव । ( ३ ) अवनिजा नरा द्रुमाश्च । "भुविदिविजमहिय" मितिवत् । ( ४ ) कीर्त्त्या सुगन्धीकृतदिग्विभागः । ( ५ ) प्रतिबोधं विकाशं च । ( ६ ) कर्तुम् । ( ७ ) उष्णकालात्प्रथमवृत्तेन ऋतुना वसन्तेनेत्यर्थः । ( ८ ) हसितवदना नाथी । ( ९ ) वाञ्छति स्म ॥८॥

हील० यत्त० । यशोभिः सुगन्धं दिग्वलयं यस्मात्तादृशस्तस्याः सुतः अवनौ जाता जना द्रुमाश्च तेषां व्रजानां प्रतिबोधं विकाशं वा करिष्यति । इति कारणादेव सा वसन्तेन सह प्रीतिं कर्तु ईहते स्म ॥८॥

हीसु० तस्याः सुतो रविरिवाम्बुजपाणिविश्व-चक्षुः ३प्रबोधकरकृत्ततमा ३महस्वी । भावी यतः किमिति पद्मदूशा च काङ्क्षे ४तन्मण्डलं ५स्वसदनेऽनिशमु०ज्जहानम् ॥९॥

( १ ) कमलमाकृत्या हस्ते यस्य । लोकस्य धर्मप्रकाशकत्वेन चक्षुरिव चक्षुः । ( २ ) प्रतिबोधविधाता ध्वस्तपापः । ( ३ ) प्रतापवान् । रविस्तु पद्महस्तः जगच्चक्षुः प्रकाशकरः दलितान्धकारः कान्तिमान् । ( ४ ) रविबिम्बम् । ( ५ ) स्वगृहे । ( ६ ) निरन्तरम् । ( ७ ) उदयन्तम् ॥९॥

हील० तस्या० । यस्याः सुतः सूर्यवत् अम्बुजे इव पाणी वा आकृत्या कमलं पाणौ यस्य । तथा जगच्चक्षुस्तथा प्रतिबोधकरः । दलिताज्ञानान्धकारः । प्रतापवानुत्सववान् भविष्यति । किं इतीव तया सूर्यबिम्बं स्वगृहे उदयमानं वाञ्छितम् ॥९॥

हीसु० स्वः० सानुमन्तमधिरोद्गुम०थात्मदर्शी०कर्तु विधुं पु०नरपांपति०मुत्तरीतुम् ।  
४सिद्धालयेष्वपि०सभाजयितुं जिनान्सा ७गर्भानुभावत इयेष ८यथार्हदम्ला ॥१०॥  
इति दोहदाः ।

( १ ) मेरुम् । ( २ ) दर्पणं विधातुम् । ( ३ ) समुद्रम् । ( ४ ) तरीतुम् । ( ५ ) शाश्वतचैत्येषु । ( ६ ) पूजयितुम् । ( ७ ) गर्भप्रभावात् । ( ८ ) जिनजननीव ॥१०॥

हील० स्व० । मेरुमारेद्गुम् चन्द्रं दर्पणं कर्तुम् । समुद्रं तरीतुम् । पुनः शाश्वतार्हत्प्रसादेषु जिनान्पूजयितुं गर्भानुभावात्सा काङ्क्षति स्म । यथा जिनजननी शुभदोहदं ईहते ॥ १० ॥

हीसु० १तदोहदप्रकरपूर्त्तिविधौ ३सुपर्व-वल्ल्या ४विधेरिह ४तथा ५स्पृह्या ६व्यलासि ।  
७श्रेयोवतामिव ततिष्य०( : प )रिपूर्णकामा जज्ञे यथा०नतिचिरादियमाय०ताक्षी ॥११॥

( १ ) तस्या दोहदनिवहानां पूर्णीकरणप्रकारे । ( २ ) कल्पवल्लीतुल्यया । ( ३ ) विधातुः । ( ४ ) तेन प्रकारेण । ( ५ ) वाञ्छया । ( ६ ) विलसितम् । प्रवृत्तम् । ( ७ ) पुण्यवताम् । ( ८ ) सम्पूर्णीभूताभिलाषाः । ( ९ ) स्तोककालेन । ( १० ) प्रसृतिप्रमाणे अक्षिणी यस्याः ॥११॥

हील० तद्वै०। इह जगति तस्या दोहदपूर्णीकरणे कल्पलतातुल्यया विधातृवाञ्छया तथा विलसितं यथेयं त्वरितं पूर्णाभिलाषा जाता । यथा पुण्यवतां श्रेणी पूर्णाभिलाषा भवति ॥११ ॥

हीसु० सा॑ दोहदोदयकृशीकृततत्रपूर्ति॒-संप्रापितोपचयसञ्चरचारिमश्रीः ।  
भाति स्म॑ फाल्युनविपत्रितचैत्रसान्द्री॒-भूतावनीरुह॑वती विपिनस्थलीव ॥१२॥  
( १ ) सा नाथी पूर्व दोहदानामापिविर्भावेन दुर्बलीकृता पश्चात् तेषां पूर्त्या पूर्णीभवनत्वेन संप्रापिता पुष्टिर्यस्मिस्तादृशस्य देहस्य चारुत्वस्य श्रीर्यस्याः । ( २ ) फाल्युनमासेन पत्वरहिताः । कृताध्य( : प )शाच्चैत्रमासेन पत्र-पुष्प-पल्लवैर्णिवडा जाता ये द्रुमास्ते विद्यन्ते यस्यां सा ॥१२॥

हील० सा दो०। दोहदेन दुर्बलीकृता पश्चात्तपूरणेन प्राप्तोपचयस्य देहस्य मनोहरतायाः श्रीर्यस्यां तादृशी सा भाति स्म । यथा फाल्युनेन विगतानि पत्राणि येऽयस्ते विपत्तीः । विपत्रान्करोतीति विपत्रयति । विपत्रयन्ते स्मेति विपत्रिताः कृताः चैत्रेण पल्लविता वृक्षाणां ततिर्यस्यां तादृशी वनी भाति ॥१२॥

हीसु० 'निस्तीर्य दोहदभवार्त्तिम॑थैणचक्षु॒-मेंद॑स्वितामवयवेषु बभौ वहन्ती ।  
'फु॒ल्लद्वलैरुपचिता नव॑शारदीन॒-नालीकिनीवदति॑वाहितवारिवाहा ॥१३॥  
( १ ) तीर्त्वा । ( २ ) दोहदोत्पन्नव्यथाम् । ( ३ ) नाथी । ( ४ ) पुष्टिम् । ( ५ ) स्मैरत्यर्णः पुष्टि जाता सद्यास्का । ( ६ ) शरदिभवा कमलिनीव । ( ७ ) अतिक्रान्तमेघा ॥१३॥

हील० दोहदोद्वां पीडां निरस्य पुष्टा सा भाति स्म । यथातिक्रान्तमेघसमया पत्रैः पूर्णा कमलिनी शोभते ॥१३॥

हीसु० 'शुद्धां॑ क्रियां॑ विदधताम॑धिभूर्यदेष भावीरितः किमिति भा॑गवतैः प्रतापैः ।  
'आनन्दपूर्वविमलब्रतिवासवस्तां॑ प्रागजन्मनः समय एव 'समुद्धार ॥१४॥  
( १ ) निर्दोषाम् । ( २ ) अनुष्टानम् । ( ३ ) कुर्वताम् । ( ४ ) यतीनां स्वामी । ( ५ ) भगवत्सम्बन्धिभिर्हिमभिः । ( ६ ) आणंदविमलसूरिः । ( ७ ) हीरकुमारजन्मनः पूर्वमेव । ( ८ ) क्रियोद्वारं कृतवान् ॥ १॥

हील० शुद्धक्रियाकारिणां पतिर्भावी इति भगवत्प्रतापैः प्रेरितः श्रीआनन्दविमलसूरिः हीरविजयसूरेः प्राक् तां क्रियामुद्धतवान् ॥१४॥

1. हीमु० हीलप्रतौ चात्र भूतावनीरुहतिं पाठे दृश्यते । तत्र भूतावनीरुहवती पाठे योग्यः प्रतिभाति ॥ 2. स्मेरहलै०  
हीमु० ।

- हीमु० १कालागुरुद्वकरम्बितगन्धधूली-पत्रावलीकलितपाण्डुरगण्डभाजा ।  
२छायाधरः शरदपास्त॑पयोदरोधोऽवश्याय॒दीधितिरह॑स्यत॑तन्मुखेन ॥१५॥  
( १ ) कृष्णागुरुद्वेणमिश्रीकृतकस्तूरीपत्रलताङ्कितपाण्डुरकपोलं भजन्त्या । ( २ ) लाज्जनयुतः ।  
( ३ ) घनरुन्धनं यस्य । ( ४ ) चन्द्रः । ( ५ ) हसितम् । ( ६ ) नाथीवदनेन ॥१५॥
- हील० कृष्णागुरुपङ्केन व्यासा कस्तूरी, तस्याः पत्रलतासहितौ धबलौ गल्लौ भजति, तादृग्मुखेन श्यामताधरः  
अप्रमुक्तस्तुहिनकान्तिर्हसितः ॥१५॥
- हीमु० लीलाचलहलगणा १विगलन्मरन्द-लुभ्यन्निलीनमधुपा सितपद्मपद्मिक्तः ।  
२प्रस्यन्दमाननयनेन ३सविभ्रमभू-भाजा ४यदीयवदनेन विडम्ब्यते स्म ॥१६॥  
( १ ) लीलया नातिशयेन मन्दमरुत्प्रेरणया चपलीभवन्तस्य( : प )र्णनिवहा यस्याम् । तथा  
मकरन्दार्थं लोलुपीभवतामत एव निलीनानां कोशान्तर्लयं प्राप्तानां भ्रमराणामासितमव-  
स्थितिर्यस्यां तादृशी कमलमाला । ( २ ) स्वभावचपले लोचने यस्मिन् । ( ३ ) विलासकलितश्चुं  
भजतीति । ( ४ ) नाथीमुखेन । ( ५ ) अनुक्रियते स्म ॥ १६ ॥
- हील० चलन्नेत्रेण विलसदभूसहितेन यद्वदनेन नातिशयेन चलन् दलानां गणो यत्र । पुनर्भ्रमणञ्चिता  
धवलकमलश्रेणिरनुक्रियते स्म ॥१६॥
- हीमु० १नीलारविन्दनयना २कलमावदाता ३बन्धूकदन्तवसना सितकान्ति४वक्त्रा ।  
५कासस्मिता कुमुदिनी६सुरभिर्मराल-७लीलागतिः८श९रदिवाजनि सा ९तदानीम्  
॥१७॥  
( १ ) नीलोत्पलः । ( २ ) कलमशालिवदुज्ज्वला । ( ३ ) बन्धुजीवाधरा । ( ४ ) चन्द्रमुखी ।  
( ५ ) कासवद्विशदहसितं यस्याः । ( ६ ) कुमुदत्सुगन्धा । ( ७ ) मरालो हंसस्तद्वन्मन्थरा गतिर्यस्याः  
( ८ ) शरदर्थे । ( ९ ) सर्वं तदेव गर्भाधानसमये ॥ १७ ॥
- हील० तदानीं गर्भाधानसमये सा शरत् जातेव । किंभूता सा शरच्च ? । नीले पङ्कजे तद्वत्ते एव वा नेत्रे  
यस्याः । कलमाः शालयस्तद्वत्तैश्च गौरी । तथा बन्धूकानि सुमानि तद्वत्तान्येवाधरे यस्याः । सिता  
कान्तिर्यस्य तादृग्मुखं यस्याः । पक्षे चन्द्र एव मुखं यस्याः कासास्तद्वत्ते एव स्मितं यस्याः ।  
कुमुदिन्यः कैरविण्यस्तद्वत्ताभिर्वा सुगन्धिः । मराला रजहंसस्तद्वत्तेषां च मन्थरतया गतिर्यस्या यस्यां  
वा ॥१७॥
- हीमु० १माणिक्यभूषणगणैर्न तदा कदाचि-२त्खेदोदयाद्वपुरभूष्यत चन्द्रमुख्या ।  
३क्रीडागतामरकरावचिताम्बुजातां जानेऽनुयातुमनसा सरिति४ सुराणाम् ॥१८॥  
( १ ) माणिक्यानामुपलक्षणान्मणी अलङ्कारनिकैः । ( २ ) गर्भधरणनिर्वेदात् । ( ३ ) जलक्रीडार्थ

समेत सुरैः स्वकरैर्गृहीतपद्माम् । (४) स्वर्गङ्गाम् ॥१८॥

हील० तथा भूषणैर्वपुर्नं भूषितम् । कस्मात् । खेदस्याविर्भावात् । तच्चाह - अहं एवं जाने क्रीडयागता ये देवास्तेषां कैश्चुण्टिताम्बुजां देवनर्दीं अनुकर्तुम् ॥१८॥

हीमु० रेजे 'स्तनान[ न ]विनीलिममञ्जुलेन यस्याः सभूज्ज्वलपयोधरयामलेन ।  
३केलीकृते 'मरकताङ्कितसानुनेव रौप्येन( ण )५ शैलयुगलेन मनोभवस्य ॥१९॥  
(१) चूचुककृष्णता चारुणा । (२) पाण्डुरस्तनद्वन्द्वेन । (३) क्रीडार्थम् । (४)  
नीलरत्नशिखरेण । (५) रजतपर्वतद्वन्द्वेन ॥१९॥

हील० रेजे० । चूचुकश्यामत्वेष मनोज्ञेन यस्याः स्तनद्वयेन रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । कामस्य मरकतशिखरेण  
रजतशैलेनेव ॥१९॥

हीमु० 'यस्याः समेचकिमच्चू( चू )चु[कचञ्जु]रेण व्यभ्राजि 'शुभ्रिमभृता स्तनयोर्द्वयेन ।  
३यन्मानसाश्रयनिवासिरतीशरत्यो-र्विद्वा 'विनोदमधुपाङ्कुमुद्युगेन ॥२०॥  
४प्रेम्णा ५प्रणेतुमृजरामरातां ६प्रसद्य ७विश्राणितेन विधिना ८कुसुमायुधस्य ।  
९रौप्येन( ण )१० नीलदृशदां दधता पिधानं ११पीयूषपूर्णकलशीयुगलेन किं वा ॥२१॥

युग्मम् ॥

(१) कृष्णात्वकलितचूचुकचारुणा । (२) पाण्डुरताधारिणा । (३) नाथीहृदयमेव गृहं तत्र  
निवसनशीलयोः स्मरतद्वार्ययोः । (४) विनोदार्थं भृङ्गसङ्कैरवद्वयेन ॥२०॥

(१) पितामहत्वेन प्रीत्या । (२) कर्तुम् (३) जरामरणराहित्यम् । (४) प्रसन्नीभूय । (५)  
दत्तेन । (६) स्मरस्य । (७) रजतसम्बन्धिना । (८) नीलमणीनाम् । (९)  
सुधापरिपूरितकुम्भीद्वयम् । "अवलम्बितकर्णशङ्कुलीकलशी क"मिति नैषधे ॥२१॥

हील० यस्याः सह मेचकिमा श्यामत्वेन वर्तते, तादृशाभ्यां चूचुकाभ्यां सुन्दरेण । पुनरुज्ज्वलेन स्तनद्वयेन  
शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । नाथीचित्तमेव गृहं तत्र निवासिनो रतीशरत्योः विनोदार्थं भ्रमरयुक्तकैरवद्वयेनेतेवं  
वयं विद्वः ॥२०॥

प्रेम्णा आगतेन । पुनः प्रसन्नीभूय धात्रा दत्तेन । पुनः पलेवापाषाणढंकनकयुक्तेनामृतपूर्णकलशद्वयेनेव  
स्तनद्वयेन रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । अजरामरत्वं निष्पादयितुं प्रेम्णा दत्तेनेव ॥२१॥

हीमु० पीनस्तनद्वयम्१मेचकितं पयोभि-स्तस्याः क्षणं क्षणमपूर्यत गर्भवत्याः ।  
सान्द्रै२ रसैरिवृ३विकाशिकुशेशयिन्याः कोशट्विकं ४विशदमश्रियृ५मादधानम् ॥२॥

(१) पाण्डुरितम् । (२) स्निग्धैर्मकरन्दैः । (३) विकचकमलिन्याः । (४) श्वेत्यलक्ष्मीम् ॥२२॥

हील० पीन० । तस्या गर्भवत्या अमेचकितं पाण्डुरीभूतं कुचद्वन्द्वं क्षणं क्षणं स्तन्यैः पूर्णं जायते स्म । यथा

1. पीनयुधेन हीमु० 2. विकस्वरकैरविण्याः हीमु० । 3. यमद्वहन्याः हीमु० ।

विकसनशीलायाः कुमुदिन्याः मुकुलयुगलं क्षणं क्षणं बहलैर्मकरदै सम्पूर्यते । किंकुर्वत्यास्तस्याः कैरविण्याश्च ?। विशदिमः सतीत्वेन निर्मलताया श्वेततायाश्च शोभां लक्ष्मीं वा धरन्त्याः ॥२२॥

- हीमु० १दम्भोलिभूषणभरोद्भवदंशुचाप- चक्राङ्कितेन पयसा परिपूरितेन ।  
२आदीयते किमु समुन्नमता चकोर-चक्षुः ३पयोधरयुगेन ४पयोधरश्रीः ॥२३॥

इति कपोलस्तनादिपाणिडमा ॥

( १ ) वज्ररत्नाभरणनिकरोद्भूतं किरणैः । प्रारब्धधनुर्मण्डलकलितेन । “उम्भसन्मयुखतें ( म )ञ्जरीरचितेन्द्रचापचक्राण्याभरणानि” इति चम्पूकथायाम् “वृता विभूषामणिरश्म-कार्मुकैं”रिति नैषधे । ( २ ) गृहीता । ( ३ ) स्तनद्वयेन । ( ४ ) मेघलक्ष्मीः ॥२३॥

- हील० दम्भो० । चकोरलोचनायाः स्तनद्वयेन । किमुत्प्रेक्ष्यते । मेघश्रीर्गृह्यत इव । किंभूतेन पयोधरयुगेन ?। वज्ररत्नधटिताभरणौघात्प्रकटीभवन्तः अंशवस्तेषां यद्भनुर्मण्डलं तेनाङ्कितेन । पुनर्नरिण दुर्धेन च पूरितेन । पुनरुन्नतेन ॥२३॥

- हीमु० १सा पूर्णचन्द्रवदना २प्रसवोन्मुखत्वं पूर्णेऽथ गर्भसमये बिभरांबभूव ।  
३वर्षाभिमुख्यै४मुपकण्ठवितिष्ठमान-ज्येष्ठोन्मुखीकृतजनाम्बुदमण्डलीव ॥२४॥

( १ ) गर्भजनने सम्मुखत्वम् । ( २ ) वर्षणं वर्षा तस्या आभिमुख्यं सम्मुखताम् । ( ३ ) समीपे स्थिता वृद्धा स्त्री ज्येष्ठमासश्च यस्या उत्कण्ठां नीताः स्वजनादिविश्वलोकाश्च यद्या कादम्बिनी ॥२४॥

- हील० सम्पूर्णचन्द्रवक्त्रा प्रसवस्य सम्मुखतां धारयामास । यथा मेघमाला वर्षणं वर्षः वृष्टिस्तस्य सम्मुखतां धते । किंभूता सा कादम्बिनी च ?। उपकण्ठे समीपे वितिष्ठमानाः स्थिर्ति कुर्वाणाः ज्येष्ठाः कुलवृद्धस्त्रियो ज्येष्ठमासश्च यस्याः । पुनरुन्मुखीकृताः सन्तानावलोकनार्थं-मुत्कण्ठीकृता उच्चमुखाश्च कृतास्तादृशा जना स्वजना विश्वलोकाश्च यद्या ॥२८॥\*

- हीमु० १वंश्यैः सुधाशनचिकित्सकयोरिवार्भ॑-२भृत्याविनिर्मितिविशारदतां ३दधानैः ।  
४अध्यूषिरेऽखिल॑भिषग्वृषभैर्महेभ्य॑-जम्भद्विषद्भवनगर्भभुवः प्रदेशाः ॥२५॥\*

( १ ) देववैद्ययोर्दश्रयोर्वशे गोत्र उत्पन्नैरिव । ( २ ) बालकानां चिकित्साकरणे पाणिडत्यम् । ( ३ ) दधद्धिः । ( ४ ) अध्यूषिर आश्रिताः । ( ५ ) प्रधानवैद्यैः । ( ६ ) कुंगव्यवहारीन्द-गृहमध्यभूभागाः ॥२५॥

- हील० वंश्यै० । बालकस्य भृत्यायाः करणे पाणिडत्यवद्विद्वैद्यस्तस्य कुंगगृहस्य मध्यभूमेः प्रदेशा आश्रिताः । उत्प्रेक्ष्यते । देववैद्ययोर्वश्यैः ॥२५॥

1. सम्पूर्णचन्द्र० हीमु० । 2. भृत्या० हीमु० । 3. इति प्रसवसमयः हील० ।

हीसुं० १लग्नं शुरुै शिखिनि॒ शीलति॑ युग्मगेहं॑ भूमीभवे॑ भजति॑ खिङ्गा॒ इवाथ कन्याम् ।  
याते॑ तुलां॒ सितमरीचिसुते॑ सिते॑ च॒ सूरेऽपि॑ सारसं॑ इवालिविलासशीले ॥२६॥  
राहौ॑ पुनः॑ सुकृतिनीव॑ धनं॑ प्रपञ्चे॑ पाथोनिधाविव॑ विधौ॑ मकराश्रयेव ।  
मीनं॑ शनौ॑ मदनवन्मदयत्यदीनं॑ मित्थं॑ ग्रहेषु॑ तदयाभ्युदयावहेषु॑ ॥२७॥३  
विश्वावनीधर॑ शिलीमुख॑ ५पूष १५८३ संख्ये॑ संवत्सरेऽध्वनिपुरन्दरविक्रमार्कात् ।  
मासः॑ सहस्य॑ विशदश्रियमाश्रयन्त्यां॑ जन्मानुभावत॑ इवास्य॑ तिथौ॑ नवम्याम् ॥२८॥  
लग्नोदये॑ इस्य॑ शुभशंसिनि॑ सार्वभौम-जन्मोचितेऽहनि॑५ ससाधिमधिष्ययोगे ।  
कूलङ्क्षणा॑ मखभुजामिव॑ केकियान-॑ माखण्डलामृतमयूखमुखी॑ जयं वा ॥२९॥  
आमोद॑ मम्बुरुहिणीव॑ विजृम्भमाणा॑ पञ्चार्चिषं॑ शुचिमरीचिचकोरचक्षुः॑ ।  
सौदामनीवलय॑ मम्बुदमालिकेव॑ पृथ्वीव॑ तीर्थमनघं॑ कृषिमुव्वरेव ॥३०॥  
पीयूषकान्तिमिव॑ दुग्धपयोधिवेला॑ सिंहं॑ महामृगरिपोरिव॑ वा॑ महेला ।  
विश्वावबोधमिव॑ वासरवक्त्रलक्ष्मीः॑ श्रीखण्डसालमिव॑ वा॑ मलयाचलोर्वी॑ ॥३१॥  
शृङ्गारयोनिमिव॑ नीरजनाभपली॑ राज्ञः॑ प्रतापमिव॑ वा॑ जगतीजयश्रीः॑ ।  
आचार्यमध्वरभुजामिव॑ फाल्गुनी॑ सा॑ नाथी॑ क्रमेण॑ तनयं॑ जनयां॑ बभूव ॥३२॥

[ समभिः कुलकम् ]

( १ ) मिथुनलग्ने॑ तनुभवनम् । ( २ ) बृहस्पतौ॑ । ( ३ ) केतौ॑ च । ( ४ ) सेवमाने॑ । ( ५ ) विट॑  
इव॑ मङ्गले॑ कन्याराशिं॑ कुमारी॑ च॑ भुज्ञाने॑ । ( ६ ) तुलाराशिम् । ( ७ ) चन्द्रसुते॑ । बुधे॑ शुक्रे॑  
च॑ गते॑ सति॑ । ( ८ ) सूर्येऽपि॑ । ( ९ ) पुनः॑ सारसपक्षीव॑ अलौ॑ वृश्चिकनामराशौ॑ श्रेण्या॑ च॑  
कृत्वा॑ यो॑ विलासस्थितिर्गमनं॑ तत्र॑ शीलं॑ स्वभावो॑ यस्य॑ ॥२६॥

( १ ) कृतमुक्ते॑ पुंसीव॑ राहौ॑ । ( २ ) धनं॑ राशिं॑ द्रव्यं॑ च॑ । ( ३ ) प्राप्ते॑ । ( ४ ) समुद्र॑ इव॑ ।  
( ५ ) चन्द्रे॑ । ( ६ ) मकराणां॑ मत्स्यविशेषाणामाश्रयः॑ । मकराशेराश्रयो॑ यस्य॑ । ( ७ ) कन्दर्पे॑  
इव॑ शनैश्चरे॑ मीनं॑ मत्स्यं॑ मीनराशिं॑ च॑ मदयति॑ सति॑ । ( ८ ) इत्थममुना॑ प्रकारेण॑ । ( ९ )  
जन्मसप्तयग्रहेषु॑ । ( १० ) तस्य॑ हीरकुमारस्य॑ शुभकर्मणः॑ पुण्यस्य॑ अभ्युदयस्य॑ करेषु॑ ( कारकेषु॑ )  
सत्सु॑ । इति॑ जन्मकुण्डलिका ॥२७॥

1. ०नाम॑ हीमु० । 2. सलिल० हीमु० । 3. इति॑ जन्मकुण्डलिकाग्रहाः॑ हील० । 4. येऽथ॑ हीमु० ।

5. ०ससाधिमधिष्ययोगे॑ । विक्रमात्संवत् १५८३ वर्षे॑ मार्गशीर्षसितनवम्यां॑ सामवासे॑ पूर्वभद्रपदनक्षत्रे॑ हर्षणनामयोगे॑ घटी॑ १२  
उपरात॑ वज्रयोगे॑ मिथुनलग्ने॑ तद्विने॑ प्रह्लादपुरवास्तव्य-ओकेशवंश्य सा॑ कुंपली॑ नाथी॑ सुतमजीजनत्॑ हील० ।

6. ०चकार॑ हीमु० ।

( १ ) त्रीणि जगत्ति ३ ( गो ) त्रशैला: सप्त( अष्टौ ) कुलाचला ७( ८ ) बाणाः पञ्च ५ सूर्यः  
१मितिसंवत्सरे । ( २ ) मार्गशीर्षस्य । ( ३ ) श्वेतलक्ष्मीम् । ( ४ ) हीरकुमारस्य जन्मनः प्रभावादिव ।  
विक्रमावनिशक्रवर्षात् संवत् १५८३ वर्षे मार्गशीर्षसितनवम्यां तिथौ सोमवासरे  
पूर्वभादपदनक्षत्रे हर्षणघटी १२ उपरान्तवज्रयोगे तद्दिने प्रह्लादनपुरवास्तव्य औकशवंश्य  
साहकुंरापत्ती नाथी सुतरत्नमजीजनत् ॥२८॥

( १ ) हीरकुमारभाग्याभ्युदयस्य कल्याणस्य वा कथयितरि । ( २ ) चक्रवर्त्तिजन्मयोग्ये । ( ३ )  
दिने । ( ४ ) साधि॒[ म्ना ]श्रीरम्यत्वेन सहिते नक्षत्रयोगे । “त्वयादृतः किञ्चरसाधिमध्रमः” इति  
नैषधे । ( ५ ) गङ्गा । ( ६ ) कार्त्तिकेयम् । ( ७ ) शाची ॥२९॥

( १ ) परिमलम् । ( २ ) पद्मिनी । ( ३ ) बुधम् । ( ४ ) रोहिणी ( ५ ) विद्युद्गुलयम् । ( ६ )  
मेघमाला । ( ७ ) “पृथ्वीव पुण्यतीर्थ” मिति चम्पूकथायाम् । ( ८ ) सर्वसस्या भूः ॥३०॥

( १ ) चन्द्रम् । ( २ ) क्षीरसागरबेला । ( ३ ) सिंही गजारिस्त्री । ( ४ ) जगज्जागरणम् । ( ५ )  
प्रभातश्रीः । ( ६ ) चन्दनतरुम् । ( ७ ) मलयादिभूः ॥३१॥

( १ ) स्मरम् । ( २ ) लक्ष्मीः । ( ३ ) विश्वविजयश्रीः । ( ४ ) सुरसूरिर्बृहस्पतिं नक्षत्रम् ॥३२॥

हील० लग्नं० आरभ्य सप्तभिः कुलकम् । गुरै॒ कैतौ च मिथुनलग्नं शीलति सति तथा मङ्गले कन्यां  
भजति सति । यथा विटः कुमारिकां भृजते । पुनर्बुधे शुक्रे च तुलां प्राप्ते । पुनः सूर्ये अलौ  
विलासिनी । यथा सारसः आल्या श्रेण्या कृत्वा यो विलासो गमनमासनं च तत्र स्वभावे यस्य  
तादृशो भवति । पुना रहौ पुण्यवानिव धनं प्रपत्ते । पुनश्चन्द्रे मकरश्रिते सति । यथा मकरध्वजो  
मकरश्रितो भवति । पुनः शनैश्चेरे अदीनं मीनं मदयति सति । यथा पानीयं मत्स्यं समदं कुरुते ।  
इत्थममुना प्रकारेण तस्या यस्याभ्युदयं वहति । तादृशेषु ग्रहेषु सत्सु विक्रमादित्यात् १५८३ संवत्सरे  
सहस्य मार्गशीर्षस्य जन्मप्रभावादिव उज्ज्वलायां नवम्यां तिथौ सत्यां शुभकथके मिथुनलग्नोदये  
सति । पुनश्चक्रवर्त्तिनो जन्मनोऽवतारस्योचिते योग्ये अहनि वासरे सति । पुनः कस्मिन्स्ति ?। सह  
साधिमा प्रधानत्वेन वर्तते तादृशे धिष्ण्यस्य नक्षत्रस्य योगे सति नाथी नन्दनं प्रासूत इति सम्बन्धः ।

अथोपमानोन्येवाह-केव ?। कूलङ्कषेव । यथा मखभुजां देवानां कूलङ्कषा नदी गङ्गा  
केकिमानं स्वामिकार्तिकं जनयतीति सर्वत्र योज्यम् ॥ १ ॥ पुनः केव ?। आखण्डलामृत-  
मयूखमुखीव । यथा आखण्डलस्य शक्रस्य शक्रस्यामृतमयूखमुखी पीयूषकान्तिवक्त्रा चन्द्रवदना  
इन्द्राणी जयन्तनामानमङ्गं सूते ॥ २ ॥ विकस्वरा कमलिनी परिमलं यथा सूते ॥३॥ यथा  
शीतकान्तेश्वन्दस्य पल्ली पञ्चार्चिषं बुधं सूते ॥४॥ पुनर्मेघमाला विद्युन्मण्डलमिव ॥५॥ पृथ्वी  
श्लाघनीयं तीर्थं शत्रुज्ञयादि सूते ॥६॥ सर्वसस्या पृथ्वी कर्षणमिव ॥७॥ क्षीरविश्वन्दमिव ॥८॥  
गजानां रिपोः केसरिणः स्त्री सिंहम् ॥९॥ दिनाननस्य प्रभातस्य श्रीर्जगतो जागरणं सूते ॥१०॥  
पुनर्मलयाचलधरा चन्दनद्रुमं सूते ॥११॥ नीरजं ब्रह्मोत्पत्तिकमलं नाभौ यस्य कृष्णस्य स्त्री लक्ष्मीः  
कामं सूते ॥१२॥ यथा जगत्या भूमेर्जयलक्ष्मी राज्ञः प्रतापं सूते । यथा पूर्वाफालुनोनक्षत्रं यज्ञांशभोजिनां  
देवानां गुरुं बृहस्पतिं सूते ॥१४॥ तद्वन्नाथी क्रमेण सूतमजीजनत् ॥ २६★-३२ ॥

- हीसु० १श्यामीकृतानि २कुदूशामपकीर्तिपङ्कै-रस्मन्मुखानि ३विशदानि ४विधास्यते यत् ।  
एष ५स्वकीर्तिविलसत्रिदशस्ववन्ति-विस्फूर्तिभिष्क(ः किमिति ६दिक्प्रमदा:  
७प्रसेदुः ॥३३॥
- ( १ ) मलिनीकृतानि । ( २ ) पाखण्डकुकीर्तिकर्द्मैः । ( ३ ) निर्मलानि । ( ४ ) करिष्यति ।  
( ५ ) निजयशःप्रसरदङ्गाप्रवाहैः । ( ६ ) दिगङ्गनाः । ( ७ ) प्रसन्नीबभूवुः ॥३३॥
- हील० श्या० । दुर्वादिनां अपयशोभिरेव कर्दमैरस्माकं दिशां मुखानि श्यामीकृतानि स्वकीर्तिरेव विलसदङ्गाया विलासैरुज्ज्वलानि । एषः विधास्यते । किमिति कारणादेव दिगङ्गनास्तज्जन्मसमये प्रसन्नीबभूवुर्निर्मला जाताः ॥३३॥
- हीसु० १भावी यदेष पृथुकः २सुमनोनिषेव्य-स्तैद्वृष्टयो दिव इतीव गृहे निपेतुः ।  
हन्ता यतः स् ३तमसां ४तमसामिवारिः प्रागेव ५तैष्किः किमिति भीति ति]-  
वशात्प्रणोशे ॥३४॥
- ( १ ) भविष्यति । ( २ ) सुमनोभिर्देवैः पर्युपासनीयः । ( ३ ) तेषां सुमनसां पुष्पाणां वृष्टयो वर्षणानि । ( ४ ) पापानामन्धकारणां च । ( ५ ) रविरिव तद्वपुप्रभाभिरेव । ( ६ ) तैर्धान्तैः ।  
( ७ ) प्रणष्ट् ॥३४॥
- हील० भावी० । यद्यस्मात्कारणात् एष बालकः सुमनोभिर्देवैरुपास्यो भविष्यति । किमितीव गृहे तेषां सुमनसां पुष्पाणां(णां) वृष्टयः पतिताः । यतः स पृथुकः तमसां अरिः सूर्य इव तमसामज्ञानानां पापानां हन्ता भावीति इव तद्वहे वपुर्भाभिः पूर्वमेव भयात्तमोभिः पलायितम् ॥३४॥
- हीसु० १लब्धि॒श्रिया॑नुसरता॒ ३वसुभूतिपुत्रं॒ ४सारुप्यमाक॑लयता॒ च॒ ५युगप्रधानैः ।  
जज्ञेऽचिराद्यदमुना॒ विभुना॒ ममान्तः॒-प्रीत्येत्यनृत्यदिव॒ ६शांभवशासनश्रीः ॥३५॥
- ( १ ) क्षीराश्रवादिलब्धीनां लक्ष्या । ( २ ) अनुकुर्वता । ( ३ ) गौतमम् । ( ४ ) सादृश्यम् ।  
( ५ ) बिभ्रता । ( ६ ) वज्रस्वाम्यादिभिः । ( ७ ) जिनशासनश्रीः ॥३५॥
- हील० लब्धि० । लब्ध्या गौतमं अनुकुर्वता । पुनर्वज्रस्वाम्यादिभिः सादृश्यं बिभ्रतामुना मम शासनश्रिया स्वामिना जातम् । इतीव तीर्थकृच्छासनश्रीरृत्यत् ॥३५॥
- हीसु० १विश्वत्रयीश्रुतिपुटैकवतंसिकाना-मस्माकमेष समजायतैवासवेशम् ।  
२गाम्भीर्यधीरिममुखाभिरैर्थः॒ कृतेन्दु-श्रीभिश्च वल्मितमितीव गुणावलीभिः ॥३६॥
- ( १ ) त्रैलोक्यलोककर्णाद्वैतोत्तंसानाम् । ( २ ) वासार्थसदनम् । ( ३ ) तिरस्कृतशशाङ्कलक्ष्यीभिः ।  
“विदर्भपुत्रीश्रवणावर्तसिका” इति नैषधे ॥३६॥

- हील० विं० । निर्मलत्वेनाधः कृतचन्द्रश्रीभिर्गार्भीर्यादिगुणश्रेणीभिरतीव बलिगातं-उल्लसितम् । इतीति किम् ?। यत्त्रिजगज्जनकर्णकर्णभरणानामस्माकं हीरकुमारः वासगृहं जातः ॥★३६॥
- हीसुं० १आजन्म २यद्विधुरिवैष उदेति कीर्ति-ज्योत्स्नाः किरन्कुवलयैकविकाशकारी । अस्मादृशैष्किं ( : कि ) ४मयशोऽञ्जनं मादधानैः ५किञ्चित्प्रकाशितनिशान्तद-शान्तदीप्रैः ॥३७॥
- १भास्वन्मयूखविजिगि ( गी ) षुयदङ्गजात-नैसर्गिकाङ्गभवभास्वदभीशु ( षु ) जालैः । २तत्कालमृल्पतमतैलदशैरिवोप-दीपैरितीव समजायत ३दीमिदुस्थैः ॥३८॥ युग्मम् ॥  
 ( १ ) जन्म मर्यादीकृत्य । ( २ ) यद्यस्मात्कारणात् । ( ३ ) विस्तारयन्भूमण्डलस्य कैरवस्य च विकाशं प्रतिबोधं विकचतां च करोतीत्येवंशीलः । ( ४ ) अपकीर्तिः तुल्यश्यामत्वात् कज्जलम् । ( ५ ) बिघ्रद्धिः, उद्गिरद्धिः । ( ६ ) स्तोकमिवोद्योतितो निशायाः प्रान्तो यैस्तथा दशाऽवस्था वर्त्तिश्च तस्यान्ते दीपनशीलैः ॥३७॥
- ( १ ) सूर्यकिरणान्जेतुमिच्छुभिः नाथीसुतस्य स्वाभाविककायोद्भूतदीप्यमानकिरणनिकरैः । ( २ ) तस्मिन्समये । ( ३ ) स्तोकीभूततैलवर्त्तिभिः । ( ४ ) विच्छायैः ॥३८॥
- हील० आ० भा० । तस्मिन्नेव समये अल्पतैलवर्त्तिभिरिख सूर्यकिरणजित्वर्य यस्याः पुत्रस्य सहजं शरीरादुत्पन्ना दीप्यमाना येऽभीषवस्तेषां जालैः कृत्वा समीपदीपैः कान्तिदरिदैर्जातम् । यतो जन्मसमयादारभ्य कीर्तिचन्द्रिकाः किरन्पुनः कुवलये पृथ्वीमण्डले कमलानां चाहृतं विकाशकृच्चन्द्र इव एषः प्रादुर्भवति । अतः अपयशतुल्याञ्जनवद्धिः । पुनष्किं ( : कि ) ञित्प्रकाशितगृहान्तैः अवस्थाया वर्तेश्च प्रान्ते दीप्रैस्मादृशैष्किं ( : कि ) म् ॥३७-३८॥
- हीसुं० १स्वःकूलिनीजलविलोचनकलृसकेतिः २पाटच्चरो विर्कचवारिजसौरभाणाम् । ३उत्फुल्लवल्लिनवनाटकसूत्रधार-स्तं प्रेक्षितुं किमु ववौ पवनोऽनुकूलः ॥३९॥  
 ( १ ) गगनगङ्गासलिलोत्तरङ्गीकरणे कलितो विलासो येनेति शीतलः । ( २ ) तस्करः । ( ३ ) स्मितपद्मपरिमलानाम् । एतेन सुरभिः । ( ४ ) विकसितलतानां नवीननृत्यस्य ताण्डवप्रारम्भकर्ता । एतेन मन्दत्वम् ॥३९॥
- हील० स्वः० । सुखस्मर्शः पवनो वाति स्म । किंभूतः पवनः ? । गङ्गाजलविलोलने रचितऋडाविलासः । पुनः स्मेराम्भोरुहपरिमलानां तस्करः । पुर्वावकसितलतानां नाटके सूचकस्ताण्डवकारकः ॥३९॥
- हीसुं० आसीदसौ कलियुगे १युगबाहुरस्मि-न्रहन्निवा॒तिशयितातिशयाश्रितत्वात् । २एतस्य जन्मनि जिनाधिपतेरिवान्तः-प्रीतेरितीव दिवि ३दुन्दुभयः ४प्रणेदुः ॥४०॥  
 ( १ ) युगवद्युगभ्यरवद्वाहू यस्य । ( २ ) स्फूर्तिं प्रासैर्पहिमविशेषैराश्रितत्वेन । ( ३ ) हीरकुमारस्य । ( ४ ) मदनभर्यः । ( ५ ) दन्ध्वनन्ति स्म ॥४०॥

आ० । एतज्जन्मनि गगने मदनभेद्यः वाद्यन्ति । उत्प्रेक्ष्यते । इति अन्तः स्वस्वान्ते प्रीतिः । इतीति किम् ? । धूसप्रमाणभुजः असौ पञ्चमारकेऽर्हन्त्रिव अतिशयं प्रासैरतिशयैरश्रितो भविष्यति किमितीव ॥४०॥

हीसुं० १एकांशवानपि २कलौ ३शिशुनामुनाह- ४मङ्गैश्चतुर्भिरुद०यीह पुरा० भवामि । धर्मेण पञ्चवितमन्तरितीव जाते विश्वासुमत्प्रमददायितदङ्गजाते ॥४१॥

इति तज्जन्ममाहात्म्यम् ॥

( १ ) चतुर्थांशस्य चतुर्थांशो विद्यते यस्य । ( २ ) कलियुगे । ( ३ ) कुमारेण । ( ४ ) सम्पूर्णाविवैः । ( ५ ) स्फूर्तिमान् । ( ६ ) भविष्यामि । “यावत्पुरानिपातयोर्योगे भविष्यति काले वर्तमानाः” । “पूरदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा” इति नैषधे दृष्टम् ॥४१॥

हील० एकां० । विश्वस्यासुमतां प्राणिनां हर्षदायिनि तस्याः अङ्गजे जाते सति । इतीव कारणाद्वर्मेण अन्तश्चित्ते पञ्चवितम् । इतीति किम् ? । यतोऽहं कलौ एकांशमात्रोऽपि अमुना शिशुना कृत्वा चतुरवयवैरुदयी पुरा भवामि । भविष्यामीत्यर्थः । “यावत्पुरा योगे वर्तमानाया भविष्यदर्थः” ॥४१॥

हील०→एतद्वृणाभिनवगानविधानपूर्व-प्रारब्धताण्डवतरङ्गिरसाङ्गरङ्गः ।

प्रारप्स्यते विबुधराजसमाजरङ्गेऽस्माभिर्मुदेति दिवि किं ननृतेऽप्सरोभिः ॥४२॥←

इति जन्ममाहात्म्यम् ॥

एत० । दिवि स्वर्गे अप्सरोभिः । किम् ? । इति कारणादेव नर्तितम् । इति इति किम् ? अस्माभिर्देवाङ्नाभिः । देवेन्द्रसमाज एव रङ्गे नाट्यस्थानं तत्र एतद्वृणानाभिनवगानस्य विधानं पूर्व यस्मिन्नादृशं प्रारब्धं यत्ताण्डवं तस्य तत्र वा तरङ्गिणो ये शृङ्गारादिरसास्त एव अङ्गं शरीरं यस्य तादृशो रङ्गः प्रारप्स्यते उपक्रम्यते ॥४२॥

हीसुं० प्रह्लादनाह्वनगरं १पुनरप्यमुष्य २मूर्त्या पवित्रियितुमन्तरिवेहमानः ।

३श्रीसोमसुन्दरयतिक्षितिशीतकान्ति-र्जन्मापरं ४स्वयमसौ ५ग्रहयांबभूव ॥४२॥

( १ ) द्वितीयवारम् । ( २ ) हीरकुमारकायेन । ( ३ ) चित्ते काङ्क्षन्त्रिव । ( ४ ) सोमसुन्दरसूरीन्दः । ( ५ ) साक्षादेव । ( ६ ) जग्राह ॥४२॥

हील० प्रह्ला० । श्रीसोमसुन्दरनामा यतीनां मध्ये क्षितेश्वन्दः राजा । उत्प्रेक्ष्यते । अपरं जन्माददे । उत्प्रेक्ष्यते । प्रह्लादननगरं पुनरपि अमुष्य कुमारस्य शरीरेण पवित्रीकर्तुं अन्तश्चित्ते वाञ्छन्त्रिव ॥४३॥

हीसुं० चक्रस्य चक्रिवदुदी( दि )त्वरदीप्रदीपि-र्दण्डौघचण्डिमविखण्डितचण्डभासः । ३इभ्यः ४स्वभृत्यजनराजिभिरु५त्सुकाभिः ६संवर्ध्यते स्म ७जननेन ८तनूभवस्य ॥४३॥

( १ ) उदयनशीला दीप्यमाना कान्तय एव सरलतया निर्गमनाद्वण्डा इव दण्डास्तेषां निकरस्तस्य

1. ०यीव हीमु० । → एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

चण्डता तया विशेषेण परिभूतः सूर्यो येन । चक्रवर्त्त्यायुधविशेषस्य । ( २ ) कुंराख्यः । ( ३ )  
तदीयसेवकलोकपदिक्तभिः । ( ४ ) उत्कण्ठिताभिः । ( ५ ) वर्द्धितः । ( ६ ) जन्मना । ( ७ )  
पुत्रस्य ॥४३॥

हील० चक्र० । उत्सुकाभिः स्वसेवकश्रेणिभिः कुंराव्यवहारी पुत्रजन्मना वर्द्धाप्यते स्म । यथा चक्रस्योत्पत्या  
चक्री वर्द्धाप्यते । किं भूतस्य सूनोश्चक्रस्य च ?। उदयनशीला दीपनशीला या दीपयस्तासां यः  
प्रसरसमूहस्तस्य चण्डमधिरुप्रताभिर्विखणिडतश्छण्डभाः सूर्यो येन तस्य ॥४४॥

हीसु० सूनोऽर्जनेरुपैन्तेरिव ३सेवधीना-४मुद्रत्वरा५स्वजनवक्त्रसुधाकरेभ्यः ।  
वर्णान्स्वॄकर्णपुटकेन ६सुधायमाना-७नीत्वा८ तदा प्रमुमुदे हृदये महेभ्यः ॥४४॥  
( १ ) पुत्रजन्मनः । ( २ ) आगमनमिव । ( ३ ) निधीनाम् । ( ४ ) प्रकटनशीलान् । ( ५ )  
बन्धुजनवदनचन्द्रेभ्यः । ( ६ ) श्रवणपर्णेन । ( ७ ) अमृतमिवाचरतः । ( ८ ) सादरं श्रृत्वा ।  
॥४४॥

हील० सूनो० । स्वजनाननचन्द्रेभ्यः निसृतान् सुधासमानान् पुत्रजन्मनः वर्णान्, कर्ण एव पुटकः-पत्रभाजनं,  
तेन सादरं श्रुत्वा तस्मिन्समये महेभ्यः जहर्ष । कस्या इव ? । उपनतेरिव । यथा सेवधीनां  
नवनिधानानां स्वर्णरत्नमाणिक्यानामुपनतेरनमनस्य वर्णान् श्रुत्वा कश्चित्पुमान्मोदते ॥४५॥

हीसु०- सूनोर्जनिं १निगदताम॒नुग्रजाना-मासी॑ददेयमिह तस्य ४किरीटमेव ।  
५भूभर्तृभावककुदं ६विशदातपत्रं धात्रीपतेरिव मुदं दधतो ७हृदन्तः ॥४५॥  
( १ ) कथयताम् । ( २ ) सेवकनिकराणाम् । ( ३ ) दातुमयोग्यम् । ( ४ ) मुकुट एव । ( ५ )  
राजत्वं चिह्नम् । "नृपतिककुदं दत्वा यूने सितातपवारणम्" इति रघुवंशे । ( ६ ) श्वेतच्छ्रम् ।  
( ७ ) हृदयमध्ये ॥४५॥

हील० सूनो० । पुत्रजन्म कथयतां सेवकगणानां अदेयं तस्य कुंरेभ्यस्य मुकुटं आसीत् । यथा पृथ्वीपते  
राजचिह्नं छत्रं दातुमनर्ह स्यात् ॥४६॥

हीसु० १लक्ष्मीवताम॒धिपतेर॒नुजीविवृद्धैः ४पुत्रप्रसूतिममितं ५मधु निर्दि॑शद्विः ।  
पाणिः ६प्रदेशनविधौ ददृशेऽस्य ७पञ्चशाखोऽपि लेख॑शिखरीव सह॑८स्रशाखः  
॥४६॥  
( १ ) श्रीमताम् । ( २ ) व्यवहारिणां मध्ये अधिपतिरिवाधिपतिर्मुख्य इत्यर्थः । ( ३ )  
अनुचरनिकरैः । ( ४ ) नन्दनजन्म । ( ५ ) प्रमाणरहितं मधु माध्वीकम् । "अमितं मधु तत्कथा  
ममे" ति नैषधे । ( ६ ) कथयद्विः । ( ७ ) दानप्रकारे । ( ८ ) पञ्चमिताः शिखा अङ्गूलयश्च ।  
( ९ ) कल्पतरुः । ( १० ) सहस्रसङ्ख्या शाखा यत्र ॥४६॥

1. इति पुत्रवर्धापनि[का]-दानादि हील० ।

- हील० लक्ष्मी०। धनिनां नायकस्य अस्य कुंगाख्यस्य पञ्चैव शाखा अङ्गुलयो यस्य तादृशो हस्तः । पुत्रप्रसवलक्षणं प्रचुरं मधु कथयद्भिः सेवकसमूहैर्दानसमये देवतरुरिव सहस्रं शाखा यस्य तादृशो ददृशे-दृष्टः ॥४७॥
- हीसु० १आसाद्य २तत्प्रसववेशम् समं ३सगोत्रैः सूनो४रतृसि स ५पिबन्वदनारविन्दम् । ६अद्वैतसम्मदपरम्परया७लिलिङ्गे ८लक्ष्म्या पुमानिव पचेलिमपुण्यशाली ॥४७॥  
 ( १ ) प्राप्य । ( २ ) तस्या नाथीदेव्याः सूतिकागृहम् । ( ३ ) स्वजनैः । ( ४ ) न विद्यते तृसिः सौहित्यमत्यादरतया यत्र । ( ५ ) सादरं पश्यन् । ( ६ ) असाधारणप्रमोदपरम्परया । ( ७ ) आशिलष्टः । ( ८ ) परिपाकं प्रासेन सुकृतेन शोभमानः पुमान् यथा श्रिया आश्रीयते ॥४७॥
- हील० आसा० । तस्य पुत्रस्य प्रसववेशम् सस्वजनैः सह प्राप्य । स अतृसि यथा स्यात्तथा सूनोः पुत्रस्य मुखकमलं सादरमवलोकयन् । न विद्यते द्वैतं-युगलं येषां तादृशानां असाधारणानां प्रमोदानां परम्परया आलिङ्गितः । यथा परिपाकप्रासेन उदयावलिकायामागतेन पुण्येन शालते, तादृशः पुरुषः लक्ष्म्या आश्रीयते ॥४८॥
- हीसु० १तस्याङ्गजास्यशशिदर्शनोऽम्बुराशे-२र्वारामिवोल्लसदमन्दमुदामियत्ताम् । ३हृत्सद्यसूत्रितजगत्त्रयविस्तरापि ४विज्ञावली प्रभुरभून्न तदा प्रमातुम् ॥४८॥  
 ( १ ) स्वसुतवदनचन्द्रावलोकनात् । ( २ ) समुद्रस्य जलानामिव प्रकटीभवन्तीनाममेयानां मुदां प्रमदानां इयत्परिमाणत्वं एतावन्मात्रताम् । ( ३ ) मनोमन्दिरे गोचरीकृतस्त्रैलोक्यप्रपञ्चो यया त्रिभुवनस्वरूपवेदनविदुरापि । ( ४ ) निपुणश्रेणिः ॥४८॥
- हील० तस्या० पुत्रस्य आस्यमेव चन्द्रस्तदर्शनतस्तस्य कुरेभ्यस्य उल्लसन्तीनां प्रचुराणां मुदां हर्षणां इयतां प्रमातुं हृदेव सद्गनि गृहे सूत्रितः विज्ञातः जगत्त्रयस्य विस्तरे यया तादृशी पण्डितश्रेणी प्रभुः समर्था नाभूत् । यथा चन्द्रदर्शनतः समुद्रस्य वारां इयता न कोऽपि वक्ति ॥४९॥
- हीसु० १आस्वादयन्ल॒वणिमामृतमे॓तदास्या-वश्यायभासि ४वसर्ति ५गवि चानुतिष्ठन् । पश्यन्सुतं ६द्युसदिवाजनि ७निर्निमेष-नेत्रारविन्दयुगलः स महेभ्यकुम्भी ॥४९॥  
 ( १ ) पिबन् । ( २ ) लावण्यसुधारसम् । ( ३ ) नन्दनवदनचन्द्रे । ( ४ ) स्थितिम् । ( ५ ) भुवि दिवि च । ( ६ ) देवः । ( ७ ) मेषोन्मेषरहितनयनकमलः ॥४९॥
- हील० आस्वा० स इभ्यहस्ती सुतं पश्यन् सन् स्वर्वासीव मेषोन्मेषरहितनयनकमलयुगलो जातः । किं कुर्वन् ?। एतस्यास्यमेवावश्यायस्य तुहिनस्य भा: कान्तिर्यस्य तर्स्मिश्वन्दे लावण्यसुधां पिबन् । पुनर्गवि भूमौ स्वर्गे वा वासं कुर्वन् । इदं देवलक्षणम् ॥५०॥
- हीसु० १पूर्वादिपाटलशिलावलये शशीव ली॒लामराल इव को॑कनदच्छदे वा । २पारीन्द्रपोत इव ३गैरिकशृङ्गशृङ्गे ४तत्पाणिपल्लवतले विललास बालः ॥५०॥

( १ ) उदयाचलरक्तोपलतले । ( २ ) क्रीडाहंसः । ( ३ ) रक्तोत्पले । ( ४ ) सिंहशिशुः । ( ५ ) गैरिकपर्वतशिखरे । ( ६ ) कुंगाहस्तमध्ये । ( ७ ) शुशुभे ॥५०॥

हील० पूर्वा०। तस्य कुरेभ्यस्य पाणिपल्लवतले स बालः विलसति स्म । क इव ?। उदा(दया)चललोहितोपले चन्द्र इव । रक्तोत्पलपर्णे क्रीडाहंस इव । धातुमये शृङ्गे सिंहबाल इव ॥५१॥

हीसु० जन्मोत्सवं विद्धता तनयस्य तेन <sup>३</sup>कामाधिकं <sup>३</sup>प्रदिशता<sup>४</sup>र्थिजनेऽर्थजातम् । <sup>६</sup>श्रीदस्त<sup>७</sup>दाव<sup>८</sup>गणनां <sup>९</sup>गमितो <sup>१०</sup>निकेतं <sup>११</sup>कैलाशमूर्धिनि विदधे किमप<sup>१२</sup>त्रपिष्ठुः ॥५१॥

( १ ) कुर्वता । ( २ ) अभिलषितादपि अतिशयिताभ्यधिकम् । ( ३ ) ददता । ( ४ ) याचकलोकम् । ( ५ ) धननिवहम् । ( ६ ) धनदः । ( ७ ) तस्मिन् पुत्रजननमहसमये । ( ८ ) अवहेलनाम् । ( ९ ) प्रापितः । ( १० ) स्थितिम् । ( ११ ) कैलाशशिखरे । ( १२ ) लज्जाशीलः ॥५१॥

हील० जन्मो०। तदा तस्मिन्समये सुतजन्मोत्सवं कुर्वता पुनर्रथनामभिलि(ल)षिताधिकं द्रव्यसमूहं ददता तेनेभ्येनावहेलितः धनदः लज्जाशीलः सन् कैलाशशिखरे गृहं कृतवान् ॥५२॥

हीसु० सूनो<sup>१</sup>र्जनेर्म<sup>२</sup>हमसौ <sup>३</sup>विभवानुरूपं श्री<sup>४</sup>मन्महेभ्यमधवा घ<sup>५</sup>टयांबभूव । <sup>६</sup>सञ्चातजातविधिरप्य<sup>७</sup>दसीयसूनु-<sup>८</sup>र्निर्दूतदर्पणं इव <sup>९</sup>स्फुरयांबभूव ॥५२॥

( १ ) पुत्रस्य जन्मनः । ( २ ) उत्सवम् । ( ३ ) स्वद्रव्यसदूशम् । ( ४ ) व्यवहारिशक्रः ( ५ ) चकार । ( ६ ) सम्पन्नजन्मसंस्कारादिविधिः । ( ७ ) कुंगाकुमारः । ( ८ ) शाणोत्तेजितात्मदर्श इव । ( ९ ) दीप्यते स्म ॥५२॥

हील० सूनो०। असौ इभ्येन्द्रः स्वद्रव्यानुसारेण पुत्रजन्मोत्सवं रचयामास । जातजन्मसंस्कारोऽस्य सुतोऽपि शाणोत्तेजितात्मदर्श इव चकासामास ॥५३॥

हीसु० अर्थिव्रजेन<sup>१</sup> मिलितुं <sup>२</sup>स्वककामुकेन <sup>३</sup>सङ्केतसौधमिव <sup>४</sup>वारिधिनन्दनायाः । <sup>५</sup>गीतिप्रतिध्वनितर्त्तितकेलिकेकि षष्ठीदिने<sup>६</sup> रजनिजागरणं प्रणीय ॥५३॥

<sup>७</sup>पातालभूतलसुरालयलोककोटी-कोटीरहीर इव बालक एष भावी । <sup>८</sup>उत्त्रीय <sup>९</sup>नीतिकृतिनान्तरितीव पित्रा सत्रा <sup>१०</sup>स्वगोत्रिभिरकारि स हीरनामा ॥५४॥

युग्मम्॥ <sup>१</sup>इति जन्म ॥

( १ ) याचकलोकेन साकं सङ्गं कर्तुम् । ( २ ) निजाभिलाषुकेन । ( ३ ) सङ्केतगृहम् । ( ४ ) लक्ष्म्याः । ( ५ ) गानप्रतिशब्देन नृत्यकलिता जाता क्रीडामयूरा यत्र । ( ६ ) षष्ठीरात्रिजागरणम् ॥५३॥

1. इति जन्मोत्सव-नामदानादि हील० ।

( १ ) त्रिभुवनजनकोटिमुकुटे हीरक इवैष भविष्यति । ( २ ) विचार्य । ( ३ ) न्याये चतुरेण ।  
 ( ४ ) स्वस्वजनैः समप् ॥५४॥

हील० पातालपृथ्वीस्वर्गवासिकोटीनां मुकुटेषु नगीनो इव एव बालो भावी इति अन्तश्चिते विचार्य स्वस्वजनैः सत्रा-समं पित्रा स बालः हीरनामा कृतः । किंकृत्वा ? । पद्यां गीतानां प्रतिशब्दैर्नर्तिताः क्रीडार्थं मयूरा यत्र तादृशं रात्रिजागरणं निष्पाद्य । उत्स्रेक्ष्यते । लक्ष्मीकामयिता याचकचक्रेण समं अव्यपुत्र्या: मिलितुं सङ्केतः । अमुकस्मिन् त्वया समेतव्यं मयापि तत्र समागम्यते इति यूनो युवत्याश्च सङ्केतस्तस्य गृहम् ॥५४-५५॥

हीसु० १पूर्वापराम्बुनिधि१बन्धुरमेखलाया भूमे: सभर्तुरुचितैः समृभूषि॑चिह्नैः ।  
२दानानुकूलप्पनसभाजननीरसिक्त-प्राचीनपृण्यविटपिप्रसवैरिवैतैः ॥५५॥

( १ ) प्राची-प्रती[ ची ]सागर एव सुन्दरा काञ्छी यस्या । ( २ ) योग्यैः । ( ३ ) अलङ्कृतः ।  
 ( ४ ) सामुद्रिकलक्षणैः । ( ५ ) दान-दया-पूजास्तपैर्जलैरभिक्षस्य प्राक्तनजन्मप्रणीत-  
 पुण्यदमस्य पुष्टैः ॥५५॥

हील० पूर्वा-प्राची अपरा-प्रतीची सृष्टिभ्रमणेन पूर्वस्या दक्षिणां गमनादक्षिणा गृहीता पश्चिमाया उत्तरस्यां इति उत्तरा गृहीता । तासां जलधय एव रम्या मेखला यस्यास्तादृश्या भूमे र्भर्तु शक्तिणः योग्यैश्चिह्नैरलङ्घकृतः । उत्प्रेक्ष्यते । दान दया पूजारूपैर्नीरेः सिक्तः प्राक्तनपुण्यवृक्षस्तस्य पुष्पैः । “प्रसवश्च मणीचक” मिति हैम्याम् ॥५६॥

हीसु० संज्ञाति लोचनचकोरनिपीयमानै र्लांवपयचञ्चदमृतैरुपैचीयमानैः ।  
वृद्धिं दधारै पृथुकोऽप्रतिमैः प्रतीकै- द्वैतीयकेन्दुरिव सान्द्रकलाकलापैः ॥५६॥  
( १ ) स्वजननयनचकोरकैरास्वाद्यमानैः । ( २ ) लावण्यपुण्यसुधारसैः । ( ३ ) पुष्टि प्राप्नुवद्धिः ।  
( ४ ) बालः । ( ५ ) असाधारणैः । ( ६ ) अवयवैः । ( ७ ) श्वेतपक्षद्वितीयासम्बन्धिचन्द्र इव  
॥५६॥

हील० सज्जा०। स्वजनानां नेत्राण्येव चकोरास्तैरतुमालोक्यमानैः । पुनर्लावण्यान्येव चञ्चन्ति अमृतानि तैः पृष्ठिं नीयमानैस्तुपमावयवैः पृष्ठिं धत्ते स्म । यथा द्वितीयेन्दृः कलाभिरेधते ॥५७॥

हीसुं० १पित्रोर्मनोरथगणान्कुटजावनीजा-३ग्रावृट्पयोद इव ४पल्लवयन्कुमारः ।  
उत्सङ्घयोरुदलसत्कलयन्विलासं ५फुल्लक्तार्थविटपयोरिव केलिकीरः ॥३५७॥  
६आनन्दमेदुरितमानसपद्मचक्षु-रङ्गान्तरं परिचरन्स्म॑ महेभ्यसूनुः ।  
३अभ्राभ्रिकान्तरमिवा४र्थकभानुमाली कस्तुरिकामृगशिश॒५विपिनान्तरं वा ॥५८॥युगम्॥

१. धिमञ्जुल हीमू० । २. ऋफलदयोरिखि हीमू० । ३. हीसुंप्रतो ५७-५८ इति श्लोकद्वयं युग्मतया निर्दिष्टम् । हीलप्रतौ तु ५८-५९ इति श्लोकद्वयं युग्मतयोऽन्तिखितम् । तत्र च तथैव च लघुटीकापि ५८-५९ पद्ययोः सहैव दृश्यते । अथ ५९तमं पद्यं हीमू० नास्ति । किन्तु, ब्रह्मीकायां (हीमू०) ५९तमपद्यस्य टीका विद्यते, इति ज्ञेयम् ॥

(१) मातृतातयोः । (२) नीपतरून् । (३) वर्षाकालसम्बन्धी मेघ इव । (४) क्रीडां कुर्वन् । (५) विकचवलीद्रुमयोः । (६) क्रीडाशुकः ॥५७॥

(१) हर्षेण पुष्टीभूतमनसां कान्तानामुत्सङ्गान्तरम् । (२) सेवमानो हीरकुमारः । (३) मेघवार्दिलिकामध्यम् । (४) बालसूर्यः । (५) वनान्तरम् ॥५८॥

हील० यथा नीपाः मेघः पल्लवयति तथा मनोरथन्यल्लवयन्बालः मातृपित्रोः क्रोडयोः क्रीडां कुर्वन् उल्लसति स्म । यथा फुलतोर्वल्लीव तयोरुत्सङ्गे क्रीडार्थं शुकः उल्लसति ॥★५८॥

हीसु० १विन्ध्योपलान्तरमिव द्विरदेन्द्रबालश्वृतदुमान्तरमिवा र्भककाकपुष्टः ।  
‘स्मेराम्बुजान्तरमिव ध्रमरस्तरङ्गोत्सङ्गान्तरं च ‘कलहंस इवाबभासे ॥५९॥

(१) विन्ध्याचलशिलान्तरम् । (२) करिकलभः । (३) सहकारवृक्षान्तरम् । (४) कोकिलबालः । (५) विकचकमलान्तरम् । (६) भृङ्गः । (७) मानससरसः परसरसो वा कल्लेलान्तरम् । (८) हंसशिशुः ॥५९॥

हील० आनन्देन पुष्टं मानसं यासां तादृशाम्बुजाक्षीणां क्रोडान्तरं भजन् स बालो भाति स्म । यथा डिम्भद्युमणिर्घस्य वर्द्धलिकान्तरं भजन् शोभते । कस्तूरीहरिणो वनान्तरमिव । गजशिशु-र्जलबालकशिलान्तरमिव । बालकोकिलो माकन्दान्तरमिव । ध्रमरः विकसित्कमलान्तरमिव । हंसः तरङ्गाना(णा)मुत्सङ्गान्तरं भजन्भाति ॥५९-६०॥

हीसु० १स्वर्णाद्रिशृङ्गः इव चन्द्रिकयाऽनुविद्धः कायः शिशोर्विकचगन्धफली विलासी ।  
‘सञ्चारिचन्द्रमलयदुमसान्दपङ्कैर्लिसः कयाचन चकोरदृशा चकासे ॥६०॥

(१) मेरुशिखरमिव । (२) चन्द्रज्योत्सनया । (३) व्यासः । (४) विकसितचम्पककलितः । “कृतां विधोर्गन्धफलीबलिश्रिय” मिति नैषधे । (५) सञ्चरणशीलं मध्ये मिश्रीभूतं कर्पूरं यत्र एवंविधचन्दनतरोः स्मिग्धद्रवैः ॥६०॥

हील० स्व०। विकसिता या गन्धफलं(ली) चम्पकपादपस्तद्विलासतीत्येवंशीलो, गौराङ्ग इत्यर्थः । शिशुकाद्यः कयाचित्स्त्रिया प्रसरणशीलो यत्र तादृशैः चन्दनद्रवैर्लिसः रेजे । यता चन्द्रज्योत्सनया व्यासो मेरुशृङ्गः शोभते । ‘शृङ्ग’शब्दः पुन्रपुंसके ॥६१॥

हीसु० १नीलांशुकाकलितबालककामपाल-मूर्त्तेरिवोषमितिमानयितुं कुमारे ।  
काचित्कदाचन कुरङ्गमदाङ्गरागं कौतुहलै[ न ] कुरुविन्ददती ततान ॥६१॥

(१) विनीलवसनसंयुतकुमारावस्थालङ्कृतबलभद्रस्य कायस्य उपमानं स्वाभाविकसुवर्णगौरे कुमारे । (२) कस्तुरिकाया विलेपनम् । (३) कुतुकात् । (४) पद्मारागमणायस्तद्वद्वन्ता यस्याः । “को दर्शयेत्स्वां कुरुविन्दमालाम्”, “चित्ते कुरुष्व कुरुविन्दसकान्तदन्ति” “अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषभवराहेभ्यश्चे” ति दन्तस्य दद्वा इति नैषधीयं पदद्वयं चकार ।

(५) कृतवती ॥६१॥

- हील० नीलां०। काचित् कुरुविन्दा: पद्मागमणयस्तद्वदन्ता यस्याः सा कुरुविन्ददती कस्तूरीविलेपनं चक्रे । उत्प्रेक्ष्यते । नीलवस्त्रावृतस्य शिशुबलभद्रस्य शरीरस्योपमानं कुमारे आनयितुमिव ॥६२॥
- हीसुं० काचिच्च्वंकोरनयना ३व्यवहारिसूनो-वर्कन्नाम्बुजं विकचनेत्रपुटैर्निपीय ।  
३चेतस्त्वंमीदयितनिर्मलितात्मदर्श-स्मेराब्जदर्शनविधौ ४शिथिलीचकार ॥६२॥
- (१) चकोराक्षी । (२) हीरकुमारस्य (३) मनः । (४) चन्द्रस्य, शाणोत्तेजितदर्पणस्य,  
विकचकमलस्य विलोकनप्रकारे । (५) मन्दीचकार ॥६२॥
- हील० काचिच्च्वकोरनेत्रा स्त्री इध्यपुत्रस्याननाभ्यं विकस्वरनेत्रपत्रपुटैर्दृष्ट्वा स्वकीयं चित्तं चन्द्रस्यात्मदर्शस्य  
विकसितजलजस्य दर्शनकरणे मन्दीकरेति स्म ॥६३॥
- हीसुं० एनं १हिरण्यमणिभूषणभूषिताङ्गं-मिभ्याङ्गं नयनयोरतिथिं प्रणीय ।  
३सोऽयं ४स्मरो ५हरहुताशहतोऽवतीर्ण ६एतन्मिष्ठेण ७समशायिकदाचिदेवम् ॥६३॥
- (१) स्वर्णरत्नालङ्कारैरलङ्कृतकायम् । (२) लोचनयोः प्राघुणं कृत्वा-दृष्ट्वेत्यर्थः  
(३) प्राकश्रुतः । (४) कामः । (५) त्रिलोचनभाललोचनानलज्जालितः अत एवावतीर्णः ।  
(६) हीरकुमारस्त्वपेण । (७) संशयः कृतः ॥६३॥
- हील० एनं०। सुवर्णरत्नाभरणशोभिताङ्गं एनं सुतं नेत्रगोचरं कृत्वा कयाचित् एवं समशायि-संशयशक्ते । एवमिति किम् ?। हयगिनज्जालितः । पुनरेतद्युग्याजादवतीर्णोऽयं स्मरः ॥६४॥
- हीसुं० काचिद्वशा १विकचचम्पकसूनशालि-मालां २विलम्बितवती ३शिशुकण्ठपीठे ।  
तस्मिं४श्विकीर्षुरिव ५कौतुकिनाकिमुक्त-प्रालम्बिकाङ्गिनवकल्पतरूपमानम् ॥६४॥
- (१) स्मितचम्पकपुष्पाकलितहारम् । (२) स्थापितवती । (३) हीरकुमारकण्ठे । (४) कुमारैः कर्तुमिच्छरिव । (५) कुतूहलाकलितदेवेन स्थापितकनकङ्गुम्बनकेन संयुत-  
कल्पवृक्षस्योपमानम् ॥६४॥
- हील० काचित्स्त्री विकचचम्पकपुष्पैः शालते । तादृशीं मालां शिशुकण्ठे स्थापयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते ।  
कौतुकिना नाकिना मुक्ता प्रालम्बिका ङुम्बनकं अङ्गे अस्यास्ति तादृशस्य नूतनकल्पतरोरूपमानं  
तस्मिन् बाले कर्तुमिच्छरिव ॥६५॥
- हीसुं० चूडामणिःस्त्रिभुवनस्य यदेष भावी चूडामणिं किमिति कापि ३दधार मूर्धिन् ।  
सूरिश्रियाःस्तिलकवद्विता कुमारो भालेऽपरास्य १किमतस्तिलकं चकार ॥६५॥
- (१) त्रैलोक्यशिखारनम् । (२) धृतवती । (३) आचार्यलक्ष्म्यास्तिलकम् ॥६५॥
- हील० चूडा० । काचिद्वात्री मूर्धिन किरीटं धृतवती अन्यास्य ललाटे तिलकम् । किम् ?। अतः कारणादेव  
रचयामास यतोऽसौ शिशुः सूरिलक्ष्म्यास्तिलकवद्विष्यति इतीव ॥★६६॥

१. तिलकं किमतश्चकार हीमु० ।

- हीसुं० तत्कर्णयोर्मणिविनिमितकर्णपूर-द्वन्द्वं १कयाचिद्वलम्बितमुद्दिदीपे ।  
अनित्योदयः कथमभूस्त्वमिदं ४मुखेन्दुं प्रष्टुं किमि॒त्युपगतं शशिसूर्ययुगम् ॥६६॥  
( १ ) अर्थात्स्थेत-पीतरलघटितकुण्डलयुगलम् । ( २ ) कर्णयोर्दर्त्तम् । ( ३ ) नक्तंदिनमस्तरहितः ।  
( ४ ) कुमारवदनचन्द्रम् । ( ५ ) आगतम् ॥६६॥
- हील० तत्क० । रत्नघटितकुण्डलयुगलं कयाचित्तस्याः(स्य) कर्णयो विषये विलम्बितं स्थापितं शुशुभे ।  
उत्प्रेक्ष्यते । अस्य मुखचन्द्रं इति प्रष्टुं उपगतं समेतं शशिसूर्ययोर्युगम् । इतीति किम्?। हे मुखेन्दो !  
नित्यमुदयो यस्य तादृशः केन प्रकारेण सञ्जातस्तकारणमावयोर्वद । यथा आवामपि नित्योदयौ  
भवामः(वः) ॥★६७॥
- हीसुं० नेऽत्रामृताञ्जनमसौ जगतां यदस्या-नञ्चाक्षिणी किमिति काचन कज्जलेन ।  
सर्वाङ्गसूत्रमिह ऋधास्यति येन तस्योरै॒सूत्रिकां किमिति काचि॑दुरस्यधत्त ॥६७॥  
( १ ) नेत्राणाममृतस्याञ्जनमिव । ( २ ) समग्राणि आचाराङ्गादिलक्षणाङ्गानि तदेव सूत्रं सिद्धान्त-  
मसौ हृदये धारयिष्यति । ( ३ ) मौक्तिककृतहारम् । ( ४ ) वक्षसि ॥६७॥
- हील० नेत्रा० । काचन स्त्री अस्य नेत्रे आनञ्ज । किमितीव इति किम् ?। यदसौ जगत्रेत्राणाममृताञ्जनं  
भावी । पुनरिह हृदये आचाराङ्गादिभिरुपलक्षितं सूत्रं धारयिष्यति । किम् ?। इति कारणादेव  
तस्योरसि मुकालतां क्षिपति स्म ॥६८॥
- हीसुं० १पादारविन्दयुगलोपरिलम्बिनीनां क्वाणै र॑णज्ञणितराजतकिङ्किणीनाम् ।  
२वीङ्गाविशेषललितेन ४मरालबाल-स्तम्बेरमाविव ५विगायति यः कुमारः ॥६८॥  
२इति धात्रीभिष्य( : प )रिपालनशृङ्गारकरणादि ।  
( १ ) चरणकमलयुगलोपरिकद्वानाम् । ( २ ) रणज्ञणितशब्दं कुर्वदूप्यध्युर्दिक्षिणाम् । ( ३ )  
गमनातिशयविलासेन । ( ४ ) बालशब्दो लालाघण्टान्यायेन उभयत्र सम्बध्यते । ततो बालहंसं  
बालगं वा । ( ५ ) अवगणयति जयतीति यावत् ॥६८॥
- हील० पादारविन्दोपरिस्थानां रणज्ञणितानां रूपकिङ्किणीनां शब्देन पुनर्गते विशेषलावण्येन हंसबालं बालगं  
च । बालशब्दो घण्टालालान्यायेनोभयत्र सम्बध्यते । यः शिशुर्निन्दतीव ॥६९॥
- हीसुं० १कुंराहृयस्य हरति स्म मनो २मनोऽजं ३तन्मुन्मुनालपनमि४भ्यगभस्तिभर्तुः ।  
५किञ्चिद्विजृम्भियुवभावनवोढबाला-नातिप्रगल्भकिलकिञ्चितवत्प्रियस्य ॥६९॥  
( १ ) तत्प्रियतुः । ( २ ) मनोहरम् । ( ३ ) यत्तस्यमुन्मुनालपनम् । ( ४ ) व्यवहारिषु मध्ये  
तत्प्रतप्रतापेन भारकर इव भास्करस्य । ( ५ ) किमपि प्रकटीभवत्तारुण्यं यस्यास्तादृश्या  
नवपरिणीतकान्ताया नाधिकचातुर्यान्वितं किलकिञ्चितं विलासविशेषः ॥६९॥

1. कयाचन विलम्बित हीमु० 2. इति धात्रीपरिपालन-शृङ्गारकरणम् हील०

- हील० कुंगा०। चेतोहरं तस्यास्पष्टभाषणं व्यवहारिणु भास्करस्य मनो हृतम् । यथा किञ्चित्प्रकटीभवन् युवभावो यस्यास्तादृशी नवोढा बाला तस्या नातिचातुर्यं किलकिञ्चितं विभ्रमविशेषः प्रियस्य मनो हरति ॥७०॥
- हीसु० इक्ष्वाकुवंश इव ॑नाभिमहीमघोना ॒विश्वप्रशस्यवृषभाङ्गतनूभवेन ।  
॑ओकेश इत्यु॒दयवांस्तनयेन तेन मेने महेभ्यवृषभेन निः॑जान्ववायः ॥७०॥  
( १ ) नाभिराजेन । ( २ ) त्रिभुवनश्लाघास्पदादिदेवनन्दनेन । ( ३ ) अभ्युदययुक्तः ।  
( ४ ) स्ववंशः ॥७०॥
- हील० इक्ष्वा०। तेन सुतेन कृत्वा इभ्यपुङ्गवेन स्ववंशं उदयवान् मेने । यथा विश्वे श्लाधनीयेन ऋषभदेवेन कृत्वा नाभीपृथ्वीन्द्रेण इक्ष्वाकुवंशः अभ्युदययुक्तोऽमानि ॥७१॥
- हीसु० धात्र्यो॑दितां प्रथमतः ॒पृथुकप्रकाण्डः कीरस्य॑ शाव इव ॑चारुमुवाच ॒वाचम् ।  
॒तस्याः पुनः ॑समवलम्ब्य ॑कराङ्गुलीः स लीलायितं ॑वितनुते स्म गतौ  
॑स्विकायाम् ॥७१॥  
( १ ) उपमात्रा कथितम् । ( २ ) कुमारमुख्यः । ( ३ ) शुकबालकाः । ( ४ ) मनोज्ञां ( ५ ) वाणीम् । ( ६ ) धात्र्याः । ( ७ ) आश्रित्य । ( ८ ) हस्ताङ्गुलीः । ( ९ ) आत्मीयगमने लीलया आचरितं चकार । लीलागतिमदर्शयत् । ( १० ) “हंसं तनौ संनिहितं चरन्तं मुनेर्मनोवृत्तिरिव स्विकायामि”ति नैषधे ॥७१॥
- हील० धात्र्यो०। सोऽर्भक उपमात्रा प्रथममुच्चरितां वाणीं उवाच । यथा शुकशावकः प्रथमकथितां चार्वीं वाचं वदति । पुनः स कुमारस्तस्या धात्र्याः हस्तस्य तर्जन्यादिकाः अङ्गुलीर्गृहीत्वा आत्मीयायां गतौ गमने लीलयाचरितं चारुचङ्गकमणविलासं तनुते स्म । लीलागमनमदर्शयत् इत्यर्थः ॥७२॥
- हीसु० ॑चूलाक्रियामहमथा॒ङ्गभवस्य तस्य सन्तन्वता पुलककोरकितने॑ तेन ।  
॑श्रीदायितं ॑प्रदिशता ॑मणिहेमजात-मा॑ङ्गायितं समुदयेन॒च मार्गणानाम् ॥७२॥  
( १ ) शिखाकरणाद्याचारम् । ( २ ) पुत्रस्य । ( ३ ) रोमाङ्गकञ्जुकितेन दानविद्यौ व्यवहारिणा ।  
( ४ ) धनदवदाचरितम् । ( ५ ) ददता । ( ६ ) रत्न-स्वर्णसमूहम् । ( ७ ) महेभ्यवदाचरितम् ।  
( ८ ) याचकनिकरेण ॥७२॥
- हील० चूला० । रोमाङ्गकञ्जुकितेन चूलाक्रियोत्सवं कुर्वता । पुना रत्नादि ददता धनद इवाचरितम् । उत याचकव्यूहेन ईश्वरीभूतम् ॥७३॥
- हीसु० ॑शावः ॒शुभैर॑वयवैस्स॑वितुः प्रयत्ना-द्वृद्धिं दधाव॑नुदिनं स्वजनैरुपास्यः ।  
॑भूमीभृतो॑ बहलनिर्झरतस्तरङ्गैः सि॑न्धुप्रवाह इव ॑पत्तरथाभिरामः ॥७३॥

( १ ) हीरकुमारः । ( २ ) श्लाघनीयैः । ( ३ ) अङ्गैः । ( ४ ) पितुः । ( ५ ) प्रतिदिवसम् ।  
 ( ६ ) पर्वतस्य । ( ७ ) जलपरिपूरितनिर्झरणतः । ( ८ ) कल्लोलैः । ( ९ ) नदीप्रवाह इव ।  
 ( १० ) पक्षिगणौर्मनोजः ॥७३॥

हील० शा०। पितुर्लालनात् बालः पुष्टिमाप । यथाद्रेः प्रचुरनिर्ज्ञप्रवेशात्तरङ्गैर्नदी वदधते ॥★७४॥

हीसुं० १वाचस्पतेर्दिवि विधाय सुरान्विनेयान् २जाने नरानपि ३विधातुमुपेयुषः ४क्षमाम् ।  
 ५वप्त्रा ६व्यमोचि ७पठितुं सविधेऽद्विजस्य ८कस्यापि ९वाङ्मयविदः स॑३महं कुमारः  
 ॥७४॥

( १ ) बृहस्पतेः । ( २ ) स्वर्गे । ( ३ ) शिष्यान् । ( ४ ) अहं ग्रन्थकृद्विचारथामि । ( ५ )  
 मनुष्यानपि शिष्यान्कर्तुं भूमीमागतवतः । ( ६ ) पित्रा । ( ७ ) मुक्तः । ( ८ ) पठनाय । ( ९ )  
 ब्राह्मणस्य पार्श्वे । ( १० ) नाम्ना अनिर्दिष्टस्य । ( ११ ) शास्त्रज्ञस्य । ( १२ ) समहोत्सवम्  
 ॥७४॥

हील० वाच०। पित्रा स हीरः शास्त्रज्ञस्य ब्राह्मणस्य समीपे सोत्सवं यथा स्यातथा मुक्तः । उत्प्रेक्ष्यते । स्वर्गे  
 देवान् शिष्यान् कृत्वा पृथ्व्यां नरानपि शिष्योकर्तुमागतस्य बृहस्पतेर्निकटे मुक्त इव ॥★७५॥

हीसु० तस्यार्भशक्र इव १चित्रशिखण्डसूनो-२लब्ध्वोप३कण्ठम॑शठस्स पठन्नकुॄण्ठम् ।  
 ५पोतः ६श्रुतिं स ७विधिवल्लिपिसङ्ग्रहेण प्रेम्णा विवेश नगरीमिव १०गोपुरेण  
 ॥७५॥

( १ ) बालेन्द्रस्य । “शैशवावधिगुरुर्गुरुरस्ये” ति नैषधे । ( २ ) बृहस्पतेः । “विचित्रवाक्विचव्र-  
 शिखण्ड अनन्दन” इति नैषधे । ( ३ ) प्राप्य । ( ४ ) समीपम् । ( ५ ) सरलः । ( ६ )  
 सोत्साहम् । ( ७ ) हीरकुमारः । ( ८ ) शास्त्रम् । ( ९ ) यथोक्तप्रकारेण वर्णवाचनलिखनादि-  
 प्रकारेण । ( १० ) प्रतोल्या ॥७५॥

हील० तस्य द्विजस्य समीपं लब्ध्वा स कुमारः अशठः सरलाशयः सन् अकुण्ठं तीक्ष्णं पठन् अक्षरशिक्षणेन  
 शास्त्रं प्रविष्टः । यथा प्रतोल्या कश्चित्पुरीं विशति । यथा बालेन्द्रः बृहस्पतेरुपकण्ठं लब्ध्वा विज्ञः  
 स्यात् । इन्द्रस्य बालत्वमध्ययनत्वं च नैषधे उक्तम् । यथा “शैशवावधिगुरुर्गुरुरस्ये” ति ॥७६॥

हीसु० १छायां तनोरिव न लङ्घयतापि वाचं २प्रासादि तेन विन्यावा[ न ]तेन ३सूरिः ।  
 सर्वैरभावि ४च गुरोः सफलैः प्रयत्नैस्तस्मिन्नूष्वरभुवीव ५कृषीवलस्य ॥७६॥  
 ( १ ) गुरोर्वाचं छायामिव नोङ्घङ्घयता । ( २ ) प्रसन्नीकृतः । ( ३ ) विनयनप्रेण । ( ४ )  
 कलाचार्यः । ( ५ ) गुरोः समस्तैः प्रयत्नैः हीरकुमारे सफलीबभूवे । ( ६ ) सुक्षेत्रक्षितौ । ( ७ )  
 कार्षुकस्य कृषिकारिणः ॥७६॥

हील० यथा कोऽपि छायां न लङ्घयति । तद्दुरोर्वाचं न लङ्घयता तेन पुत्रेण विद्वान् प्रसन्नीकृतः ।  
 गुरोरप्युद्यमैः सफलैर्भूतम् । यथा कर्षणकारिणः प्रयासैः सर्वसस्यायां भूमौ सफलैर्भूयते ॥७७॥

1. श्रान्त्व्या नरा० हीमु० । 2. किम् हीमु० । 3. स्रुतोः हीमु० ।

- हीसु० तं साक्षिणं १प्रणयवान्स्वगुरुं २प्रणीय स्वल्पैर्दिनैः स ३वहनैरिव ४धीविशेषैः ।  
संप्राप पारम् ५खिलागमसागरस्य साधुः समाधिभिरिवानुपमै०र्भवस्य ॥७७॥  
(१) स्नेहवान् । (२) कृत्वा । (३) यानपात्रैरिव । (४) बुद्धिविशिष्टगुणैः । (५)  
समस्तशास्त्रसमुद्रस्य । (६) असाधारणै॒ध्यानैः । (७) संसारस्य ॥७७॥
- हील० तं स्वकीयं गुरुं साक्षिमात्रं कृत्वा स्नेहवान् स स्वप्रज्ञोत्कृष्णैः समग्रशास्त्रस्य पारं प्राप । यथा प्रवहणैः  
समुद्रपारम् । पुनः साधुः योगैर्भवसमुद्रपरं प्राप्नोति तद्वत् ॥७८॥
- हीसु० १अध्याप्य तेन विधिवत्सकलाः स विद्याः २प्रत्यर्थ्यते स्म ३गुरुणा ४जनकस्य तस्य ।  
५श्रीमान्मुरारिरिव तेन ६हिण्यरल-कोटीर्विंतीर्य १०सुतसूरिरिपि ११व्यधायि ॥७८॥  
(१) पाठयित्वा । (२) यथोक्तप्रकारेण । (३) पश्चादर्पितः । (४) कलाचार्येण । (५)  
तातस्य । (६) लक्ष्मीवान् । (७) कृष्ण इव । (८) स्वर्णमणीनां कोटीः । (९) दत्त्वा ।  
(१०) कलाचार्योऽपि । (११) कृतः ॥७८॥
- हील० अध्या०। तेन गुरुणा विद्याः पाठयित्वा तस्य पितुः स सुतः पश्चादर्पितः । अपि पुनर्स्तेन पित्रा  
दीनारकोटाकोटीदत्त्वा कविरिपि कृष्ण इव लक्ष्मीपतिरकारि ॥७९॥
- हीसु० १चित्रामिवे॒न्दुरन्॑वद्यतमां स विद्यां लब्ध्वा श्रिया २तदवधि ४व्यरुचत्कुमारः ।  
आसीद॑सीममहिमाप्यनयाऽर्भकस्य ५प्रोल्लेखितस्य ६निकषेन( ण ) मणे०स्त्विषेव  
॥७९॥  
(१) चित्रानक्षत्रम् । (२) चन्द्रः । (३) प्रशस्याम् । (४) तद्विनमारभ्य । (५) शुशुभे ।  
“सहस्रधात्मा व्यरुच्छिभक्त” इति रघुवंशे । (६) अद्वैतमाहत्यविद्यया । (७) उत्तेजितस्य ।  
(८) शाणेन । (९) कान्त्या ॥८०॥
- हील० चित्रा०। स निरवद्यां विद्यां प्राप्य व्यरुचत् । यथा चित्रां प्राप्य चन्द्रः शारदीनकौमुदीलक्ष्म्या रोचते ।  
अनया विद्यया सुतस्य अद्वैतमाहत्यजनि । यथा शाणोत्तेजितस्य रत्नस्य कान्त्यानन्यमहत्वं महर्घ्यता  
स्यात् ॥८०॥
- हीसु० अथ गुणलक्षणानि :—  
१नाभीभवेन २तदुदाहरणैः? कृतैर्ष्क( : किं ) ३सामुद्रशास्त्रगदितैर्नर॑लक्षणौधैः ।  
५नालभिं तत्र कुमरे ६व्यभिचारिभावः ७प्रामाणिकैस्स॑दुपमानविधाविवेह ॥८०॥  
(१) विधिना । (२) स एव हीरकुमार एव उदाहरणं दृष्टान्तस्तत्कृतैः । (३) समुद्रे तत्कृतं  
सामुद्रम् । तदेव शास्त्रं तत्र कथितैः । (४) पुरुषलक्षणगणैः । (५) न प्राप्तः । (६)  
परस्परविरोधिता । (७) तार्किकैः । (८) सद्विद्यमाने उपमानविधौ ॥८०॥

1. इति बालक्रीडा-पठनादि हील० । 2. रणीकृ० हीमु० ।

- हील० ना०। उत्त्रेक्ष्यते । धात्रा स एव हीरकुमार उदाहरणं दृष्टान्तो येषां तादृशैः कृतैः । पुनः समुद्रेण कविनोक्तं शास्त्रं तत्रोक्तैर्नरलक्षणैस्तत्र कुमरे । “कुमारः कुमरोऽपि चेति” शब्दप्रभेदे । व्यभिचारे नासः । यथेह जगति सति योग्ये विद्यमाने उपमानविधौ अन्यपदार्थसादृशीकरणप्रकारे तार्किकै-व्यभिचारित्वं न लभ्यते ॥८१॥
- हीसु० तस्याभवल्लङ्घणिमातिशयः स कोऽपि प्रोत्तारयन् यदुपरि स्थविरः शिवाय । मुक्ताः क्षिपत्यनुदिनं पवमानमार्गे ता एव तत्र किमु तारणा भवन्ति ॥८१॥  
 (१) लावण्याधिक्यम् । (२) प्रोत्तारयन् न्युज्छनानि कुर्वन् । (३) यद्विवण्यातिशयस्योपरि । (४) स्थविरः-पितामहो विधाता । (५) कल्याणाय । (६) मुक्ताफलानि (७) प्रतिदिनमुक्ताः क्षिपति त्यजति । (८) गगने । (९) ता मुक्ता एव । (१०) ताराः ॥८१॥
- हील० तस्य लावण्यातिशयोऽद्वैतोऽभूत् । यस्योपरि प्रतिदिनं पितामहः कल्याणकारणाय मुक्ताः गगनमार्गे क्षिपति । ता एव तत्राम्बरे किमु ज्योतिर्मण्डलानि भवन्ति ॥८२॥
- हीसु० स्पद्धोदयादिव मिथः प्रवयं सृजद्विरङ्गः सच्छिन्मवपुर्विभवेन तेन । ईश्वां तमीप्रिय तमः प्रणयन्विजित्य लक्ष्मच्छलेन मुमुक्षे किमु लाज्जयित्वा ॥८२॥  
 (१) स्पद्धया उदयात् । (२) पुष्टि कुर्वद्विः । (३) अवयवैः । (४) च्छिन्मा चारुत्वेन युतकायशोभया । (५) विधुः । (६) कुर्वन् । (७) लाज्जनकपटेन । (८) लाज्जनं मष्या अभिज्ञानमास्ये कृत्वा मुक्तः ॥८२॥
- हील० स्पद्धो०। तेन कुमरेण ईश्वां कुर्वन् चन्द्रः मुखे मष्या अभिज्ञानं कृत्वा मुक्तः । किभूतेन ? तेन सह च्छिन्मा वर्तते तादृशो वर्पुर्विभवो यस्य । कैरङ्गैः स्पद्धयाः उत्पादात्पुष्टि कुर्वद्विः ॥८३॥
- हीसु० केशोच्चयः स्फुरति तस्य स नीलकण्ठ-पृष्ठे प्रविष्ट इव येन जितः कलापः । आबाल्यतः कुटिलता मनसोऽपनीता यं भेजुषी पुनरुपेत्य कच्छटासु ॥८३॥  
 (१) केशपाशः । (२) केकी शम्भुश्च । (३) मयूरपिच्छम् (४) बालत्वं मर्यादीकृत्वा । (५) चित्तात् । (६) बहिः कृता । (७) केशनिकरेषु “तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटा” इति नैषधे छटा शब्दः समुदयेऽस्तीति ॥८३॥
- हील० केशो० । अस्य स केशपाशो भाति । येन केशपाशेन जितः कलापः । ईशस्य मयूरस्य पृष्ठभागे प्रविष्टः । पुनर्येन कुमारेण शैशवं मर्यादीकृत्य मनसः कुटिलता निष्कासिता सती । यं कुमरं केशेषु समेत्य बभाज ॥८४॥
- हीसु० स्वध्यानलोपभवकोपपिनाकिजाग्र-दातङ्गशङ्कितमनःसुमनःशारस्य । त्यागं तनोर्विदधतः कृतवान्विधाता छत्रेण यस्य किमु मौलिमवाङ्मुखेन ॥८४॥

( १ ) निजध्यानस्य विघ्नविधानादुत्पन्नः क्रोधो यस्य तादृशात् शम्भोः प्रकटीभवता भयेन हननलक्षणां शङ्कां प्राप्तं हृदयं यस्य तथाविधस्मरस्य । ( २ ) शरीरमुज्ज्ञतः । ( ३ ) स्मरछत्रेण । ( ४ ) न्यद्विमुखेन ॥८४॥

हील० स्वस्य ध्यानलोपोद्भूतकोपस्येशस्य भयभीतस्य, अत एव तनोस्त्यागं कुर्वतः कामस्य अधोमुखेन छत्रेण यस्य मस्तकं कृतम् ॥८५॥

हीसुं० उत्तुङ्गभावमथै वर्तुलतां दधान-मुष्णीषमस्य ^सुषमां स्म बिभर्ति मौलौ । यस्मिन्सँमाजिगमिषोस्तरु^णत्वलक्ष्म्या ^माङ्गल्यकुम्भ इव के॒शरुहाश्रिताङ्गः ॥८५॥  
( १ ) उत्त्रतत्वं वृत्तत्वं च । ( २ ) सातिशायिनी शोभाम् । ( ३ ) समागन्तुमिच्छोः । ( ४ ) तासृण्यश्रियः । ( ५ ) कल्याणकारिकलश इव । ( ६ ) केशा एव दुर्वास्ताभिराश्रित उत्सङ्गो यस्य ॥८५॥

हील० उत्तु०। अस्य मौलौ वर्तुलं उष्णीषं सातिशायिशोभां दधार । उत्प्रेक्ष्यते । यस्मिन्हीरकुमरे आगन्तुकामा यौवनश्रियः । केशा एव रुहा दूर्वा तया श्रितः अङ्गो यस्य तादृशः कल्याणकारी कुम्भः ॥८६॥

हीसुं० यश्च^न्द्रिकाङ्गितचतुर्द्विजराजराज-द्वालाद्वशीतमहसो वहते स्म शश्त् । ^शुद्धाशयोऽमृतरसायितवाग्विलासो द्वाससतिः कलयतात्सकलाः कथं न ॥८६॥  
( १ ) ज्योत्स्नाभिः संयुतैश्चतुः सङ्ख्याकैर्द्विजराजै राजदन्तै राजन्शोभमानः ललाट एवार्थः शशी तान् सार्वचतुश्चन्द्रान् । ( २ ) निर्मलहृदयः । ( ३ ) सुधारस इवाचरिता वच[ न ]वैचित्री यस्य ॥८६ ।

हील० यश्च० । यो हीरकुमरः ज्योत्स्नासहितान् चतुःसङ्ख्याकान् राजदन्तान् चन्द्राश्च । तथा राजत् दीप्यमानं यद्वालमेवाद्वशीतमहास्तान्सार्वचतुश्चन्द्रान्धते । स कुमारे द्वाससतिकलाः कथं न धत्ताम् । शेषं सुगमम् ॥८७॥

हीसुं० ^भालस्थलप्रसूमरांशुपयःप्रवाहो-पान्तप्रसूललतिकेव विभाति यद्भूः । ^शङ्कोऽप्यभूद्वदैनवारिजपार्थिवस्य ^चन्द्रादिवैरिविजये किमु ^वादनार्हः ॥८७॥  
( १ ) ललाटरूपं यत्स्थलं प्रदेशविशेषस्तत्र प्रसरणशीला अंशव एव पानीयानां समीपसमुद्रतफलिनी वल्ली च । ( २ ) ललाटश्रवणयोर्मध्ये प्रदेशविशेषः शङ्कः । ( ३ ) मुखराजस्य । ( ४ ) विधुप्रमुखद्विषत्परिभवसमये । ( ५ ) स्वविजयसूचनाय वादयितुं योग्यः ॥८७॥

हील० भाल० । यद्भूर्भाति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । भालस्थलस्य विस्तरणशीला ये किरणास्त एव नीण्वाहस्तत्रोद्भूता लता । शङ्कोऽपि मुखरङ्गः चन्द्रदर्पणजये किमु वादनयोग्यः ॥८८॥

- हीमु० १लावण्यनीरनयनाब्जयदीयवक्त्र-कासारपालिरिव कर्ण युगं १विरेजे ।  
 अद्विपेषु सूचयति किं स्वमितेषु भावि-३श्लोकं शिशोः ४श्रवणयोश्च नवद्वयाङ्कः ॥८८॥  
 ( १ ) लवणिमैव जलं तथा नयने एव कमले यत्र तादृशहीरकुमारवदनतडाकस्य सेतुः पालिः-सरसो जलस्य रुच्यनस्थानम् । ( २ ) अष्टादशद्वीपेषु । "अष्टादशद्वीपनिखात यूष" इति रघुवंशे । ( ३ ) यशः । ( ४ ) कर्णयोः आकृतिरूपो नवकाङ्क्षे दृश्यते । यथा - "कर्णान्तरुत्कीर्ण-गभीरलेखः किं तस्य सख्यैव नवा नवाङ्कः" इति नैषधे ॥८८॥
- हील० कर्णयुगं विभाति । उत्प्रेक्षते । लावण्यमैव नीरं यस्य, नयने एव अब्जे यस्य, तादृशस्य यद्वक्त्रतटयकस्य पालिः । च पुनः कर्णयोर्नैवेति सङ्ख्याकानां द्वयस्याङ्कः आकृतिरूपः अष्टादशवाची अष्टादशप्रमाणेषु द्वीपेषु भावियशः कथयतीव ॥८९॥\*
- हीमु० १विद्वेषिभावमपहाय परस्परेण २स्वर्भाणुशुभ्रकिरणाम्बुजबन्धवोऽमी ।  
 ३केशच्छटारजतकाञ्चनकुण्डलाङ्का यस्मिन्विधातुमिव ४सासपदीनमीयुः ॥८९॥  
 ( १ ) वैरभावं त्यक्त्वा । ( २ ) राहु-चन्द्र-सूर्याः । ( ३ ) केशपाशस्त्रव्यस्वर्णकर्णपूरकायाः ।  
 ( ४ ) सख्यम् । ( ५ ) आगताः ॥८९॥
- हील० विद्वे० । द्वेषगहिताः पुनः केशपाशः स्फटिकहेमयोः कुण्डले तद्रूपा राहुचन्द्रार्काः यस्मिन् कुमाररूपसम्यक्स्थाने मैत्री कर्तुमागताः ॥९०॥\*
- हीमु० १सक्तः २श्रुतौ शिशुशाशी यदसावितीव तच्चक्षुषी ३श्रुतियुगं ४परिषस्वजाते ।  
 ५नीलोत्पले उदयः( यतः ) कुमदो३स्तदा( द )क्षणो-र्लक्ष्मी४च ते तरलताऽरकयोः श्रयेते ॥९०॥  
 ( १ ) आसक्तः । ( २ ) स रङ्गशास्त्रे ? । ( ३ ) श्रवणयुगलम् । ( ४ ) आलिङ्गतः । ( ५ ) यदि स्मेरकुमुदयोर्नीलकमले प्रादुर्भवतस्तदा विलस्त्कनीनिकयोः कुमारलोचनयोः श्रियं श्रयतः ॥९०॥
- हील० सक्त० असौ शास्त्रे सक्तः इति कारणात्स्य नेत्रे कर्णद्वन्द्वं आलिङ्गतः स्म । यदि नीलोत्पले कैरवयोर्मध्ये उदयतस्तदा चलकनीनिकयोर्नैत्रयोर्लक्ष्मीं भजेते ॥९१॥\*
- हीमु० १दृगदोषखण्डनकृते २भ्रमरं तदीये चिह्नं ३मषेरिव मुखे कृतवान्विरञ्चिः ।  
 ४विश्वप्रदीपसदृशो यदसौ तदीया नासापि तद्वजति ५दीपशिखोपमानम् ॥९१॥  
 ( १ ) दृष्टिदोषनिवारणाय । ( २ ) कुरलो भ्रमरालकम् । ( ३ ) कज्जललाज्जनम् ।

1. विभाति हीमु० । 2. विद्वेषिभावमपहाय परस्परेण केशच्छटास्फटिकहाटककुण्डलाङ्का । स्वर्भाणुशुभ्रकिरणाम्बुजबन्धवोऽमी यस्मिन्विधातुमिव सासपदीनमीयुः ॥ हीमु० । 3. ऊर्यदा० हीमु० तत्र बृहदीकार्यां तु 'तदक्षणोः' इत्येव पाठो व्याख्यातः । 4. तदा तरल० हीमु० । 4. तारिकयोः हीमु० ।

- (४) ब्रह्मा । (५) जगति प्रदीपस्य तुस्य । (६) कज्जलध्वजकलिकासाम्यम् ॥११॥  
 हील० मषेलाञ्छनमिव शाकिन्यादिभयवारणार्थं ब्रह्मा कुरलं चकार । अग्रे सुगमम् ॥१२॥
- हीसु० १चापल्यकेलिकलिते २असिताशये य-न्नेत्रे मिथः ३सद्शश्वैभवभाजिनी तत् ।  
 मा ४दुह्यतां ५कजभुवेति ६तदन्तराले नासानिभेन विदधे किमु ७सीमदण्डः ॥१२॥
- (१) चञ्चलतायाः क्रीडायां चटुलतया क्रीडने वा ललिते । श्रृङ्गारवती तत्र रसिके इत्यर्थः।  
 (२) श्यामहृदये । (३) तुल्यलक्ष्मीधारिणी । (४) परस्परं दोहं मा कुरुताम् । (५)  
 विधात्रा । (६) चक्षुषोर्मध्ये । (७) विभागदण्डः ॥१२॥
- हील० चपले पुनः श्याममध्ये पुनः सदृशे अस्य नेत्रे वर्तेते । तस्मान्मा द्रोहं कुर्वाताम् इति कारणादेव  
 ब्रह्मणा तयोर्मध्ये नासिका । उत्प्रेक्ष्यते । विभागयष्टिः कृत इव ॥१३॥
- हीसु० स्थाणोः १शिरोनिवसनानशनाम्बुपानं २संतप्य दुस्तपतपो मणिदर्पणेन ।  
 ३प्रापे परं ४जनुरिवेदम् ५गण्यपुण्य-सम्प्रापणीयम् ६दसीयकपोलरूपम् ॥१३॥
- (१) स्थाणुरीश्वरः कीलकश्च तन्मूर्धनि वसनं तथा न विद्येते आहारजलपाने यत्र ।  
 (२) सम्यक् त्रिधा तप्त्वा । (३) लब्धम् । (४) अन्य जन्म । (५) प्रमातुमशक्येन सुकृतेन  
 प्राप्तुं योग्यम् । (६) कुमारकपोलस्य रूपं यस्य ॥१३॥
- हील० स्थाणो० । कीलकाग्रे वसनं, पुनरशनपानरहितं तपस्तप्त्वा रत्नादर्शेन अस्य कपोलरूपं प्रत्यक्षलक्ष्यं  
 असङ्घृत्यपुण्येन लब्धं, द्वितीयं जन्म प्राप्तमिव ॥१४॥
- हीसु० यस्य १प्रशस्ययशसः २श्रुतिपाशमध्य-निष्पातिनक्षशुकचञ्चुपुटात्कृथञ्चित् ।  
 बिम्बीफलं विगलितं सखलितं च ४ वक्त्र-पद्मोदरे किमु ५रदच्छदनीबभूव ॥१४॥
- (१) श्लाघनीयकीर्तिः । (२) कण्ठावेव पाशौ तयोर्मध्ये निष्पतनशीलस्य नासिकारूपकीरस्य  
 वक्त्रपुटात् । (३) केनापि प्रकारेण । (४) वक्त्रोदरे स्थितम् । (५) अधरो जातः ॥१४॥
- हील० यस्य० । बिम्बीफलं गोहूकं यस्य कुमारस्य रदनछ(च्छ)दनीबभूव । उत्प्रेक्ष्यते । प्रशस्तकीर्तेयकुमारस्य  
 कण्ठावेव पाशौ बन्धनग्रन्थी तयोर्मध्ये निष्पतनशीलस्य नक्षशुकस्य नासिकारूपकीरस्य  
 चञ्चुपुटात् शृपाटिकासम्पुटतः कर्थञ्चित्केनापि प्रकारेण स्वबन्धनभयाकुलितत्वेन विगलितं निष्पतितं  
 सन्खलितं सम्मुखकमलमध्येऽधरे बभूव ॥१५॥
- हीसु० १रक्ताङ्करक्तमणिपल्लवपाटलश्री-पाटच्चरो यदधरः श्रियम् २श्नुते स्म ।  
 ३आस्थानवेदिरिव ४वाइः मयदेवताया आवासवेशमनि५ कुमारमुखारविन्दे ॥१५॥
- (१) विदुमपद्मरागरत्नकिसलयवदक्ता शोभा, तस्याः तस्करः । (२) धत्ते स्मेत्यर्थः ।

(३) सभायामुपविशनवेदिकेव । (४) सरस्वतीदेव्याः । (५) हीरकुमारवदनकमलस्तुपे  
वसनार्थं गृहे ॥१५॥

हील० रक्ता० । विद्वमपद्मरागमणयः किशलयास्तेषां रक्त्वतस्करः ओष्ठः शोभां व्याप्तोति । उत्त्रेक्ष्यते ।  
सरस्वत्या मुखगृहे वेदिकेव ॥१६॥

हीसुं० १अभ्युद्रौतैर्मुखखनेरिव ३वज्ञरत्ने-दर्दन्तैरदीप्यत कुमारपुरन्दरस्य ।  
४वक्त्राब्जधाम्न इव वा श्रुतदेवतायाः ५सेवासुखानुभवनागतगौरपत्रैः ॥१६॥

(१) प्रकटितैः । (२) वदनरूपवज्ञाकरात् । (३) हीरकनाममणिभिः । (४) वदनकमलमेव  
गृहं यस्याः (५) सेवया कृत्वा सुखं प्राप्तं समेतैः हंसैः ॥१६॥

हील० दर्दन्तैर्दीप्यते स्म । उत्त्रेक्ष्यते । वदनाकरुद्रौतर्हीरकैरिव । वाथवा वक्त्रगृहे स्थितायाः सरस्वत्या:  
सेवायाः अनुभवार्थं आगतैर्हसैः ॥१७॥

हीसुं० ६बिम्बाधरे निपतिताभिरभासि यस्य ७निर्दूतं मौक्तिकशुचिद्विजचन्द्रिकाभिः ।  
८क्लृप्तेन्दुदर्पणपयोजजये कृताभि-र्नाभी९भुवेव सुमं वृष्टिभिरेतदास्ये ॥१७॥

(१) बिम्बस्य गोहृकस्य तुल्ये अधरे । (२) उत्तेजितमुक्ताफलवद्विशदाभिर्दशनकान्तिभिः ।  
(३) कुमारवक्त्रेण यः कृतश्चन्द्रादर्शकमलानां विजयस्तत्र । तस्मिन् र(स)मये इत्यर्थः ।  
(४) धात्रा । (५) पुष्पवृष्टिभिः । (६) कुमारमुखोपरि ॥१७॥

हील० बिम्बा० । रक्तोष्ठे पतिताभिर्मुक्तावदुज्ज्वलाभिर्दन्तज्योत्सनाभिर्व्याप्तम् । उत्त्रेक्ष्यते । दर्पणादीनां जये  
कृते सति धात्रैतमुखे पुष्पवृष्टिः कृता ॥१८॥

हीसुं० १पूर्णामृतैरसुरात्मनोज्ञमध्या २पङ्कीभवद्विजविराजिसवेशदेशा ।  
३यस्याननान्तरनिकेतनवाक्त्रिदश्या वापीव खेलनकृते रसना बभासे ॥१८॥

(१) भृता पद्मरागै रचितत्वान्मनोहरमन्तरालं यस्याः । (२) श्रेण्या जायमानैर्द्वैर्जैर्दशनैः  
विहङ्गरथान्मरालैः शोभितः समीपभागो यस्याः । (३) वदनमध्ये गृहं यस्यास्तादृश्याः सरस्वत्या:  
॥१८॥

हील० पूर्णा० । यज्जी(ज्जि)हा रेजे । उत्त्रेक्ष्यते । मुखमध्ये निवासिन्यास्सरस्वत्या जलकेलिकृते अमृतैर्जलैर्वा  
पूर्णा रक्तरत्नघटितमध्या पुनः श्रेणीभवद्विर्दन्तैः पक्षिभिर्वा शोभितः समीपदेशो यस्यास्तादृशी वापी  
॥३८॥

हीसुं० १पूज्येषु २रञ्जितमना यदसौ कुमार-स्तस्य स्म रज्यत इतीव ३सज्जयापि ।  
४शुद्धाशयस्य दशनैरपि धार्यते स्म श्रीमत्कुमारवृषभस्य ५विशुद्धिमत्ता ॥१९॥

(१) गुर्वादिषु । (२) रागयुक्तचित्तः । (३) जिह्वया । (४) निर्मलहृदयस्य । (५)

1. निर्दर्थैर्त० । हीमु० । 2. रञ्जित० हीमु० ।

निर्मलवत्ता ॥१९॥

- हील० पू० । यदयं गुर्वादिषु सरागो भावीतिकारणात्तज्जी(ज्ज)ह्या रक्तीभूतं पुनर्निर्मलचित्तत्वादेतद्वैर्निर्मलीभूतम् ॥★१००॥
- हीसु० 'रक्ताङ्गपल्लवमुखान्द्वैषतो ऽजिगीषु-र्थत्तेऽसिकं \*किमधरः स'विधेऽदसीयः । भावी शिशुर्भुवि यदेष सुवृत्तशाली० भेजे तदस्य 'चिबुकोऽपि सुवृत्तभावम् ॥१००॥  
 (१) विद्वमकिसलयप्रमुखान् । (२) रिपून् । (३) जेतुमिच्छुः । (४) अपराधःप्रदेशो-असिकः । पक्षे असिस्तरवारिवासिकः 'स्वार्थे कः', तम् । (५) पाश्वे० । (६) कुमारसम्बन्धी ओष्टः । (७) शोभनाचारेण शालते राजते इत्येवंशीलः । (८) वदनाधः कश्चित्प्रदेशाविशेषः यत्र निम्नभागो भवेत् ॥१००॥
- हील० रक्ताङ्गान् प्रवालादीन् जेतुकोऽधरः । असिरेवासिकस्तं खडगं धते । अन्योऽपि ख्यून्विजेतुं करवालं कलयति । पुनरसौ शोभनाचारखान् भावीतीवास्यासिकाधः प्रदेशोऽपि शोभनाशयं सदाचरतां वास्तवार्थे तु शोभनवर्तुलतां भेजे ॥१०१॥
- हीसु० द्वार्तिंशताजनि \*रदैरपि लक्षणानि॑ द्वार्तिंशदा॒कलयतः शि॒शुवासवस्य ।  
 'पीयूषवर्षिसितरोचिरसूययान्त-॒वार्गिभः सुधामिव 'ववर्षमुखं तदीयम् ॥१०१॥  
 (१) करचरणयोश्छत्रचामरादीनि द्वार्तिंशन्मितानि लक्षणानि । (२) विभ्रतः । (३) कुमारस्य । (४) दन्तैरपि द्वार्तिंशता जातम् । (५) अमृतवर्षणशीलस्य चन्दस्येर्ष्या । (६) वाणी-द्वाग । (७) अमृतम् । (८) वर्षति स्म ॥१०१॥
- हील० द्वार्तिंशलक्षणवतस्तस्य द्वार्तिशदन्तैर्जातम् । पुनस्तमुखं वाणीभिस्मृतं वर्षति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । अन्तश्चित्तेऽमृतवर्षिणः सितरोचिषश्चन्द्रस्य ईर्ष्या इव सुधामवर्षत् ॥१०२॥
- हीसु० 'उद्धृत्यकण्टकगणान्किमु ऽवारिजन्म किं वा॑त्मदर्शमपहृत्य॑ विचेतनत्वम् ।  
 'संतक्ष्य॑ लक्ष्मशितिमानमुता॑मृतांशुं 'राजीवभूरकृत हीरकुमारवक्त्रम् ॥१०२॥  
 (१) कर्षयित्वा (२) कमलम् । (३) दर्पणम् । (४) निश्चैतन्तां हृत्वा । (५) तनूकृत्य । (६) लाज्जनकृष्णाताम् । (७) चन्द्रम् । (८) विधाता ॥१०२॥
- हील० उद्धृत्य० । कण्टकान्तिष्कास्य कजं गृहीत्वा वा दर्पणं सचेतनं गृहीत्वा च निरङ्गमृगाङ्गमादाय ब्रह्मा हीरकुमारवक्त्रं रचयामास ॥१०३॥
- हीसु० 'निःशेषभूवलयकुण्डलिवेशमनाकि-लोकत्रिके प्रसृमरैर्यशसां विलासैः । रेखा भविष्यति महत्सु यदस्य कण्ठे रेखात्रिकं किमिति निर्मितवान्विधाता ॥१०३॥  
 (१) समग्रभूमण्डल-पाताल-स्वर्गाणां त्रये एतस्मात्परः कोप्येतादृग्गुणकलितस्त्रिभुवने नास्तीति

1. इति मुखम् हील० ।

प्रसिद्धः । रेखा(?) । (२) चक्रे ॥१०३॥

हील० निःशेष० । समग्रपृथ्वीपातलस्वर्गाणां त्रयेऽपि विस्तरणशीलैर्यशोभिर्महत्सु रेखा भाविनी । इति कारणादस्य कण्ठे रेखात्रयं विधिः कृतवान् ॥१०४॥

हीसुं० भावी यदेष 'वृषवज्जिनधर्मधुर्यः स्कन्धोऽप्यभूल्किमिति ३त्कुदोपमेयः । अर्भः ४पुरा भवति येन ५युगप्रथानो जज्ञेऽस्य ६बाहुरपि तेन ७युगप्रथानः ॥१०४॥

(१) वृषभ इव । (२) अर्हत्प्रणीतधर्मे धुरन्धरः । (३) तस्य वृषभस्य ककुदेन स्कन्धेन उपमातुं योग्यः । नैचिकं शिरो वा तत्तुल्यः (?) (४) पुरा भवत्यग्रे भविष्यति । "पुरा योगे भविष्यदर्थे वर्त्तमाना" । (५) युगे कलिकाले विशिष्टातिशायैः प्रधानो मुख्यः । (६) आजानुबाहुत्वात् । (७) युगवद्दूसर इव प्रथानः ॥१०४॥

हील० भावी० । वृषभ इव धर्मधुर्यत्वादस्य स्कन्धः वृषस्यस(स्यांस)कूटेनोपमातुं योगयोऽभूत् । पुनर्भः युगे कलिकाले प्रधानः पुरा भवति भविष्यति । "यावत्पुरानिपातयोर्योगे लङ्" आभ्यां योगे भविष्यकाले वर्त्तमाना स्यादिति सिद्धान्तकौमुद्याम् । इत्यस्य बाहुर्धूसरोपमेयो जातः ॥१०५॥

हीसुं० उद्घामदुर्गमतिपुरेऽर्गलतांगमी य-३त्तद्वोरितीव लभते४र्गलयोपमानम् । यस्ये५भशङ्गुमकरान्कलयन्प्रवाल-शाली पुनः ६श्रियम७सूत८शयः ९समुद्रः ॥१०५॥

(१) बहुजनभीतिकरत्वात् उत्कटमुच्छङ्गुलं यत्कुगतिपुरं तत्र परिघभावमयं गमिष्यति । ये जना अमुं सेविष्यन्ते तान् दुर्गतिं गन्तुं न दास्यति । ततः इदं विशेषणम् । (२) कुमारभुजः (३) अर्गलासदूशो बभूव । (४) गज-कम्बु-मकरान् दधत् विद्वृमैः पल्लववच्च शालते इत्येवंशीलः । (५) शोभां कमलां च । (६) जनयति स्म । (७) शयः पाणिः । (८) सहमुदया साक्षराङ्गुलीयकेन वर्तते यः । पक्षे सागरः ॥१०५॥

हील० उद्घा० । पूर्वार्द्धं सुगमम् । पुना रेखाकारीभूतान् गजशङ्गुमकरान् दधन् । अत एव समुद्रः सहोर्मिकया वर्तते । तादृशः पाणिः शोभां लक्ष्मीं अजीजनत् ॥१०६॥

हीसुं० तस्य १स्फुरदद्युतिपयष्ठ(ः प)रिपूर्णबाहु-मूलालवालविलसद्बुजगण्डभाजः । रेजुः २शयावनिरुहोऽङ्गुलयोऽनुशाखाष्काः(ः का)माङ्गुशौष्ठिकैः(ः कि)सलयैरिव शालमानाः ॥१०६॥

(१) विस्तरत्कान्तय एव जलानि तैष्य(ःप)रिपूरितं बाहोभुजस्य मूलं कोटरः स एव स्थानकं तत्र विलसन्प्रकटीभवन्बाहुरेव गण्डपूलात् शाखावधिप्रदेशस्तं भजतीति । (२) हस्तद्वुमस्य (३) नखैः । (४) पल्लवैः ॥१०६॥

हील० तस्य० । तदङ्गुलयो रेजुः । उत्प्रेक्ष्यते । कान्तिजलपूर्ण यद्वाहुमूलं तदेवालवालं तत्र विलसन्यो

बाहुरेव मूलाच्छाखावधिप्रदेशस्तद्वाजिनः । करवृक्षस्य किशलयै रम्याः शाखाः ॥१०७॥

- हीसुं० १जानुस्पृशौ शिशुभुजौ विनियन्त्रणाय पाशाविवाऽव्यदुहितुस्तरलाशयायाः ।  
हस्तौ 'समस्तकजराजतयाप्यमुष्य धात्राऽक्षतैरिव यवैः समपूजिषाताम् ॥१०७॥  
( १ ) जानुप्रलम्बौ । ( २ ) बन्धनाय । ( ३ ) लक्ष्याः । ( ४ ) चपलस्वभावायाः । ( ५ ) सर्वेषां  
पद्मानां राजत्वेन तत्सेव्यत्वादाकृत्या । ( ६ ) अर्चितौ ॥१०७॥

- हील० जानु० । उरपर्वयावत्प्रलम्बौ भूजावभूताम् । उत्प्रेक्ष्यते । चञ्चलाया लक्ष्या बन्धनाया पाशौ ।  
पुनर्धात्रा हस्तौ सकलकमलग्रजत्वेनाखण्डैर्यवैर्चाचिताविव ॥१०८॥

- हीसुं० १वक्षःशिलाकलितमञ्जुलजातरूपो नक्षत्रभूषिततनुश्च नभोगयुक्तः ।  
४स्वःशाखिरुद्गमहिमधीरिमराजमानः शावस्मुपर्वशिखरीव पुपोष भूषाम् ॥१०८॥  
( १ ) हृदयरूपशिलया युतस्तथा रम्यं स्वर्णं उत्पन्नं रूपं यस्य । ( २ ) न निषेधे, क्षत्रत्वेन  
राजन्यत्वेन शोभितांङ्गाः । वणिग्जातित्वात् नक्षत्रैर्ज्योतिर्थिः शोभितवपुः । ( ३ ) न नैव  
भोगेन वैषयिकसुखेन युतो बालत्वात्, विद्याधरैर्देवैर्वा युक्तः । ( ४ ) कल्पद्रुवत् तेषां च  
कान्तिर्यत्र माहात्म्येन धैर्येन( ८ ) शोभमानः । ( ५ ) मेरुरिव ॥१०८॥

- हील० १वक्ष० । हृदयमेव शिला तथा युतस्तथोत्पन्नं रूपं यत्र स पुनर्नो क्षत्रत्वेन वणिग्जातित्वात्  
क्षत्रैर्वालङ्गकृतकायाः पुनर्न भोगैर्विषयैर्विद्याधरैर्वा चेष्टितः । कल्पवृक्षानां( ८ ) तद्वद्वा रुक् यस्य ।  
पुनर्महिमाऽग्रे भविष्यता भाविनि भूतोपचारात् धैर्यण च शोभितो बालो मेरुरिवाभां बिर्भति स्म  
॥१०९॥

- हीसुं० १प्रामाण्यमस्य वहतो महतां सदस्य-प्रामाण्यमाश्रयदुरस्तदिहास्ति चित्रम् ।  
श्रीवत्स उल्लसति तस्य पुनः स १वक्षः-स्थायी गभीरिमा विभावनकौतुकीव ॥१०९॥  
( १ ) यथार्थवादितां मुख्यतां च । ( २ ) सभायाम् । ( ३ ) अप्रमाणतां विशालताम् । ( ४ )  
कुमारस्य । ( ५ ) हृदये वसति । ( ६ ) गाम्भीर्यस्य वीक्षणे कुतुकवानिव ॥१०९॥

- हील० अस्य हृदयं प्रमाणातीतमित्यर्थः ॥\*११०॥

- हीसुं० १सान्दीभवत्तनुविभाभरनिज्जर्जरिण्यां सावर्त्तशोण इव नाभिरमुष्य रेजे ।  
३वक्षःस्थलेन ४विपुलेन सहाभ्यसूया-माबिभ्रतीव कटिरप्य[ भ ]वद्विशाला ॥११०॥  
( १ ) निबिडां जायमानः शरीरप्रभासमूह एव नदी, तस्याम् । ( २ ) जलावर्त्तयुक्तहृद इव ।  
( ३ ) हृदयेन । ( ४ ) विशालेन । ( ५ ) ईर्ष्याम् ॥११०॥

- हील० सान्दी० । अस्य नाभिः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । बहुलो यः कायकान्तिभरः स एव नदी तस्य सावर्त्तो

1. विलोकन० हीमु० । 2. ऋण्याः हीमु०

ह्रदः पुनर्वक्षः स्थलेनेर्ष्या कटिर्विशालाभूत् ॥★१११॥

- हीसुं० १कार्कश्यसंहृतिलघूकृतहस्ता-वूरु वृताविव शिशोर्नैलिनासनेन ।  
स्त॑स्थोपमो ३जिनमतावसथे स भावी ४स्त॒स्थोपमां किमिति तस्य बिभर्ति जङ्घा  
॥१११॥

( १ ) कठिनतायाः संहरणेन कृत्वा अल्पौ ह्रस्वौ कृतौ करिकरौ । ( २ ) विधात्रा । ( ३ ) जिनशासनरूपसद्गानि तद्वारधारणे स्तम्भतुल्यो भावी । “वज्रस्तम्भाविवैते”इति जिनशतके  
( ४ ) स्तम्भसादृश्यं जङ्घायाः ॥१११॥

- हील० कार्कश्यापनयनेन ह्रस्वौ कृतौ हस्तिहस्तौ । उत्प्रेक्ष्यते । धात्रा शिशोः सक्षिथनी कृतौ पुनरहच्छासनसद्गानि  
स्तम्भतुल्यत्वादस्य जङ्घा स्तम्भसादृश्यं दधौ ॥★११२॥

- हीसुं० १स्पद्भोदयान्निजविवृद्धिकृतौ यदूरु जङ्घे पुनः सरसिजन्मभुवा विभाव्य ।  
४त॒द्युग्मविग्रहनिषेधविधिप्रभुष्ण-सीमाकरं विरचितं किमु जानुयुग्मम् ॥११२॥  
( १ ) परस्परं स्पद्भोदयाः प्रादुर्भावादात्मनो विवृद्धिं कुर्वत इति । ( २ ) धात्रा । ( ३ ) दृष्ट्वा ।  
( ४ ) तस्य कुमारस्य उरुजङ्घायुगलयोः क्लेशनिवारणप्रकारे समर्थमत एव विभागविधायकम् ।  
( ५ ) कृतम् । ११२॥

- हील० स्पद्भो० । संहर्षादन्योन्यं वृद्धि कृतौ यस्य उरु पुनर्जङ्घे दृष्ट्वा ब्रह्मणा तयोर्द्वन्द्योर्विग्रहनिषेधकं  
सीमाकरम् । उत्प्रेक्ष्यते । जानुयुग्मं निष्पादितम् ॥११३★॥

- हीसुं० १शुश्रूषया॒सनतयानिशमा॑प्रसादा-ल्लब्ध्वा प्रसन्नमनसो वरमा॑त्मयोनेः ।  
४विश्वाङ्कारविजयप्रभविष्णुलक्ष्मि॑स्मेराम्बुजन्म किमु॑यत्पदताम॑वाप ॥११३॥  
( १ ) सेवकतया । ( २ ) पद्मस्यासनत्वेन । ( ३ ) प्रसादं मर्यादीकृत्य । ( ४ ) विधातुः । ( ५ )  
जगति ये स्वविभवप्रतिमल्लस्तेषां विजये समर्थशोभाभूत् । ( ६ ) पद्मम् । ( ७ ) यस्य  
चरणकमलभावम् । ( ८ ) लेखे ॥११३॥

- हील० शुश्रू० । निस्तरं विष्टरभावेन प्रसादसमयं यावत्सेवया प्रसन्नात् आत्मयोनेः सकाशात् वरं प्राप्य ।  
किमूत्प्रेक्ष्यते । विकचकजं कुमारस्य चरणत्वं पादावतारं लभते स्म । किंभूतं स्मेराम्बुजन्म ?  
जगत्सु येऽङ्ककाराः प्रतिमल्लस्तेषां विजये प्रभविष्णुं समर्था लक्ष्मीर्यस्य ततादृशम् । “शुश्रूषा-  
रथनोपास्तिर्विस्यापरिष्यः” इति हैम्यामित्यवबोद्धयम् ॥११४॥

- हीसुं० यत्पादपङ्कजयुगाङ्गुलिभिः स्वकीय-लक्ष्म्या पराभवपदं गमिताः प्रवालाः ।  
दुःखादिव ॑दुमशिखाशिखरान्तरेषु तित्यक्षवस्तनुलतां निज॑मुद्दबन्धुः ॥११४॥

1. स्थम्भो० हीम० । 2. स्थम्भो० हीम० । 3. तद्वद्वद्व० हीम० ।

(१) वृक्षशाखानां शिखराण्यग्राणि तेषां मध्येषु । (२) त्यक्तुमिच्छवः । (३) ऊदधर्वं बधन्ति स्म । स्वं पाशयन्ति स्म ॥१४॥

हील० यत्पाद० । कुमारचरणाङ्गुलिभिः स्वशोभया परभवस्थानं प्रापिताः प्रवाला द्रुमशिखराग्रान्तरेषु आत्मानामूदधर्वं बबन्धुः । उत्प्रेक्ष्यते । कायं त(त्य)कुमिच्छवः ॥१५॥

हीसुं० १कामद्विपेङ्कुश इवोऽद्वितायमेत<sup>१</sup>-त्कामाङ्कुशैष्टिकः किमिति सूचयति स्म वेधाः । २तं यदेष भुवि सूरीभरेषु भावी रत्नश्रियं किमु पुनर्निदधे स तेषु ॥१५॥

(१) मदनमत्तगजे । (२) प्रकटीभविष्यति । (३) नखैः । (४) सूरीन्दश्रेणीषु मणिरिव भावी । (५) स्थापयामास । (६) नखेषु ॥१५॥

हील० काम० स्पर्शे सृणिवत्प्रादुर्भविष्यति । इत्येव नखैर्वेधाः सूचयति स्म । पुनर्न्यक्षसूरिषु नगीनो भावी, इत्येव स वेधाः नखेषु रत्नश्रियं दधौ ॥\*१६॥

हीसुं० १यन्मूर्त्तिदीधितिङ्गरेषु किमु अप्रोहा रोमाणि कामपि स्मां कलयांबभूवुः । २इदृग्विधा वयमि हैव न चाऽपरत्र वक्तुं गुणैष्टिकः किमिति ३यत्र कृताः स्वरेखाः ॥१६॥

(१) कुमारकायकान्तिनिज्जरिषु । (२) अङ्गुरा इव । (३) अद्वैतमाहात्म्यः । (४) कुमारे । (५) अपरस्मिन्स्थाने न स्मः ॥१६॥

हील० यन्मू० । यस्य शरीरस्य कान्तिनिज्जरिषु अङ्गुरा इव लोमाणि(नि) अपूर्वशोभां धारयन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । औदार्यादिगुणैः स्वाः स्वाः सरूपाणामेकशेषे स्वाः सूक्ष्मा रेखाः कृताः । यदि(दी)-दृग्विधा वयमि हैव स्मः वर्तमहे । अपरस्मिन्स्थाने सर्वथापि न स्मः वक्तुम् ॥१७॥

हीसुं० स्कन्धोपधेः १ककुदढौकनकं विधाय यस्मात्शिशोर्गतिरशिक्षि २ककुद्यतेव । ३अभ्यस्यते गतिरिवास्य ४गतानुकार-कामेन ५विन्ध्यविपिनेष्वपि ६हस्तिकेन ॥१७॥

(१) ककुदं नैचिकं शिरस्तस्योपदाम् । (२) वृषभेण । (३) अभ्यासः क्रियते । (४) गमनस्य सादृश्याभिलाषेण । (५) विन्ध्याचलगह्वेषु । (६) हस्तिनां समूहेन ॥१७॥

हील० स्कन्धो० । अंसमिषात् ककुदप्राभृतं कृत्वा वृषभेन(ण) हीरकुमारादगतिः शिक्षिता । पुनर्हस्तिसमूहेन अस्य गमनस्य सदृशीभवनं तत्राभिलाषुकेन(ण) विन्ध्यगिरिगह्वेषु गमनं शिक्षयते वा ॥१८॥

हीसुं० १लिपा द्रवैरिव २विलीनहिरण्यराशेः ३सङ्कल्पितेव ४नवगन्ध॑५फलीदलैर्वा । किं ६रोचनाभीरथवारचिता७स्मिताब्ज-गब्हैरिवाथ घटिता८स्य तनुश्च९कासे ॥१८॥५

1. व कामा० हीमु० । 2. यन्त्र हीमु० । स पाठोऽशुद्धः प्रतिभाति ॥ 3. उधकली० हीमु० । स चाशुद्धः पाठः 4. उकाशे हीमु० । 5. इति हीरकुमारसर्वाङ्गवर्णनम् हील० ।

( १ ) लिष्यते स्मेति लिसा, दिग्धा । ( २ ) वहिना गालितकनकनिकरस्य । ( ३ ) रचितेव ।  
 ( ४ ) चम्पकपत्रैः । "न घट्पदो गन्धफलीमजिध्रदि"ति सूक्ते । ( ५ ) गोरोचनैः । ( ६ )  
 विकचकमलगब्बैः । ( ७ ) कुमारस्य ॥११८॥

**हील०** लिसा०। अस्य तनुर्दीदीपे । उत्प्रेक्ष्यते । गालितसुवर्णसमूहसौर्दिग्धेव वाऽथवा गन्धकलीदलैश्चम्पक-  
 कलिकापत्रैर्विरचिता वा गोपितविशेषदव्यै रचिता वा विकचकमलसौर्दिता ॥११९॥

**हीसुं०** 'तस्मिन्यदं प्रविदधे गुणधोरणीभिः सर्वाभिरर्णवं इवार्णववर्णिनीभिः ।  
 'आलोक्यते स्म च कदाचन नैषं 'दोषे-दोषां तनैरिव 'तमोभिरभीश्रुमाली ॥११९॥  
 ( १ ) हीरकुमारे । ( २ ) औदार्य-धैर्य-गाम्भीर्यादिगुणानां मण्डलीभिः । ( ३ ) समुद्रे नदीभिः ।  
 ( ४ ) दृष्टः । ( ५ ) कुमारः । ( ६ ) विरुद्धगुणैः । ( ७ ) रात्रिजातैः । ( ८ ) अन्धकारैः ।  
 ( ९ ) सूर्यः ॥११९॥

**हील०** तस्मिन्न०। तस्मिन्निश्चौ गुणत्रेणिभिः स्थानं कृतम् । यथार्णवपत्नीभिर्नदीभिः समुद्रे स्थानं प्रविधीयते ।  
 पुनरेषः शिशुरपगुणैः कस्मिन्नपि समये न वृष्टः । यथा भास्वान् रात्रिजातैरस्थकारैषक(ः क)दापि  
 नालोक्यते-न प्रेक्ष्यते ॥१२०॥

**हीसुं०** 'स्वस्पर्द्धिनः शारभवप्रमुखानशेषा-न्कान्त्या विजित्य विजयीव 'निजप्रतीपान् ।  
 स 'व्यानशे विसृमैः स्वयशोभिराशा-देशान्मिलं त्यरिमलैरिव पुष्पं कालः ॥१२०॥  
 ( १ ) आत्मना स्पर्द्धनशीलान् । ( २ ) स्वामिकार्तिकाद्यान् । ( ३ ) शोभया । ( ४ ) जिष्णुः ।  
 ( ५ ) आत्मनः शत्रून् । ( ६ ) व्याजोति स्म । ( ७ ) प्रसरणशीलैः । ( ८ ) विस्तरदृश्यैः ।  
 ( ९ ) वसन्तः ॥१२०॥

**हील०** स्वरूप०। यथा विजयी राजा प्रतीपान् जयति तद्वत् स्माप्तमुखान् स्वशत्रून् जित्वा आशादेशान्व्याप्तोति  
 स्म । यथा वसन्तर्तुः परिमलैर्दिशो व्यशनुते ॥१२१॥

**हीसुं०** 'भूषाशनिस्फुरितशक्रधनुः समुद्य-द्वाराङ्कितश्च जलमुक्तिशतं जैनपादः ।  
 युक्तं यदा॑ स 'सघनः 'कमलोदयेन चित्रं तदेव सुदिनेन यदत्र जज्ञे ॥१२१॥  
 ( १ ) भूषाणामाभरणानां अशनिभ्यो वज्रत्रेभ्यः प्रकटीभूतमिन्द्रचापं यत्र । "वृता विभूषा  
 मणिर शिमकार्मुकै" रिति नैषधे । भूषा आभरणानि दीप्यमानमुक्तालताकलितः । ( २ )  
 डलयोरेक्यात् जडसङ्गहितः । ( ३ ) सेवितः अर्हत्सम्बन्धीचरणो येन । ( ४ ) स कुमारः । ( ५ )  
 निबिडः । ( ६ ) निर्भरलक्ष्म्या उदयेनाविभविन मेघोऽपि भूषाकारिणी विद्युत्तथा शक्रचापश्च  
 यत्र प्रकटीभवज्जलधारायुतः सलिलं मुञ्चतीति । सेवितः गगनः जिनोऽर्हन् बुद्धः कृष्णश्च ।  
 परस्मिन् एतदाश्र्यं यतः शोभनेन दिवसेन जाते मेघे तु दुर्दिनं, कुमारस्य सदा मुदिता एव  
 ॥१२१॥

1. इति कुमारगुणलक्षणभूषणादिवर्णनम् हील० । 2. रत्न० हीमु०।

- हील० भूषा०। स यत् लक्ष्म्या अभ्युदगमेन घनो दृढ आस-बभूव । अथ च कमलानां पानीयानामुदयेन मेघो भवति । किंभूतः स मेघश ?। भूषाणां भूषणानामशनिभ्यो वज्रलेख्यः प्रकटितानि इन्द्रचापचक्राणि यत्र । तथा दीप्यमानेन हारेण कलितः । भूषाकारिणी अशनिर्यत्र । पुनः प्रादुर्भूतेन्द्रधनुः । पुनर्जलवृष्टिसहितः । अथवा जडानज्ञानमुञ्चन् श्रित आर्हतः विष्णोश्च ऋमो येन स युक्तम् । परमेतच्चित्रं यदत्र सुदिनेन जाते मेघे तु दुर्दिनेन जायते ॥१२२॥
- हीसुं० ऋीडन् जयन्त इव यज्ञभुजां कुमारैष्यौ<sup>(१)</sup> (पौ) राङ्गजैस्सह वयोविभवानुरूपैः । कालऋमेण परिवर्त्तमसौ दिनानां श्रीमत्कुमारमघवा गमयांबभूव ॥१२२॥  
 (१) इन्द्रपुत्रः । (२) देवकुमारः । (३) नागरिकबालकैः । (४) तस्य यादृक् वयो बाल्यरूपं विभवो द्रव्यं तत्तुल्यैः । (५) क्षयम् । (६) गमयति स्म ॥१२२॥
- हील० ऋीड०। देवकुमारैः ऋीडन् जयन्त इव स दिनानां क्षयमतिवाहयति स्म ॥१२३॥
- हीसुं० तस्यानुजो गजगतेः शतकोटिपाणे: श्रीपाल इत्यजनि विष्णुरिवादिदस्योः । द्वे<sup>(२)</sup> अग्रजे स्म भवतष्युः (पु)नरस्य जामी राणी परा च विमला कमलानुरूपे ॥१२३॥  
 (१) शतसङ्ख्याकाः द्रव्यकोटयो हस्ते यस्य । वज्रकरस्य । (२) कृष्णः । (३) शक्रस्य । (४) वृद्धभगिन्यौ । (५) लक्ष्म्याः सदृशे ॥१२३ ॥
- हील० तस्या०। गजस्तेन तद्वद् गमनस्य शतशो द्रव्यकोटयः करे प्राप्य यस्य वा वज्रपाणेस्तस्य लघुभ्राता श्रीपालो जातः । भगिनी राणी अन्या विमला एवं द्वे लक्ष्मीसदृशे भवतः स्म ॥१२४॥
- हीसुं० कृत्वा विलासमवनीवलये यथेच्छं सोत्कण्ठयोर्विलसितुं सुरसद्यनीव । पित्रोरथं त्रिदशपद्मदृशां ऋमेण दृग्गोचरं गतवतोर्भजतोः समाधिम् ॥१२४॥  
 कृत्वो धर्वदेहिकमसौ विधिना विधिज्ञो वंश्यैर्निजैः सह चिरस्य निरस्य शोकम् । उत्कः कदापि मिलितुं विमलां स्वजामिं जज्ञे महेभ्यकलभोः जयवज्जयन्तीम् ॥१२५॥ युग्मम् ॥  
 (१) भोगादिक्रीडाम् । (२) स्वतन्त्रम् । (३) ऋीडितुम् । (४) देवलोके (५) जननीजनकयोः । (६) देवाङ्गनानाम् । (७) समाधिमरणेन ॥१२४॥  
 (१) पित्रोर्मरणदिवसे दानादि । (२) यथोक्तप्रकारेण । (३) निजगोत्रिभिः । (४) सप्तम् । (५) चिरकालेन । (६) मुक्त्वा । (७) उत्कण्ठतः । (८) निजभगिनीविमलाम् । (९) हीरकुमारः । (१०) इन्द्रपुत्रः । (११) इन्द्रपुत्रीम् ॥१२५॥

- हील० कृत्वा० । कृत्वो० । पृथ्वीमण्डले विलासं कृत्वा स्वर्लोके गन्तुं सोत्कण्ठयोः । पुनः समाधि भजतोः स्वर्वधूनां दृष्टिपातं गतयोष्यिः (पि)त्रोः दानजलाञ्जलिं दत्वा । पुनर्वशोद्भूतनरैः । साकं चिरकालेन शोकं त्यक्त्वा कस्मिन्नपि समयेऽसौ कुमारे विमलां स्वभगिनीं मिलितुमुत्कण्ठितो जड़े । यथा इन्द्रपुत्रः जयन्तीं मिलितुमुत्को भवति ॥१२५ -१२६॥
- हीसु० गन्तुं ततः ॑स्पृहयता प्रति पत्तनं ॒स्व-भृत्येन तेन ॑स्तुरङ्गयुगः श॒ताङ्गः ।  
॒आनाप्यते स्म ॑नमुचर्देमनेव( न ) जम्बू-द्वीपविमानमिव ॑पालकनिज्जरीण  
॥१२६॥
- ( १ ) वाज्ज्ञता । ( २ ) निजसेवकेन । ( ३ ) अश्वयुगलयुतः । ( ४ ) रथः । ( ५ ) आनायितः ।  
( ६ ) इन्द्रेण । ( ७ ) पालकनामदेवेन ॥१२६॥
- हील० गन्तु०। ततो जामिमिलनोत्कण्ठानन्तरं पत्तनं यातुकेन तेन स्वभृत्येन तुरङ्गयुगमसहितः शताङ्ग आनाय्यते स्म । यथा जम्बूद्वीपे गन्तुकेनेन्द्रेण पालकसुरेण तनाम्ना विमानमानाय्यते ॥१२७॥
- हीसु० तं ॑पारियानिकमसावधिरुह्य भूमी-मार्गे ॒नभस्वदतिपातिरयाश्ववाह्यम् ।  
हैमं ॑शताङ्ग॑मिव सारथिना ॒सनाथं ॑पाथोज॒बन्धुरु॒मराध्वनि ॑सम्प्रतस्थे ॥१२७॥
- ( १ ) अध्वरथः पारियानिकः । ( २ ) पवनमपतिक्रामतीत्येवं शीलो नभस्वदतिपाती वातादप्यधिको वेगो ययोस्तादूशाभ्यामश्वाभ्यां वहनयोग्यम् । ( ३ ) सुवर्णरथम् । ( ४ ) संयुतम् । ( ५ ) सूर्यः । ( ६ ) गगनमार्गे । ( ७ ) प्रचलति ॥१२७॥
- हील० तं पारि० । असौ अध्वरथं वायुवेगाश्ववाह्यमारुह्य प्रतस्थे । यथा सौवर्णरथं सारथियुक्तं आश्रित्य सूर्यः गगने प्रतिष्ठते ॥१२८★॥
- हीसु० कालं ॑कियन्तमु॒दयान्तरितं ॑तपस्या-साम्राज्यसङ्गग्रहविधौ ॑प्रविलम्बमानः ।  
सम्प्राप्य पत्तनमसौ मुदितः स्वजामे-॑श्रौलुक्यवद॒भवनभूमिमलञ्चकार ॥१२८॥
- ( १ ) कियत्प्रमाणमस्येति । ( २ ) सूरिपदलक्षणमहोदयो व्यवधानं प्राप्तो यत्र । ( ३ ) दीक्षा एव साम्राज्यस्य उपादानप्रकारे । ( ४ ) विलम्बं कालक्षेपं कुर्वन् । ( ५ ) कुमारपाल इव । ( ६ ) भगिनीगृहभुवं भूषयति स्म ॥१२८॥
- हील० काल० । दीक्षाग्रहणे कियन्तं कालं सूरिपदान्तरितं विलम्बमानः । स पत्तनं प्राप्य मुदितः सन् भग(गि)नीगृहभुवमलङ्घुरुते स्म । यथा कुमारपालः रज्यग्रहणे विलम्बमानः स्वजामेगृहे स्थितः ॥१२९॥
- हीसु० तं ॑जङ्गमं ॒त्रिदशसालमिव ॑स्वपुण्य-प्रागभारम॑ङ्ग॑नमिवागतमात्मधामि ।  
॒दृष्टच्चा ॑निवातसरसीजसगर्भया स्वं बन्धुं ॑निपीय विमला मुमुदे हृदन्तः । १२९॥

( १ ) चलन्तम् । ( २ ) कल्पतरुम् । ( ३ ) निजपुण्यातिशयम् । ( ४ ) मूर्त्तिमन्तम् । ( ५ ) निजगृहे । ( ६ ) भाग्येन । ( ७ ) वातरहितस्य स्थिरस्य कमलस्य तुल्या । ( ८ ) सादरपवलोक्य ॥१२९॥

हील० तं जड्मयं । चलन्तं कल्पवृक्षमिव । उतात्मगृहे आगतं मूर्त्तिमन्तं पुण्यौधमिव तं बन्धुं निर्वातनिःकम्पकजसदृशया दृष्ट्या दृष्ट्वा विमला हृदयमध्ये जहर्ष ॥\*१३०॥

हीसुं० १कादम्बिनीव सलिलैः ३सुरशैलशृङ्गं हर्षश्रुभिः ३स्वसहजं स्न॑पन्त्यमन्दम् ।  
॒संबिभ्रतं ॑कनककेतककान्तकायं तं ॑स्वागतादि भगिनी परिपृच्छति स्म ॥१३०॥  
( १ ) मेघमाला ( २ ) मेरुशिखरम् । ( ३ ) निजबान्धवम् । ( ४ ) बहु । ( ५ ) धारयन्तम् ।  
( ६ ) स्वर्णकेतकवन्मनोजाङ्गम् । ( ७ ) सुखेनागतं कुशलप्रश्नमस्तीत्यादिप्रश्नम् ॥१३०॥

हील० काद० । यथा मेघमाला जलैर्मेरुशृङ्गं क्षालयति तद्वद्हर्षश्रुभिः स्नपयन्ती भगिनी सुवर्णसदृशकायं बिभ्रतं तं स्वभ्रातरं कुशलादि पृच्छति स्म ॥१३१॥

हीसुं० १विज्ञातपूर्वजननीजनकप्रवृत्तेः प्रेम्णा ३निगद्य कुशलादिक॑मात्मजामेः ।  
विद्याभृतां ४कुमरवत्क॑लधौतकान्तं वैताढ्यशृङ्गम॑यमासनम॑ध्युवास॥१३१॥  
( १ ) पूर्वं कुमारागमनात् प्राक्ज्ञाताऽवबुद्धा पित्रोर्वार्त्ता यया । ( २ ) कथयित्वा । ( ३ ) निजभगिन्याः । ( ४ ) विद्याधरकुमार इव । ( ५ ) कलधौतं-स्वर्णरूप्ययोः, तेन मनोहरम् ।  
( ६ ) हीरकुमारः । ( ७ ) आश्रयति स्म ॥ १३१॥

हील० विज्ञा० ज्ञातजननीजनकप्रवृत्तेः स्वजामेः कुशलादिकं निगद्य स रजतेन हेमेन वा घटिं विष्टरमधिवसति स्म । यथा विद्याधरकुमारः रजतमयं वैताढ्यशृङ्गमधिवसति ॥१३२॥

हीसुं० १अनेन ३गोष्ठीमनु॑तिष्ठतात्मजामेर्पनोव्या॑हृतिवैदुषीभिः ।  
॒अनन्यवृत्तिं क्रियते स्म विज्ञै॑रसातिरेकै॑रसिकस्य यद्वत्॥१३२॥  
( १ ) हीरकुमारेण । ( २ ) वार्ताम् । ( ३ ) कुर्वता । ( ४ ) वचनवैचिरीभिः । ( ५ ) न विद्यते अन्यत्रापरस्मिन्स्थाने वर्तनं यत्र तदेकतानम् । ( ६ ) शृङ्गारादिसानामतिशयैः । ( ७ ) रसवतः ।  
( ८ ) यथा ॥१३२॥

हील० अनेऽ० गोष्ठीं कुर्वतानेन व्याहारो-भाषितवचनं तस्य चातुरीभिः आत्मभगिन्याः मनो नास्ति अन्यस्मिन्बृत्तिर्यस्य तदेकतानं क्रियते स्म । यथा विज्ञै रसै रसिकमनोऽनन्यव्यापारं क्रियते ॥१३३॥

हीसुं० पदे॑पदे यत्पुरे॑कौतुकानि॑निरीक्षमाणः॑क्षणदाकरास्यः ।  
॒व्यधत्त वासं हृदये॑मनस्विनां निजैर्गुणैर्हार इवैष॑हीरः ॥१३३॥

1. ०पयत्प० हीमु० । 2. निजैर्गुणैर्हार इवैष हीरे व्यधत्त वासं हृदये मनस्विनाम् हीमु० ।

(१) स्थाने स्थाने । (२) पत्तनकुतूहलानि । (३) पश्यन् । (४) चन्द्रवदनः ।  
 (५) पण्डितानाम् । (६) गुणा औदार्यादयः तन्तवश्च । (७) हीरकुमारः ॥१३३॥

हील० पदे० । पदे पदे वीप्सायां द्वित्वम् । अणहिलपत्तनकौतूहलानि प्रेक्ष्यमाणः एष हीरकुमारः निजैर्गुणैर्मनस्विनां हृदये वक्षसि हार इव वासं व्यधत्त । यथा हारः हृदये, तन्तुभिस्सूत्रप्रोतत्वेन हृदये तिष्ठति । "हृदयं मनो वक्षश्च"त्येनेकार्थः । किंभूतः सः ? । क्षणदाकस्थान्दस्तद्वदाननं यस्य सः ॥१३४★॥

हीसुं० 'हरिरिव गिरिकुञ्जे मानसे मानसौका इव करकमलेवा 'श्रीपतेष्याः पा)-'ञ्जन्यः।  
 'मुररिपुरिव वाद्धौ स 'स्वसुर्धार्म्मि तिष्ठन्कमपि कलयति सम श्रीभरं 'शावर्सिंहः ॥१३४॥

इति पण्डितदेवविमलगणि विरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर) नामिन महाकाव्ये गर्भधारण-दोहदोत्पादकथन-गर्भसमय-लक्षणाविर्भावन-जन्म-तन्महोत्सव-बालक्रीडा-पठन-सर्वाङ्ग-लक्षणरूपवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ॥

(१) केसरीव । (२) पर्वतवने । (३) हंसः । (४) पाणिपद्मे । (५) कृष्णस्य । (६) कृष्णवादनशङ्खः । (७) कृष्णः । (८) भगिन्या गृहे । (९) हीरकुमारः ॥१३४॥

इति तृतीयसर्गावच्छूर्णिः ॥

हील० हरिः । [यथा] सिंहः गिरिगृहे तिष्ठति । यथा मानससरसि हंसस्तिष्ठति । यथा लक्ष्मीपते: कृष्णस्य पाणिपद्मे देवतादत्तः हरिणैववादनयोग्यः पाञ्चजन्यनामा शङ्खः स्थितिं विधत्ते । पुनर्यथा कृष्णो वाद्धौ अर्थात्कीरसमुद्रे वसतिं विधत्ते । तद्वत्स्वभगिन्याः सदने तिष्ठन् कमप्यद्वैतं श्रीभरं शोभातिशयं दधार ॥१३५॥

हील० → यं प्रासूतशिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः

श्रीमत्कोविदसिंहसीहृ(सिंह)विमलान्ते वासिनामग्रिमम् ।

तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक्

सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गस्तृतीयोऽभवत् ॥१३६॥←

इति पं. देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनामिन महाकाव्ये श्रीहीरविजयसूरिगर्भाधानइत्यादिपत्तनगमो नाम तृतीयः सर्गः ॥

→ यं.प्रा.० ॥ १३६॥←

ऐं नमः ॥

### अथ चतुर्थः सर्गः ॥

- हीसु० १अथो २पुरासन् ३भरते ४वृषाङ्गमुखाश्तुर्विंशतिर्थनाथाः ।  
बाह्यान्यबाह्यानि ५तमांसि हन्तुं ६कृतद्विरूपा इव भानुमन्तः ॥१॥  
( १ ) अथेति चतुर्थसर्गप्रारम्भः । ( २ ) पूर्वं तृतीयचतुर्थारकयोः । ( ३ ) भरतक्षेत्रे । ( ४ )  
ऋषभप्रमुखाः । ( ५ ) अज्ञानानि पापानि वा । ( ६ ) निर्मितचतुर्विंशतिरूपा द्वादशसूर्या इव ।  
द्वादशानां द्वित्वभावेन चतुर्विंशतिः स्यात् ॥१॥
- हील० अथौ०। अथेति चतुर्थसर्गप्रारम्भे । पुरा पूर्वं तृतीयारकपर्यन्तचतुर्थारकमध्ये भरतनाम्नि क्षेत्रे  
ऋषभनाथप्रमुखाश्तुर्विंशतिस्तीर्थकृतः आसन्नभूवन् । उत्प्रेक्ष्यते । बाह्यानि दृश्यमानान्यबाह्यानि  
जीवानामन्तरङ्गवर्तीनि तमांसि अन्धकारणि पापानि वा व्यापादयितुं कृते द्वे रूपे यैस्तादृशा  
अंशुमन्तः ॥१॥
- हीसु० १इक्ष्वाकुवंशाम्बुधिशीतभासां द्वाविंशतिस्तीर्थकृतां बभूव ।  
२यया ३तमष्य(ः प)ङ्गम४पास्य पन्थाः ५प्राकाशि ६सिद्धेः शरदेव विश्वे ॥२॥  
( १ ) ऋषभदेवस्य बाल्ये शक्रप्राभृतानीतेक्षुयष्टेरास्वादनाशयेन शक्रप्रतिष्ठापितेक्ष्वाकुवंशः स  
एव समुद्रसत्र चन्द्राणाम् । ( २ ) जिनद्वाविंशत्या । ( ३ ) पापकर्दमः अज्ञानकर्दमम् । ( ४ )  
निराकृत्य । ( ५ ) प्रकटीकृतः । ( ६ ) मोक्षस्य ॥२॥
- हील० इक्ष्वा० । द्वाविंशतिर्जिनेन्द्रा इक्ष्वाकुकुले जाता इत्यर्थः । यया द्वाविंशत्या तमः-पङ्कुं निराकृत्य  
जगति मोक्षमार्गः प्रकाशितः । यथा शर्त्कालेन पङ्कुं विशोष्य पन्थाः प्रकटः क्रियते ॥२॥
- हीसु० बभूवतुद्वौ भुवनप्रदीपौ १जिनौ यदूनां४पुनरान्वये च ।  
२थे ३धूरीणाविव पुष्पदन्ताऽविवाभ्रमार्गे च भुजा५विवाङ्गे ॥३॥३  
( १ ) मुनिसुव्रत-नेमिनाथौ । ( २ ) यादवकुले । ( ३ ) धुरन्धरौ वृषभौ । ( ४ ) नभसि  
सूर्याचन्द्रमसौ । ( ५ ) शरीरे बाहू ॥३॥
- हील० बभू० । एकः नेमिस्त्यो मुनिसुव्रतश्च, द्वौ जिनौ यदुवंशे जातौ । यथा इन्द्रियायतने शरीरे उर्जास्वलौ  
दोर्दण्डौ ॥★३॥
- हीसु० १सिद्धार्थभूकान्तसुतो जिनानाम४पश्चिमोऽजायत ५पश्चिमोऽपि ।  
शशी६बभौ४पङ्किलपङ्कजास्यकादप्यवद्यस्य ७यशःसुधाब्धौ ॥४॥  
( १ ) सिद्धार्थराजाङ्गजः । ( २ ) आद्यः । “अपश्चिमो विपश्चिता”मिति चप्युकथायाम् । ( ३ )

1. ०पवाये हीसु० । 2. अरिष्णेमिर्निसुव्रतश्च स्फुर्जदभुजाविन्द्रियवेशमनीव हीसु० । 3. इति जिनाः हील० । 4.  
व्यभात्पङ्किं हीसु० ।

- चरमोऽपि । ( ४ ) कर्दमाकलितकमलवदनः । हंस इव । ( ५ ) कीर्तिक्षीरसमुद्रे ॥४॥  
 हील० सिद्धां सिद्धार्थराजसुतः । श्रीमहावीरश्चरमोऽपि सामान्यकेवलिनां मध्ये आद्योऽभूत् ।  
 यत्कीर्तिक्षीरब्धौ चन्द्रः । पङ्किलं कमलमास्ये यस्य तादृशो हंसस्तद्वद्भाति स्म ॥\*४॥
- हीसुं० १बाल्येऽपि र्हेमाद्विरेकमिष्य येन ४प्रभद्वनेव उनिकेतकेतुः ।  
 श्रीद्वादशाङ्गी च ६यतः ४प्रवृत्ता गुरोऽर्गीणामिव ५जहुकन्या ॥५॥  
 ( १ ) जन्ममहोत्सवसमये जातमात्रेऽपि । ( २ ) मेरुः । ( ३ ) चालितः । ( ४ ) वायुनेव । ( ५ )  
 गृहोपरिध्वजः । ( ६ ) महावीरात् । ( ७ ) प्रादुर्भूता । ( ८ ) हिमाचलात् । ( ९ ) गङ्गा ॥५॥  
 हील० बाल्ये० । यथा वायुना गृहोपरिध्वजः कम्यते तद्वद्येन भगवता बाल्येऽपि मेरुः कम्पितः । यतः  
 भगवतः सकाशात् गणिपिटकं प्रवृत्तम् । यथा हिमाद्रेगङ्गा प्रवृत्ता ॥५॥
- हीसुं० एकादशासन्गैणधारिधुर्याः २श्रीइन्द्रभूतिप्रमुखाः अमुष्य ।  
 ४आर्योपयामे ५पुनर्गम्भूर्त्ति ६रुद्राः स्मरं हन्तुमिवेहमानाः ॥६॥  
 ( १ ) गणधरवृषभाः । ( २ ) गौतमाद्याः । ( ३ ) महावीरस्य । ( ४ ) पार्वतीविवाहे । ( ५ )  
 द्वितीयवारम् । ( ६ ) पूर्वशरीरापेक्षया लब्धशरीरम् । ( ७ ) एकादशापि रुद्रा इव । रुद्रा  
 एकादशैवोच्यन्ते ॥६॥
- हील० एका० । श्रीवीरस्य एकादशगणधर बभूवः । उत्प्रेक्ष्यते । पार्वतीपाणिग्रहे लब्धकायं स्मरं हन्तुं  
 काङ्क्षन्तः रुद्राः ॥६॥
- हीसुं० बभूवः मुख्यो ५वसुभूतिसूनुस्तेषां ६गणीनामिहॄगौतमाह्वः ।  
 यो ५वक्रभावं न बभार ६पृथ्वी-सुतोऽपि नो ७विष्णुपदावलम्बी ॥७॥  
 ( १ ) प्रकृष्ट आदिमो वा । ( २ ) गौतमः । ( ३ ) एकादशगणधराणाम् । ( ४ ) गौतमनामा ।  
 ( ५ ) कुटिलां वक्रो मङ्गलश्च । तत्र त्वम् । ( ६ ) पृथ्व्या ब्राह्मण्या भूमेश्च । ( ७ ) नारायणचरणं  
 गगनं वावलम्बते इत्येवंशीलः ॥७॥
- हील० बभूव० । तेषामाद्यो गौतमोऽभूत् । यः पृथ्व्याः ब्राह्मण्या क्षितेश्च सुतोऽपि वक्रतां न धते स्म ।  
 “आर्ये वक्र लोहिताङ्गो मङ्गलोऽङ्गरकषु(ः कु)ज “इति हैम्याम् । विष्णुपदमाकाशावलम्बी अपि  
 न विष्णुभक्तः ॥७॥
- हीसुं० १यत्पाणिपद्मः सॅपुनर्भवोऽपि २दत्ते ३नतानामॅपुनर्भवं यत् ।  
 शिष्यीकृता येन ४भवं विहाय ५शिवं श्रयन्ते च तदत्रॆचित्रम् ॥८॥  
 ( १ ) गौतमकरकमलम् । ( २ ) नखयुक्तः । ( ३ ) प्रणतजनानाम् । ( ४ ) मोक्षम् । ( ५ )  
 संसारं ईश्वरं च । ( ६ ) मोक्षं शम्भुं च । ( ७ ) आश्र्वयम् ॥८॥
- हील० यत्पा० । सह पुनर्भवैर्नखैवर्तते । तादृशः करो जनानां मोक्षं दत्ते । पुनर्येन शिष्यीकृता जना भवं  
 -ईशं त्यक्त्वा शिवं-शम्भुं श्रयन्ते तच्चित्रम् । तत्त्वतस्तु संसारं मुक्त्वा मोक्षमाश्रयन्ते ॥८॥

1. इति वीरजिनः हील । 2. ०त्ते जनानाम० हीमु० ।

- हीसुं० १ लूतास्यतन्तूनवलम्ब्य वज्रावलम्बरशमीनिव यः शयाभ्याम् ।  
नन्तुं जिना॒नार्षभिक्लृप्तमूर्ती॑नष्टापदोर्वीधरमास॑रोह ॥१॥  
( १ ) कर्णनाभः कोलिकस्तद्वदनाद्विनिर्गतजालतन्तवः रज्जवस्तान् कराभ्यामाश्रित्य वज्ररज्जव  
इव हस्ताभ्याम् । ( २ ) भरतचक्रिनिर्मितप्रतिमान् । ( ३ ) अष्टापदपर्वतम् । ( ४ ) चटितः ॥१॥  
हील० [सूर्य० । २] ज्ञूरिव सूर्यकिरणान् कराभ्यामवलम्ब्य भरतचक्रिकारितजिनबिम्बानि नन्तुं यो  
गौतमोऽष्टापदपर्वतमधिरूढवान् ॥\*१॥
- हीसुं० १ कथं लभेतास्य तुलां सुरदुर्यद्यस्य नामापि ३पिपर्ति ४कामान् ।  
५तपस्विनोऽप्यॄभ्यवहारयन्यो द्विधा॑मृतास्वादजुषः पुपोष ॥१०॥  
( १ ) केन प्रकारेण । ( २ ) साम्यम् । ( ३ ) पूर्यति । ( ४ ) अभिलाषान् । ( ५ ) तापसान् ।  
( ६ ) भोजयन् । ( ७ ) सुधा मोक्षश्च, तस्यास्वादो-भोगसं सेवन्ते इति ॥१०॥
- हील० [कथं ल० ।] सुरदुः साम्यं कथं प्राप्नुयात्, यदि अस्य नाम समीहितानि पूर्यति । परं कल्पवृक्षनाम्ना  
कोऽप्यर्थो न सरीसर्ति । पुनर्यस्तपस्विनो भोजयन्श्च] द्विधा सुधाया मोक्षस्य च स्वादधारिणः कृताः  
॥१०॥
- हीसुं० आसीत्सु॑धर्मा गैणभृत्सु तेषु॑ श्रीवर्धमानप्रभुपद्वृद्धुर्यः ।  
विहाय॑ विश्वे॑ सुरभीतनु॑ ( नू ) जं कः स्तात्परो॑ धुर्यपदावलम्बी ॥११॥  
( १ ) सुधर्मस्वामी । ( २ ) गणधरेषु । ( ३ ) महावीरपद्वृद्धुरन्धरः । ( ४ ) वृषभम् । सुरभीशब्दः  
दीर्घं ईकारान्तोऽपि दृश्यते । यथा कल्पकिरणावल्यां स्वजाग्राध्याये - “स्वजे मानवमृग-  
पतितुरङ्गमातङ्गवृषभसुरभीभिरिति । ( ५ ) त्यक्त्वा । ( ६ ) अन्यः । ( ७ ) धुरीणस्थानकाश्रयः  
॥११॥
- हील० तेषु॑ सुधर्मस्वामी पद्वृद्धारी अभूत् । जगति वृषभं त्यक्त्वा धुरन्धरः कः [स्तात् ॥११॥]
- हीसुं० यः पञ्चमोऽभूद॑गणपुङ्गवानां किं ४पञ्चमी॑ स्वेन गर्ति॑ यियासुः ।  
५यत्रोक्तिभिर्स्तीर्थकृतां दिदीपे शुक्तिव्रजे वारिमुचामिर्वाद्विद्धिः ॥१२॥  
( १ ) गणधरेन्द्राणाम् । ( २ ) मोक्षलक्षणाम् । ( ३ ) आत्मना । ( ४ ) गन्तुमिच्छुः ।  
( ५ ) सुधर्मस्वामिनि । ( ६ ) महावीरवच्नैः । ( ७ ) मेघपानीयैः ॥१२॥
- हील० यः प०। यः सुधर्मा गणधारिणां मध्ये पञ्चमोऽभूत् । किम् ?। उत्प्रेक्ष्यते । आत्मना मुक्ति गन्तुक  
इव यत्रागमैर्दीप्यते । यथा मेघजलैः शुक्तिषु मौक्तिकीभूय दीप्यते ॥१२॥
- हीसुं० १सरस्वतीशालिलसज्जिनश्री॒गाधमध्यो॑ रसभासमानः ।  
सिद्धान्त आस्ते॑ यदुपङ्गमुद्या॑ ( द्य )॑दभङ्गभङ्गः॑ सरितामिवेशः ॥१३॥  
( १ ) सरस्वत्या श्रुतदेवतया सरः प्रसरणं मुखेऽस्त्यस्यास्तत्रत्वेन शोभते इत्येवंशीलः । पक्षे  
-नदीभिः दीप्यमाना तीर्थकृतां चतुर्स्त्रिशदतिशयादिलक्ष्मीर्यत्र । पक्षे-स्फुरन्त्यौ कृष्णलक्ष्म्यौ

1. सूर्यस्य रसमीनवलम्ब्य हीसुं० । 2. इति श्री गौतमस्वामी हील० । 3. इति सुधर्मस्वामी[१] हील० ।

यत्र । ( २ ) महार्थतया अथासपारः अतलस्पृक्, मध्यश्च । ( ३ ) शान्तरसादिभिः पानीयैश्च  
शोभमानः । ( ४ ) यः सुधर्मस्वाप्येवाद्यं ज्ञानं यत्र । सुधर्मस्वामिकृत इत्यर्थः । ( ५ )  
प्रकटीभवन्तः । ( ६ ) सम्पूर्णा रचनास्तरङ्गाश्च यत्र । ( ७ ) समुद्रः ॥१३॥

हील० सरस्वतो यः सुधर्मस्वामी उपज्ञा आद्यज्ञानं यत्र तत्कर्तृकत्वात् सिद्धान्तः समुद्र इवास्ते । किंभूतः  
सिद्धान्तः समुद्रश्च ? । श्रुतदेव्या नद्या च शाली दीप्यन्ती (दीप्यमाना) जिनानां श्रीर्यत्र । पक्षे ऋडत्कृष्ण-  
लक्ष्मीवान् । पुना रसै रसेन जलेन च शोभितः । पुनः प्रकटीभवन्तोऽभङ्ग भङ्गास्तरङ्गाश्च यत्र ॥१३॥

हीसु० ३गणीन्दुना ३पट्टरमा ३गणीन्दुः ४पट्टश्रिया च ५व्यतिभासते स्म ।  
निशा ६निशेशेन निशा ७निशेश इवापि ८शंभोष्यं (:प)रिचारिचेताः ॥१४॥  
( १ ) सुधर्मस्वामिना । ( २ ) पट्टश्रीः । ( ३ ) सुधर्मस्वामी । ( ४ ) पट्टश्रिया । ( ५ ) परस्परं  
शोभते स्म । ( ६ ) रात्रिश्वन्देणेव । ( ७ ) रात्र्याचन्द्र इव । ( ८ ) तीर्थकृत् ईश्वरश्च, तस्य ।  
( ९ ) सेवासक्तमानसः ॥१४॥

हील० गणी० । सुधर्मस्वामिना पट्टश्रीः, पट्टश्रिया स शोभते स्म । यथा चन्द्रेण निशा, निशा कृत्वा चन्द्रः  
शुशुभे । सोऽपीशसेवकः, अयमपि श्रीवीरसेवकः ॥१४॥

हीसु० यशःश्रियांधःकृतकुन्दकम्बुर्जम्बूकुमारोऽजनि तस्य पट्टे ।  
६लघोरपि ७स्वस्य यतोऽभिः४भूतिं पश्यन्हिया५दृश्य इव स्मरोऽभूत् ॥१५॥  
( १ ) तिरस्कृतमुचकुन्दशङ्खः । ( २ ) बालादपि । ( ३ ) आत्मनः । ( ४ ) पराभवम् ।  
( ५ ) अनङ्गः ॥१५॥

हील० यशः० । तत्पट्टे श्रीजम्बूकुमारोऽजनि । शिशोरपि यतः कुमारात् स्वपराभवं पश्यन् स्मर । उत्प्रेक्ष्यते ।  
लज्जयेवादृग्गोचरः अभूत् ॥१५॥

हीसु० ६उज्जांचकारैष महेभ्यकन्या ७मदेन्दिरामूर्तिमतीरिवाष्टौ ।  
नवाधिकां ४यो नवतिं ५हिरण्यं कोटीश्च चेटीरिव ६दोषराजा० ( ज्ञा० )म् । १६॥  
( १ ) त्यजति स्म । ( २ ) मदलक्ष्मी । ( ३ ) नवनवतिम् । ( ४ ) स्वर्णकोटिम् । ( ५ )  
अष्टादशदोषभूपानां दासीरिव ॥१६॥

हील० उज्ज्ञा० । अष्ट पदानिवैष अष्टौ कन्यास्त्यजति स्म । पुनर्यो नवनवति सुवर्णकोटीस्त्यजति स्म ।  
उत्प्रेक्ष्यते । अष्टादशदोषभूपचेटीस्त्यजति स्म ॥१६॥

हीसु० ६वशंवदीभूतजगत्वयस्य न ७पुस्फुरेऽस्मिन्कमनस्यै४ शक्त्या ।  
५हविर्भुजो ६भस्मितकाननस्य विस्फूर्ज्यते किं ७महसा४म्बुराशौ ॥१७॥  
( १ ) वशं जातं त्रिभवुनं यस्य । ( २ ) न स्फुरितम् । ( ३ ) मदनसामर्थ्येन । ( ४ ) अग्नेः ।  
( ५ ) ज्वालितवनस्य । ( ६ ) प्रतापेन । ( ७ ) समुद्रे ॥१७॥

हील० वशं० । अस्मिन् कामशक्त्या न स्फुरितम् । यथा वहनेर्महसां प्रतापेन । किमिति प्रश्नेऽब्द्यौ स्फूर्ज्यते ।  
अपि पुनः ॥१७॥

१. ०कोटीन् हीमु० ।

- हीसुं० पश्यन्तु ॑वैदुष्यममुष्य जम्बूप्रभोर्व॒पुर्भर्त्सितमत्यकेतोः।  
विश्वं ॑वृषस्यन्त्यपि ॑पांशुलेव ॑वशीकृता येन ॑शिवस्मि॑ताक्षी ॥१८॥  
( १ ) चातुर्यम् । ( २ ) शारीरसौन्दर्यनिर्जितमदनस्य । ( ३ ) भुवनमप्यभिलषन्ती । ( ४ )  
व्यभिचारिणीव । ( ५ ) निजवशे कृता । त्वया सङ्गं विधाय नान्यं भारतमानुषमथाभि-  
लषामीत्यर्थः । ( ६ ) सिद्धिश्रीः ॥१८॥
- हील० पश्यन्तु चातुर्यमस्य यत्पांशुलेव विश्वं कामुकी अपि मुक्तिर्येन स्वायत्ता कृता ॥★१८॥
- हीसुं० अलंचकार प्रभवप्रभुस्तत्पट्टश्रियं पुण्ड्रै इवे॑न्दुवक्त्राम् ।  
॑स्तेनोऽपि सार्थेशः इवाङ्गिनो यः ॑श्रेयःश्रियं प्रापयदत्र चित्रम् ॥१९॥  
( १ ) तिलक इव । ( २ ) कान्ताम् । ( ३ ) चौरोऽपि । ( ४ ) सार्थनाथ इव । ( ५ ) प्राणिनः ।  
( ६ ) मुक्तिलक्ष्मीम् ॥१९॥
- हील० जम्बूस्वामिपटुं प्रभवस्वामी भूषयति स्म । यथा चन्द्रमुखीं तिलक[मलंकुरुते ।] यश्चौरान्सन  
सार्थपतिरिव जनान् कुशलेन लक्ष्मी-मोक्षलक्ष्मीं च लभयति स्मेति चित्रम् ॥१९॥
- हीसुं० किं ॑वर्ण्यते ॑वर्ण्यगुणस्य ॑चौर्यचातुर्यमस्य प्रभवस्य भर्तुः ।  
॑अहार्यमप्येष मनोनिधान-मपाहरद्य॑त्रिदिवेन्दिरायाः ॥२०॥  
( १ ) प्रशस्यते । ( २ ) लोकोत्तरगुणस्य । ( ३ ) तस्करतायाः निपुणताम् । ( ४ ) हर्तुमशक्यमपि ।  
( ५ ) स्वर्गलोकलक्ष्म्याः ॥२०॥
- हील० किं॑वर्ण्य० । अस्य] चौर्यचातुर्यं किं वर्ण्यते । यत् स्वर्वधूनां अहार्यमपि देवाश्रयत्वान्मनोनिधानं  
अयं जहार । मुक्तिगमनाभावात् स्वर्लोक[मेवालंकृतवा]नित्यर्थः ॥२०॥
- हीसुं० शश्यंभवो॑भूषयदस्य पट्टं सिंहासनं ॑पै॒त्यमिवावनीन्द्रः ।  
॑कलिन्दिका॑मौक्तिकमालिकेव यत्कण्ठपीठे ॑विलुठत्यकुण्ठा ॥२१॥  
( १ ) प्रभवप्रभोः । ( २ ) पितृसम्बन्धि । ( ३ ) सर्वविद्या । ( ४ ) हारयष्टिरिव । ( ५ ) स्फुरन्ती  
॥२१॥
- हील० शश्य० । शश्यंभवः अस्य पट्टं अभूषयत् । यथा रजा पितुः सिंहेनोपलक्षितमासनं भूषयति । [मुख  
एव] कलिन्दिका सर्वविद्या मुक्ताहारलतेव दीप्यमाना विलुठति ॥★२१॥
- हीसुं० ॑यूपादधस्तः प्रतिमां॑ जिनेन्दोर्वाचा स॒ वाच्यमपुङ्गवस्य ।  
॑दृक्संज्ञयेव ॑स्वगुरोष्किं॑(ः कि)रीटी॑ नाराचगङ्गां॑ प्रकटीचकार ॥२२॥  
( १ ) यज्ञस्तम्भादधोविभागात् । ( २ ) शान्तिनाथबिम्बम् । ( ३ ) शश्यंभवगुरुवचनात् ।  
( ४ ) दृष्टेश्वेष्या-भूभङ्गविकारेण ( ५ ) द्रोणाचार्यस्य ( ६ ) अर्जुनः । ( ७ ) बाणगङ्गाम् ।  
( ८ ) प्रकटीकृतवान् ॥२२॥
- हील० यूपा०। यः प्रभवप्रभोर्वाचा यूपात् अधस्तात् शश्यंभवभट्टः श्रीशान्तिनाथप्रतिमां कर्षति स्म ।
1. ०तास्या हीमु० । 2. इति जम्बूस्वामी॑[२] हील० । 3. त्रिदिवानायाः हील० । 4. इति प्रभवस्वामी॑[३] हील० ।  
5. पित्र्य० हीमु० ।

यथा किरीटी गुरुगङ्गेयदृष्ट्या बाणगङ्गां प्रकटीकरेति स्म ॥२२॥

- हीसुं० वगाह्य॑ शास्त्रं ३मनकाह्वसूनोः कृतेऽकृत श्री॒दशकालिकं यः ।  
हरिः सुधामु॒द्भृतवान्सु॑पर्वर्वर्गस्य ॄनिर्मथ्य यथा॑म्बुनाथम् ॥२३॥  
( १ ) चतुर्दशपूर्वान् निर्मथ्य । ( २ ) मनकनामनन्दनकृते । ( ३ ) दशवैकालिकं कृतवान् ।  
( ४ ) कृष्टवान् । ( ५ ) देवगणस्य । ( ६ ) विलोङ्ग्य । ( ७ ) समुद्रम् ॥२३॥
- हील० वगा०। यः समयमवगाह्य मनककृते दशवैकालिकं सूत्रं चक्रे । यथा कृष्णः समुद्रं विलोङ्ग्य देववृन्दकृते सुधामुद्भृतवान् ॥\*२३॥
- हीसुं० सम्पूर्यन्कीर्ति॑नभोनदीभिर्दिशो यशोभदगणाधिराजः ।  
व्यभूषयत्पट्टममुष्य ॒भूभृदधित्यकां दस्युरिवद्विपानाम् ॥२४॥  
( १ ) गङ्गाप्रवाहैः । ( २ ) शैलोपरिभूमीम् । ( ३ ) केसरीव ॥२४॥
- हील० यशोभदसूरिस्यं पट्टं विभूषयति स्म । यथा केसरी शैलोदर्घ्वभूमीं भूषयति ॥२४॥
- हीसुं० ॄएतद्यशः क्षीरधिनीरपूरैः स॒म्पूरितायां परितस्त्रिलोक्याम् ।  
ृअबुध्यमानोऽम्बुनिर्धि॑ स्वशाय्यां ॄपदोशायोऽभूदिव ॄपद्यनाभः ॥२५॥  
( १ ) यशोभदसूरिकीर्तिक्षीरसमुदप्रवाहैः । ( २ ) धवलीकृतायाम् । ( ३ ) अजानन् । ( ४ ) समुद्रम् । ( ५ ) निजशायनयोग्यम् । ( ६ ) पद्मे शेते इति व्युत्पत्त्या पदोशायः । ( ७ ) कृष्णः ॥२५॥
- हील० एत० । श्रीयशोभदयशोभिर्धवलितायां भुवि स्वशाय्यां अजानन् कृष्णः पदाशायी जातः ॥२५॥
- हीसुं० ॄसंभूतिपूर्वो विजयो गुरुस्तत्पट्टं श्रिया पल्लवयांचकार ।  
ृकदम्बजम्बूकुटजावनीजकुञ्जं ृनभोम्भोद इवाम्बुवृष्टच्चा ॥२६॥  
( १ ) संभूतिविजयगुरुः । ( २ ) नीपः 'कुडउ' इति प्रसिद्धः । त्रयोऽपि द्रुमाः प्रावृषि पुष्ट्यन्ति ।  
( ३ ) श्रावणजलधरः ॥२६॥
- हील० सम्भूतिविजयोऽस्य पट्टमभूषयत् । यथा श्रावणमेघः कदम्ब-जम्बू-कुटजान् वृक्षान् पल्लवयति ॥२६॥
- हीसुं० ॄसंहर्षरोषात्स्वर्जिधांसुमेतत्प्रृतापमार्त्तण्डमवेक्ष्य साक्षात् ।  
ॄयुयुत्सया हैह॑यवत्सहस्रं ॄसहस्रभासेव ॄकरा ध्रियन्ते ॥२७॥  
( १ ) स्पर्धात् क्रोधात् । ( २ ) निजं हन्तुमिच्छन्तम् । ( ३ ) सूर्यम् । ( ४ ) सङ्ग्रामं कर्तुमिच्छ्या ।  
( ५ ) कार्त्तवीर्य इव "इन्ग्रामनिर्विष्टसहस्रबाहु" रिति रघुवंशे तथा - "बाहुसहस्रार्जुनः पिण्डुन" इति सूक्ते । ( ६ ) भानुनेव । ( ७ ) किरणा हस्ताश्च ॥२७॥
- हील० संहर्ष० । स्पर्द्धया क्रोधात् स्वं हन्तुमिच्छुं अस्य प्रतापसूर्य दृष्ट्वा सूर्येण सहस्रं किरणा ध्रियन्ते । यथा योद्धुमिच्छ्या अर्जुनः सहस्रपाणीन् धत्ते ॥२७॥

1. इति शायंभवगणधरः [४] हील० । 2. इति यशोभदसूरिः ५ हील० । 3. इति सम्भूतिविजयसूरिः ६ हील० ।

- हीसुं० स तत्सतीर्थ्योऽजन्मि<sup>१/२१</sup> भद्रबाहुसूरिः समग्रागमपारदृश्वा ।  
 दशाश्रुतस्कन्धत उदधार वज्राकराद्वज्रमिवात्र कल्प्यम् ॥२८॥  
 ( १ ) सतीर्थ्यास्त्वेकगुरुवः । ( २ ) समस्तसिद्धान्तपारगामी । ( ३ ) नवमपूर्वे दशाश्रुत-  
 स्कन्धाध्ययनात् । ( ४ ) उद्घृतवान् । ( ५ ) हीरकखनेः । ( ६ ) हीरकमणि । ( ७ ) कल्पसूत्रम्  
 ॥२८॥
- हील० स त० । स भद्रबाहुः स्वामी सम्भूतिविजयस्य गुरुभ्राताऽभूत् । यः प्रत्याख्यानाभिधे नवमपूर्वे  
 दशाश्रुतस्कन्धाध्ययनतः कल्पं उद्घृतवान् । यथा कश्चिद्द्वाग्यवान् हीरकाणामाकराद्रत्नमुख्यमुद्धरति  
 ॥★२८॥
- हीसुं० १उपप्लवो भूमन्त्रमयोपसर्गहरस्तवेनावधि येन सङ्घात् ।  
 २जनुष्मतो जाङ्गुलिकेन जाग्रदगरस्य वेगच्छिकः किल जाङ्गुलीभिः ॥२९॥  
 ( १ ) वराहमिहिरव्यन्तरविनिर्मितसङ्घजनोपद्रवम् । ( २ ) विषधरसफुलिङ्गनाममन्त्रसङ्गलितो-  
 पसर्गहरस्तवेन कृत्वा । ( ३ ) निवारितः । ( ४ ) जनस्य । ( ५ ) विषभिषजा । ( ६ )  
 प्रसरदभुजङ्गमविषस्य । ( ७ ) विस्तारः । ( ८ ) भुजगविषापहारिणीविद्याभिः ॥२९॥
- हील० येनोपसर्गहरस्तवेन सङ्घात् उपद्रवो हतः । यथा जाङ्गुलिकेन स्वविद्याभिर्जनात् प्रसरद्विषवेगो हन्ते  
 ॥२९॥
- हील० यत्कीर्तिगङ्गां प्रसृतां त्रिलोक्यामालोक्य किं षण्मुखतां दधानः ।  
 जयद्भ्रमीभिर्जननी दिव्यकुर्वन्नसुतोऽध्यास्त मयूरषृष्टम् ॥३०॥  
 इति भद्रबाहुस्वामी, द्वयोरेकपट्ठधरत्वम् ।
- यत्कीर्तिगङ्गां व्यासां दृष्ट्वा मुखषट्केन स्वमातरं द्रष्टुं कुमारे मयूरमारुण्ये ॥३०॥
- हीसुं० श्रीस्थूलभद्रेण निजान्ववायस्त्रोतस्विनीनायककौस्तुभेन ।  
 विश्वत्रयी तद्यशसेव शोभामलम्भि तत्पट्पद्योधिपत्री ॥३०॥
- ( १ ) स्वकीयो यो नागरनामज्ञाहृणवंशः स एव सागरस्तत्र कौस्तुभरत्नसदृशः । नारायण-  
 भुजस्थास्तुः कौस्तुभो मणिः । ( २ ) स्थूलभद्रस्य कीर्त्येव । ( ३ ) संभूतिविजयप्रभुपट्टश्रीः  
 ॥३०॥
- हील० यथा स्थूलभद्रकीर्त्या जगच्छेभायितं तथा कौस्तुभतुल्येन स्थूलभद्रेणपट्टलक्ष्मीः शोभां प्रापिता  
 ॥३१॥
- हीसुं० १प्रवालमुक्तामणिमञ्जिमश्रीचित्राप्सरः स्वर्द्विरदाश्वदृश्यम् ।  
 कोशागृहं प्रावृषि यो<sup>२</sup> निषेवे हर्षिणैच्छायमिवाम्बुराशिम् ॥३१॥

1. भद्रबाहुः सू० हीमु० । 2. यः सिषेवे हिमु० ।

( १ ) विदुममौक्तिकरत्नानां चारुतायाः शोभा यस्मिन्, तथा आलेख्यीकृतैरप्सरोभिरैरावणै-  
रुच्चैःश्रवोभिश्च द्रष्टुं योग्यम् । समुद्रे तु चित्रमाश्र्यकारि अप्सर ऐरावणोच्चैःश्रवो दर्शनार्हम् ।  
सर्वेषां समुद्रोत्पन्नत्वात् । ( २ ) वर्षाकाले । ( ३ ) निबिडा मनोज्ञा मेघानां च शोभा प्रतिच्छायिका  
च यत्र ॥३१॥

हील० यः कोशागृहे प्रथमं चतुर्मासकं कृतवान् । यथा कृष्णः समुद्रं यातः । किंभूतं कोशागृहं समुद्रं  
च ?। प्रवालादियुतं श्रीयुतं चित्रितदेवी-ऐरावणोच्चैःश्रवैः प्रेक्ष्यम् । घना सान्द्रा वा मेघस्य छया  
यत्र ॥★३२॥

हीसुं० 'पण्याङ्गनायाष्क्षिक'( : किं)लकिञ्चित्तानि न लेभिरे यस्य हृदि प्रवेशम् ।  
'धनुर्भृतः साऽनुमतः शिलायां 'पृष्ठत्कपड़क्तेः 'प्रहतानि 'यद्वत् ॥३२॥  
( १ ) कोशावेशयायाः । ( २ ) विलासविशेषः ( ३ ) धनुर्धरस्य । ( ४ ) गिरेः । ( ५ ) शरराज्याः ।  
( ६ ) प्रहाराः । ( ७ ) यथा ॥३२॥

हील० पण्या० वेशयायाः विलसितानि यच्चेतसि न प्रविष्टानि । यथा धनुर्धरस्य बाणत्रेणिप्रहाराः शैलशिलायां  
न लगन्ति ॥३३॥

हीसुं० 'प्राग्निर्जिजत श्रीरथनेमिमुख्यवीरावलीनामिक्व 'वैरशुद्धेः ।  
'विधित्पया'ध्यास्य 'तदाश्रयं यो 'ध्यानाऽसिनाऽनङ्गनृपं जघान ॥३३॥  
( १ ) पूर्वकाले पराजितनेमिनाथलघुसहोदरथनेमिप्रमुखसुभटश्रेण्याः । ( २ ) वैरप्रतिक्रियायाः ।  
( ३ ) कर्तुं काङ्क्षया । ( ४ ) आश्रित्य-प्रविश्य । ( ५ ) कोशारूपं मदनमन्दिरम् । ( ६ )  
प्रणिधानखड्गेन । ( ७ ) स्मरराजम् ॥३३॥

हील० प्रा० । स्मरजितानां रथनेमिप्रमुखाणां वीरणां वैरशोधनस्य कर्तुमिच्छया यः कोशागृहाश्रितं कामं  
जघान ॥३४॥

हीसुं० 'चक्रीव रत्नानि 'चतुर्दशापि पूर्वाणि धत्ते॑स्म 'पतिर्यतीनाम् ।  
यश्च 'क्वचिद्देवकुले १०स्वजामीश्च॒त्रीयितुं २तथ्य 'इवास सिंहः ॥३४॥  
( १ ) चक्रवर्तीव । ( २ ) चतुर्दशरत्नानीव चतुर्दशपूर्वाणि । ( ३ ) चारयति स्म । ( ४ )  
स्थूलभद्रः । ( ५ ) कुत्रचिद्द्यक्षाद्यायतने । ( ६ ) निजभगिनीर्यक्षा-यक्षदिन्नाप्रमुखाः । ( ७ )  
आश्र्यमुत्पादयितुम् । ( ८ ) सत्य इव ॥३४॥

हील० यः चक्रीव चतुर्दश पूर्वाणि क्वचित्सूत्रतः क्वचित्सूत्रार्थतः धत्ते स्म । पुनर्यः क्वचिद्देवगृहे  
स्वजामीश्चत्रयुक्ताः कर्तुं सिंहरूपधारको बभूव । यथा सत्यः पञ्चाननो भवति ॥★३५॥

1. स्वजामीः स्वजामिं वा इति हीलप्रतौ पाठः । 2. सत्य हीमु०

- हीमु० १धर्मोपदेशच्छलतः स्वपाणिसंज्ञाज्या स्तम्भतलाददर्शि ।  
निधिः स्वनिक्षिप्त इव प्रवासिसुहृदगृहिण्या गृहमेत्य येन ॥३५॥<sup>३</sup>  
( १ ) धर्मदेशानाव्याजात् । ( २ ) निजहस्तदर्शनस्तपादेशेन । ( ३ ) स्तम्भाधःप्रदेशात् ।  
( ४ ) आत्मना भूमौ स्थापित इव । ( ५ ) परदेशगतनिजमित्रप्रियायाः । ( ६ ) मित्रमन्दिरम् ।  
( ७ ) आगत्य ॥३५॥
- हील० येनोऽपि परदेशगतस्य मित्रस्य पत्न्या गृहे आगत्य येन उपदेशमिषात् स्वकरसंज्ञादेशेन स्तम्भतला-  
निधिरदर्शि । यथा स्वनिक्षिप्तो दर्शयते ॥★३६॥
- हीमु० पट्टेऽथ तस्यार्यमहागिरिश्चापरः क्रमादार्यसुहस्तिसूरि: ।  
बभूवतुर्धर्मधुरं दधानौ रथे यथा सारथिकस्य रथ्यौ ॥३६॥  
( १ ) स्थूलभद्रस्य । ( २ ) आर्यमहागिरि-आर्यसुहस्तिनामानौ । ( ३ ) रथस्य वोढारौ वृषभौ  
॥३६॥
- हील० तत्पट्टे द्वौ पट्टधये बभूवतुर्यथा नियन्तुः रथे द्वौ वृषभौ भवतः ॥३७॥
- हीमु० १मरुदगृहादार्यसुहस्तिमूर्त्तिरुद्रुमः क्षोणिमिवोत्ततार ।  
२कृपार्णवेन द्रमकोऽपि येन त्रिखण्डभूमीप्रभुतामलमिभ्म ॥३७॥  
( १ ) स्वर्गलोकात् । ( २ ) आर्यसुहस्तिसूरिशरीरः । ( ३ ) कल्पवृक्षः । ( ४ ) दयासमुद्रेण ।  
( ५ ) भिक्षुकोऽपि । ( ६ ) षोडशसहस्रदेशाधिपत्यम् । ( ७ ) ग्रापितः ॥३७॥
- हील० मरु० । स्वर्गात् आर्यसुहस्तिमिषात्सुरतरुखवातरत् । यत्प्रसादाद् द्रमकोऽपि त्रिखण्डभूमी जातः  
॥★३८॥
- हीमु० १भूसुभ्रुवो भर्तृतया प्रगल्भभूषाविशेषानिव शातकौम्भान् ।  
सपादलक्षानिह संप्रतियो निर्मापयामास महाविहारान् ॥३८॥  
( १ ) भूमीस्त्रियाः । ( २ ) मनोज्ञाभरणविशेषान् । ( ३ ) सुवर्णसम्बन्धिनः । ( ४ )  
उत्तुङ्गशृङ्गप्रासादान् ॥३८॥
- हील० यः इह जगति सपादलक्षान्महाविहारान् शिल्पिभिः कारयामास । उत्प्रेक्ष्यते । पृथ्व्याः पतित्वेन  
कारितान्प्रगल्भान्मनोज्ञान्भूषार्थं तिलकानिव ॥३९॥
- हीमु० यः संप्रतिक्षेपिणिपतिः सपादकोटीर्नु पेटीः स्वयशोनिधीनाम्  
स्याद्वादिनां सदासु शिल्पसङ्घैरचीकरत्यारगतीयमूर्तिः( तीः ) ॥३९॥

1. येनोपदे० हीमु० । 2. ऊण्याः सदने समेत्य हीमु० । 3. इति स्थूलभद्रस्वामी ७ हील० । 4. भूमौ मरुद्रुक्ष इवोत्ता० हीमु० ।

( १ ) जिनानाम् । ( २ ) गृहेषु प्रासादेषु । ( ३ ) सूत्रधारनिकैरः । “सद्व्याथौ तु देहिनां  
‘समूहे’” । ( ४ ) कारयति स्म । ( ५ ) तीर्थेकृतां प्रतिमाः ॥३९॥

हील० यः सम्प्रतिरजा स्वकारितप्रासादेषु सूत्रधाराणां समूहैः कृत्वा सपादकोटीजिनानां प्रतिमा  
अचीकरनिर्मापयामासिवान् । नु इति वितर्के । आत्मनो यशांस्येव निधयो-निधानानि तेषां मञ्चूषा  
इव ॥४०॥

हीसु० १नक्तं ३नलिन्यादिमगुल्मनामविमानमार्गः प्रभुणा च येन ।  
३स्नेहप्रियेणेव महेभ्यसूनोरदश्यवन्तीसुकुमालनाम्नः ॥४०॥

( १ ) गत्रौ । ( २ ) नलिनीगुल्मविमानमार्गः तपस्याग्रहणपूर्वश्मशानकायोत्सर्गपरीषहसहनलक्षणः ।  
( ३ ) प्रदीपेन ॥४०॥

हील० नक्तं० । येनावंतीसुकुमालस्यः नलिनीगुल्मविमानमार्गः दर्शितः । यथा प्रदीपेन मार्गः दश्यते  
॥४१॥

हीसु० १स्थाने श्वतस्य त्रिदिवं ३स्ववसुर्व्यधाद॒वन्तीसुकुमालसूनुः ।  
नाम्ना महाकाल इतीह ४पुण्यपानीयशालामिव सार्वशालाम् ॥४१॥

( १ ) देवलोकगमनभूमौ । ( २ ) निजतातस्य । ( ३ ) अवन्तीसुकुमालस्य नन्दनः । ( ४ )  
सुकृतप्रपाप्रसादम् ॥४१॥

हील० स्थाने० अवन्तीसुकुमालपुत्रः उज्जयिन्याष्टः प्रसिद्धर्त्तिकथेरिकावनश्मशाने अवन्तीपार्श्वनाथ-  
प्रासादं चकार । यथा प्रपा कार्यते ॥\*४२॥

हीसु० १श्रीमत्सुहस्तिब्रतिवासवस्य श्रीसुस्थितः सुप्रतिबद्धसूरिः ।  
पदं ३विनेयौ नयतः स्म लक्ष्मीं क्रमं ३मुरारेत्वं ४पुष्पदन्तौ ॥४२॥

( १ ) सुहस्तिसूरीन्दस्य । ( २ ) शिष्यौ । ( ३ ) गगनम् । ( ४ ) सूर्यचन्द्रौ ॥४२॥

हील० श्रीसुहस्तिसूरिपटे द्वौ विनेयौ भवतः स्म । यथा मुरारेत्वे आकाशे पुष्पदन्तौ सूर्यचन्द्रमसौ ।  
पुष्पदन्तौ “पुष्पदन्तावेकोक्त्या शशिभास्करै” शुशुभाते ॥४३॥

हीसु० प्रीतिं सृजन्ती १पुरुषोत्तमानां ३दुर्घाम्बुराशेत्वं ३पद्मवासा ।  
४हृदा ५जिनं बिभ्रत आविरासीत्तसूरियुगमादिह ६कौटिकाख्या ॥४३॥<sup>३</sup>

( १ ) पुरुषश्रेष्ठानां विष्णुनां च । ( २ ) क्षीरसमुद्रात् । ( ३ ) लक्ष्मीः । ( ४ ) मनसा मध्येन  
च । ( ५ ) अर्हन् विष्णुश्च । ( ६ ) सुस्थित-सुप्रतिबद्धसूरिद्वात् । ( ७ ) कौटिकशाखा ॥४३॥

हील० प्रीतिं० यथा कृष्णस्य प्रीतिकारिणी लक्ष्मीः समुद्रादुत्पत्रा तथा तस्मात्सूरियुगमात् कौटिकगण इति

1. बुद्धे हीमु० । 2. स्ववसुस्त्रिदिवं गतस्य व्य० हीमु० । 3. इति सुस्थित-सुप्रतिबद्धसूरी, एकपद्मधरै ९ हील०।

नाम बभूव । किंभूतात् तत्सूरियुग्मात् दुग्धाम्बुरशेश्च ?। हृदयेन मध्येन च तीर्थङ्करं कृष्णं च  
धारयतः ॥४४॥

- हीमु० १श्रीइन्द्रदिन्नव्रतिंसार्वभौमस्तंत्पद्मलक्ष्मीतिलकं बभूव ।  
३निशुम्भ्यते ४दाम्भिकता स्म येन ५कलिन्दकन्येव ६हलायुधेन ॥४४॥
- ( १ ) चक्रवर्ती । ( २ ) सुस्थित-सुप्रतिबद्धसूरिपद्मश्रियास्तिलकम् । ( ३ ) हन्ते स्म । ( ४ )  
कापट्यम् । ( ५ ) यमुनेव । ( ६ ) बलभद्रेण ॥४४॥
- हील० तत्पद्मे श्रीइन्द्रदिन्नसूरिजातिः । येन कापट्यं निर्दलितम् । यथा बलभद्रेण यमुना परभूता ।  
“रुक्मिप्रलम्बयमुनाभिदनन्तभाल” इति हैम्याम् ॥४५॥
- हीमु० ८पक्षद्वयं ९भिन्नतमोभरेण ३पित्रोष्य( : प )वित्रीक्रियते स्म येन ।  
४कुबेरदिग्दक्षिणयोष्य( : प )दव्यो४द्वन्द्वं प्रियेणेव ५पयोजिनीनाम ॥४५॥<sup>२</sup>
- ( १ ) जननीजनकसम्बन्धिकुलद्वन्द्वम् । ( २ ) निहताज्ञानान्धकारनिकरेण । ( ३ ) जननीजनकयोः ।  
( ४ ) उत्तरादक्षिणयोः । ( ५ ) मार्गयोः । ( ६ ) युगलम् । ( ७ ) भानुनेव ॥४५॥
- हील० पक्षा० येन मातृपित्रोर्वशद्वन्द्वं पावनीचक्रे । यथा सूर्येणोत्तरायाम्योर्मार्गयोर्द्वन्द्वं पवित्र्यते । येन भानुना  
च किंभूतेन ?। भिन्नः पाप्मनां वा ध्वान्तानां भरः समूहो येन स, तेन ॥४६॥
- हीमु० श्रीदिन्नसूरिगुणं४भूरिस्मात्संसर्षिभूरंडिरसाद्यथासीत् ।  
येनानुरागो५वधि ६कालनेमि: ७कलेलिनीवल्लभशायिनेव ॥४६॥
- ( १ ) प्रभूतगुणः । ( २ ) इन्द्रदिन्नसूरः । ( ३ ) बृहस्पतिः । ( ४ ) अङ्गिरा नाम तापसविशेषः ।  
( ५ ) हतः । ( ६ ) दैत्यविशेषः । ( ७ ) कृष्णोन ॥४६॥
- हील० श्रीदि०। अस्मादगुणबहुलः श्रीदिन्नसूरिजातिः । यथाङ्गिरसस्तापसाद्बृहस्पतिर्जातिः । येनानुरागे  
हतः । यथा नारयणेन कालनेमिर्हन्ते स्म ॥\*४७॥
- हीमु० १पञ्चाशुगान्यः समितीर्विधाय बभञ्ज २पञ्चाशुगपञ्चबाणीम् ।  
शरेण केनापि न चेत्कदाचित्कस्मान्न तं स ३प्रभवेद्धॄनुष्मान् ॥४७॥<sup>५</sup>
- ( १ ) पञ्चसञ्च्छाकान् बाणान् । ( २ ) स्मरपञ्चशरान् । ( ३ ) समर्थीभवेत् । ( ४ ) धनुर्धरः  
॥४७॥
- हील० पञ्चा०। पञ्चसमितिरूपैः पञ्चबाणैः कामस्य पञ्चानां बाणानां समाहारं चिच्छेद । एवं चेत्र तर्हि स  
स्मरधनुर्द्वरः केनापि शरेण कस्मिन्नपि प्रस्तावे कस्मात्तं दिन्नसूरि न प्रहरेत् ॥४८॥

1. अत्र गणस्य द्वितीयनामाजनि हील०। 2. इति श्रीइन्द्रदिन्नसूरिः१० हील०। 3. उस्तो यथा० हीमु०। 4. उद्धुष्मान् इति  
हीमु० दृश्यते । स चाशुद्धः । 5. इति श्रीदिन्नसूरिः११ हील०।

- हीसुं० सूरीश्वरस्सी( सिं )हगिरि: ऋषेण 'व्यभासयत्ते त्यभुपद्मलक्ष्मीम् ।  
जिनस्य शोपादं शिरसा स्पृशन्ती निकाय्यराजीमिव 'केतुवारः ॥४८॥  
( १ ) भूषयति स्म । ( २ ) दिन्नसूरिपद्मश्रियम् । ( ३ ) विष्णुपदं गगनम् । ( ४ ) गृहश्रेणीम् ।  
( ५ ) ध्वजब्रजः ॥४८॥
- हील० सूरी० सी( सिं )हगिरि: तत्पद्मलक्ष्मीं भूषयति स्म । यथा ध्वजौघः सौधधोरणीं भासयति ।  
पद्मलक्ष्मीं निकाय्यराजीं च किंभूताम् ?। मस्तकेनाहृत्यादं आकाशं वा शृङ्गेण स्पृशन्तीम् ॥४९॥
- हीसुं० 'विन्ध्यं निपीताब्धिरिव द्रतीन्दो य एथमानं निषिद्धेध कोपम् ।  
'यद्वाक्तरङ्गैश्च जिताभ्रस्तिन्थुस्त्रपातिरेकादिव निमग्नासीत् ॥४९॥  
( १ ) विन्ध्याचलम् । ( २ ) अगस्तिमुनिरिव । ( ३ ) वर्द्धमानम् । ( ४ ) निवारयति स्म ।  
( ५ ) यस्य वचनविलासैः । ( ६ ) गगनगङ्गा । ( ७ ) लज्जातिशयात् । ( ८ ) निमं  
नीचैर्गच्छतीति अधोमुखा ॥
- हील० विन्ध्यं० यः कोपं निषेधयामास । यथागस्तिर्विन्ध्यं निषेधते स्म । यद्वाग्विलासैजिता स्वर्गङ्गा  
नीचैर्गतिर्जाता ॥५०॥
- हीसुं० 'तमोभरोव्यीधरभेदवज्जिव्रजोऽथ वज्रप्रभुरेतदीयम् ।  
पट्टं परां प्रापयति स्म भूषां रामाणिक्यकोटीर इवोत्तमाङ्गम् ॥५०॥  
( १ ) अज्ञाननिकरपर्वतभेदने शक्रकुलिशः । ( २ ) रत्नमुकुट इव । ( ३ ) मस्तकम् ॥५०॥
- हील० ता० अज्ञानच्छेदने वज्रतुल्यः वज्रस्वामी पट्टं भूषयति स्म । यथा मणिमुकुटः शीर्षं श्रियं नयति  
॥५१॥
- हीसुं० २यः 'शैशवादेव जहो निजाम्बां वेलामिव क्षीरनिधिः ( धे: )सुधांशुः ।  
'अध्यैष्ट यष्टाः ( पा )लनके शयानोऽप्येकादशाङ्गीं स्मृतपूर्वजन्मा ॥५१॥  
( १ ) बाल्यात् । ( २ ) मुक्तवान् । ( ३ ) रोदनकपटेन स्वजननीम् । ( ४ ) क्षीरसमुद्रवेलाम् ।  
( ५ ) चन्द्रः । ( ६ ) पठति स्म । ( ७ ) जातिस्मरणेन ज्ञातप्राचीनभवः ॥५१॥
- हील० आबाल्यादेव यो निजजननीं तत्पाज । यथा चन्द्रो मथ्यमानक्षीरनीरकरस्य वेलां जहाति स्म । यः  
पालने स्वपत्रपि एकादशाङ्गानां समाहारं अधीतवान् ★॥५२॥
- हीसुं० 'यष्टुः ( पु )ष्टदष्टः ( प )ल्लवलीलयेव वैराग्यलक्ष्म्यालमकारि बाल्ये ।  
'प्राग्जन्ममित्रत्रिदशान्नभोगविद्यां पुनर्वैक्रिलब्धिं मापत् ॥५२॥  
( १ ) वृक्षः । ( २ ) किसलयश्रिया । ( ३ ) बाल्यावस्थायाम् । ( ४ ) पूर्वसुरभवसम्बन्धिमित्र-

1. इति सी(सिं)हगिरि:१२ हील०। 2. आशैश० हीसु० ।

सुरात् तिर्यग्जूम्भकात् । (५) आकाशगामिनीं विद्याम् । (६) वैक्रियलब्धिं च । (७) प्राप्तवान् ॥५२॥

हील० यः पु०। यथा वृक्षः पल्लवलीलावास्यात्तथा वैराग्यवान्स जातः । यः पूर्वजन्ममित्रादेवादाकाशगामिनीं विद्यां वैक्रियलब्धिं च लेभे ॥५३॥

हीसु० ‘दुर्भिक्षवर्षेषु रुभिक्षभूमीं सङ्घं कृपानीरनिधेऽर्निषोः । वज्ञप्रभोर्यस्य ४पटष्ठः (ः प)टीयान् ७विमानवॄद्व्योमनि दीप्यते स्म ॥५३॥  
(१) दुःकालवर्षेषु । (२) सुकालशालिमण्डलम् । (३) दयासमुद्रस्य । (४) प्रापयितुकामस्य । (५) कल्पो-वपुराच्छादनवसनम् । (६) अतिशयवृद्धिं प्राप्तः । (७) सुरविमान इव । (८) गगने ॥५३॥

हील० दुर्भिक्षवर्षेषु सत्सु सुभिक्षभूमिं सङ्घं नेतुमिच्छोर्वज्ञस्वामिनः पटे विमानवद्दृष्टः ॥५४॥

हीसु० सहैव॑ देहेन समग्रसंङ्घं नयत्यसौ रसिद्धिपुरीमिवैनम् । जनैरिति ३व्योमनि ४तर्क्यमाणः पटः ५प्रभोर्बौद्धपुरीमवाप ॥५४॥  
(१) वर्त्तमानेनैवोदारिकशारीरेण । (२) मोक्षनगरीम् । (३) आकाशे । (४) विचार्यमाणः । (५) वज्ञस्वामिनः ॥५४॥

हील० सहै०। असौ औदारिककायेनैव सङ्घं सिद्धिपुरीं प्रापयति इति जनैर्गग्ने तर्क्यमाणः पटः कल्पः बौद्धपुरीं गतः ॥५५॥

हीसु० १ध्यातुर्वर्तं श्रीः श्रुतदेवतेव यस्यादरात्पॄद्यमदत्त ५पद्मा । २वनात्पितुर्मित्रहुताशनस्याग्रहीच्च यो विंशतिलक्षपुष्पान् ॥५५॥  
(१) ध्यानकर्तुः । (२) इष्टसिद्धिम् । (३) सरस्वतीव । (४) सहस्रपत्रम् । (५) लक्ष्मीः । “पद्माह्रदे गतस्य वज्ञस्वामिनः श्रीः सहस्रदलकमलं दत्तवतीति श्रुतिः” । (६) धनगिरि-मित्रहुताशननाम देवाद्विंशति लक्षकुसुमानि गृहीतवान् ॥५५॥

हील० ध्या०। यस्यादेशात् श्रीः सहस्रदलकमलं दत्तवती । यथा सरस्वती ध्यातुर्वर्तं दत्ते । यष्टिः (ः पि)-तु[मित्रस्य] वनाद्विंशतिलक्षसुमानि अग्रहीत् ॥५६॥

हीसु० १मूर्त्तैरिव स्वस्य गुणैः २प्रफुल्लपुष्पोत्करैरेष्यः (ः प)र्युषणाक्षणेषु । ३समुन्नतिं ४शांभवशासनस्य तस्यां ५सुनन्दातनयस्ततान ॥५६॥  
(१) अङ्गयुतैः । (२) विकचत्कुसुमसमूहैः । (३) पर्युषणादिनानामुत्सवेषु । (४) प्रभावनाम् । (५) जिनशासनस्य । (६) सुनन्दानामी वज्ञस्वामिजननी, तस्यास्तनयः पुत्रः ॥५६॥

हील० मूर्त्तै०। धनगिरिपलीसुतो वज्ञस्वामी पुष्पोत्करैः बौद्धनगर्या जिनशासनप्रभावनां चकार । उत्प्रक्ष्यते । स्वैर्गुणैः ॥५७॥

- हीसु० 'प्राबोधयैत्वौद्घपुरीप्रभुं यः सा'<sup>३</sup> समग्रैरपि पौरलोकैः ।  
साकं 'शकुन्तैरिव 'पङ्कजानां 'कुञ्जं 'समुद्घगनाध्वनीनः ॥५७॥
- ( १ ) प्रतिबोधयति स्म । श्रावकश्चक्रे । ( २ ) बौद्धनगरस्वामिनम् । ( ३ ) नगरजनैः साद्घम् ।  
( ४ ) पक्षिभिः । ( ५ ) कमलानाम् । ( ६ ) वनम् । ( ७ ) उदयमानभानुः ॥५७॥
- हील० प्राबो०। यः सुगतनगरेस्वामिनं जैनं चकार । यथोदितो रविः कुञ्जं विकाशयति ॥★५८॥
- हीसु० 'अपास्यति 'स्माद्व्यसुतां 'सरागां 'सुवर्णकोटीः<sup>४</sup> सह रुक्मणीर्यः ।  
'क्रीडन्मृगेन्द्रां स्मितं 'सल्लकीभिर्निं 'कुञ्जराजीमिव 'कुञ्जरेन्द्रः ॥५८॥<sup>५</sup>
- ( १ ) त्यजति स्म । ( २ ) व्यवहारिपुत्रीम् । ( ३ ) सखेहाम् । ( ४ ) कनककोट्या समम् । ( ५ )  
रम्माणसिंहाम् । ( ६ ) विकसितगजप्रियतरुयुक्ताम् । "सल्लकी तु गजप्रिया" । ( ७ ) वनमालाम् ।  
( ८ ) गजेन्द्रः ॥५८॥
- हील० अपा०। यः रुक्मणीं कन्यां सरागामपि तत्याज । यथा गजेन्द्रः मृगेन्द्रसहितां वनराजीं त्यजति  
॥★५९॥
- हीसु० श्रीवज्रसेनोऽथ 'तदीयपट्टुं 'व्यभासयत्री<sup>३</sup>णितजन्तुजातः ।  
'स्फुरन्मदोद्भेद इव 'द्विपेन्द्रकपोलमा<sup>५</sup>नन्दितचञ्चरीकः ॥५९॥
- ( १ ) वज्रस्वामिसम्बन्धिपदम् । ( २ ) शोभयति स्म । ( ३ ) प्रतिबोधप्रदानेन तृसियुक्ताः कृता  
जन्तुनां-प्राणिनां सपूहा येन । ( ४ ) प्रकटीभवन्मदवारिण उदयः । ( ५ ) करिकपोलस्थलम् ।  
( ६ ) प्रमोदितमधुकरः ॥५९॥
- हील० श्री वज्रसेनः तदीयपट्टुं व्यभासयत् । यथा माद्यदध्रमरो मदोद्भावः गजकपोलं विभासयति ॥६०॥
- हीसु० 'दुर्भिक्षके 'पायसमेक्ष्य 'लक्षपक्वं महेभ्यस्य<sup>६</sup> गृहे प्रभुर्यः ।  
दिने 'द्वितीये 'कुलदेवतेव 'न्यवेदयद्वा<sup>५</sup>विसुभिक्षमस्य ॥६०॥
- ( १ ) दुष्कालवर्षेषु । ( २ ) परमान्नम् । ( ३ ) दृष्ट्वा । ( ४ ) लक्षसुवर्णैः शालि-दुग्ध-घृत-  
खंडादि मेलयित्वा राद्घम् । ( ५ ) कस्यचिद्व्यवहारिणो मन्दिरे । ( ६ ) आगामिदिवसे । ( ७ )  
इष्टगोत्रसुर इव । ( ८ ) कथयति स्म । ( ९ ) भविष्यन्तं सुभिक्षं सुकालम् । ( १० )  
व्यवहारिणः ॥६०॥
- हील० यः भाविनं सुकालं कथयति स्म ॥★६१॥
- हीसु० 'चत्वार एतत्तनुजात<sup>५</sup> विनेयाः शाखाभृतस्तस्य विभोर्बभूवुः ।  
इवा<sup>५</sup>मरद्वेष्टि षि )चमूजयश्रीजुषः<sup>६</sup> 'सुरेन्द्रद्विरदस्य 'दन्ताः ॥६१॥<sup>६</sup>

1. सुमं हीमु०। 2. यो रुक्मणीं काञ्चनकोटिभिश्च हीमु०। 3. इति वज्रस्वामी १३ हील०। 4. सुकाल० हीमु०।  
5. उन्या विं हीमु०। 6. इति वज्रसेनः ४ हील०।

( १ ) तस्य महेभ्यस्य चतुःसङ्ख्याका नन्दनास्तस्य वज्रसेनस्य गुरोविनेया भूत्वा नागेन्द्र-चन्द्र-  
निर्वृत्ति-विद्याधाराख्याशाखाधरा आसन् । ( २ ) दैत्यसेनाविजयलक्ष्मीधारिणः । ( ३ ) ऐरावणस्य  
। ( ४ ) दन्तकोशाः ॥६१॥

हील० चत्वार० तस्य चत्वारः नागेन्द्र-चन्द्र-निर्वृत्ति-विद्याधरेति शाखाधरः शिष्या अभवन् । उत्प्रेक्ष्यते ।  
दैत्यसेनाभंजकाः ऐरावणस्य दन्ताश्वत्वाः सन्ति ॥\*६२॥

हीसुं० भर्ता ॑सुराणामिव लोकपालेष्वतेषु ॒सौदर्ययतीश्वरेषु ।  
श्रीचन्द्रनामा मुनिपुङ्गवेषु( न ) ॑तत्पट्टपूर्वा प्रमदेन भेजे ॥६२॥

( १ ) इन्द्रः । ( २ ) भ्रातृसूरिषु । ( ३ ) वज्रसेनसूरिपट्टप्राचीदिग् ॥६२॥

हील० भर्ता० एतेषु चतुर्षु भ्रातृसूरिषु मध्ये श्रीचन्द्रनामा सूरिणा वज्रसेनपट्टप्राची हर्षेण सिषेवे । यथा  
लोकपालेषु चतुर्षु मध्ये इन्द्रेण प्राची दिग् सेव्यते ॥६३॥\*

हीसुं० राजा ॑स्वयं ॒राजनतं ॑सदोषो ॑निर्दोषमङ्गोपगतो ॑निरङ्गम् ।  
॑सास्तो ॑निरस्तं च निजाधिकं चं समीक्ष्य चिक्षाय ॑शशी ॑किमर्त्या ॥६३॥

( १ ) आत्मना । ( २ ) भूपैः प्रणतः । ( ३ ) दोषा रात्रयः अपगुणाश्च । ( ४ ) समग्रगुणः ।  
( ५ ) कलङ्गरहितः ( ६ ) सदोदयः ( ७ ) क्षयति स्म । ( ८ ) चन्द्रः । ( ९ ) चिन्तया ॥६३॥

हील० राजा० । शशी किं अर्त्या क्षीणो जातः । किंकृत्वा? । यं दृष्ट्वा । किंभूतं यम् ? किंभूतम् ?  
शशी-राजा तं राजनतम् । पुनः किंभूतम् ? सदोषस्तं निर्दोषम् । स्वयं कलङ्गी तं निष्कलङ्गं, स्वयं  
अस्तवान् तं सदोदयं, अतोऽर्त्तिः ॥६४॥

हीसुं० श्रीचन्द्रसूररथ चन्द्रगच्छ इति ॑प्रथा ॒प्रादुरभूदणस्य ।  
॑भगीरथीनाम ॑भगीरथाख्यमहीमहेन्द्रादिव ॑देवनद्याः ॥६४॥<sup>2</sup>

( १ ) ख्यातिः । ( २ ) गच्छस्य । ( ३ ) गङ्गा । ( ४ ) सगरचक्रिसूनुजहनुनन्दनो भगीरथनामा  
भूमीपुरन्दरः । ( ५ ) गङ्गायाः ॥६४॥

हील० श्रीचन्द्रसूरश्चन्द्रगच्छनाम जातम् । यथा भगीरथाद् भगीरथी उत्पन्ना ॥६५॥

हीसुं० ॑कल्लोलिकारुण्यरसान्वितस्य सामन्तभद्रप्रभुरस्य पट्टम् ।  
॑व्यराजयद्वा॑रिहाकरस्य ॑मध्यं यथोन्मुदितपुण्डरीकम् ॥६५॥

( १ ) अतिशयप्रवर्द्धमानस्तरङ्गितः कल्लोलितः स वासौ कृपारससमस्तेन कलितः । ( २ )  
भूषयति स्म । ( ३ ) सरसः । ( ४ ) विचालम् । ( ५ ) विकसितं सिताभ्योजम् ॥६५॥

1. सौदर्य० हीमु० । स चाशुद्धः प्रतिभाति । 2. इति चन्द्रसूरिः[१५] । चन्द्रगच्छ तृतीयं नाम गणस्य ३ हील०।

3. ०थोन्मुदित० हीमु० ।

- हील० कल्लो०। बहुलकरुणारसान्वितस्यास्य पट्टं सामन्तभद्रसूरि भूषयति स्म । यथा तरकमध्यं विकसितं श्वेतकमलं विरजयति ॥★६६॥
- हीसुं० १ैमुख्यभाग् यो विषयात्कुरुङ्गद्वेषीव जज्ञे २विपिने ५निवासी ।  
तस्मान्मु॒नीन्दोर्व॑नवासिसंज्ञा परा पुनः प्रादुरभून्मुनीनाम् ॥६६॥  
( १ ) पराङ्गमुखतां सेवमानः । मनोप्राप्यकुर्वाणः । ( २ ) शब्दादिकात् गोचरादेशाच्च ।  
( ३ ) केसरीव । ( ४ ) वने । ( ५ ) निवसनशीलः । ( ६ ) सामन्तभद्रप्रभोः । ( ७ ) वनवासीति नाम ॥६६॥
- हील० वैमु०। यथा देशाद्विमुखः सिंहः वनवासी भवेत् तथा यः पञ्चकामात्पराङ्गमुखः वनवासी जातः । पुनस्ततः वनवासी नाम जातम् ॥६७॥
- हीसुं० १कोरण्टके २वीरजिनेन्द्रमूर्त्ति ३द्विपांथवृत्तिं ४कृतपुण्यपाकाम् ।  
यः ५प्रत्यतिष्ठृत्किमु ६सत्रशालां स वृद्धदेवोऽजनि तस्य पट्टे ॥६७॥  
( १ ) कोरण्टकनामनगरे । ( २ ) महावीरप्रतिमाम् । ( ३ ) नेत्रपथिकानां वर्तनं यत्र । द्वयतुल्या भ्रमणशीलत्वात्पथिकास्तेषां वृत्तिराजीवो यस्याम् । ( ४ ) निर्मितः सुकृतस्य पाकः फलप्रदानाभिमुखः जुता यथा पक्षे रचितः पवित्रः पाकोऽन्नादिसंस्कारो यस्याम् । ( ५ ) प्रतिष्ठितवान् । ( ६ ) दानशालाम् ॥६७॥
- हील० कोर०। दृश एव पान्थस्तेषां वृत्तिर्यत्र, ताम् । पुनः कृतः पुण्यस्य पाकः फलाभिमुखता यथा । ताहर्णी वीरजिनप्रतिमां यः प्रतिष्ठितवान् । उत्त्रेष्यते । सत्रसा(शा)लां निर्मितवान् । स वृद्धदेवसूरिस्तत्पटे अभवत् ॥६८॥
- हीसुं० १प्रद्योतनाह्वप्रभुणाप्य॒मुष्य ३पट्ट्य(ः प)रं वैभवमाबभार ।  
४त्रैलोक्यलक्ष्मीतिलकायितेन पितुः ५स्वपुत्रेण यथा॒न्ववायः ॥६८॥  
( १ ) प्रद्योतननामसूरिणा । ( २ ) वृद्धदेवसूरिशक्तस्य । ( ३ ) भुवनत्रयश्रियस्तिलकवदाचरितेन ।  
( ४ ) स्वस्य पितुरेव नन्दनेन । ( ५ ) वंशः ॥६८॥
- हील० प्रद्योतनसूरिस्तपटे जातः । यथा राज्ञोऽन्वये उत्तमः पुत्रो भवति ॥६९॥
- हीसुं० १प्रबोधयन्भ॑व्यसरोजराजीः सं॒शोषयन्दु॑र्ण( न॑)यकर्दमांश्च ।  
॒दोषोदयं ॓निर्दलयन्म॑हस्वी ॔प्रद्योतनोऽन्यः किमभूद्धु॑वोऽयम् ॥६९॥  
( १ ) प्रतिबोधयुक्तान्कुर्वन् विकाशायंश्च । ( २ ) भविककमलमालाः । ( ३ ) नाशयन् विरलीकुर्वन्वा । ( ४ ) मिथ्याद्वग्जम्बालान् । ( ५ ) अपगुणानां-रात्रीणां चाविर्भावम् । ( ६ )

1. इति सामन्तभद्रसूरिः [ १६ ] । वनवासीति गच्छस्य चतुर्थं नाम । हील० । 2. इति वृद्धदेवसूरिः १७ हील० । 3. पट्टं हीमु०  
4. इति प्रद्योतनसूरिः १८ हील० ।

विध्वंसयन् । ( ७ ) तेजस्वी । “पडिरुक्षो तेयस्सी” त्युपदेशमालावचनम् । असाधारण एव ।  
 ( ८ ) सूर्यः । ( ९ ) पृथिव्याः ॥६९॥

हील० प्रबो०। भव्यसरोजं प्रबोधयन्, पुनर्मिथ्यादृश एव पङ्कास्तान् शोषयन्, पुना रत्रीणामुदयं निर्दलयन् प्रतापवान् एतादृशोऽन्यः किं पृथिव्याः अयं सूर्यः ॥७०॥

हीसुं० ॑धिया ॒जयंश्चित्र॑शिखण्डसूनुं ॔गङ्गातरङ्गायितवागिवलासः ।

श्रीमानदेवघ्ण( : प)दमेतदीयं ॑सभ्यः सभास्थानमिवाऽध्युवास ॥७०॥

( १ ) बुद्ध्या । ( २ ) पराभवन् । ( ३ ) बृहस्पतिम् । “विचित्रवाक् चित्रशिखण्डनन्दन” इति नैषधे । ( ४ ) सुरसरितः कल्पोला इवाचरितां वाचां वैचित्र्यो यस्य । ( ५ ) सभायां साधुः । ( ६ ) आश्रितवान् ॥७०॥

हील० धिया०। बुद्ध्या बृहस्पतिसदृशः श्रीमानदेवसूरितत्पट्टं आश्रितवान् ॥७१॥

हीसुं० ॑पदप्रदानावसरे समीक्ष्य ॒साक्षात्त॑दंसोपरि ॔वाणिपद्मे ।

राज्यादिव ॑क्षोणिपुरुंदरस्य भ्रंशोऽस्य ॑भावी नियमस्थितेर्हा ॥७१॥

॑इत्थं ॒गुरुं स्वं विमनायमानमालोक्य लोकेश्वरगीतकीर्तिः ।

तत्याज यः षट् विकृतीर्वतीन्द्रः ॑षट्ठन्तरारीनिव ॑जेतुकामः ॥७२॥ युग्मम् ॥

( १ ) सूरिपदस्य दानावसरे । ( २ ) प्रत्यक्षलक्ष्ये । ( ३ ) मानदेवसूरिस्कन्धोपरि । ( ४ ) सरस्वती-लक्ष्म्यौ । ( ५ ) राज्यादिव राज्ञः ( ६ ) चारित्रादस्य पतनम् । ( ७ ) भविष्यति ॥७१॥

( १ ) अनेन प्रकारेण । ( २ ) विरुद्धमनसं गुरुं दृष्ट्वा । “चिराय तस्थे विमनायमानये” ति नैषधे । ( ३ ) घृतादिकाः । ( ४ ) षट्सङ्ख्याकानान्तरान् शत्रून् । काम १ क्रोध २ मद ३ मत्सर ४ मायाप्लोभाद्रव्यान् ( ५ ) पराभवितुमिच्छन् ॥७२॥

हील० पद०। पदप्रदानसमये तत्स्कन्धयोरुपरि सरस्वतीलक्ष्म्यौ दृष्ट्वा अस्य चारित्रादभ्रंशो भविष्यति इति विमनायमानं गुरुं दृष्ट्वा यः षट् विकृतीस्तत्याज । उत्त्रेक्ष्यते । कामक्रोधमदमत्सरमायालोभादीन प्रतीपान्जेतुम् ॥७२-७३॥

हीसुं० ॑चमूर्भि॒रुर्व्वीन्द्र इवा॑मरीभिरु॑पास्यमानं यमवेक्ष्य कश्चित् ।

किं स्त्रीयुतोऽसाविति ॑संशयानो नद्दूलकेऽशिक्ष्यत ॑ताभिरेव ॥७३॥<sup>1</sup>

( १ ) सेनाभिः । ( २ ) नृपः । ( ३ ) जया-विजया-अपराजिता-पद्माख्याभिर्देवीभिः । ( ४ ) सेव्यमानम् । ( ५ ) मरकबाहुल्यात्सङ्कृतकायोत्सर्गप्रभावागतशासनदेवीकथितमानदेवसूरि-प्रभावोत्सुकीभूततक्षशिलानगरीसङ्केन स्वमरकशमनाय प्रेषितः क्रोधपि श्राद्धः । ( ६ ) संशयं कुर्वन् । ( ७ ) कुद्वितः । ( ८ ) गुरुवचसैव मुक्तः । ( ९ ) दवीभिः ॥७३॥

1. इति श्रीमाननदेवसूरिः १९ हीला०

- हील० चम० । यथा सेनाभिः पतिः सेव्यते तथा देवीभिः सेव्यमानं यं दृष्ट्वा ? किं स्त्रीयुक्तोऽसौ, इति संशयं कुर्वाणः श्राद्धः ताभिरेव शिक्षितः ॥७४॥
- हीसुं० १तदीयपट्टाम्बरभानुमाली २श्रीमानतुङ्गः<sup>१</sup> श्रमणेन्दुरासीत् ।  
य ३औजिठत्साधुजना४न्रिजाज्ञां नाथान्पृथिव्या इव ५सार्वभौमः ॥७४॥  
( १ ) मानदेवसूरिपट्टाकाशभास्करः । ( २ ) मानतुङ्गसूरिः । ( ३ ) वाहयति स्म । ( ४ ) स्वस्याज्ञाम् । ( ५ ) नृपान् । ( ६ ) चक्रवर्ती ॥७४॥
- हील० तदी० तत्पृष्ठे श्रीमानतुङ्गसूरिर्जातः । यः साधून्रिजाज्ञां वाहयामास । यथा चक्रवर्ती नृपतीन् निजाज्ञां ग्राहयति \* ॥७५॥
- हीसुं० १भक्तामराहवस्तवनेन सूरिर्बभञ्ज योऽङ्गन्रिगडान्नशेषान् ।  
२प्रवर्त्तिमन्दमदोदयेन ३गम्भीरवेदीव ४महीमघोनः ॥७५॥  
( १ ) भक्तामरनामस्तोत्रेण कृत्वा । ( २ ) निजशरीरादष्टचत्वारिंशत्पृष्ठान् । ( ३ ) भनक्ति स्म । ( ४ ) प्रवाहमानातिशयिमदवारिप्रादुर्भावेन । ( ५ ) राज्ञः । ( ६ ) करी । “त्वग्भेदादुधिर-श्रावादामांसव्यथनादपि । संज्ञां न लभते यस्तमाहुर्गम्भीरवेदिनम्” ॥
- हील० भक्ता० यो भक्तामरस्तोत्रेण निजाङ्गलग्नानष्टचत्वारिंशत् शृङ्खलान् भनक्ति स्म । यथावमताङ्गुशः रज्ञस्क(ः क)री मदाविर्भावात् शृङ्खलान् त्रोट्यति । “त्वग्भेदादुधिरश्रावादामांसव्यथनादपि । संज्ञां न लभते यस्तमाहुर्गम्भीरवेदिनम्” ॥७६॥\*
- हीसुं० श्रीमानतुङ्गङ्क(ः क)रणेन भक्तामरस्तुतेस्तं १क्षितिशीति( त )कान्तिम् ।  
चकार २नम्रं फलपुष्पपत्रभारेण यद्वैत्फलदं वसन्तः ॥७६॥  
( १ ) राजानम् । ( २ ) नमनशीलम् । ( ३ ) वृक्षम् ॥७६॥
- हील० श्रीमानतुङ्गसूरिः राजानं नम्रं चकार । यद्वद्वसन्तर्तुः फलभारेण वृक्षं नम्रं निर्माति ॥७७॥
- हीसुं० भयादिमेनाथ १हरस्तवेन यो २दुष्टदेवादिकृतोपसर्गान् ।  
श्रीभद्रबाहुः<sup>३</sup> स्वकृतोपसर्गहरस्तवेनेव ४जहार ५सङ्घात् ॥७७॥  
( १ ) नमिऊणनामा भयहरस्तोत्रेण । ( २ ) दुष्टसुरनिर्मितोपसर्गम् । ( ३ ) श्रीभद्रबाहुस्वामीव निजरचितोपसर्गहरस्तवेनेव । ( ४ ) निवारयति स्म । ( ५ ) संघमध्यात् ॥७७॥
- हील० भयादि० यथोपसर्गहरस्तोत्रेण भद्रबाहुस्वामी सङ्घादुपसर्गान् जहार तद्वदयमपि “नमिऊण पणय०” इत्यादि स्तोत्रेण हरति स्म ॥७८॥

1. तुङ्गश्रम० हीमु० 2. करी धरेन्द्रोः हीमु० 3. इति श्रीमानतुङ्गसूरिः २०. हील०

- हीसु० १सद्ब्याननागेश्वरशिमसाम्यमन्थादिणा॒लोङ्घ्य मदाम्बुराशिम् ।  
तत्पट्टलक्ष्मीरथ वीर॑नाम्नाचार्यैण ४ववे॑ वनमालिनेव ॥७८॥  
( १ ) ध्यानस्तपशेषनागरशिमकृष्टसमतापरिणामस्तपमन्दरगिरिणा । ( २ ) निर्मथ्य । ( ३ )  
वीराचार्यैण । ( ४ ) वृता । ( ५ ) श्रीकृष्णेन ॥७८॥
- हील० सद्ब्यान० सद्ब्यानमेव शेष एव रस्मि(स्मि)र्थनरज्जुस्तद्युक्तो यः समतामन्दरस्तेन मदार्णवं निर्मथ्य  
तत्पट्टश्रीर्वीराचार्यैण वृता । यथा कृष्णेन वृता ॥७९॥
- हीसु० ततोऽजनि श्रीजयदेवसूरिर्दूरीकृता शेषकुवादिवृन्दः ।  
यद्वाग्निवलासै॒रवहे॒लितेव सुधा किमु॑ क्षीरनिधौ॑ ४ममज्ज ॥७९॥  
( १ ) निर्माणित निखि[ल]दुर्वादिवृन्दः । ( २ ) विजिता । ( ३ ) समुद्रे । ( ४ ) निमग्ना ॥७९॥
- हील० ततः श्रीजयदेवसूरिरभवत् । यद्वाकचातुर्यैरवहेलिता माधुर्यश्रीर्यस्यास्तादशी सुधा क्षीरण्वे ब्रूडितेव  
॥★८०॥
- हीसु० १स्वष्का( :का )मिनीकीर्त्तिकीर्तिदेवानन्दश्चिंदानन्दमना मुनीन्दः ।  
॒तारुण्यमेणा॑ङ्गमुखीमिवैतत्पट्टश्रियं॑ वैभवमा॑निनाय ॥८०॥  
( १ ) देवाङ्गनागीतकीर्त्तिः । ( २ ) मुक्तौ मनो यस्य । ( ३ ) यौवनावस्था । ( ४ ) वनितामिव ।  
( ५ ) श्रियम् । ( ६ ) प्रापयति स्म ॥८०॥
- हील० स्वःका० । मोक्षकामो देवानन्दमुनिस्तत्पट्टं शोभां नयति स्म । यथा यौवनं एणाङ्गमुखीं श्रियं  
लम्भयति ॥८१॥
- हीसु० श्रीविक्रमः सूरिपुरंदरोऽभूत्तं॑त्पट्टदुग्धाब्धिसुधामरीचिः ।  
॒तमश्ममूं हन्तुमनाः समग्रां किं॑ विक्रमोऽङ्गीकृतकाययष्टिः ॥८१॥  
( १ ) देवानन्दसूरिपट्टश्रीरसमुद्रे चन्द्रतुल्यः वृद्धिकारित्वात् । ( २ ) अज्ञानसेनाम् । ( ३ ) पराक्रमः  
( ४ ) स्वीकृतशरीरः ॥८१॥
- हील० श्रीविक्रमसूरिस्तत्पट्टे जातः । उत्प्रेक्ष्यते । अज्ञानसेनां हन्तुं किं मूर्त्तिमान्पराक्रमः ॥८२॥
- हीसु० आसीत्ततः श्रीनरसिंहसूरि॒ स ॑वाङ्मयाम्भोनिधिपारदृश्वा ।  
॒अत्याजि॑ यक्षः॑ किल येन मांसं॑ स्वापं॑ जग॑द्वारिजबन्धुनेव ॥८२॥  
( १ ) शास्त्रसमुदपारगामी । ( २ ) त्याजितः । ( ३ ) कश्चिद्यक्षः । अनिर्दिष्टनाम किल इति  
श्रूयते शास्त्रोक्त्या । ( ४ ) निद्राम् । ( ५ ) भुवनम् । ( ६ ) सूर्येण ॥८२॥
- हील० आसी०। ततः श्रीनरसिंहसूरिजातिः । येन सूरिणा यक्षः मांसं अत्याजि-त्याजितः । यथा सूर्येण विश्वं  
स्वापं निद्रवस्थां त्याज्यते ॥८३॥

1. इति वीराचार्यः २१. हील० । 2. लितश्रीः हीमु० । 3. इति श्रीजयदेवसूरि॒ २२. हील० । 4. इति श्री देवानन्दसूरि॒  
२३. हील० । 5. इति श्रीविक्रमसूरि॒ २४. हील० । 6. इति श्रीमान् [नर]सिंहसूरि॒ २५. हील० ।

- हीसुं० 'महर्घ्यमाणिक्यमिवा'ङ्गुलीयं खोमाणभूपालकुलप्रदीपः ।  
पट्टश्रियं श्रीनरसिंहसूरेलङ्गरोति स्म समुद्रसूरिः ॥८३॥  
( १ ) महामूल्यरत्नम् । ( २ ) मुद्रिकाम् । ( ३ ) खोमाणनामानो नृपास्तेषां वंशे प्रदीपः ॥८३॥
- हील० मह० । नरसिंहसूरेः पट्टं खोमाणज्ञातीयः समुद्रसूरिलङ्गुरुते स्म । यथा बहुमूल्यं रत्नं मुद्रिकामलङ्गुरुते ॥८४॥
- हीसुं० 'दिग्वाससो' येन विजित्य वादे 'नागहृदे 'नागनमस्यतीर्थम् ।  
'स्ववश्यमानीयत 'भूमिभर्त्रा 'दुर्गः 'प्रतीपानिव 'सम्पराये ॥८४॥  
( १ ) दिग्म्बरान् । ( २ ) समुद्रसूरिणा । ( ३ ) नागहृदनगरे । ( ४ ) श्रीपार्श्वनाथं  
धरणेन्द्रनमस्करणीयं सप्रभावम् । ( ५ ) आत्मायत्तं स्वकीयम् । ( ६ ) राजा । ( ७ ) कोटः ।  
( ८ ) शत्रून् । ( ९ ) युद्धे ॥८४॥
- हील० दिग्वा० । आशाम्बरान् विजित्य नागहृदे नागनमस्करणीयं पार्श्वबिम्बं श्वेताम्बरसङ्घायतं आनीयत ।  
यथा ऐ रिपून् जित्वा नृपेन(ण) दुर्गः कोटुः स्ववश्यः क्रियते ॥ इति श्रीसमुद्रसूरिः समभवत् २६ ॥८५॥
- हीसुं० स मानदेवोऽजनि तस्य पट्टे 'वाग्देवता 'यन्मुखपद्मसङ्घा ।  
'तृसामृ'तैश्चारुवच्रोविलासच्छलादिवोऽद्वारमिवातनोति ॥८५॥  
( १ ) सरस्वती । ( २ ) श्रीमानदेवसूरिमुखमन्दिरा । ( ३ ) तृसि प्राप्ता सती । ( ४ ) पीयूषैः ।  
( ५ ) प्रभुवचनवैचित्र्यव्याजात् । ( ६ ) अमृतोद्वारम् ॥८५॥
- हील० समा० । तत्पट्टे श्रीमानदेवसूरिजातिः । यन्मुखे स्थिता सरस्वती अमृतोद्वारं कुरुते ॥८६॥
- हीसुं० पट्टे तदीये विबुधप्रभेण स्म भूयते सूरिपुरंदरेण ।  
येनाभिभूत(ः) किल 'पुष्पाधन्वा 'पुनर्यु'युत्सुर्विष'मायुधोऽभूत् ॥८६॥  
( १ ) कामः । ( २ ) व्याघुट्य । ( ३ ) सङ्ग्रामं कर्तुमिच्छुः । ( ४ ) विषमान्यप्रतिहतानि  
भयङ्गराणि वा शस्त्राणि यस्य । पञ्चबाणः ॥८६॥
- हील० पट्टे० । तत्पट्टे विबुधप्रभसूरिणा जातम् । येन पराभूतः कामषु(ः पु)नर्योङ्गुमिच्छुस्तीक्ष्णाख्वः  
समजनि ॥८७॥
- हीसुं० 'तत्पट्टपङ्गेरुहमानसौका: श्रीमान्जयानन्दविभुर्भूव ।  
यस्या'शयेऽमात्समयोऽप्यशेषः 'कुम्भोद्ववस्य 'प्रसृताविवाऽविधिः ॥८७॥  
4. इति जयानन्दसूरिः २९. हील० ।

1. इति श्रीसमुद्रसूरिः २६. हील० । 2. इति श्रीमानदेवसूरिः २७. हील० । 3. इति श्रीविबुधप्रभसूरिः २८. हील० ।

4. इति जयानन्दसूरिः २९. हील० ।

(१) पद्मकमलमरालः । (२) आशयं हृदयम् । “दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिरः” इति नैषधे । (३) ममौ प्रविष्टे वातिलीनो वा । (४) अगस्तिमुनेः । (५) प्रसारिताङ्गुलिः पाणिस्तत्र । (६) समुद्रेऽदः ॥८७॥

हील० तत्पटे राजहंसतुल्यः जयानन्दसूरिज्ञे । यद्गृदये समग्रः सिद्धान्तः अमात् । यथागस्तिप्रसृतै अब्धिर्मातः ॥८८॥

हीसुं० यस्याननं चन्द्रति दन्तकान्तिर्ज्योत्सनायते भूयुगमङ्कतीह । वाचां विलासोऽपि सुधायते तत्पदे मुनीन्दः स रविप्रभोऽभूत् ॥८८॥<sup>१</sup>

(१) मुखम् । (२) चन्द्र इवाचरति । “सर्वप्रातिपदिकेभ्यः किवप् वा आचारे” इति किवप् प्रत्यये । तदुदाहरणानि कृष्णति स्वति कृष्णामास स्वामासेति प्रक्रियाकौमुद्याम् । (३) चन्द्रिकेवाचरति । (४) लाञ्छनमिवाचरति । (५) इह मुखचन्द्रे ॥८८॥

हील० यस्याऽरविप्रभसूरवदनं चन्द्रतुल्यं दन्तानां द्योतिज्योत्सनासमं भूद्ययं अङ्गतुल्यं वाग्विलासोऽपि सुधातुल्यः स रविप्रभस्तपट्टेऽभवत् ॥८९॥

हीसुं० वर्द्धिष्णुयत्कीर्तिसुधार्णवेन व्यलुम्पि नामाप्यसितादिभावैः । अर्हम्हिम्नेव जगत्प्रत्येकं जन्म्यैः सोऽभूद्यशोदेवविभुष्यः पदेऽस्य ॥८९॥<sup>२</sup>

(१) वर्द्धनशीलयशोदेवसूरिकीर्तिक्षीरसमुद्रेण कृत्वा । (२) लुप्तम् । (३) कृष्ण-नील-पीत-रक्तपदार्थैः । (४) तीर्थकरमाहात्म्येन । (५) इतिभिः । “अजन्यमीतिरुत्यात्” इति हैम्याम् ॥८९॥

हील० वर्द्धि० । वर्द्धमानेन यत्कीर्तिक्षीरार्णवेन श्यामादिभावैः स्वं नाम विलुप्तम् । यथा तीर्थकरमाहात्म्येन विश्वे इतिभिः लुप्तते । स यशोदेवसूरिज्ञातः ॥९०॥

हीसुं० प्रद्युम्नदेवोऽथ पदे तदीये प्रद्युम्नदेवोऽभिनवो बभूव॑ । भिन्दन्भवं मुक्तरतिर्द्वीयो भवन्मधुर्विश्वविभाव्यमूर्त्तिः ॥९०॥<sup>३</sup>

(१) कन्दर्पदेवः । (२) नवीनः प्राचीनाद्विलक्षणः । (३) ईश्वरं संसारं च । (४) कामकान्ता क्रीडा च । (५) दूरीभूतः । (६) वसन्तो मद्यं च । (७) जगज्जनलोचनकच्चोलकपीयमाना सादरावलोक्यमाना तनुर्यस्य । स्मरस्त्वेवंविधो न ॥९०॥

हील० प्रद्यु० । तत्पटे प्रद्युम्नदेवः समजनि । उत्प्रेक्ष्यते । भवं शंकरं संसारं छिदन् सहितो रतिरहितः पुनर्दूरे जातं मधुरमद्यं वसन्तो वा यस्य । पुनर्जगद्वृग्गोचरो नूतनः कामः ॥९१॥

1. इति रविप्रभसूरि [३०] हील० । 2. इति यशोदेवसूरि: ३१. हील० । 3. इति प्रद्युम्नदेवः ३२. हील० ।

हीमु० श्रीमानदेवेन पुनः स्वं कीर्तिज्योत्स्नावदातीकृतविष्टपेन ।  
एतत्पदश्रीरंगमि प्रतिष्ठां शक्तिप्रयेणेव नरेन्द्रलक्ष्मीः ॥११॥<sup>१</sup>

( १ ) कीर्तिकौमुदीधवलीकृतविश्वेन । ( २ ) अगमि प्रापिता । “निन्ये विजनमजागरि रजनिमगमि  
मदमयाचि संभोगम् । गोपीहावमकार्यत भावश्वैनामनन्तेन” । “न्यादयो एयन्तनिष्कर्मगत्यर्था  
मुख्य कर्पणि । प्रत्ययं यान्ति दुह्यादिगौणेऽन्ये तु यथारुचि” ॥ इत्यस्योदाहरणानि । ( ३ )  
प्रभुत्वोत्साहमन्त्रलक्षणेन । ( ४ ) राज्यश्रीः ॥११॥

हील० श्रीमा०। कीर्त्या धवलीकृतलोकत्रयेण श्रीमानदेवेन (त)त्पटश्रीं शोभां लभिता । यथा  
प्रभुत्वोत्साहमन्त्रलक्षणेन शक्तित्रिकेण राज्यश्रीः प्रतिष्ठां प्राप्यते ॥१२॥

हीमु० वाचंयमेन्द्रांद्विमलादिचन्द्रात्पदाब्जभृङ्गीभवदिन्द्रचन्द्रात् ।

अमुष्य<sup>२</sup> पट्टुः श्रियमशनुते स्म परंतपाद्घूप इव प्रतापात् ॥१२॥<sup>२</sup>

( १ ) विमलचन्द्रसूरीन्द्रात् । ( २ ) चरणकमले भ्रमरीभूतशक्रशशाङ्काद्या यस्य । ( ३ )  
श्रीमानदेवसूरिपट्टुः । ( ४ ) परं वैरिणं तापयतीति सत्यार्थात् ॥१२॥

हील० वाचं० । अस्य पट्टुः इन्द्रचन्द्रसेवितात् विमलचन्द्रसूरः शोभां प्राप्तः । यथा राजा परं तापयतीति  
तादृशात्प्रतापात् लक्ष्मीं प्राप्नोति ॥१३॥

हीमु० र(रे)जेऽस्य पट्टे स्मरस्तपथेयः सूरीन्दुरुद्योतननामधेयः ।  
दिग्वारणेन्द्रा इव सूरिचन्द्राः सञ्ज्ञिरे यत्पदधारिणोऽष्टौ ॥१३॥

( १ ) कन्दर्प इव रूपस्यातिशयो यस्येति गर्तितोपमा । “रूपधेयभरमस्य विमृश्ये” ति नैषधे ।

( २ ) दिग्गजाः । ( ३ ) उद्योतनसूरिपट्टुधराः ॥१३॥

हील० रे० । स्मरवत्रशस्तरूपः उद्योतनसूरिस्तपट्टुभूत् । यत्पटधारिणोऽष्टौ आचार्या जाताः ॥१४॥

हीमु० मुहूर्तमद्वैतमवेत्य टेलीग्रामस्य यः सीम्नि बृहद्वटाधः ।  
अस्थापयच्चैत्यतरोस्तलेऽष्टौ पाश्वें<sup>३</sup> गणीन्द्रानिव काशिकुञ्जे ॥१४॥

( १ ) समग्रग्रहगोचरनवासा( वांशा )दिविशुद्धामसाधारणां वेलां विज्ञाय । ( २ ) महतो  
न्यग्रोधद्वृमतले । ( ३ ) समवसरणस्थसर्वजनच्छायाकारिभगवत्केवलज्ञानोत्पाद स्थानक-  
तरुश्वेत्यदुमः । ( ४ ) पाश्वनाथेनाष्टौ गणधराः स्थापिताः । ( ५ ) वाराणसीवने ॥१४॥

हील० मुह० । यः टेलीग्रामसीम्नि वृद्धवटस्याधो अष्टवाचार्यान् स्थापयत् । यथा पाश्वनाथो वाराणसीवने  
अष्टगणधरान् स्थापितवान् ॥१५॥

1. इति त्रुतीयमानदेवसुरिः ३३. हील० । 2. इति श्रीविमलचन्द्रसूरिः ३४. हील० । 3. पाश्वें गणे० हीमु० । पाश्वे इति  
अशुद्ध आभाति ।

- हीसुं० १शाखाप्रशाखाभिरमुष्य वृद्धिर्बृहद्वटस्येव यतो ३भवित्री ।  
ततो ४बृहद्वच्छ इतीह नामापरं गणस्य प्रकटीबभूव ॥१५॥  
( १ ) शाखा वयरीप्रमुखाः प्रशाखास्तदुद्ववा अपरापरनामधेयरूपाः । ( २ ) वृद्धन्यग्रोधस्येव ।  
( ३ ) भाविती । ( ४ ) वडगच्छः ॥१५॥
- हील० शा० । शाखाभिरस्य गणस्य वृद्धिर्भाविती । अतो बृहद्वच्छ इति गणस्य नाम जातम् ॥१६॥
- हीसुं० १माहात्म्यनम्रीकृतसर्वदेवः पदे तदीयेऽजनि सर्वदेवः ।  
२तारापतिस्ताः३रकपर्षदेव गुणश्रिया यः प्रभुरौन्वयायि ॥१६॥  
( १ ) प्रभावेण नमनशीलीकृतसमस्तसुरः । ( २ ) चन्द्रः । ( ३ ) ताराश्रेणयेव । “उद्गुपरिषदः किं नार्हन्ती[ त्वं ] निशः किमनौचिती”ति नैषथे । ( ४ ) अनुगतः ॥१६॥
- हील० माहा० । इन्द्रचन्द्रादिनतः सर्वदेवसूरिस्तत्पटे जातः । यः सूर्युणलक्ष्या आश्रितः । यथा नक्षत्रमण्डल्या चन्द्रः अनुगम्यते ॥१७॥
- हीसुं० यो १रामसेनाहृपुरे ब्रतीन्दुर्लब्धिश्रियं गौतमवद्धानः ।  
२नाभेयचैत्ये महसेनसूनोर्जिनस्य ४मूर्त्तेर्विदाथे प्रतिष्ठाम् ॥१७॥  
( १ ) रामसेणिनगरे । ( २ ) ऋषभदेवप्रासादे । ( ३ ) चन्द्रप्रभस्वामिनः । ( ४ ) प्रतिमायाः ।  
( ५ ) चकार ॥१७॥
- हील० यो रामसेणिनगरे श्रीऋषभदेवचैत्ये प्रासादे चन्द्रप्रभस्वामिनः प्रतिमायाष्टः प्रतिष्ठां कृतवान् ॥१८॥
- हीसुं० चन्द्रावतीशस्य १नृपस्य नेत्र इवास योऽशेषविशेषदर्शी ।  
तं ३कलृत्सचैत्यं प्रतिबोध्य वाचा ४प्राव्राजयत्कुङ्कुणमन्त्रिणं यः ॥१८॥  
( १ ) चण्डात्तिलनृपस्य । ( २ ) समस्तकर्तव्यकुशलः । ( ३ ) कृतप्रासादम् । ( ४ ) दीक्षयामास ।  
( ५ ) कुङ्कुणनामानं प्रधानम् ॥१८॥
- हील० चन्द्रा० । यः प्रधानश्चण्डात्तिलनारनृपस्य नेत्र इव जातः । पुनः कलृत्स चैत्यं येन स तं तादृशं कुङ्कुणनामा(नामानं) मन्त्रिणं स्ववचनेन प्रतिबोध्य दीक्षयामास ॥१९॥
- हीसुं०- १कुर्वन्निवासं २गवि ३गौरवश्रीर्गिराम४धीशो ५विबुधैरुपास्यः ।  
श्रीदेवसूरिष्क( : किमु ६देवसूरिः पदे तदीयेऽप्यजनि क्रमेण ॥१९॥  
( १ ) वसति । ( २ ) स्वर्गे भुवि च । ( ३ ) गुरुत्वेन बृहस्पतित्वेन महत्त्वेन वा शोभा यस्य ।  
( ४ ) वाक्पतिः । ( ५ ) पण्डितैर्देवैश्च । ( ६ ) बृहस्पतिः ॥१९॥

1. इति उद्योतनसूरिः ३५. । अत्र गच्छस्य ‘बृहद्वच्छ’, ‘वडगच्छ’ इति पञ्चमं नाम जातम् । हील० । 2. इति सर्वदेवसूरिः ३६. हील० । 3. इति देवसूरिः ३७. हील० ।

- हील० कुर्वन्निं० । तत्पटे देवसूरिर्जातः । किंभूतो देवसूरिः ?। गवि स्वर्गे पृथिव्यां च निवासं कुर्वन् गौरवेन  
(ए) श्रीः शोभा यस्य । पुनर्वाचामीशो देवैः पण्डितैर्वा सेव्यः । अत एव देवाचार्यः बृहस्पतिः  
॥१००॥
- हीसुं० १दोषोदयोदीततमःप्रपञ्चव्यापादनव्यापृतिदीक्षितेन ।  
श्रीसर्वदेवेन पदं तदीयमदीपि दीपेन यथा निकेतम् ॥१००॥  
( १ ) अपगुणानां निशानां वा संभवेनाविर्भूतानि अज्ञानानि तिमिराणि च तेषां विस्तारविनाशन-  
व्यापारे गृहीतब्रतेन । ( २ ) गृहम् ॥१००॥
- हील० दोषाणां दोषाया वा उदयेन प्रकटीभूतं अज्ञानमन्धकास्थ तस्य ध्वंसकरणे सज्जेन । गृहीतब्रतेनेत्यर्थः ।  
तादृशेन सर्वदेवेन तस्य पट्टमदीपि । यथा दीपेन गृहं दीप्यते ॥१०१॥
- हीसुं० श्रीमद्यशोभदगणावनीन्दः श्रीनेमिचन्द्रब्रतिपुङ्गवश्च ।  
१तत्पटमाकन्दमुभौ भजेते शुकोऽन्यपुष्टश्च यथा विहंगौ ॥१०१॥  
( १ ) सर्वदेवसूरिपट्टमहकारतरुम् । ( २ ) कीरकोकिलौ । ( ३ ) पक्षिणौ ॥१०१॥
- हील० श्रीम० । तत्पटसहकारं उभौ संश्रयेते । यथा कीरकोकिलौ सहकारं संश्रयेते ॥१०२॥
- हीसुं० १तयोष्प्र( : प )दे श्रीमुनिचन्द्रसूरिभूततो निर्मितनैकशास्त्रः ।  
शास्त्रे न कुत्रापि तदीयबुद्धिश्चस्खाल वीहुत्वं समीरणस्य ॥१०२॥  
( १ ) यशोभद-नेमिचन्द्रयोः । ( २ ) विरचितविविधग्रन्थः । ( ३ ) स्खलिता । ( ४ ) पवनस्य  
गतिः ॥१०२॥
- हील० तयोः पटे श्रीमुनिचन्द्रसूरिभूत् । तस्य धीः कुत्रापि शास्त्रे न स्खलति स्म । यथा वायोर्वेग(गो)  
गतिः क्वापि वनगहनादौ न स्खलति ॥१०३॥
- हीसुं० १भूपीठखण्डानिव चक्रवर्ती यतीभवन्षड्विकृतीर्जहौ यः ।  
कदापि काये न दधन्ममत्वं पपौ पुनर्यः स्कृदारनालम् ॥१०३॥  
( १ ) गङ्गासिन्धुनदीभ्यां विभक्तान् वैताढ्यद्विभागीकृतोत्तरार्द्धदक्षिणार्द्धभरतस्य षट्खण्डान् ।  
( २ ) द्वात्रिंशत्सहस्रदेशाधिपतिश्चक्रीत्युच्यते । ( ३ ) साध्वाचारं गृह्णन् । ( ४ ) त्यजति स्म ।  
( ५ ) मम इत्यस्य भावो ममत्वम् । ( ६ ) एकवारम् । ( ७ ) काञ्जिकम् ॥१०३॥
- हील० भूपी० । यथा यतीभवन् चक्री षट्खण्डान् त्यजति तथा यः सूरिः षट्विकृतीस्तत्याज । पुनष्काः  
का)ये निर्ममत्वात्स एकवारं काञ्जिकं पिबति स्म ॥१०४॥

1. इति द्वितीयसर्वदेवसूरिः ३८ । हील० । 2. इति द्वितीययशोभद-नेमिचन्द्रसूरीन्द्रौ ३९. हील० । 3. इति श्रीमुनिचन्द्रसूरिः  
४०, हील० ।

- हीसुं० १निर्जीयते स्म क्वचनापि नायं २कृतोपसर्गैरपि देववर्गैः ।  
इतीव नामा ३भुवि ४विश्रुतेन जज्ञेऽस्य पद्वेऽजितदेवसूरि: ॥१०४॥  
( १ ) न जितः । ( २ ) विविधमनोवचनकायक्षोभकरणप्रकारैः । ( ३ ) भूमौ । ( ४ ) विख्यातेन  
॥१०४॥
- हील० निर्जी० । कदाप्ययं उपसर्ग कुर्वद्दिस्मुखसुरसमूहैर्न निर्जीयते स्म । इति कारणात् पृथ्वीविख्यातेन  
नामाऽजितदेवसूरितपद्वे समजनि ॥१०५॥
- हीसुं० १जगत्पुनानः २सुमनःस्ववन्तीरयो जटाजूटमि३वेन्दुमू( मौ )ले: ।  
अमुष्य पद्वृ ४विजयादिसिंहोऽ५ध्यासांबभूवाथ ६तपस्विसिंहः ॥१०५॥  
( १ ) विश्वं पवित्रीकुर्वाणः । ( २ ) गङ्गाप्रवाहः । ( ३ ) ईश्वरस्य कपर्द्मिव । “कपर्दस्तु  
जटाजूट” इति हैम्याम् । ( ४ ) विजयसिंहसूरि: । ( ५ ) आश्रयति स्म । ( ६ ) श्रमणकेसरी  
॥१०५॥
- हील० जग० । अस्य पद्वृ विजयसिंहसूरि: आश्रयति स्म । यथा सुरसिन्धुप्रवाहो रुद्रजयं श्रयते । स च  
किंकुर्वाणः ?। जगद्विश्वं पवित्रीकुर्वाणः ॥१०६॥
- हीसुं० सोमप्रभः श्रीमणिरलसूरी १अमुष्य पद्वृ नयतः स्म लक्ष्मीम् ।  
२इक्ष्वाकुवंशं भरतश्च बाहुबलिस्तनुजाविवृ३ नाभिसूनोः ॥१०६॥  
( १ ) अजितदेवसूरे: ( विजयसिंहसूरे: ) । ( २ ) ऋषभदेवस्य बाल्यावस्थायामिक्षुयष्टे-  
भिलाषादिन्द्रेण स्थापित इक्ष्वाकुवंशः । ( ३ ) ऋषभदेवपुत्रौ ॥१०६॥
- हील० सोम० । तत्पद्वृ द्वौ अभूताम् । यथा ऋषभनाथस्य द्वौ सुतावभूताम् ॥१०७॥
- हीसुं० श्रीमज्जगच्छन्द० १इदंपदश्रीललामलीलायितमा॒३ततान ।  
येनोऽज्ञिज्ञा॑४शैथिल्यपथस्तङ्गो॑५धनाविलो॑६मानसवासिनेव ॥१०७॥  
( १ ) अनयोः सोमप्रभमणिरलयोगचार्ययोः पद्वस्य लक्ष्म्यास्तिलकलीलाचरितम् । ( २ ) कुरुते  
स्म ( ३ ) त्यक्तः । ( ४ ) शिथिलीभूतानां मुनीनां मार्गः । ( ५ ) सरः ( ६ ) मेघजलैः पद्मिलीकृतः ।  
( ७ ) हंसेन ॥१०७॥
- हील० श्रीमज्ज० । श्रीजगच्छन्दसूरि: अस्य पदस्य लक्ष्म्यास्तिलकस्य लीलावदाचरितं कुरुते स्म । येन  
मुत्कलता त्यक्ता । यद्वद्वंसेन कलुषीभूतस्तयक उज्ज्यते ॥★१०८॥
- हीसुं० १द्वात्रिंशदाशावसनैर॒३भेद्यो वार्दं सृजन्ही॑४रकवद्यादासीत् ।  
५आघाटभूपेन सं॑ हीरलाद्यो नामा जगच्छन्द॒५इदं॑६न्यगादि ॥१०८॥  
1. इति श्रीअजितदेवसूरि: ४१. हील० 2. इति श्रीविजयसिंहसूरि: ४२. हील० 3. इति सोमप्रभमणिरलसूरि ४३. हील० ।  
4. उटाको हीमु० । 5. इति हीमु० । 6. अत्र हीरलाजगच्छन्दसूरिरिति नामस्थापना हील० ।

( १ ) द्वार्तिंशत्सङ्ख्याकैदिगम्बरैर्वादिभिः । ( २ ) जेतुमशक्यः । ( ३ ) वज्ञमणिस्ति । ( ४ ) आधाटनामनगरस्वामिना । लोके 'आहडनगरमिति प्रसिद्धिः । ( ५ ) हीरलाजगच्छन्दसूरि: । ( ६ ) कथितः ॥१०८॥

हील० द्वार्तिंशद्विगम्बराचार्यैः समं वादं विदधन् यः हीरवज्जातः । स आहडनगरराजा 'हीरलाजगच्छन्द' इति नामा कथितः ॥१०९॥

हीसु० 'आचाम्लकैद्वादशहायनान्ते तपेत्यवापद्विरुदं मुनीन्दुः ।  
महाहवैर्वैरिविनिर्जयान्ते भे( भ )र्त्तेव भूमेर्जितकाशिसंज्ञाम् ॥१०९॥

( १ ) द्वादशसंवत्सरं यावन्निरतं [ न्तरं ] कृतैराचाम्लैः कृत्वा । ( २ ) भूमीपालात्तपा इति बिरुदं प्रभुः प्राप्तवान् । ( ३ ) महद्विः सङ्ग्रामैः कृत्वा । ( ४ ) रिपूणां विजयावसाने । ( ५ ) जिताहव इति संज्ञां लभते । "जिताहवो जितकाशी" ति हैम्याम् ॥१०९॥

हील० आचा० । यः आचाम्लकैः कृत्वा द्वादशवर्षप्राप्ते 'तपा'बिरुदमाप । यथा समस्तारिजयाद्राजा 'जिताहव' संज्ञां लभते ॥११०॥

हीसु० 'अस्मात्तंतः प्रादुरभूत्पाख्या नेत्रादिवात्रेर्द्विजराजलेखा ।  
अदीपि यस्माच्च 'मुमुक्षुलक्ष्म्या वसन्तमासादिव भानुभासा ॥११०॥

( १ ) जगच्छन्दसूरे: । ( २ ) तद्विवसादादारश्य । ( ३ ) अत्रिनामतापसलोचनात् । ( ४ ) चन्द्रमण्डली । ( ५ ) साधुश्रियाः । ( ६ ) सूर्यद्युत्या ॥११०॥

हील० अस्माज्जगच्छन्दसूरे: सकाशाद्वहद्वच्छस्य 'तपागच्छ' इति षष्ठं नाम जातम् । यथा नेत्राच्छन्दरेखा जाता । पुनर्यस्माद्यतिलक्ष्म्या अधिकं दीप्यते स्म । यथा वसन्तमासाद्वास्करस्य प्रभया दीप्यते ॥१११॥

हीसु० 'देवेन्द्रकर्णाभरणीभवद्विर्यशोभिरुद्धासितविष्टपेन ।  
देवेन्द्रदेवेन बभेऽस्य पट्टे विष्णोर्यथा वक्षसि कौस्तुभेन ॥१११॥

( १ ) समस्तसुरपतिकर्णपूरतां प्राप्नुवद्धिः । गीतगोष्टीषु तुंबुरुप्रमुखगान्धर्वगणगीयमान-यद्वणश्रवणैकतानाः सुरेन्द्राः संजायन्ते । ( २ ) शोभितभुवनेन । ( ३ ) देवेन्द्रनामसूरीन्द्रेण । "पादा भद्रारको देवः प्रयोज्या: पूज्यनामतः" इति हैम्याम् । ( ४ ) रलविशेषेण ॥१११॥

हील० देवेन्द्राणां कर्णयोराभरणीभवद्धिः कर्णपूरयमाणैर्यशोभिर्योतितविश्वेन देवेन्द्रसूरिणा अस्य पट्टे शोभितम् । यथा कृष्णहृदये कौस्तुभरलेनोद्धास्यते । "पादा भद्रारको देवः प्रयोज्या: पूज्यनामतः" इति हैम्याम् ॥११२॥

1. इति श्रीजगच्छन्दसूरि: ४४. । इति ब्रहद्वच्छस्य तपगच्छ इति षष्ठं नाम सञ्जातम् ६. हील० । 2. श्रीदेवेन्द्रसूरि: ४५. । हील० ।

- हीसुं० निजाङ्गनोद्गीतयदीय<sup>१</sup>कीर्तिं ॐश्रूषुरक्षिश्रवसामृ<sup>२</sup>भुक्षाः ।  
चक्षुस्सहस्रे<sup>३</sup> रसिकपिक्( : कि )मा[था]त्पट्टे स तस्याऽजनि धर्मघोषः ॥११२॥  
( १ ) स्वकामिनीभिः मिथो धर्मगोष्यां गीवमानां धर्मघोषसूरिकीर्तिम् । ( २ ) श्रोतुमिच्छुः ।  
( ३ ) नागेन्द्रः । अक्षिणी एव श्रवसी येषां तेषां नागानां इन्द्रः । ( ४ ) द्वे सहस्रे नयने ॥११२॥
- हील० निजवधूभिर्गीतां यस्य कीर्ति श्रोतुमिच्छुर्नागेन्द्रो नयनानां [सहस्र]द्वयं रसिकः सत्रकरोत् । तत्पट्टे  
स धर्मघोषसूरिजातिः ॥११३॥
- हीसुं० १मिथ्यामतोत्सर्पणबद्धकक्षं प्रेक्ष्य क्षितौ जीर्णकपर्दिनं यः ।  
प्रबोध्य<sup>४</sup> वाचा ३जिनराजबिम्बाधिष्ठायकं पूर्वमिव व्यधत्त ॥११३॥  
( १ ) वज्रस्वामिमाहात्म्यान्नवीनोत्पन्नकपर्दिना त्याजितशत्रुञ्जयं जीर्णकपर्दिनं भूमौ  
मिथ्यात्वमुत्सर्पणैकरङ्गं दृष्ट्वा । ( २ ) मधुरगिरा प्रतिबोध्य । ( ३ ) शत्रुञ्जयप्रतिमाधिष्ठायकमिव  
॥११३॥
- हील० मिथ्या० । यः पृथिव्यां मिथ्यात्ववृद्धिविधाने सज्जीभूतं गोमुखयक्षं प्रतिबोध्य, यथा पूर्व  
अधिष्ठायकोऽभूतथैव तत्राप्यकृत ॥११४॥
- हीसुं० १शिष्यार्थनानिर्मितसंस्तवस्यानुभावतो ३देवकपत्तनेऽब्धिः ।  
भूपस्य शुश्रूषुरिवास्य रत्नं ३तरङ्गहस्तैरुपदीचकार ॥११४॥  
( १ ) कौतुकान्निजशिष्याभ्यर्थनया मन्त्रमयस्तुतिकरणप्रभावतः । ( २ ) देवकपत्तन-  
समीपसमुद्रेन( ३ ) रत्नं तरङ्गहस्तोपरिदर्शितम् ॥११४॥
- हील० शिष्याणामाग्रहेण कृतमन्त्रमयस्तोत्रप्रभावात् देवकपत्तननिकटवर्ती अब्धिः अस्य धर्मघोषसूरे रत्नं  
तरङ्गरुपहस्तैर्दीक्यामास । निर्गम्यत्वेन ग्रहणाभावादर्शयामासेत्यर्थः । यथा सेवाकर्तुमिच्छुर्नये राजो  
रत्नमुपदीकुरुते ॥११५॥
- हीसुं० विद्यापुरे योऽखिलशाकिनीनामुपद्रवं द्रावयति<sup>५</sup> स्म सूरिः ।  
श्रीहेमचन्द्रो भृगुकच्छसंज्ञे पुरे ३यथा दुर्द्वयोगिनीनाम् ॥११५॥  
( १ ) शाकिनीनां उपद्रवं पट्टकादिमण्डनं रजन्यां पट्टिकोत्पाद्व( २ )नचत्वरानयनं वटकादिविहारणं  
इत्याद्युप्रद्रवम् । ( ३ ) हन्ति स्म । ( ४ ) यथा भृगुकच्छे स्वनिर्मापितमुनिसुव्रतस्वामिप्रासादे  
सन्ध्यायां प्रह्लादान्नत्तर्नावसरे चतुः षष्ठियोगिनीदोषे जाते विज्ञातं वृत्तेन हेमसूरिणा समेत्य  
यशोभद्रगणिना हक्कादानोदूखलखण्डनादिना उपद्रवो द्रावितः सज्जितश्चाप्रभट्टमन्त्री ॥११५॥
- हील० विद्यापुरे यः सूरिः पट्टकमण्डनगुरुशयनपट्टिकोत्पाटनादिविद्यात्रीणां श्राविकाणां उपसर्ग निवारितवान् ।  
यथा हेमसूरिणा निवारितिः ॥११६॥

- हीसुं०** यो योगिनं 'पुष्पकरणिङ्गनीस्थं दुश्शेष्टैर्भापनबद्धकक्षम् ।  
पदावनमं विदधे॑ न्तिमोऽर्हन्निवा॒ स्थिकग्रामिकशूलपाणिम् ॥११६॥
- ( १ ) उज्जयिनीस्थाष्णुः( स्तुः ) । ( २ ) कोऽपि सिद्धचेटकपेटको योगी । साधूनां दन्तदर्शनेन तथोपाश्रये उन्दुर-बिडाल-वृश्चिक-भुजगादिर्दशनेन चाचार्यमपि भाष्णोद्यतः प्रभुणा जैनमन्त्रानुभावतो बद्धवा प्रासादशिखरे सङ्घट्यमानास्फाल्यमानाङ्गः पूतुर्वता गगनमार्गेनां ( णा )लये आनीतः । ( ३ ) प्रभुं प्रणोमे । ( ४ ) महावीरः । ( ५ ) अस्थिकग्रामवासिशूल-पाणियक्षम् ॥११६॥
- हील०** यो यो० । यथा वीरजिनेन शूलपाणिः शिक्षितस्तथा सूरिरुज्जयिन्यां भयोत्पादने क्षमं योगिनं नतं विदधे ॥११७॥
- हीसुं०** 'यस्योपदेशान्तृ॑ पमन्त्रिपृथ्वीधरश्चतु॒ र्भिः सहितामशीतिम् ।  
ज्ञातीरिवोद्धर्तुमिदंमिताः स्वा व्यधापयत्तीर्थकृतां विहारान् ॥११७॥
- ( १ ) श्रीधर्मघोषसूरेषुरुपदेशात् । ( २ ) पेथडदेनामा मण्डपाचलपातिसाहिप्रधानः । ( ३ ) चतुरशीतिर्जनप्रासादकारितवान् ऐवते च षट्पञ्चाशा॑ त्वर्णधीभिरिन्द्रमालां परिहृतवांश्च ॥११७॥
- हील०** यस्योपदेशान्मालवदेशे मण्डपाचलपातिसाहेर्मन्त्री पेथडदे ४४ ज्ञातीरुद्धर्तु ४४ जिनप्रासादानकरोत ॥११८॥
- हीसुं०** 'दंशादहेग्राहितकाष्ठभारविषौषधीसज्जतनुर्निशान्ते ।  
महात्मवद्यो विकृतीर्विहाय वृत्तिं व्यधादेव युगन्धरीभिः ॥११८॥'
- ( १ ) एकदा नक्तं सर्पदंशाद्विषेण घूर्णं तं गुरुं दृष्टवा किंकर्तव्यमूढं सङ्घं विज्ञाय गुरुः सङ्घं प्रति प्राह-प्रातर्या काष्ठभारिका समेति तस्या विषापहारिणीमौषधीं गृहीत्वा वल्ली घृष्टवा मटुंके देया सज्जो भविष्यामीति श्रुत्वा सङ्घेन तथाकृते सज्जीभूतः प्रभुस्तदादिषड्विकृतीस्तत्याज ॥११८॥
- हील०-** दंशा० । अहेर्दशादानायितात्काष्ठभारत् विषस्यावहारिण्यौषध्या सज्जतनुर्निशान्ते प्रातः षट्(इ)-विकृतीस्त्यक्त्वा । यथा सज्जनः परदोहादीन् त्यजति तद्वद्यः युगंधर्यैवाहारमकरोत् ॥११९॥
- हीसुं०** यस्याद्विदीपे चरणस्य 'लक्ष्मीज्योत्से( त्वे )व चान्द्री शरदोऽनुषङ्गात् ।  
सोमप्रभाख्यो जनदृवन्यकोरीसोमप्रभः सूरिरभूत्पदेऽस्य ॥११९॥<sup>१२</sup>
- ( १ ) चारित्रश्रीः । ( २ ) राशिसम्बन्धिनी । ( ३ ) मेघात्ययस्य सङ्घात् ॥११९॥

1. इति श्रीधर्मघोषसूर्पि: ४६. हील० । 2. इति श्रीसोमप्रभसूर्पि: ४७. हील० ।

- हील० यस्माच्चास्त्रीर्दिदीपे । यथा शरदि चन्द्रिका दीसिमतो भवति । स सोमप्रभसूरिः जनानां दृश एव चकोर्यस्तासां चन्द्रतुल्यः । सोऽस्य पट्टे समभवत् ॥१२०॥ इति श्रीसोमप्रभसूरि ४७ ॥
- हीसुं० तेनापि सोमतिलकाभिधसूरिरात्म-पट्टे ३्यवेशि ३वशिलक्ष्मिलसल्लामम् । वादेषु येन परवादिकदम्बकस्याः-३नध्यायता प्रतिपदेव मुखे ३्यवासि ॥१२०॥<sup>३</sup>  
 ( १ ) स्थापितः । ( २ ) यतिश्रियाः स्फुरन्तिलकम् । ( ३ ) तूष्णीकता मौनमित्यर्थः । ( ४ ) वासिता ॥१२०॥
- हील० तेनापि सोमतिलकसूरिः पट्टे स्थापितः । येन परवादिमुखे तूष्णीकता मौनं स्थापिता । यथा प्रतिपदा छात्राणां मुखेऽनध्यायता वास्यते ॥१२१॥
- हीसुं० संस्थापितो निजपदे प्रभुणाथः तेन श्रीदेवसुन्दरगुरुः ३सुरसुन्दरश्रीः । ३अहोमुखेन तिमिरेण ३तमस्विनीव येन ३व्यपास्यत समं मदनेन माया ॥१२१॥<sup>४</sup>  
 ( १ ) सोमतिलकेन । ( २ ) देवतुल्यसुन्दरशोभः । ( ३ ) प्रभातेन । ( ४ ) रात्रिः । ( ५ ) निरस्ता ॥१२१॥
- हील० संस्था० । तत्पट्टे सुखत्सुन्दरः देवसुन्दरसूरिः जज्ञे । येन कामेन सह मायापास्ता । यथा प्रभातेनान्धकारेण सह रात्रिव्यपास्यते ॥१२२॥
- हीसुं० धूकैर्कमिव ३द्विषद्विरुदये हन्तुं ३परैष्ठे०( : प्रे )षितं  
 कञ्चिच्च न्द्रुचा प्रमादविमुखं स्वापेऽपि दृष्ट्वा प्रभुम् ।  
 क्षाम्यन्तं गदिताखिलव्यतिकरं सम्बोध्य योऽदीक्षय-  
 त्स श्रीमानथ सोमसुन्दरगुरु र्भेजे तदीयं पदम् ॥१२२॥<sup>५</sup>  
 ( १ ) सूर्यम् । ( २ ) वैरायमाणैः । ( ३ ) परपक्षियैः । ( ४ ) घातुकम् । ( ५ ) चन्द्रोदये रजोहरणेन संस्तारकं स्वपृष्ठं च प्रमार्ज्य पार्श्वं परावर्त्यन्तं वीक्ष्याहो ! अपी निद्रायामपि जीवरक्षाकारिणस्तत्कथमन्यान्दृत्यन्तीति वितर्कपूर्वं गुरुं प्रबोध्य स्वव्यतिकरं ज्ञापितवान् दीक्षां ग्राहितवान् ॥१२२॥
- हील० धूकै० । सूर्यं प्रति धूकैरिव परैर्द्विषद्विः प्रभुं हन्तुं प्रेषितं कञ्चित्पुमांसं प्रतिबोध्य यः प्राव्राजयत् । स तत्पदेऽभूत् ॥१२३॥
- हीसुं० पट्टश्रियास्य मुनिसुन्दरसूरिशक्रे सम्प्राप्तया ३कुवलयप्रतिबोधदक्षे ।  
 कान्त्येव ३पद्मसुहृदः ३शरदिन्दुबिम्बे ग्रीतिष्य( : प )रा ३व्यरचि लोचनयोर्जनानाम् ॥१२३॥

1. ऋलामः हील० । 2. ऋन्ध्यायिता हील० । 3. इति श्रीसोमतिलकसूरिः [४८] हील० । 4. इति श्रीदेवसुन्दरसूरिः ४९. हील० । 5. इति श्रीसोमसुन्दरसूरिः ५०. हील० ।

( १ ) नीलोत्पलं भूवलयं च तस्य प्रतिबोधे विकाशे देश-सर्वविरत्यादिदाने चतुरे । ( २ ) सूर्यस्य । ( ३ ) शरत्कालसम्बन्धिचन्द्रमण्डले । ( ४ ) कृता ॥१२३॥

हील० पट्ट० । मुनिसुन्दरसूरौ आगतया पट्टलक्ष्म्या जनानां नेत्रयोः प्रकृष्टा प्रीतिर्विरचिता । यथा सूर्यस्य कान्त्या शरच्चन्द्रमण्डले सम्प्राप्तया जननयनयोः प्रीतिर्विरच्यते । किंभूते मुनिसुन्दरसूरिशक्ते शरदिन्दुबिम्बे च ? कुवलयं, भूवलयं उत्पलं च तस्य बोधिबीजप्रदाने विकाशने च दक्षे ॥१२४॥

हीसुं० 'योगिनीजनितमार्युपप्लवा येन<sup>२</sup> शान्तिकरसंस्तवादिह ।  
'वर्षणादिव 'तपर्तुतमयो 'नीरवाहनिवहेन 'जघ्निरे ॥१२४॥

( १ ) दुष्ट्योगिनीनिर्मितमरकोपद्रवः । ( २ ) मुनिसुन्दरसूरिणा । ( ३ ) "संतिकरं संतिजिण" मित्यादिस्तवनेन । ( ४ ) वृष्टेः । ( ५ ) ग्रीष्मतापाः । ( ६ ) मेघव्रजेन । ( ७ ) हताः ॥१२४॥

हील० योगिनीभिर्दुष्टव्यन्तरीभिः कृतोपद्रवा येन निवारिताः । यथा मेघौघेन ग्रीष्मतोस्तापानि हन्यन्ते ॥१२५॥

हीसुं० 'बाल्येऽपि रश्मीन्निस<sup>३</sup>( न्स )रसीजबन्धुरिवावधानानि 'वहन्सहस्रम् ।  
अष्टोत्तरं 'वर्तुलिकानिनादशतं स्म॑वेवेक्ति धियां निधिर्यः ॥१२५॥

( १ ) बालभावेऽपि । ( २ ) किरणानिव । ( ३ ) रविः । ( ४ ) सहस्रावधानधारकः । ( ५ ) अष्टोतरशतवर्तुलिकाशब्दानाम् । ( ६ ) पृथक् पृथक् वक्ता ॥१२५॥

हील० बाल्ये० । यथा रविः सहस्रकिरणान्धते तथा बाल्येऽपि यः सहस्रावधानधारी १०८ वर्तुलिकास्वरं पृथक्-पृथक् कृत्वा कथयति स्म ॥१२६॥

हीसुं० 'अलम्भि याम्यां दिशि येन काली सरस्वतीदं बिरुदं बुधेभ्यः ।  
रवेरु दिव्यामिव तत्र तेजोऽतिरिच्यते यत्पुनरत्र 'चित्रम् ॥१२६॥<sup>१</sup>

( १ ) प्राप्तम् । ( २ ) दक्षिणस्याम् । ( ३ ) उत्तरस्याम् । ( ४ ) अधिकीभवति । ( ५ ) आश्वर्यम् ॥१२६॥

हील० अल० । येन दक्षिणस्यां दिशि 'कालीसरस्वती'ति बिरुदमाप्तम् । यथा रवेरुत्तरस्यां तेजोवृद्धिः तद्वदेतस्य दक्षिणस्यामपि तेजोऽधिकं जातमिति आश्वर्यकारि ॥१२७॥

हीसुं० सूरेस्ततोऽजायत रत्नशेखरः श्रीपुण्डरीको वृषभध्वजादिव ।  
'बाम्बीति नामा द्विजपुङ्गवेन न्यगादि यो 'बालसरस्वतीति ॥१२७॥<sup>२</sup>

( १ ) भरतचक्रिप्रथमसुतः । ( २ ) ऋषभदेवात् । ( ३ ) स्तम्भतीर्थे बाम्बीनामा द्विजेन ।  
( ४ ) बालसरस्वतीति बिरुदं दत्तम् ॥१२७॥

1. इति श्री मुनिसुन्दरसूर्दि: ५१. हील० । 2. इति श्रीरत्नशेखरसूर्दि: ५२. हील० ।

- हील० सूरे० । यथा भरतचक्रिणः प्रथमसुतः पुण्डरीकः वृषभदेवगणभृदभूत् तथा तत्पटे रत्नशेखरसूरिः समभवत् । यः बाम्बीद्विजेन बालसरस्वती कथितः ॥१२८॥
- हीसु० लक्ष्मीसागरसूरिशीतमहसा लक्ष्मीरवापे ततो  
दीपेनेव ॑गुणोदयं ॒कलयता ज्योतिर्बृहद्वानुतः ।  
गायन्तीः सुरसुन्दरीर्गुणगणान्यस्याष्ट॑दिग्स( क्षम )ङ्गिनी-  
५र्विज्ञाया॒ष्ट॑ विनिर्ममे किमु विधिः ॑श्रोतुं ‘श्रुतीरात्मनः ॥१२८॥  
( १ ) गुणाः शमदपार्जवमार्दवादयः वृत्तिश्च तेषामभ्युदयम् । ( २ ) दधता । ( ३ ) वह्नेः ।  
( ४ ) दिक्षु विदिक्षु च स्थिताः । ( ५ ) ज्ञात्वा । ( ६ ) अष्टसङ्ख्याकाः । ( ७ ) श्रवणाय । ( ८ )  
कर्णान् ॥१२८॥
- हील० लक्ष्मीसागरसूरिणा ततः शोभासा । यथा दीपेन गुणवताऽग्नेः कान्तिरप्यते । यस्य गुणान् अष्टासु  
दिक्षु गायन्तीर्देववधूर्दृष्ट्वा स्वष्टा तान श्रोतुं स्वास्याष्ट कर्णान् करोति स्म ॥१२९॥
- हीसु० सुमतिसाधुरभूदथ तत्पदे ॑त्रिजगतीजननेत्रसुधाञ्जनम् ।  
॒समकुचत्र॑पया हृदि यद्विरां॑मधुरिमाधरिता किमु गो॒स्तनी ॥१२९॥<sup>१</sup>  
( १ ) त्रैलोक्यलोकनेत्राहादकः । ( २ ) सङ्क्षेपति स्म । ( ३ ) लज्जया । ( ४ ) सुमति-  
साधुसूरिविचनविलासमाधुर्यधिकृता । ( ५ ) द्राक्षा ॥१२९॥
- हील० सुम० । जगज्जननयनासेचनकत्वादमृताञ्जनं सुमतिसाधुसूरिस्तत्पदेऽभवत् । यस्य वाचां मधुरिम्ना  
हीनीकृता (द्राक्षा) पुनर्मनसि लज्जया सङ्क्षेपं प्राप्तवती ॥१३०॥
- हीसु० ॑शीलेन ॒जम्बुगणनाथ इवात्र वज्र-स्वामी परः किमथ वा ॑महिमोदयेन ।  
जज्ञे ॑नवद्वयशतव्रतिसेव्यमानो नाम्नाथ हेमविमलष्ठ्र( लः प्र )भुरस्य पट्टे ॥१३०॥<sup>२</sup>  
( १ ) ब्रह्मचर्येण । ( २ ) जम्बूस्वामी । ( ३ ) माहात्म्याविर्भावेन । ( ४ ) अष्टदशशतसाधुश्र-  
( से )व्यक्रमः ॥१३०॥
- हील० शीले० । अस्य पट्टेऽष्टदशशयतिसेव्यमानः श्रीहेमविमलसूरिभवत् । यः शीलेन जम्बूस्वामी पुनर्यः  
महिमोदयेन वज्रस्वामीव जज्ञे ॥१३१॥
- हीसु० विभूषाम॑द्वैतामकलयदथानन्दविमल॑-ब्रतीन्द्रे ॑विद्राणाखिलकुदृशि तत्पटकमला ।  
वसन्ते वासन्तीततिरिव पुन॑र्धर्मजय( यि )नि, ॑क्षितीन्द्रे राज्यश्रीरिव ॑विजित-  
विश्वप्रतिभटे ॥१३१॥

1. इति लक्ष्मीसागरसूरिः ५३. हील० । 2. इति श्रीसुमतिसाधुसूरिः ५४. हील० । 3. इति श्रीहेमविमलसूरिः ५५. हील० ।  
4. ओले ब्रती० हीमु० ।

( १ ) असाधारणाम् । ( २ ) प्रणष्टकुमतिगणे । ( ३ ) धर्मिष्ठे । ( ४ ) राजनि । ( ५ ) पराभूतसमस्तशत्रौ ॥१३१॥

हील० विभू० । विद्राणा: पलायिता न्यक्षाः कुपाक्षिका यस्मात्तादृशे आनन्दविमलब्रतीन्दे तत्पट्टलक्ष्मीः असाधारणीं शोभां दधार । यथा वसन्ते अतिमुक्तकीलतापडिक्करनन्यां श्रियमशनुते । पुनर्यथा धर्मेण जयोऽस्यास्तीति तादृशे । पुर्वजितवैरिसमूहे राज्ञि राज्यलक्ष्मीः शोभां विभर्ति ॥१३२॥

हीसु० त्यक्त्व्य॑शेषकुपाक्षिकांश्च कुदृशः ॒किपाकभूमीरुहा-  
न्नोऽलम्बैरिव ॑पारिजातशिखरी यो ॒जन्मिभिः शिश्रिये ।  
येनात्मा॑शिथिलीभवन्मु॑निपथादप्युद्घृतः सूरिणा  
संसाराप्बुनिधेरिवोद्घृतकु॑दृग्यादोव्रजव्याकुलात् ॥१३२॥

( १ ) समस्तमतानि । ( २ ) विषवृक्षान् । ( ३ ) भ्रमैरः । ( ४ ) कल्पद्रुविशेषः । “कल्पद्रुमाणामिव पारिजात” इति खौ । ( ५ ) भव्यैः । ( ६ ) प्रमादपदवीपरिगतान् । ( ७ ) मुनिमार्गात् । ( ८ ) कुमतिमकरनिकराकुलात् ॥१३२॥

हील० त्यक्त्वा० । कुपाक्षिकान् लुम्पाकप्रमुखान् कुदृशः सौगतादीन् विमुच्य यः सूरि: प्राणिभिः श्रितः । यथालिभिर्महाकालमहीरुहांस्त्यक्त्वा मन्दारः सेव्यते । पुनर्येन मुनिमार्गाच्छिथिलः स्वजीव उद्घृतः । उत्प्रेक्ष्यते । कुमतमीनाकुलात्संसारणवात् पारं प्रापितः ॥१३३॥

हीसु० शुद्ध॑क्रिया॑मुद्धरतोऽस्य भाविनी॑मद्वत्प्रवृद्धिस्तमितीव ॒शंसितुम् ।  
स्वप्ने॑नुदुक्तेरनु कस्यचिं॑ज्जनध्यातु॑द्वितीयेन्दुरदर्शयन्निजम् ॥१३३॥

( १ ) आद्रियमाणस्य । ( २ ) चन्द्र इव । ( ३ ) कथयितुम् । ( ४ ) प्रश्नादनु । ( ५ ) पार्श्वनाथमन्त्रध्यातुः । ( ६ ) द्वितीयाचन्द्रः ॥१३३॥

हील० शुद्धां० । कस्यचित्पार्श्वनाथमन्त्राराधकस्य श्राद्धस्यानुयुक्तेः प्रश्नादनु पश्चात्स्वप्ने द्वितीयेन्दुरगतः । उत्प्रेक्ष्यते । मद्वद्धिवत् तवापि भाविनीति गदितुम् ॥★१३४॥

हीसु० ॑जैनार्चाश्रमणाद्यभावभणनाम्भःप्लाव्यमानात्मनां  
जन्मे॑द्वीप इव व्रतीशितुर्हितेद्वारः ॒क्रियाया॑नृणाम् ।

विद्यासागरनामवाचकवरो यस्याथ ॑दुर्दृग्गणा-  
॒न्सेनानीरिव ॑चक्रिणो॑रिपुनृपा॑न्मर्वा॑न्ववश्यान्व्य॑धात् ॥१३४॥

( १ ) जिनप्रतिमासाधूनामभावम् । नास्ति जिनप्रतिमा-साधवश्चेति कथनमेव लुम्पाककटुकमति-पाक्षीय वचनमेव पानीरुपूरेणोपद्यमाणात्मनाम् । ( २ ) जलमध्यतट इव । ( ३ ) क्रियोद्वारः । ( ४ ) भव्यानाम् । ( ५ ) कुमतिव्रजान् । ( ६ ) सेनापतिरिव । ( ७ ) चक्रवर्त्तिनः । ( ८ )

1. ०द्वां क्रि० हीमु० । 2. ०पान्नाकस्वस्य वश्या० हीमु० । प्रत्यक्स्ववश्या० हील० ।

विरोधिनरपतीन् । ( ९ ) निजप्रणतान् स्वाज्ञाविद्यायिनो वा । ( १० ) चक्रे ॥१३४॥

हील० जैना० इह भरतक्षेत्रदक्षिणार्द्धमध्यखण्डे श्रीआणन्दविमलसूरे: क्रियोद्धारः ब्रूडतां प्राणिनां द्वीपतुल्यो जातः । यस्य विद्यासागरनामा वाचकः कुमतान्स्वायत्तान्कुरुते स्म । यथा चक्रिसेनानी वैरिणः स्वायतान्कुरुते ॥१३५॥

हीसु० १प्रातः सा॒धुवृत्तस्त्व॑दापणपुरो यो या॒ति ॒सूरीशिता  
सम्यक्संयमवान्स॑ पूर्वगणिवत्से॑व्यस्त्वयाऽहर्निशम् ।  
॒स्वप्ने॑स्वप्नगिरेति ॑यं निजगृहे नीत्वातिभक्त्या प्रभुं  
श्राद्धः १२कश्चन १३मण्डपादिवसति॑भेजे सगोत्रैः१४ समम् ॥१३५॥

( १ ) प्रभाते । ( २ ) यतिभिष्य( : प )रिवृतः । ( ३ ) तव हट्टस्याग्रे । ( ४ ) व्रजति । ( ५ )  
आचार्यः । ( ६ ) अस्मिन्कलिकाले पूर्वाचार्य इव स सूरि: शुद्धचारित्रवान् विज्ञेयः । ( ७ )  
पुनस्त्वया स एव सेव्यः, नित्यं सेवायोग्यः । ( ८ ) स्वापस्य निदाया अवस्थायाम् । ( ९ )  
देववचसा । ( १० ) आणंदविमलसूरीन्दम् । ( ११ ) कटुकश्राद्धः । ( १२ ) मण्डपदुर्गगृहः ।  
( १३ ) सेवते स्म । ( १४ ) स्वस्वजनैः सार्वम् ॥ १३५॥

आदेशं स्थापयित्वा जिनस्य शीर्षा सौराष्ट्रनामा देशेषु प्रभाते मुनिगणौष्ठ्य( : प )रिवारितः । तव  
हट्टस्याग्रे सूरीन्दः, अस्मिन्कलिकाले सुविशुद्धचारित्रयुक्तः पूर्वाचार्य इव, त्वया नित्यं सेवनीयः ।  
“अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीती गणिश्व स” इति हैम्याम् । स्वापावस्थायाम्-निदायामित्यर्थः  
देववचनेन आत्ममन्दिरे आनीय । मण्डपाचलवास्तव्यः । स्वस्वजनैः सार्वम् ॥१३५॥

हील० प्रातः साधुपरिवारश्चितः यः सूरीशः तव हट्टपुरः प्रयाति । स सम्यक्क्रियावान् गौतम इवाराधनीयः ।  
तस्याभिज्ञानं तव हस्ते कुसुमान्यर्पयामीति जागरणेऽपि पुष्पानि(णि) दृष्टवान् स्वजनानां प्रातर्दर्शितावांश्चेति  
काव्येऽनुकमपि जातत्वादुक्तं कारिकायाम् । इति देवगिरा स गोत्रैः सह मण्डपाचलीयष्क( : क)-  
श्चित् श्राद्धीभूय तमाराधयति स्म ॥१३६॥

हीसु० १तमःस्तोमप्राये २कुनयनगणौर्दारु॑णतमे,  
कलौ श्रीसूरी॑न्दः शरणमभवद्यो ३जनिमताम् ।  
४मृगारातिव्यालद्विरदशबरव्यूहबहुले,  
गिरेदु॑ः सञ्चारे ५गहन इव सार्थष्प्य( : प )थिजुषाम् ॥१३६॥  
( १ ) अज्ञानबहुले । ( २ ) परपक्षीयैः कुमतैश्च । ( ३ ) भयकारिणि । ( ४ ) प्राणिनाम् । ( ५ )  
सिंह-सर्प-गज-भिल्लाणभृते । ( ६ ) दुःखेनोल्लङ्घयितुं शक्ये । ( ७ ) अटव्याम् । ( ८ ) पान्थानाम्  
॥१३६॥

1. ०रीन्दुः: हीमु० ।

- हील० यः सूरि कलौ शरणं जातः । यथा सिंहभुजङ्गहस्तिभिलैव्यसे पुनर्दुर्लङ्घये गिरिवनकुञ्जे सार्थः पान्थानामाश्रयो भवति ॥★१३७॥
- हीसु० 'गभीरिम्ना(म्णा)पाथोनिधिरिव ३महिमाऽपरमे(म)रुद्गिरि'श्वेतोजन्मप्रतिभटतया वा 'गगनजित् ।  
'प्रसारै रश्मीनां सरसिरुहिणीनामिव' पतिः  
पवित्रीचक्रे यो 'विहृतिभिरशेषा अपि दिशः ॥१३७॥
- (१) गाम्भीर्येन(ण) । (२) समुद्रः । (३) महन्त्वेन । (४) मेरुः । (५) कन्दर्पस्य  
शत्रुत्वेन । (६) बुद्धः । (७) किरणविस्तारैः । (८) सूर्यः । (९) विहारैः ॥१३७॥
- हील० यः गभीरिम्ना(म्णा) समुद्रः । पुनर्यो महतो भावेनापरो देवगिरिः । यः स्मरदमनेन खजित् बुद्धः । "मार १ लोक २ ख ३ जिद्धर्मराजो विज्ञानमातृक" इति हैम्याम् । यो विहारैर्दिशः पावनीचक्रे । यथा सूर्यः किरणप्रचारैर्दिशः प्रकाशयति ॥१३८॥
- हीसु० यो दक्षिणावर्त इव 'स्त्रवन्तीपतिप्लवे ३कम्बुकदम्बकेन ।  
'वाचंयमानां निवहेन १भूमीपीठे ४परीतो विजहार सूरि: ॥१३८॥
- (१) समुद्रपूरे । (२) शङ्खव्रजेन । (३) यतीनाम् । (४) परिवृतः ॥१३८॥
- हील० यो दक्षिणावर्त इव मुनिमण्डलीवृतः भूमण्डले विहरति स्म ॥★१३९॥
- हीसु० 'भागीरथीव ३यद्ब्राह्मी ४पुनीते भुवनत्रयम् ।  
'परं विशेषष्टको(को)ऽप्यस्या ५निम्नगा न कदाचन ॥१३९॥
- (१) गड्ढेव । (२) यस्य वाणी । (३) पवित्रीकरोति । (४) अन्तरम् । (५) अवद्यगामिनी न ॥१३९॥
- हील० भागी० । स्वर्धुनीव यस्य वाणी त्रिभुवनं पवित्रयति । परमयं विशेषः यद्वाण्या निम्नं नीचैरवद्यं गच्छति तत्त्वं नास्ति । गङ्गा तु नीचगामिनी ॥१४०॥
- हीसु० ये १कर्णाभरणीबभूवरनिशं ३ विश्वत्रयीजन्मिनां  
'सान्दोन्निद्रितचन्द्रिका इव शु४चीचक्रुस्त्रिलोकीमपि ।  
यान्संस्तोतुमिवाभवद्दु५जगराङ्गजिह्वासहस्रद्वय-  
'स्तेषां सूरिपुरुन्दरः स समभूदेको गुणानां निधिः ॥१४०॥
- (१) कर्णपूरीभवन्ति स्म । (२) त्रैलोक्यलोका अपि सोत्कण्ठपर्वनिशमाकर्णयन्तीत्यर्थः । (३) निबिडप्रकटीभूतत्वं चन्द्रज्योत्स्त्रा इव । (४) ध्वलयन्ति स्म । (५) शेषनागः ।

( ६ ) पूर्वोक्तविशेषण विशिष्टानाम् ॥१४०॥

हील० ये गुणाः कर्णाभरणायमाना अभूवन् । पुनर्ये चन्द्रिका इव जगद्वलयन्ति स्म । यानुणान्स्तोतुं शेषः सहस्रजिह्वो जातस्तेषां गुणानां निधानं श्रीआनन्दविमलसूरिर्भूव ॥१४१॥

हीसुं० १अश्रोत्रैः २श्रोतुकामैर्भु॒जगपरिवृ॒ढैर्य॑ज्जगद्वीतकीर्ति॑  
३शब्दाधिष्ठानसृष्ट्यै॒शतदलनिलयो याचितस्तां॑४चिकीर्षुः ।  
५न्याय्या नासौ मयाति॑६क्रमितुमिह॑७जगत्सर्गभङ्गीव्यवस्था  
८शक्ति शब्दं गृहीतुं किमिति स कृतवानेव॑९तददृष्टिसर्गे ॥१४१॥

( १ ) कर्णरहितैः । ( २ ) भगवदगुणाकर्णनोत्कणिठतैः । ( ३ ) नागेन्द्रैः । ( ४ ) श्रीआनन्द-  
विमलसूरीन्द्रस्य भुवनैर्गीयमानां कीर्तिम् । ( ५ ) कर्णनिर्माणाय । ( ६ ) ब्रह्मा । ( ७ )  
कर्णसृष्टिम् । ( ८ ) कर्तुमिच्छुः । ( ९ ) योग्या । ( १० ) उलङ्घयितुम् । ( ११ ) विश्वनिर्माण-  
रचनापरिपाटी । ( १२ ) दृक्कर्णाः कृताः ॥१४१॥

हील० अश्रो० । कमलवसतिर्ब्रह्मा अकर्णेनागनायकैः श्रोतुं(तु)कामैः यस्य कीर्ति श्रोत्रसृष्ट्यै याचितः सन्  
तां कर्णसृष्टि कर्तुमिच्छुस्तेषां नागेन्द्राणां लोचनानां निर्माणे एव शब्दं गृहीतुं शक्ति किमिति  
कारणादेव कृतवान् । इतीति मम सृष्टिरचना-स्थापना त्यकुं न न्याय्या ॥१४२॥

हीसुं० भूरेषा किमु॑चन्द्रचन्दनरसैरालिप्यते सर्वतो  
॒दुग्धाब्धिप्रसरत्तरङ्गितपयष्टूः पू॑रेवाप्लाव्यते ।  
॒क्षोदैर्मौक्ति॑कर्जैर्विली॑नतुहिनैः॒कुन्दैरिवापूर्यते  
यत्कीर्ति॑ प्रसृतां विभाव्य विबुधैरित्यन्तराभेक्यते ॥१४२॥१

( १ ) कर्पूराकलितश्रीखण्डद्रवैः । ( २ ) क्षीरसमुद्रस्य विस्तरङ्गिः कल्लोलयुक्तेर्भवङ्गिः  
जलप्रवाहैः । ( ३ ) चूर्णैः । ( ४ ) मौक्तिकेभ्यो जातैः । ( ५ ) द्रवीभूतहिमैः । ( ६ )  
मुचकुन्दकुसुमैः । ( ७ ) विचार्यते ॥१४२॥

हील० भूरे० । यस्य श्रीआनन्दविमलसूरे॑ः कीर्ति प्रसृतां हष्ट्वा कविभिरेवं विचार्यते स्म । इतीति  
किम्? । एषा भू॑ः कर्पूरचन्दनद्रवैर्धवलीक्रियते वा क्षीराद्यैः पानीयैर्मध्यगतेव क्रियते । अथवा  
मौक्तिकचूर्णैर्वा हिमैर्वा मुचकुन्दकुसुमैर्वा निर्भरं श्रियते इत्यारेका ॥१४३॥

हीसुं० विजयदानमुमक्षुपुरन्दरष्टैः प॑दमपुष्य ततः समभूषयत् ।  
॒उदयभूमिभृतः शिखरं॒शरद्विशददीसिरिवाम्बरकेतनः ॥१४३॥  
( १ ) उदयाचलस्य शृङ्गम् । ( २ ) मेघात्ययेन विमलकान्तिः । ( ३ ) सूर्यः ॥१४३॥

हील०- विजयदानसूरि: अस्य पट्टुं अभूषयत् । यथा मेघापगमेन क्रूरकान्तिर्भास्वानुदयाचलचूलां भूषयति ॥१४४॥

हीसुं० १आज्ञां २यस्य ३निधाय ४मूर्ढनि मुदा ५शीर्षामि६वासप्रभोः  
सौराष्ट्रेषु ७जगर्षिनामविबुधाधीशा विहारैर्निजैः ।  
लुम्पाकान्प८रिवर्त्तमारुत इव प्रोन्मूल्य९ मूलाददुमा-  
अ॑श्री॒सम्यक्त्वकृष्णि ततष्फ॑ ( : फ )लवती॑० चक्रे॑१८नभोम्भोदवत् ॥१४४॥  
( १ ) आदेशम् । ( २ ) विजयदानसूरे: । ( ३ ) मस्तके धृत्वा । ( ४ ) जिनेन्द्रस्य शेषामिव ।  
'सेस' इति प्रसिद्धिः । ( ५ ) जगउ ऋषि इति नाम पण्डतेन्द्राः । ( ६ ) कल्पान्तकालवायुरिव ।  
( ७ ) उत्खन्य । ( ८ ) सम्यक्त्वनाम्नी कृष्णम् । ( ९ ) सफलाम् । ( १० ) चकार । ( ११ )  
श्रावणमेघ इव ॥१४४॥

हील० आज्ञां० । यस्यानन्दविमलसूरेराज्ञां शिरसि धृत्वा । यथा भुवनाधीशस्य शीर्षा 'सेस' इति प्रसिद्धां  
मस्तके ध्रियते । तद्वज्जगर्षिनामविबुधाः सौराष्ट्रदेशे स्वविहारैः । यथा कल्पान्तकालमरुदबुधा-  
ददुमानुमूलयति तद्वलुम्पाकान्प्रोन्मूल्य 'लुंका' इत्यभिधानाद्वूरीकृत्य सम्यक्त्वनाम्ना कृष्णि  
फलयुतामकरेत् । यथा श्रावणमेघः कृष्णि निष्पादयति ॥★१४५॥

हील०→ प्राबोधयद्दुःशकनैकतीव्रतपोमि[ हा ]तसोक्तिकृतोक्तियुक्तिभिः ।  
स तत्र लुम्पाकजनं यतीन्द्रो भास्वानिवाम्भोजवनं मरीचिभिः ॥१४६॥←  
प्राबो० । यस्तपोभिः पुनः सिद्धान्तयुक्तिभिः लुम्पाकजनं प्रतिबोधयति स्म । यथा रविः किरणैः  
अम्बुजवनं प्रबोधयति विकाशयति ॥१४६॥

हीसुं० १यद्वाचा २गलराजमन्त्रिमुकुटो निर्माण्य षाण्मासिकीं  
मुक्ति॑३सिद्धगिरौ व्यधाद्वरतवद्यात्रां समं॑४यात्रिकैः ।  
.॑५पञ्चाक्षीं॑६दमितुं च पञ्चविकृतीस्तत्याज यः सर्वदा  
॑७प्राणश्यंस्तर॑८णेर्ग्रहा इव पुनर्यस्योदये॑९दुर्दृशः ॥१४५॥  
( १ ) विजयदानसूरीन्द्रोपदेशेन । ( २ ) 'गळ्ठो महतो' इति नामा । ( ३ ) शत्रुञ्जये । ( ४ )  
यात्राकारकैलौकैः । ( ५ ) पञ्चेन्द्रियाणि । ( ६ ) नियन्त्रयितुम् । ( ७ ) प्रणष्टाः । ( ८ )  
सूर्यस्योदये । ( ९ ) कुपाक्षिकाः ॥

हील० यद्वाचा गलराजमन्त्री शत्रुञ्जये षण्मासं यावन्मुक्ति 'मुगतड' केनापि कस्यापि पार्श्वे शुल्कद्रविणं न  
मार्गणीयम् । अहमेव श्रीमदीप्सितं द्रव्यं दास्यामीत्यकरेत् । यः सूरि: पञ्चइ(ञ्च)न्द्रियाणि दमि[तुं]

1. विधाय हीमु० । 2. शेषा० हील० । 3. सम्यक्त्वाख्यकृष्णि हीमु० । ✗ एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

पञ्चविकृतीस्तत्वाज । यस्मात्कुपाक्षिका नष्टः । यथा रवेर्ग्रहा नश्यन्ति ॥१४७॥

- हीसुं० १० यत्कीर्तिंगङ्गां प्रसृतां त्रिलोक्यामालोक्य किं षण्मुखतां दधानः ।  
“जगदभ्रमीभिर्जननीं दिदृक्षुर्गङ्गासुतोऽध्यास्त मयूरपृष्ठम् ॥१४६॥

( १ ) श्रीविजयदानसूरिकीर्तिनामीं गङ्गाम् । ( २ ) त्रैलोक्यव्यापिनीम् । ( ३ ) वीक्ष्य । ( ४ ) विलोकनाय षट्सङ्ख्याकानि मुखानि धारयन् । ( ५ ) भुवनेषु भ्रमणेन पर्यटनेन ।” अपि भ्रमीभङ्गभिरगवृत्ताङ्गी”-मिति नैषधे । ( ६ ) गङ्गासुतत्वान्मातरं द्रष्टुमिच्छुः । ( ७ ) मयूरवाहनत्वात् स्वामिकार्त्तिकः ॥१४६॥

- हीसुं० रत्नानामिव रोहणोऽम्बुरुहिणीप्रेयानिव ज्योतिषां  
विष्ण्याद्रिष्किरः करि)णामि वामरगिरिः स्वर्भूरुहाणामिव ।  
लब्धीनां वसुभूतिनन्दन इवाम्भोधिः सुधानामिव  
श्रीमत्सूरिशतक्रतुर्भुवि चिरं जीयाद्गुणानां निधिः ॥१४७॥  
इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते श्रीहीरसौभाग्यनामि महाकाव्ये श्रीमहावीरजिनेन्द्रमारभ्य  
श्रीविजयदानसूरीन्द्रं यावत्पट्टपरंपराप्रादुर्भाविनो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ग्रन्थाग्रं २२२॥  
( १ ) रत्नशैलः । ( २ ) सूर्यः । ( ३ ) किरणानाम् । ( ४ ) मेरुः । ( ५ ) कल्पवृक्षाणाम् । ( ६ )  
गौतमस्वामी ॥१४७॥

इति चतुर्थः सर्गः ॥ ग्रन्थाग्रं २५६॥

- हील० यथा मणीनां गृहं रोहणः, यथा रविर्धामां गृहं, यथा विष्ण्याद्रिग्जानां गृहं, मेरुः कल्पवृक्षाणां,  
गौतमः लब्धीनां, अव्यिरमृतानां गृहं भवति तद्गुणानां गृहं श्रीसूरिश्चिरं जीयात् ॥१४८॥

- हील०→ यं प्रासूत शिवाद्वाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः,  
पुत्रं कोविदसिंहसीहविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।  
तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक्-  
सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गश्चतुर्थोऽभवत् ॥१४९॥←

इति श्रीसीहविमलगणिशिष्यर्पं देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनामि महाकाव्ये श्रीमन्महावीरदेवपट्ट-  
परंपरावर्णनो नाम चतुर्थः सर्गः ।

1. अयं श्लोको हीलप्रतौ ३०तमश्लोकत्वेन श्रीभद्रबाहुस्वामिवर्णने दृश्यते । हीमु० अपि तथैव । किन्तु हीसुं प्रतौ अयं श्लोकोऽस्यैव सर्गस्य १४६तमश्लोकरूपेण श्रीविजयदानसूरीश्वरवर्णने लिखितोऽस्ति ॥

\* एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

ऐं नमः ॥

अथ पञ्चमः सर्गः ॥

- हीसु० १आजगाम विहरन्सधरित्र्यां पत्तने विजयदानमुनीन्दः ।  
राजहंस इव ३जहनुमुतायाः ४प्रोल्लस्तकमलशालिनि नीरे ॥१॥  
( १ ) आगतः । ( २ ) गूर्जरदेशे विहारं कुर्वन् । ( ३ ) गङ्गायाः । ( ४ ) विकचकमलैः  
शोभमाने । पक्षे-प्रकर्वेण निरन्तरं वासत्वादुल्लसन्ती हृष्यमाणा कमला लक्ष्मीर्यत्र तथा  
शोभमाने ॥१॥
- हील० आज० । अधिकलक्ष्मीकलिते पत्तने विजदानसूरिणगच्छति स्म । यथा गङ्गायाः कमलकलिते नीरे  
राजहंसः समेति ॥१॥
- हीसु० १साम्प्रतीनयुगजन्तुपवित्रीकर्तुरर्हत इव व्रतिभर्तुः ।  
आगमं ३श्रवणगोचरगयित्वा नागरा हृदि ३ननन्दुरमन्दम् ॥२॥  
( १ ) आधुनिकयुगः कलियुगस्तस्य प्राणिनः पवित्रीकारकस्य । ( २ ) कर्णयोर्गोचरं कृत्वा,  
श्रुत्वा । ( ३ ) जहृषुः । “परिचरणामन्दनन्दन्नखेन्दु” रिति नैषधे ॥
- हील० साम्प्र० । श्रीसूरेणगमं श्रवणयोर्गोचरं विधाय पौरा मनसि जहृषुः । उत्प्रेक्ष्यते । कलियुगप्राणिनां  
पवित्रयितुं तीर्थकरस्येवागमनमिवानन्दकारणम् ॥२॥
- हीसु० व्याहृता॑मितमधु॒ ३स्पृहयद्विनार्गैरुपगतैर्गणधारी ।  
॑दानवारि॒ ४मधुकृत्रिकुरम्बै॒५गन्धसिन्धुर इवैष नि( सि )षेवे ॥३॥  
( १ ) वचनाप्रमाणमाद्वी( ध्वी )कम् । ( २ ) वाञ्छद्विः । ( ३ ) मदजलम् । ( ४ ) भ्रमरनिकैः ।  
( ५ ) गन्धहस्ती ॥३॥
- हील० व्याह० । भाषितवचनमेवामेयं मधु क्षौद्रं काङ्क्षद्विः । अत एवागतैः नगरलोकैः एष सूरिभेजे ।  
यथा मधुपकलापैः अमितं मदोदकं काङ्क्षद्विः गन्धेनोपलक्षितो वारणराजः सेव्यते, तद्वत् ॥३॥
- हीसु० १सूरिशक्रपरिषत्कृतभूषैस्त॒द्वेषणरसाद॑निमेषैः ।  
॑वाक्सुधारसपिबैष्यु( : पु)रलोकैर्भूगतैरिव बधे सुरलोकैः ॥४॥  
( १ ) सभामध्ये निर्मितशोषैः । “पर्षत्परिषदा सहे” ति शब्दप्रभेदे । ( २ ) सूरीन्द्रमुखालोकनरसेन ।  
( ३ ) निर्निमेषैः । ( ४ ) वचनामृतरसपायिभिः ॥४॥
- हील० सूरि० । पुरलोकैर्नगरजनैः शुशुभे । किंभूतैः पुरलोकैः ? सूरिशक्रस्याचार्यपुरन्दरस्य विजयदान-  
सूरेष्य( : प)र्षदि पर्षदार्थं निष्पादिता भूषा यैस्ताद्वशैः । पुनः किंभूतैः पुरलोकैः ?। तस्य सूरीन्द्रस्य  
अर्थाद्गुरुमुखस्य यद्वर्णं तस्य रसान्निमेषरहितैः वचनामृतपिबैः । उत्प्रेक्ष्यते । भूगतैर्देवलोकैः  
॥४॥

- हीसुं० १आत्मनामिव २वतंसविधित्सात्युत्सुकै३र्विकचकोकनदेन ।  
पौरै४मौलिभिरचुम्ब्यत सूरे: संमदात्पदयुगं ५युगबाहो: ॥५॥
- ( १ ) स्वेषाम् । ( २ ) अवतंसानां कर्तुमिच्छ्याऽतिशयेनोत्कण्ठितैः । ( ३ ) स्मेरक्तकमलेन ।  
( ४ ) नगरलोकपस्तकैः । ( ५ ) धूसरप्रमाणभुजस्य । आजानुबाहुत्वादिं विशेषणम् ॥५॥
- हील० आत्मना० । नगरजनोत्तमाङ्गैः युगपद्माहूर्यस्य तादृशसूरेश्वरणयुगं अचुम्ब्यत नप्रीभूतमित्यर्थः । उत्प्रेक्ष्यते ।  
विकचेन कोकनदेन रकोत्पलेन आत्मना-स्वेषां अवतंसस्य या विधातुमिच्छा-कर्तुमिच्छा तत्राति-  
शयेनोत्सुकैरुत्कण्ठितैः । ‘वष्टि भागुरि’रिति सूत्रेणावाप्योरकारलोपः ॥५॥
- हीसुं० आगमं गणधरस्य कुमारो ज्ञातवानथ मिथो १जनवागिभः ।  
२कोकपोत इव ३नक्तविरामे ४ताम्रचूडवचनैस्तं पनस्य ॥६॥
- ( १ ) परस्परभाषमाणजनालापैः । ( २ ) चक्रवाकबालकः । ( ३ ) गत्रेन्ते । ( ४ ) कुर्कुटवाक्यैः ।  
( ५ ) सूर्यस्य ॥६॥
- हील० आग० । अन्योन्यं नागरिकवचनैः सूरे: पत्तने आगमनं ज्ञातवान् । यथा कुर्कुटवचनैर्निशात्ये  
चक्रवाकबालकः सूर्योदयं जानाति ॥६॥
- हीसुं० १बालसाल इव २कोरकभूषामुद्घहन्वपुषि ३कण्टकलेखाम् ।  
४तं मुदा ५नमसितुं ६स्पृहयन्मो ७ध्यास ८सारथिसनाथरथाङ्गम् ॥७॥
- ( १ ) लघुवृक्षस्य । ( २ ) कलिकाशोभाम् । ( ३ ) रोमाङ्गराजीम् । ( ४ ) विजयदानसूरिम् ।  
( ५ ) नमस्कर्तुम् । ( ६ ) वाञ्छन् । ( ७ ) अधिरोहति स्म । ( ८ ) सारथियुक्तं रथमध्यम् ॥७॥
- हील० बालवृक्षः मुकुलशोभां धत्ते, तद्घपुषि रोमाङ्गतां वहन् । पुनः सूरि ननुं काइक्षन् स कुमारः  
सारथियुक्तं रथमधिरोहति स्म ॥७॥
- हीसुं० १रंहसास्य मनसो २विभुवीक्षोत्कण्ठितस्य दधता किमु मूर्त्तिम् ।  
३सञ्चरैत्यथि रथेन स तेन प्रासवानु४पमुनीन्दनिकेतम् ॥८॥
- ( १ ) वेगेन । ( २ ) सूरिदर्शनोत्सुकितस्य । ( ३ ) मार्गे चलन् । ( ४ ) विजयदानसूरिपाश्रय  
समीपम् ॥८॥
- हील० रथेन सह स गच्छन् उपाश्रयसमीपं गतवान् । उत्प्रेक्ष्यते । मूर्त्तिमता मनोवेगेन रथेनेत्यत्रोत्प्रेक्षा ॥८॥
- हीसुं० १स्यन्दनान्मृणिहिरण्यवरेण्यश्रीजुषः २प्रमदमेदुरिताङ्गः ।  
३स्वर्गिगवर्ग इव ४नाकिविमानादुत्ततार भुवि हीरकुमारः ॥९॥
- ( १ ) रथात् । ( २ ) रत्नस्वर्णप्रकृष्टशोभाभाजः । ( ३ ) प्रीतिपुष्टकायः । ( ४ ) देवव्रजः । ( ५ )

1. इति गुरोः पौराणमनवन्दने हील० ।

देवानां विशेषणत्वाद्विद्याधरविमानसद्भावेऽपि देवयानादिति ॥१॥

हील० स्यन्द० । रत्नजटितस्यन्दनात्कुमारः सूरि नन्तुमुत्तरति स्म । यथा देवयानादेवव्रजो जिनं नन्तुमुत्तरति ॥१॥

हीसुं० 'सूरिवक्रविधुवीक्षणजन्मानन्ददुर्गधनिधिफेन इवोऽद्यन् ।

३चन्द्रिकाच्छुरितरुवद( गद )शनानामानने स्मितमनेन वितेने ॥१०॥

( १ ) गुरुवदनचन्द्रदशनोद्भूतप्रमोदक्षीरसमुदस्य फेन इव । ( २ ) प्रकटीभवन् । ( ३ ) दन्तानां कान्तिश्छन्द्रिकेत्युच्यते । यथा रघुवंशे- "दशनचन्द्रिकया व्यवभासित" मिति । व्यासकान्तिः "चन्दनच्छुरितं वपु" रिति पाण्डव चरित्रे ॥१०॥

हील० सूरि० । दशनकान्त्या व्यासा रुक् यस्य तादृशमीषद्भसितं चक्रे । उत्प्रेक्ष्यते । श्रीसूरिमुखचन्द्रालोकनेनोत्पद्यमानः क्षीरविधिफेनः ॥१०॥

हीसुं० 'सूरिराजचरणाम्बुजयुग्मे नेमुषो मुखम् मुष्य बभासे ।

आगतो मिलितुमत्र 'वसन्तीं जामिमांत्मन इव श्रियमिन्दुः ॥११॥

( १ ) गुरुचरणकमलयामले । ( २ ) प्रणतस्य । ( ३ ) कुमारस्य । ( ४ ) गुरुचरण वासिनीम् ।

( ५ ) स्वस्यभगिनीम् । ( ६ ) लक्ष्मीम् । द्वयोरपि समुदोत्पन्नत्वादभ्रातृभगिन्योर्व्यवहारः ॥११॥

हील० सूरि० । सूरिचरणाम्बुजयुग्मे प्रणतस्यास्य मुखं रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । अत्र चरणाङ्गे वसन्तीं स्वभगिनीं श्रियं मिलितुमागतश्चन्द्रः ॥११॥

हीसुं० भाति 'तत्पदरजोऽस्य' ललाटे ३पूर्वमेव तिलकं कृतमेतत् ।

४त्वय्यथ त्वरितमेव समेष्ये भाषितुं किमिति तत्पदलक्ष्म्या ॥१२॥

( १ ) गुरुचरणरेणुः । ( २ ) कुमारभाले । ( ३ ) प्रथममेव तिलकं कृतम् । ( ४ ) गुरोः पदस्य चरणस्याथ च पद्मस्य लक्ष्म्या इति वक्तुम् । इति किम् ? । यदहं त्वयि विषये शीघ्रमेव समेष्यामीति ॥१२॥

हील० भाति० । सूरिचरणरेणुः तल्लाटे लग्नः । उत्प्रेक्ष्यते । तत्पदलक्ष्म्या इति वकुं तिलकं कृतम् । इतीति किम् ? । अहं त्वयि सद्यः समागमिष्यामि ॥१२॥

हीसुं० तस्य<sup>१</sup> लोचनपथे ३पृथुकेन्द्रस्तस्थिवानथ यथासनमेषः ।

३सत्क्रियेव ४विधिना परिष्वत्सा तेन<sup>२</sup> काञ्चिदपुषच्च विभूषाम् ॥१३॥<sup>१</sup>

( १ ) गुरोर्ये । ( २ ) हीरकुमारः । ( ३ ) शोभनानुष्ठानमिव । ( ४ ) शास्त्रोक्तप्रकारेण । ( ५ ) कुमारेण । ( ६ ) अपूर्वा शोभाम् ॥१३॥

हील० तस्य० । सूरेलोचनमार्गे कुमारेन्द्रो यथास्थानं उपतिष्ठः । तेन कुमारेण सभा शोभां पुष्णाति स्म ।

1. इति हीरकुमारागमन-गुरु बन्दने हील० ।

यथा शास्रोक्तप्रकारेण सत्किया क्रियमाणा शोभते, तद्वत् ॥१३॥

हीसुं० देशनां ॑शमवतां ॒शतमन्युः स प्रबोधयितुमङ्ग्लिसमाजम् ।  
प्रादिशद्व॑रयिता ॒वसतीनां ॑कौमुदीमिव वनं कुमुदानाम् ॥१४॥  
( १ ) मुनीनाम् । ( २ ) शक्रः । ( ३ ) भव्यसभाम् । ( ४ ) भर्ता । ( ५ ) रात्रीणाम् । ( ६ )  
चन्द्रिकाम् ॥१४॥

हील० देश० । साधूनामिन्द्रः भव्यसभां प्रतिबोधयितुं देशनां ददौ । यथा रात्रिकान्तश्चन्द्रः कुमुदवनं  
प्रतिबोधयितुं चन्द्रिकां प्रदिशति ॥१४॥

हीसुं० ॑इन्द्रवारणमिवेयमसारा ॒संसृतिः ॑कृतदुरन्तविकारा ।  
॑पङ्किलावट इवात्र ५निमग्ना निर्गमेन भविनः ॑प्रभवन्ति ॥१५॥  
( १ ) कठुकफलम् । ( २ ) संसारः । ( ३ ) विहितः दुष्टेऽन्तो दुःखदमवसानं यस्य तादृग्विकारो  
-विकृतिर्यथा । ( ४ ) कर्दमकलितकूपे । ( ५ ) बूडिताः । ( ६ ) निर्गन्तुम् । ( ७ ) समर्थीभवन्ति  
॥१५॥

हील० इन्द्र० । इयं संसृतिरिन्द्रवारणफलमिव रम्यातिकठुका, कृतः दुष्ट अन्ते विकारे यथा, सास्ति । यथा  
पङ्किलकूपे पतिता न निर्गच्छन्ति, संसृतौ पतिता अपि निर्गन्तुं न समर्थीभवन्ति ॥१५॥

हीसुं० ॑नारकादिगतयोऽत्र चतस्रः संस्फुरन्त्यसुमतामिव ॑पुर्यः ।  
सन्ति ॑भूपतिपथा इव लक्षा॑योनयश्चतुरशीतिरमूषु ॥१६॥  
( १ ) नरक-तिर्यक्-मनुष्य-देवगति लक्षणा । ( २ ) प्राणिनां स्थातुं नगर्यः । ( ३ ) राजमार्गाः ।  
( ४ ) चतुरशीतिजीवयोनिलक्षा: ॥१६॥

हील० नारकादिगतयषु(ः पुर्य इव सन्ति । पुरीषु राजमार्गश्चतुरशी(शी)तिलक्षा योनयो विद्यन्ते ॥१६॥

हीसुं० ॑मर्त्यजन्मनगरीमङ्गिगत्य प्राणिनो ॑भ्रमिवशेन ॑कथंचित् ।  
॑दर्शनादिवरवस्त्वनवासेरायुरेव धनवत्कृ॑पयन्ति ॥१७॥  
( १ ) मनुष्ययोनिनामपुरीम् । ( २ ) प्राप्य । ( ३ ) भवपरिभ्रमणप्रकारेण । ( ४ ) महता कष्ठेन ।  
( ५ ) सम्यक्त्वप्रमुखविशिष्टपदार्थनामलाभात् । ( ६ ) निष्ठापयन्ति ॥१७॥

हील० मर्त्यभवमासाद्य रत्नत्रयानवासेर्जना नीवीद्रव्यमिव आयुः क्षपयन्ति ॥१७॥

हीसुं० ॑निर्गतायुरखिलदविणास्ते ॑रङ्गवन्न॑रकवर्त्म ॑भजन्तः ।  
॑हा॑दुरागतदशा॑अशारण्या॑नित्यदुःखम॑नुभूय मियन्ते ॥१८॥  
( १ ) निष्ठापितनिखिलजीवितदव्याः । ( २ ) द्रमका इव । ( ३ ) नारकमार्गम् । ( ४ ) श्रयन्तः ।  
( ५ ) हा इति खेदे । ( ६ ) दुष्टा निन्द्या समेता अवस्था येषाम् । ( ७ ) शरणरहिताः ।

(८) सदा । (९) भुक्त्वा ॥१८॥

हील० निर्गतायुर्बला जीवा नरकनिगोदादिषु दुःखमनुभूय मियन्ते ॥१८॥

हीसुं० धर्ममा॑हृतमतो॒ जनिमन्तो॒ यानपात्रमिव॑ सङ्ग्रहयध्वम् ।

'तस्थुषी॑ भवपयोनिधिपारे॒ मुक्तिनामनगरी॑ च॒ जिहीध्वम् ॥१९॥

(१) जिनप्रणीतम् । (२) जन्तवः । (३) वाहनमिव । (४) सङ्ग्रहं कुरुध्वम् । (५) स्थिताम् । (६) भवसमुदस्य परस्मिन् पारे । (७) गच्छत ॥१९॥

हील० धर्म० । अत आर्हतं धर्म यूयं सङ्ग्रहयध्वम् । यदि संसारपारस्थितां शिवपुरीं जिहीध्वं यूयं गच्छत ॥१९॥

हीसुं० 'द्वे॑ महोदयपुरस्य॒ पदव्यौ॑ प्रध्वरा॒ च॒ विषमा॒ च॒ जिनोक्ते॑ ।  
आदिमा॒ ननु॑ महाब्रतनामा॒ पश्चिमा॑ पुनरणुब्रतरूपा ॥२०॥

(१) उभे । (२) मुक्तिनगरस्य । (३) मागर्णै । (४) साधुमार्गः । (५) श्रावकमार्गश्च ॥२०॥

हील० द्वेम० । भो भव्याः ! द्वौ मौक्षमार्गै वर्तेते । आद्या पञ्चमहाब्रतलक्षणान्या द्वादशब्रतरूपा ॥२०॥

हीसुं० 'तूर्णमस्ति॑ यदि॑ तत्र॑ यियासा॒ प्रध्वरे॑ पथि॑ ततः॑ प्रयतध्वम् ।  
'सौगतोदितपदार्थे॑ इवास्ते॑ यद्भवः॑ स्फुरदशाश्वतभावः ॥२१॥

(१) शीघ्रम् । (२) मुक्तिपुरे । (३) गन्तुमिच्छा । (४) साधुमार्गै । (५) उद्यमं कुरुत ।  
(६) बौद्धमतकथितपदार्थे॑ सर्वं क्षणिकमित्यादिके । (७) प्रकटीभवनश्वरत्वं यत्र ॥२१॥

हील० तूर्ण० । भो भव्या ! स्तत्र मोक्षपुरे यदि यातुमिच्छा सतूरमास्ते तर्हि साधुमार्गरूपे मार्गे प्रयत्नं कुरुध्वम् । बौद्धकथितवस्तुत्रजे सर्वं क्षणिकमित्यादि वाक्यात् यावत्पदार्थसार्थे अनित्यतास्ति तद्भद्रवः-संसारः स्फुरनशास्व(श्व)तः भावः स्वरूपं यस्य तादृशः समस्ति ॥२१॥

हीसुं० 'सान्ध्यराग इव जीवितमास्ते॑ यौवनं॑ च॒ सरितामिव॑ वेगः ।

यत्क्षेणोव॑ कमला॑ क्षणिकेयं॑ तत्त्वं॑ रध्वं॑ मनिशं॑ जिनधर्मे॑ ॥२२॥

(१) सन्ध्यासम्बन्धी राग इव । (२) विद्युदिव । (३) लक्ष्मीः । (४) क्षणस्थायिनी । (५) शीघ्रीभवत । (६) नित्यम् ॥२२॥

हील० यद्यस्मात्सन्ध्यराग इव जीवितव्यं आस्ते, यौवनं नदीपूरमिव त्वरितं प्रयाति, लक्ष्मीरपि विद्युदिवास्थिरास्ति, तत्स्माद्बो भव्याः ! जिनधर्मे त्वरं कुरुध्वम् ॥२२॥

हीसुं० 'भारतीमिति॑ निशम्य॑ शमीन्दोः॑ कल्पिताप्लव॑ इवापृतः॑ (त) कुण्डे ।

'उल्लसत्पुलकपल्लविताङ्ग॑ श्वेतसीति॑ विमर्श कुमारः ॥२३॥

1. इति गुरु देशना हील० । 2. विततकं हीसु० ।

(१) वाणीम् । (२) देशनारूपाम् । (३) श्रुत्वा । (४) गुरोः । (५) कृतस्त्रानः । (६) प्रकटीभवदोमाञ्छेन कोरकयुक्तकायः । (७) चित्ते । (८) विचारयति स्म ॥२३॥

हील० भारती० । गुरोर्वाणीं श्रुत्वा कृतामृतस्त्रान इव रोमाञ्छितः कुमाञ्छेतसि चित्तयामास ॥★२३॥

हीसुं० अस्ति कश्चन न कस्यचनापि भ्रातृपुत्रपितृमित्रजनादि ।

‘संसृतौ ॑क्षणिकतां ॒कलयन्त्यां नानुषाऽया॑ति॒ परलोकजुषं यत् ॥२४॥

(१) संसारे । (२) क्षणिकत्वं ‘जे पुव्वहे दिव्वा ते अवरहे न दीसन्ती त्यादिना । (३) बिभ्रत्याम् । (४) अन्यभवे कश्चित्सार्द्धं न याति । एक एव जीवो व्रजति ॥२४॥

हील० अस्ति० । संसारे कश्चित् कस्यापि नास्ति । अन्यच्चान्यस्मिन्भवे न कोऽपि सार्द्धं याति । एक एव जीवो यातीत्यर्थः ॥२४॥

हीसुं० ॑वल्लभीभवति यद्भृवभाजां ॒स्वार्थं एव न॑तथात्र परार्थः ।

‘पर्वणीन्दु॑रपि ॒पङ्कजपाणिं यात्यसौ॑ वसुकृतेऽपरथा नो ॥२५॥

(१) इष्टे भवति । (२) प्राणिनाम् । (३) स्वकीयोऽर्थः । (४) तेन प्रकारेण परेषामर्थो न द्र(दृ)ष्टः । (५) अमावस्यायाम् । (६) चन्द्रः । (७) सूर्यः(र्यम्) । (८) कान्तिकृते । (९) अर्थं सृते पुनः पार्श्वे नायाति । “प्रकारवचने थाल्” । “सामान्यस्य भेदको विशेष-प्रकारस्तद्वृत्तेः किमादेस्थाल् स्यात् सर्वप्रकारेणेति सर्वथा अन्यथा इतरथा अपरथा” इति प्रक्रियाकौमुद्याम् ॥२५॥

हील० इह जगति निजकार्यमेव वल्लभम्, अन्यकृत्यं न वल्लभम् । यथा क्षीणश्वन्दः अमावस्यां(स्यायां) कान्तिकृते सूर्यपार्श्वे याति ॥२५॥

हीसुं० ॑कार्यकालं॑ इतरोऽपि नरेणाऽदीयते तदनु मुच्यत एव ।

‘विभ्रमाय विधृतो हृदि हारो॑ हीयते॑ रहसि॑ सोममुखीभिः ॥२६॥

(१) कार्यस्य समये-वेलायाम् । (२) अन्योऽपि । (३) गृह्णते । (४) विलासार्थम् । (५) त्यज्यते । (६) एकान्ते । (७) स्त्रीभिः ॥२६॥

हील० कृत्यसमये इतरोऽपि स्वीक्रियते । यद्वत्स्त्रीभिरेकान्ते धृतोऽपि हार उत्तार्यते ॥२६॥

हीसुं० ॑जन्मिनाम्॒यम्॑कृत्रिमित्रं॑ श्रेयसे तदुदयेज्जनधर्मः ।

‘वैभवाय॑ परिशीलनभावं॑ लम्भितः॑ द्वितिशशीव॑ कृतज्ञः ॥२७॥

(१) प्राणिनाम् । (२) अनौपाधिकः । (३) स्वाभाविकः । (४) मोक्षाय । (५) विभूतये ।

(६) सेवागोचरताम् । (७) नीतः । (८) सेवितः राजा ॥२७॥

हील० जन्मिनां-प्राणिनां अयं धर्मः स्वाभाविकसुहृत् तस्मात्स कल्याणाय प्रकटीभवेत् । पुनः सेवितः भूतये स्यात् । यथा कृतज्ञः राजा सेवितः भूतये भवति ॥२७॥

- हीसुं० 'स्वानुजन्मभगिनीकुलवृद्धानांददे तदनुयुज्य ४ते( त )पस्याम् ।  
 'पारलम्भनविभुर्भवैवाद्वेद्यैत्तरीव नियमस्थिते( ति )रेषां ॥२८॥'  
 ( १ ) निजलघुभातृजामिगोत्रवृद्धान् । ( २ ) गृह्णा( ह्ना )मि । ( ३ ) पृष्ठ्वा । ( ४ ) दीक्षाम् ।  
 ( ५ ) परतीरप्रापणाय समर्थाः । ( ६ ) भवसमुद्रस्य । ( ७ ) वेडेव ( ८ ) दीक्षा ॥२८॥
- हील० स्वानु० । अहं भ्रातृभगिन्यादीन् पृष्ठ्वा दीक्षां गृह्णामीति । यतो भवसागरपारप्रापणे नौरिव दीक्षास्ति ॥२८॥
- हीसुं० 'सूरिसिन्धुरपुरः स कुमारे ३व्याजहार मनसीति विमृश्य ।  
 ३दन्तकान्तिमुचकुन्दसुमैस्तैत्पादयोरिव सृजन्तु४पहारम् ॥२९॥'  
 ( १ ) गुरोरग्ने । ( २ ) उवाच । ( ३ ) दशनदीसिकुन्दपुष्ट्यैः । ( ४ ) गुरुचरणयोः । ( ५ ) पूजां कुर्वन् ॥२९॥
- हील० सूरि० । स कुमारः चित्ते विचार्य सूरिराजपुरो वदति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । दन्तानां कान्तय एव मुचकुन्दपुष्ट्यानि(ण) तैस्तस्य सूरेः पादयोः पूजां कुर्वन्निव ॥२९॥
- हीसुं० प्राप्य तावककरादिह दीक्षांमाहितायतिहितामिव शिक्षाम् ।  
 सेवितुं ३चरणतामरसं ते ३मानसं मुनिप ४कामयते स्म ॥३०॥  
 ( १ ) स्थापितमुत्तरकाले हितं यथा । ( २ ) पदपद्माम् । ( ३ ) मनः । ( ४ ) वाज्ञति ॥३०॥
- हील०- प्राप्य० । स्थापितमुत्तरकाले हितं यथा ताहशीं शिक्षामिव तव करादीक्षां प्राप्य हे मुनिप ! त्वच्चरणाब्जं सेवितुं मे मनो वाज्ञति ॥३०॥
- हीसुं०- एवमुक्तवति हीरकुमारे ३सूरिशीतकिरणः स्मैृ गृणाति ।  
 ३मथ्यमानमकरकरसावं लज्जयन्निव ४गभीरविरावैः ॥३१॥  
 ( १ ) गुरुः । ( २ ) भाषते स्म । ( ३ ) हरिणा मन्दरेऽप्यालोङ्गमानसमुद्रशब्दम् । ( ४ ) गम्भीरध्वनिभिः ॥३१॥
- हील०- एवमु० । हीरकुमारं प्रति सूरीशः कथयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । मन्दध्वनिभिर्विलोङ्गमानसमुद्रगभीरनिर्देषं लज्जयन्निव ॥३१॥
- हीसुं०- मा कृथाः क्वचन ३तत्प्रतिबन्धं बान्धवस्वजनमित्रजनेषु ।  
 ३गन्धवाह इव ३भूधरसिन्धुग्रामसीमपुरभूमिधुनीषु ॥३२॥  
 ( १ ) ममत्वेन कृत्वा संसारे स्थायिभावम् । ( २ ) वायुरिव । ( ३ ) गिरिनदीलघुपुरग्रामबहिस्थ-  
 प्रदेशनगरपृथ्वीनदीषु ॥३२॥

1. इति हीरकुमारस्य संसारासारताविचारणा हील० ।

- हील० मा कृथाः० । हे कुमार ! यद्येवं तवाशयस्तहि क्वचन प्रतिबन्धं मा कृथाः । वायुरिवाप्रतिबद्धो  
भव ॥३२॥
- हीसु० यैर्वद्धि( द्विं ) जिन॑धर्मसुरदुः॒ पूर्वजन्मनि जनैर्हि तेषाम् ।  
॑तद्वलानि॒ कमलाकमलाक्षी॑-सार्वभौमपदवीप्रमुखानि ॥३३॥  
॑तत्सुमानि॒ सुरवैभवलम्भः॑ कीर्त्यष्ट( : प )रिमलोऽप्य॑दसीयः ।  
॑सिद्धिमुग्धमृगदक्षपरिम्भारम्भणानि॑ पुनरस्य फलानि ॥३४॥ युग्मम् ॥  
( १ ) वद्धितः । ( २ ) धर्मकल्पवृक्षः । ( ३ ) कल्पद्रुमपर्णानि । ( ४ ) लक्ष्मी-लक्ष्मीतुल्यवनिता-  
चक्रवर्त्तिपदवीपुख्यानि ॥३३॥  
( १ ) धर्मकल्पद्रुमपुष्पाणि । ( २ ) देवलोकलक्ष्मीप्राप्तिः । ( ३ ) एतत्सम्बन्धी । ( ४ )  
मुक्तिकान्तालिङ्गनप्रकाराः-फलानि ॥३४॥
- हील० यैर्जिनधर्मकल्पतर्वद्धितः॑ तेषां जनानां तस्य धर्मकल्पतर्ये॑ पत्राणि लक्ष्मी-वधू-चक्रि-पदप्रमुखानि  
तत्पुष्पाणि स्वर्गसुखं, परिमलः॑ कीर्त्ययः, पुनरस्य धर्मतर्ये॑ फलानि सिद्धिवध्वालिङ्गनारम्भणानि  
वर्तते ॥३३-३४॥
- हीसु० धर्म एव॑ मनुजैर्हि मन्त्रः॑ सार्वकामिक इवैष निषेव्यः ।  
येन॑ वाङ्मनसपारगतं यत्तत्करोति॑ करसात्॑रसाऽसौ ॥३५॥  
( १ ) मनुष्यैः । ( २ ) सर्वान्कामान्करोति॑-समस्तानभिलाषान्पूर्यतीति सार्वकामिकः । ( ३ )  
वाङ्मनसयोः॑ पारगतं वन( च )नमनसोर्गोचरातीतं यत्र । वाचो॑ मनसश्च गोचरो न भवतीत्यर्थः ।  
( ४ ) करसात्॑-हस्तप्राप्तम् । ( ५ ) वेगेन । ( ६ ) धर्मः ॥३५॥
- हील० धर्म एव सार्वकामिकमन्त्र इव विबृधैः॑ सेव्यः । येन कारणेनासौ॑ धर्मः॑ वचनमनसोर्गोचरं यद्वत्वाति  
तत्कराधीनं करोति ॥३५॥
- हीसु० तां॑ निपीय॑ भुनिवासववाचं॑ स्मेरदृग्प्रबुधे॑ स कुमारः ।  
॑कैरवाकर इव॑ स्मितकोशश्छन्दिकां॑ कुमुदिनीरमणस्य ॥३६॥  
( १ ) सादरं॑ श्रुत्वा । ( २ ) गुरुदेशनागिरम् । ( ३ ) हर्षेण॑ हसितनयनः । ( ४ ) प्रतिबोधं  
प्राप्तः । ( ५ ) कुमुदनिकरः । ( ६ ) विकसितः॑ कुड्मलो॑ यस्य । ( ७ ) चन्द्रस्य ॥३६॥
- हील० तां॑ वाचं॑ निपीय॑ हसितलोचनः॑ स कुमारः॑ प्रबुद्धयते॑ स्म । यथा॑ चन्द्रस्य॑ चन्द्रिकां॑ पीत्वा॑ विकसिताः॑  
कोशा॑ यस्य॑ तादृशः॑ कुमुदप्रकरः॑ विकाशं॑ लभते ॥३६॥
- हीसु० निश्चिकाय॑ विनयानतकायस्त॑त्पुरः॑ शिशुशशी॑ स्वतपस्याम् ।  
॑शंभुसुभ्रुव इवाम्बुजनाभः॑ प्रत्यगाच्च भवनं॑ निजजामैः॑( मेः ) ॥३७॥<sup>१२</sup>

1. इति गुरुवाक्यम् हील० । 2. इति विजयदानसूरिपुरो हीरकमारस्य दीक्षाग्रहणे निश्चयकरणम् हील० ।

(१) निश्चयं कृतवान् । (२) विनयेन नप्रशरीरः । (३) गुरोर्ये । (४) हीरकुमारः । (५) आत्मनो दीक्षाग्रहणम् । (६) पार्वत्याः । (७) कृष्णः । अम्बुजनाभः, अम्भोजनाभ इत्यादि प्रयोगः पाण्डवचरिते । (८) "भवानी कृष्णमैनाकस्वसे" ति हैम्याम् ॥३७॥

हील० निश्चिं । विनयनप्रः स शिशुचन्द्रः सूरिपुरः दीक्षां निश्चिनोति सम । पुनः स कुमारः स्वभगिनीगृहं प्रत्यगात् । यथा कृष्णः पार्वत्या गृहं प्रति गच्छति । भवानी हि कृष्णभगिनी । "भवानी कृष्णमैनाकस्वसे" ति हैम्याम् ॥३७॥

हीसु० इच्छता हृदि 'महोदयलक्ष्मीसङ्घटूतिमिव जैनतपस्याम् ।  
॒तन्निकेतनमुपेत्य बभाषे तेन ॑भावयतिना ॒निजजामिः ॥३८॥

(१) मुक्तिश्रियो महाभ्युदयश्रियश्च सङ्घमे दूतिः सन्देशहारिकामिव दूतिरिति । दूतिशब्दश्चपू-कथायाम् । (२) भावपरिणामे मनसि वा चारित्रमस्यास्तीति । (३) स्वभगिनी ॥३८॥

हील० इच्छता० । मनसि मुक्तिस्त्रीदूतीरूपां जैनदीक्षां वाच्छतानेन कुमारेण गृहं गत्वा भगिनी भाषिता ॥★३८॥

हीसु० ॑धारिणीसुत इवाद्य ॒सुधर्मस्वामिनं विजयदानमुनीन्द्रम् ।  
वन्दितुं ॑विजयसिंहमहोभ्याभ्योजहृगत ॔इतोऽहमभूवम् ॥३९॥  
(१) जम्बूकुमार इव । (२) महावीरजिनपञ्चमगणधरः । (३) हीरकुमारस्य भगिनीपतिः ।  
(४) तव गृहात् ॥३९॥

हील० धारि० । यथा ऋषबव्यवहारिपती धारिणी तत्सुतो जम्बूकुमारः सुधर्मस्वामिनं ननु गतस्तद्वत् हे विजयसिंहव्यवहारिप्रियतमे ! हे जामे ! इतो गृहाद्विजयदानसूरीं वन्दितुं गतोऽभूवम् ॥३९॥

हीसु० ॑कीलनैकललितं कलयन्ती या ॑कशेव तुरगस्य ॑भवस्य ।  
देशनाश्रवणगो[ च ]रभावं ॑लम्भिता ॑श्रमणशीतमरीचेः ॥४०॥  
(१) ताडने एकाद्वितीयव्यवसायम् । "व्रजते हेलिह्यालिकीलना" मिति नैषधे ! (२) चर्मदण्डः ।  
(३) संसारस्य । (४) श्रुता । (५) विजयदानसूरीन्द्रस्य ॥४०॥

हील० कील० । चर्मदण्डसदृशा भवाश्वस्य ताडने देशना श्रुता ॥४०॥

हीसु० ॑उत्त्रमज्जलधरादिव जामे सूरिसाजवदना॑दुदयद्विः ।  
॑वाणिवैभवरमैर्द्वयमेत[ त् ] पूर्यते स्म मम ॑कर्णकलश्योः ॥४१॥

(१) वर्षोन्मुखीभवन्मेघात् । (२) प्रकटीभवद्विः । (३) वचोविलाससलिलैः । (४) श्रवणकुण्डलद्वयम् । "अवलम्बितकर्णशङ्कुलीकलशीकं रचयन्नवोचते" ति नैषधे ॥४१॥

हील० उत्त्रमज्जलधरसदृशात्सूरिवदनात् उद्भूतवारजलैर्मै कर्णकलशीद्वयं पूरितम् ॥४१॥

- हीसु० सूरिभर्तुरमृतादपि<sup>१</sup> वाचो दृश्यते जगति कोऽपि<sup>२</sup> विशेषः ।  
 ॐ तत्त्वमन्यवे( व )<sup>३</sup>इदं रसिका यन्मन्युबद्धमनसस्त्वं मृताशः ॥४२॥
- ( १ ) अनिर्वचनीयः । ( २ ) महदन्तरम् । ( ३ ) उज्जितक्रोधः । ( ४ ) गुरुवचनसुधारसिका: ।  
 ( ५ ) मौलामृतपायिनो देवास्तु यज्ञोत्कण्ठितहृदयास्तद्ब्रोजित्वात् । “स्वाहा स्वधा क्रतु सुधाभुज”  
 इति हैम्याम् ॥४२॥
- हील० अमृतादप्यधिको वागिवशेषः । यत्कारणादेववाण्या रसिकास्त्यक्तकोपा जाताः । तत्त्वतस्तु  
 यज्ञोत्कण्ठितहृदयास्तदशनत्वात् ॥४२॥
- हीसु० १सांप्रतं भगिनि तेन मुनीन्दोः<sup>३</sup> सन्निधौ ग्रहयितुं व्रतलक्ष्मीम् ।  
 ३उत्सुकोऽहमभवं भवभग्नो ४धारिणेय इव वीरजिनेन्दोः ॥४३॥
- ( १ ) अथुना । ( २ ) श्रीविजयदानसूरि पार्श्वे । ( ३ ) उत्कण्ठितः । ( ४ ) मेघकुमार इव ॥४३॥
- हील० साम्प्रतं सूरिसमीपं दीक्षां आदातुमहमुत्सुकोऽभवम् । यथा मेघकुमारः श्रीमहावीरजिनपार्श्वे व्रतं  
 गृ(ग्र)हीतमुत्सुको जडे ॥४३॥
- हीसु० १सेतुबन्धमिव ३संसृतिसिन्धोस्तद्व्रताय मम देहि ३निदेशम् ।  
 ३विघ्नयेन्न हि ५महोदयलक्ष्मीसम्मुखं ६निजजनं हितकाङ्क्षी ॥४४॥
- ( १ ) पाजविरचनम् । ( २ ) संसारसमुद्रस्य । ( ३ ) आदेशम् । ( ४ ) विघ्नमन्तरायं कुर्यात् ।  
 ( ५ ) महानुदय ऐश्वर्यप्राप्तिर्योक्षश्च तलक्ष्या अभिमुखम् । ( ६ ) स्वकीयम् ॥४४॥
- हील० सेतु० । संसारार्णवस्य पद्मा तुल्यं व्रतनिर्देशं मे देहि । हि यस्मान्मुक्तिश्रीसम्मुखीभूतं स्वकीयं  
 जनं हितार्थी जनो न विघ्नयेत् - नान्तरायी भवति ॥४४॥
- हीसु० १तद्वचो ३विरचितं सहजेन ४प्राप्तमात्रमपि ५कर्णपुटान्तः ।  
 क्षिस॑६तसगुरुपत्रमिवास्या दुःखम्०प्रतिममातनुते स्म ॥४५॥
- ( १ ) तत्पूर्वोक्तलक्षणम् । ( २ ) वचनम् । ( ३ ) कथितम् । ( ४ ) आगतमात्रम् । ( ५ )  
 कर्णयोः । ( ६ ) उष्णीकृतत्रपुरिव । ( ७ ) असाधारणम् ॥४५॥
- हील० तद्व० । भ्रात्रा रचितं दीक्षादेशमार्गणरूपं वचः कर्णमध्ये गतमात्रमप्यसाधारणं दुःखं कुरुते स्म ।  
 यथा क्षिसं त्रपु कर्णयोरतिदुःखदं स्यात्, तद्वत् ॥४५॥
- हीसु० १डिम्भलमिभतविडम्बनभाजा दुःखतष्ट्रः( : प )रभृतेव भगिन्या ।  
 स ३न्यगादि मृदुगूदवाचा ४साधिमाधरितपुष्पधनुःश्रीः ॥४६॥
- ( १ ) बालकेन प्राप्तिता या विडम्बना तां भजतीति । ( २ ) कोकिलया । ( ३ ) भाषितः ।

1. इति भगिनीं प्रति दीक्षादेशमार्गणवचनम् । हील० ।

- ( ४ ) शरीरसौन्दर्यनिर्जितकन्दर्पशोभः । "चयादृतः किं नरसाधिमध्रमः" इति नैषधे ॥४६॥
- हील० डिष्म० । डिष्मेन प्रापितं यत्सन्तापनं तद्भजति । तादृश्या भगिन्या गद्दितस्वरेण साधिमा शरीरसौन्दर्येण हीनीकृता कामस्य श्रीः शोभा येन तादृशः स कथितः ॥४६॥
- हीसुं० १सांप्रतं व्यतिकरस्तव कोऽयं वार्द्धकोचितविधेश्चरणस्य ।  
२लीढि वत्स विषयस्य रसालस्येव पक्षिन्मफलस्य रसांस्त्वम् ॥४७॥
- ( १ ) अधुना, बाललीलायाम् । ( २ ) समयः -प्रस्तावः । ( ३ ) वृद्धावस्थायोग्यक्रियस्य ।  
( ४ ) चारित्रस्य । ( ५ ) आस्वादय । 'लिहीक आस्वादने' । ( ६ ) हेः प्रयोगः । ( ७ ) शब्दादिरूपस्य । ( ८ ) आप्नस्य । ( ९ ) परिपक्वफलस्येव ॥४७॥
- हील० वृद्धोचितस्य चारित्रस्य का वार्ता ? त्वमिदानीं विषयरसानास्वादय । यथा पक्वमाप्रफलमास्वाद्यते ॥४७॥
- हीसुं० १भाग्यभाजि जलजन्मगृहैवाग्ननुका तरुणता त्वयि वत्स ।  
२कामकेलिवसतौ रतिसख्यां त्वं रमस्व युवतीभिरमुष्याम् ॥४८॥
- ( १ ) पुण्यवति । ( २ ) लक्ष्मीः ( ३ ) आगमनोत्सुका । ( ४ ) यौवनावस्था । ( ५ ) कन्दर्पक्रीडासदने ॥४८॥
- हील० यथा लक्ष्मीः पुण्यवति समेति तथा त्वयि तारुण्यमागमिष्यति । पुना रते: सख्यामस्यां स्मरकीडावसतौ स्त्रीभिः सह त्वं रमस्व ॥४८॥
- हीसुं० १यौवनेर्जय यशोगुणलक्ष्मीः क्षोणिमानिव महःक्षितिकोशान् ।  
२आर्हतं तम( द )नु धर्ममणि॒ त्वं स्थाविरे स्थिरतया विदधीथाः ॥४९॥
- ( १ ) तारुण्ये । ( २ ) उपार्जय । ( ३ ) राजा । ( ४ ) प्रतापपृथ्वीभाण्डागारान् । ( ५ ) जिनप्रणीतम् । ( ६ ) वृद्धावस्थायाम् । ( ७ ) कुर्याः ॥४९॥
- हील० यथा राजा प्रतापं कोशमर्जयति तद्वत्वं कीर्त्यादीनर्जय । अनु पश्चाद्धर्मं कुर्वीथाः ॥४९॥
- हीसुं० १मौक्तिकेन किल सोदर ! सर्वैः श्लाध्यते॑[ त्र ]भवता पितृवंशः ।  
२भ्रातृम॑त्यहमपि त्वयकास्मि श्रीरिवा॑मृतकरेण वरेण ॥५०॥
- ( १ ) मुक्ताफलेन । ( २ ) किलेति इवार्थे । ( ३ ) भ्रातः ! । ( ४ ) अत्र जगति त्वया पूज्येन मान्येन वा । अत्रभवत्तत्रवत्साद्वौ पूज्यार्थे निपात्येते । ( ५ ) कुंरासाहिकुलम् । ( ६ ) सहोदरसहिता । ( ७ ) चन्द्रेण । ( ८ ) श्रेष्ठेन ॥५०॥
- हील० मौक्ति० । यथा मुक्ताफलेन पिता-वंशो जनैः श्लाध्यते तथा सर्वैः हे सोदर ! त्वया पितुर्वंशः

1. ०गृहैवा० इति हीमु० । स चाशुद्धो भाति । 2. ०मयि हीमु० । 3. ०वत्य० इति हीमु० । स चा शुद्धः ।

श्लाघ्यते । अहमपि भ्रातृमती, यथेन्दुना श्रीः ॥५०॥

हीसुं० १त्वद्वधूमुखसुधांशुसुधायाः पानमुत्सुकतया ३प्रविधित्सू ।  
३मद्विलोचनचकोरशकुन्तौ ४चापलं रचयतश्शिरमेतौ ॥५२॥

( १ ) तव पत्नीवदनचन्द्रामृतस्य । ( २ ) कर्तुमिच्छू । ( ३ ) मम नेत्रचकोरपक्षिणौ । ( ४ ) चपलत्वम् । उल्कण्ठामित्यर्थः ॥५१॥

हील० हे सोदर ! त्वद्वधूमुखचन्द्रदर्शनोत्सुकौ मल्लोचनचकोरै चपलौ वर्तते ॥५१॥

हीसुं० १वाङ्मयैर्विरचितैरिदमाद्यैः ३श्रोत्रपत्रपथिकैः स्वभगिन्याः ।  
प्रेरितो ४निगदति स्म कुमारो ५गर्जितैरिव ६शिखी ७घनपङ्क्तेः ॥५२॥

( १ ) वाचां प्रपञ्चैः । “इतीदृशैस्तं विरचय्य वाङ्मयै” रिति नैषधे । ( २ ) इत्यादिभिः । ( ३ ) कर्णप्राघुणैः । श्रुतैरित्यर्थः । ( ४ ) बभाषे । ( ५ ) गर्जारवैः । ( ६ ) मयूरः । ( ७ ) मेघमालायाः ॥५२॥

हील० स्वजामिवचनैः प्रेरितः कुमारे गदति स्म । यथा मेघगर्जितैः प्रणोदितो मयूरे वक्ति ॥५२॥

हीसुं० १जीवितं ३कुशशिखास्थमिवा४भष्यां५( : पां )शुलेव ६तरला ७कमलापि ।  
७ऐक्षवाग्रमिवयौ८वतमेतत्प्रै९क्षणक्षण इव स्वजनोऽपि ॥५३॥

( १ ) जीवितव्यम् । ( २ ) दर्भशिखरस्थितम् । ( ३ ) पानीयम् । ( ४ ) व्यभिचारिणीव । ( ५ ) चपला । ( ६ ) लक्ष्मीः । ( ७ ) इक्षुसम्बन्धिप्रान्तम् । ( ८ ) स्त्रीगणः । ( ९ ) रामलक्ष्मणादिरूप-दर्शननाटक प्रकार इव ॥५३॥

हील० हे जामे ! जीवितव्यं दभा(भा)ग्रस्थमम्भ इवास्थायुक्तम् । पुनर्लक्ष्मीरपि व्यभिचारिणीव चपला । युवतीनां समूह इक्षुणां प्रान्त इव नीरसः । परिजनोऽपि नाटकप्रस्ताव इव क्षणहृष्टनष्टः स्यात् ॥५३॥

हीसुं० यद्गमिष्यति ममा१र्भकभावोऽलंकरिष्यति तनुं च ३युवश्रीः ।  
३वार्धकं पुनरमा४त्यमिव स्वं भूषयिष्यति ५क ६इत्यै७वगच्छेत् ॥५४॥

( १ ) बालभावः । ( २ ) तरुणताश्रीः । ( ३ ) वृद्धावस्था । ( ४ ) प्रधानम् । ( ५ ) कः पुमान् । ( ६ ) इदम् । ( ७ ) जानाति ॥५४॥

हील० यद्ग० । हे जामे ! मम शैशवं यास्यति तारुण्यं आगमिष्यति । पुनर्वृद्धावस्था आत्मानं भूषयिष्यति । यथा राजा-१मात्य-भिषग्-मुनीन् स्थाविरं भूषयति । इदमवस्थात्रयं भावीति कोऽवबुध्येत ॥५४॥

हीसुं० १जन्तुरेष इह ३जामिकलत्रभ्रातृपृष्ठपुत्रविशेषैः ।  
ब्रम्भमीति परमाणुरिवैको ३नीलिमारुणिमपीतिमरागैः ॥५५॥

1. इति विमलाया भगिन्याः हीरकमारं प्रति प्रथमोक्तिः हील० ।

( १ ) जीवः । ( २ ) भगिनी-स्त्री-सहोदर-जननी-जनक-मुतविशेषैः । ( ३ ) नीलत्व-रक्तत्व-पीतत्वं रङ्गैः ॥५५॥

हील० जन्तुः - प्राणी नानाप्रकारैरतिशयेन पर्यटति । यथाणुर्नानारङ्गैर्भूवने भ्राम्यति ॥५५॥

हीसुं० 'सौरभेन( ण )'मलयदुरिवात्मा यस्य ३धर्मविधिना स्म विभाति । तेन ४विष्टपम्'शेषम्'भूषि प्रोच्यते स्म किमुतांभिजनादि ॥५६॥

( १ ) परिमलेन । ( २ ) चन्दनद्रुपः । ( ३ ) धर्मसम्बन्धिप्रकारेण । ( ४ ) विश्वम् । ( ५ ) सप्तस्तम् । ( ६ ) शोभितम् । ( ७ ) वंशादि तु सुखेनैव भूष्यते ॥५६॥

हील० सौरभेण चन्दनतरुर्विभाति तथा यस्यात्मा धर्माचरणेन विभाति तेन पुंसा त्रिजगद्भूषितम् । स्ववंशादि तु भूषितमेवेति बोद्धयम् ॥५६॥

हीसुं० ५निम्नगेव परिसर्पति निम्नं या दधाति ६पितृसूरिव रागम् ।

३भोगिनीव ४कुटिला ५कमलाक्षी सा सताम्'नुचितां६भ्युपगन्तुम् ॥५७॥

( १ ) निम्नं-नीचैर्गच्छतीति निम्नणा, नीचगामिनी नदी । ( २ ) सन्ध्येव । ( ३ ) सर्पिणीव । ( ४ ) वक्रगतिः । ( ५ ) स्त्री । ( ६ ) अयोग्या । ( ७ ) अङ्गीकर्तुम् ॥५७॥

हील० या नीचगामिनी, सन्ध्येव क्षणरागिणी, सर्पिणीव वक्रगामिनी सा स्त्री सेवितुं न योग्या ॥५७॥

हीसुं० या १जहाति न कदाप्य२नुषङ्गं या ३विरागवति चाधिकरागा ।

तां ४जगज्जनमनष्क( : क)मनीयां लिप्सते ५शिवकर्णी मम चेतः ॥५८॥<sup>1</sup>

( १ ) त्यजति । ( २ ) सङ्गम् । ( ३ ) वैराग्यशालिनि । ( ४ ) त्रैलोक्यैरप्यभिलषणीयाम् । ( ५ ) मुक्तिकन्याम् ॥५८॥

हील० या वधूः पर्श्वं न मुञ्चति, या वैराग्यभाजिनि रागिणी, जगद्विख्यातां शिवकर्णां मे चित्तं वाञ्छति ॥५८॥

हीसुं० ६निश्चिकाय वचनैरथं तैस्तैस्तस्य सा ७व्रतविधौ ८दद्विमानम् ।

४मौक्तिकस्त्रजमिवाश्रु२कणैः सा तन्वती हृदि पुनस्तम्'वोचत् ॥५९॥

( १ ) निर्द्वारं कृतवती । ( २ ) दीक्षाग्रहणप्रकारे । ( ३ ) दृढताम् । ( ४ ) मुक्ताहारमिव । ( ५ ) भ्रातरं हीरकुमारम् । ( ६ ) उवाच ॥५९॥

हील० सा भगिनी तैर्वचनैर्दीक्षाग्रहणे हृष्टां निर्द्वारयामास । पुनः हृदि अश्रुबिन्दुभिर्मौक्तिकमालां कुर्वन्ती(ती) तं भ्रातरं वक्ति स्म ॥\*५९॥

हीसुं० वत्स १वत्सलतया तव किञ्चिद्व॒च्चि॑३कर्णपथिकीकुरु तत्त्वम् ।

यद॒४सायनमिव स्वजनानामस्ति ५वाग्विरचना हितगर्भा ॥६०॥

1. इति तपस्याहृष्टायां भगिनीं प्रति कुमारवचः हील० । 2. ०कणौघैस्त० हीमु० ।

( १ ) हितकृत्वेन । ( २ ) कथयामि । ( ३ ) श्रवणगोचरं कुरु । श्रूहीत्यर्थः( श्रुणिवत्यर्थः ) ।  
 ( ४ ) तुष्टि- पुष्टिकृद्देषजमिव । ( ५ ) हितशिक्षा ॥६०॥

हील० हे वत्स ! हितकृत्वेन यदहं कथयामि तत्त्वं श्रृणु । यद्यस्मात्स्वजनानां हितशिक्षारसायनमिव च  
 तुष्टिपुष्टिदा स्यात् ॥६०॥

हीसुं० <sup>१</sup>अङ्गनाङ्गपरिम्भहसन्तीगर्भगेहनिवहान्प्रविहाय ।

<sup>२</sup>मर्षयिष्यसि कथं वद <sup>३</sup>शैष्यं भूमिपानिव भटानरिपैन्यम् ॥६१॥<sup>२</sup>

( १ ) कामिन्याः कायेन सहाश्लेषणं, शीतकाले तस्योष्णात्वेन, तथाग्निशक्टिका तथा  
 अपवरकास्तान् त्यक्त्वा । ( २ ) सहिष्यसे । ( ३ ) शिशिरम् । उपलक्षणात्वात् हेमन्तशिशिरौ,  
 द्वाभ्यां कृत्वा शीतकाल उच्यते । ( ४ ) नृप इव । ( ५ ) सुभटान्मुक्त्वा । ( ६ ) कटकम् ॥६१॥

हील० अङ्ग० । हे वत्स ! वधूकायाश्लेषणं, शक्टिकां, मध्यगृहाणि मुक्त्वा त्वं हैमन्तं कथं सहिष्यसे ।  
 यथा रजा भटान्मुक्त्वा वैरिसैन्यं कथं सहते ॥६१॥

हीसुं० <sup>४</sup>चन्द्रचन्दनशिरोगृहशश्यावारवामनयनावनकेलीः ।

<sup>५</sup>अन्तरेण <sup>६</sup>तरणीरिव <sup>७</sup>सिन्धुग्रीष्मं एष किमु <sup>८</sup>निस्तरणीयः ॥६२॥<sup>३</sup>

( १ ) चन्दशालाशयनीयम्, वारविलासिनीवन ऋडा । ( २ ) विना । ( ३ ) वेडः । ( ४ )  
 समुद्रः । ( ५ ) उष्णकालः । वसन्तग्रीष्मौ द्वावप्युष्णासमयः । ( ६ ) अतिक्रमणीयः ॥६२॥

हील० चन्द्रचन्दनादि विना एष ग्रीष्मः कथमतिक्रमणीयः । यथा वेडा विनार्णवः कथं निस्तीयते ॥६२॥

हीसुं० ऋडितुं रतिपतेरिव रे( गे )हा: प्रावृषेण्यदिवसाः कथमेते ।

गीतनृत्ययुक्तीजनलीलामुख्यसौख्यविमुखेन विषष्णाः ॥६३॥<sup>४</sup>

( १ ) कन्दर्पस्य । ( २ ) वर्षाकालसम्बन्धिनो दिनाः । ( ३ ) गाननाटकस्त्रीवर्गक्रीडादिम-  
 सुखपराङ्मुखेन । ( ४ ) सहनीयाः । उपलक्षणान्मेघात्ययेऽपि वासरास्तेष्वपि कदापि मेघानां  
 सद्भावात् वार्षिका एव दिनाः ॥६३॥

हील० कामस्य ऋडनाय गृहाणि तादशानि दिनानि गीतादिपराङ्मुखेन त्वया कथं सहनीयाः ॥६३॥

हीसुं० <sup>९</sup>जृम्भमाणजलजद्वितयी<sup>१०</sup>वांहिद्वयी<sup>११</sup>प्रदधती<sup>१२</sup>प्रदिमानम् ।

<sup>१३</sup>क्षोणिचड़क्रमणदुःखमियं ते <sup>१४</sup>मर्षयिष्यति कथं कथयैतत् ॥६४॥

( १ ) विकचकमलयुग्मम् । ( २ ) चरणद्वन्द्वम् । ( ३ ) धारयन्ती । ( ४ ) सुकुमालताम् । ( ५ )  
 पृथ्वीपर्यटनदुःखम् । ( ६ ) सहिष्यते ॥६४॥

हील० यथा स्मेरत्कमलयामलं प्रदिमानं धते तद्वन्मृद्वी पदद्वयी इयं कठिनभूपीठे पर्यटनदुःखं कथं सहिष्यते ।  
 हे भ्रात ! स्तत्वं कथय ॥६४॥

1. सैष्यं इति हीमु० । स चाशुद्धो भाति । 2. शीतकालकाव्यम् हील० । 3. ग्रीष्मर्तुकाव्यम् हील० । 4. वर्षासमयकाव्यम् हील०।

- हीसुं० 'वक्त्रवारिजधिया समुपेतां षट्पदावलिमिवालकमालाम् ।  
३लुञ्छयिष्यसि कथं \*मुखलक्ष्मीन्युज्जितामृतमयूखं 'सगर्भ ! ॥६५॥
- ( १ ) मुखे कमलबुद्ध्या । ( २ ) भृङ्गश्रेणीम् । ( ३ ) उत्पाटयिष्यति । ( ४ ) मुखलक्ष्म्या उपरि  
लुञ्छनीकृतः चन्द्रो यस्य । ( ५ ) भ्रातः ! ॥६५॥
- हील० वक्त्र० । हे मुखशोभाया उपरि न्युञ्छनीकृत्य क्षिप्तोऽमृतमयूखश्नदो यस्यार्थाद्वात्रा, स तस्य  
सम्बोधनम् । हे सगर्भवक्त्राङ्गे ! आगतामलिपिङ्कमिव श्यामां कच्छायां कथमुत्पाटयिष्यसि ॥६५॥
- हीसुं० राशिनां सुमनसामिव ३सर्पिस्तर्पितोऽद्वतधनञ्जयकीला ।  
तत्परीषहततिष्ठिक( : किं)मसह्या ३विग्रहेण मृदुना तव सह्या ॥६६॥  
( १ ) पुष्पप्रकरेण । ( २ ) घृतेन दीपितोऽकटवहिञ्चाला । ( ३ ) शरीरेण ॥६६॥
- हील० रा० । तव मृदुना येन असह्या क्षुधादिपरीषहाणां श्रेणी केन प्रकारेण सोढव्या । यथा पुष्पाणां प्रकरेण  
सर्पिषा-घृतेनोदीपित उद्धत उत्थाखो वा यो वहिस्तस्य कीलां कथं क्षम्यते ॥६६॥
- हीसुं० 'कुन्दकुइमलजयं ३सृजतेवाभीश्रुभिः ३प्रसृमरैर्दृशनानाम् ।  
'प्रत्यवादि वदतां६ विदुरेणानेन ३जामिरिति नीतिमता सा ॥६७॥
- ( १ ) मुचकुन्दकोशानां पराभवम् । ( २ ) कुर्वतेव । ( ३ ) विस्तरणशीलैः । ( ४ ) दन्तानाम् ।  
( ५ ) प्रतिभाषिता । ( ६ ) वक्तृषु चतुरेण । ( ७ ) भगिनी ॥६७॥
- हील० कुन्द० । मुचकुन्दकलिकानां पराभवं विस्तरणशीलैर्दन्तकिरणैः कुर्वतेव । पुनर्वकृणां मध्ये विद्यधेन,  
पुनर्नययुक्तेन तेन भगिनी प्रत्युत्तरीकृता । प्रत्युत्तरे दत्त इत्यर्थः ॥६७॥
- हीसुं० 'वर्णिनीव विरतिः कृतसङ्गा ध्यानसन्ततिरसौ हैसनीव ।  
३शान्ततापवरकष्ठिक( : किं)मु जामे ३शार्मणे शमवतां ३तुहिनत्तौ ॥६८॥<sup>२</sup>  
( १ ) स्त्रीव । ( २ ) अङ्गारशकटी । ( ३ ) शमनामापवरकः । ( ४ ) सुखाय । ( ५ ) हिमसमये ।  
शीतकाले ॥६८॥
- हील० वर्ण० । शीतकाले साधूनां अमी सुखाय भवन्ति । यत्र विरतिः कान्तेवास्ते, ध्यानं शकटीवास्ते,  
तथा शमपरिणामो गर्भागर इवास्ते । हे जामे ! शीतं सुखदम् ॥६८॥
- हीसुं० 'अङ्गराग इव ३सद्गुरुशिक्षा श्रीजिनस्य च विधोरिव सेवा ।  
केलिरञ्जसरसीव च योगे प्रीणयन्ति ३शमिनोऽपि निदाघे ॥६९॥<sup>३</sup>
- ( १ ) विलेपनम् । ( २ ) गुरुणां शिक्षा । ( ३ ) कमलोपलक्षिततटाके । ( ४ ) चारित्रिणः ।  
( ५ ) उष्णाकाले ॥६९॥

1. इति हीरकमारं प्रति शीतातपाद्यसह्यसूचकविमलावाक्यानि हील० । 2. कुमारोक्तं यतिसातकृत शीतकाल काव्यम् हील० ।  
3. कुमारोक्तं मनिमनःसुखकृत ग्रीष्मर्तुकाव्यम् हील० ।

- हील० अङ्ग० । साधूनां ग्रीष्मसमये चन्द्रसद्वशा गुरुशिक्षा । पुनः कमलकलितसरः सदृशे योगे केलिः । एतेऽर्थाः निदाद्ये प्रीतिदाः ॥६९॥
- हीसुं० यत्र गीतय इवांगमघोषास्ताण्डवा इव पुनर्भवभावाः ।  
‘वारिवाहदिवसाः शमभाजां नित्यमुत्सवमया इव सन्ति ॥७०॥’  
( १ ) सिद्धान्तपठनध्वनयः । ( २ ) नृत्यानि । ताण्डवाः पुंकलीबे । ( ३ ) संसारस्वरूपानि (ण) ।  
( ४ ) मेघदिनानि ॥७०॥
- हील० यत्र समयघोषा एव गीतानि । पुनः संसारस्वरूपाणि नृत्यानि । ताण्डवशब्दः पुनर्पुंसके । “पूर्वत्रिविवताण्डवा” इति लिङ्गानुशासने । अत एव प्रावृद्धवासरः साधूनां महामहमयाः सन्ति ॥७०॥
- हीसुं० यो विजेतुमिव ‘वारिजगर्जीं पश्यतस्तत इतः ॒क्रमणेन ।  
पल्लवांश्च ॑विभवैर॒तिद्वौ तौ क्रमौ ॑कलयतष्किः किम्॒सातम् ॥७१॥  
( १ ) कमलमालाम् । ( २ ) पर्यटनेन । ( ३ ) स्वशोभाभिः । ( ४ ) दर्पाध्मातौ । ( ५ )  
थारयतः । ( ६ ) दुःखम् ॥७१॥
- हील० यौ चरणौ कमलश्रेणीं जेतुं इतस्ततः पर्यटनेन पश्यतः पुनः प्रवालान् नेतुं पश्यतस्तौ सातासातं न  
गणयतः ॥७१॥
- हीसुं० ‘द्वेषिणामिव गणाः॑ शितिमानं ॑वक्रभाव॑मपि ये कलयन्ति ।  
को ॑महाभट इवांत्महितैषी ॑नोच्छिनत्ति ॑ननु तानिह ॑केशान् ॥७२॥  
( १ ) शत्रूणाम् । ( २ ) श्यामताम् । ( ३ ) कुटिलताम् । ( ४ ) च । ( ५ ) बलिष्ठसुभट इव ।  
( ६ ) आत्मनो हितस्याभिलाषी । ( ७ ) न उच्छेदयति । ( ८ ) ननु प्रश्ने । ( ९ ) कुन्तलान् ।  
कुत्सितान् ईशान् - कुभूपानित्यर्थः ॥७२॥
- हील० शत्रव इव द्रोहं कुटिलां च ये बिभ्रति तान् केशान् को नोच्छेदयति ?। यथा सुभटः कुत्सितानीशान  
शत्रुनुच्छेदयति । ननु इति प्रश्ने । हे जामे ! सम्यगवर्धार्यम् ॥७२॥
- हीसुं० ‘जैमैनीयमनुजा इव॑ दैवे विग्रहे न शमिनः कृतयत्नाः ।  
॑क्षेत्रम॑त्र हि ॑तपोविधिः॑सीरोल्लेखितं दिशति॑ निर्वृतिसस्यम् ॥७३॥  
( १ ) जैमनीयमतभाजो मनुजा इव । ( २ ) देवतासम्बन्धिनि शरीरे न कृतोद्यमास्ते हि दैवं  
वपुर्न मन्यन्ते । “ॄतस्य जैमनिमुनित्वमुदीये विग्रहं मखभुजामसहिष्णु” रिति नैषधे । चारित्रिणोऽपि  
मेघकुमार इव शरीरे ममत्वपरिणामरहिताः स्युः । ( ३ ) क्षेत्रं - शरीरं कृषिभूमिश्च ।

1. कुमारेन्ते श्रमणस्वान्तस्वास्थ्यकारि वर्षासमयकाव्यम् हील० । 2. जैमिं हीमु० । 3. ०सीरोडितं दिश॑ हीमु० । 4.  
“विग्रहं मखभुजामसहिष्णुस्तस्य जैमिनिमुनित्वमुदीये” हीमु० ।

(४) इहलोके । (५) तपःक्रियाहलेन <sup>१</sup>क्षेडितं त्रिसतीकृतं सत् । (६) यददाति सुखेन धान्यादि मोक्षफलं च । सस्यं धान्यफलयोरिति ॥७३॥

हील० यथा जैमनीया देवतासम्बन्धिशरीरे न कृतोद्यमास्तथा यतयो गात्रे ममत्वरहिताः । पुनः क्षेत्रं-शरीरं तपोहलक्षेडितं मोक्षफलं दत्ते ॥★७३॥

हीसु० इन्द्रियाण्यनिशमु॑त्पथगानि <sup>२</sup>शूकलानिव वहन्शमरश्मीन् ।  
यो नि॒यन्त्रयति जन्तुर्विच्चं प्राप्य निर्वृतिपुरीं स सुखी स्यात् ॥७४॥

(१) उन्मार्ग प्रचलन्ति इन्द्रियाणि । (२) दुर्विनीताश्वान् । (३) समतापरिण[ ति ]कशाः ।  
(४) स्वायत्तान् वशान्वा कुरुते । (५) निरन्तरायम् । (६) मुक्तिनगरीम् ॥७५॥

हील० इन्द्रियाणि शूकलाश्वसदशानि उपवासकशया योऽनिशं अङ्गति सोऽङ्गी मोक्षपुरीं प्राप्य सुखी स्यात् ॥७५॥

हीसु० <sup>१</sup>मानवान्स्व॒यम॑सौच्छ॒लदर्शी॑च्छाययास्त्यनुसरन्निव <sup>२</sup>कालः ।  
<sup>३</sup>आयतौ हितमतष्कौ ( : क )रणीयं <sup>४</sup>तज्जनक्रमयुगं <sup>५</sup>शरणीयम् ॥७५॥  
(१) मनुष्यान् । (२) आत्मना । (३) प्रत्यक्षलक्षः । (४) छिद्रान्वेषी । (५) वपुः प्रतिच्छायिकव्या । (६) यमः । “छायामिसेण कालो सव्वजियाणं छलं गवेसंतो । पासं कहवि न मुंचइ [ ता धम्मे उज्जमं कुणह ॥ ” ] इति वचनात् । (७) उत्तरकाले । (८) कार्यम् । (९) भगवत्पदद्वन्द्वम् । (१०) आश्रयितव्यम् ॥७५॥

हील० यद्यस्मात् अयं कालः छलान्वेषी सन् छायादभ्याम्नुष्याननुगच्छन्निवास्ति । अतः उत्तरकाले हितं कर्तव्यम् । उत् तद्विख्यातमर्हत्पदद्वयमाश्रयितव्यम् ॥७५॥

हीसु० <sup>१</sup>वाइ॒मयैर्जित॑सुधामधुदृग्धैर्निर्जयं विदधतीव शुकीनाम् ।  
<sup>२</sup>इत्थमुक्तवति हीरकुमारे सा बिभेद <sup>३</sup>वदनाम्बुजमुदाम् ॥७६॥  
(१) वचःप्रपञ्चैः । (२) पराभूतामृतमधुपयोभिः । (३) अमुना प्रकारेण । (४) मुखकमलमुद्रणं मौनतालक्षणम्, बभाषे इत्यर्थः ॥७६॥

हील० वाग्विभ्रमैः सूत्रकण्ठाङ्गनानां जयत्ती सा हीरकुमारकथनानन्तरं मुखाब्जमुद्रणं बिभेद । बभाषे इत्यर्थः ॥७६॥

हीसु० <sup>४</sup>नार्हती <sup>५</sup>ब्रतविधौ तव तेनाऽद्यापि यत्स्फुरति <sup>६</sup>शैशावमङ्गे ।  
<sup>७</sup>योद्धुराऽहव इवाऽपटुतायां तेन तिष्ठ कियतीः <sup>८</sup>शरदस्त्वम् ॥७७॥  
(१) न योग्यता । अर्हतो भाव आर्हती । अर्हतो नुव्वेति विभाषया नुम् विधानादार्हती

1. 'खेङ्चु' इति गूर्जरगिरायाम् । 2. इति हीरकुमारस्य स्वभगिनीं प्रति द्वितीयवारं प्रत्युत्तरवचनानि हील० ।

3. विमलायास्तुतीयवारं वाक्यम् हील० ।

आहर्तीति रूपद्वयम् । “उद्गुपरिषदः किं नार्हन्ती निशः किमनौचिती” ति नैषधे । ( २ ) दीक्षाग्रहणे । ( ३ ) बालावस्था । ( ४ ) सुभटस्य । ( ५ ) सङ्घग्रामे । ( ६ ) असामर्थ्ये । ( ७ ) वर्षाणि कतिचित् ॥७७॥

हील० हे वत्स ! तव व्रतग्रहणे न आहर्ती-न योग्यता । यतस्त्वं शिशुः । यथा भटस्यापटुतायां सत्यां सङ्घग्रामे नार्हती, तेन कारणेन कियद्वर्षाणि तिष्ठ ॥७७॥

हीसुं० <sup>१</sup>शैशवे<sup>२</sup> मदनमोहमहेभान् <sup>३</sup>सिंहशाव इव <sup>४</sup>हिंसितुमी<sup>५</sup>शः ।  
तत्स<sup>६</sup>मादिश ममा<sup>७</sup>स्य <sup>८</sup>निदेशं <sup>९</sup>तामिदं तदनु सोऽपि जगाद् ॥७८॥<sup>३</sup>  
( १ ) बाल्येऽपि । ( २ ) स्मरमोहादिहस्तिनः । ( ३ ) केसरिकिशोरक इव । ( ४ ) हन्तुम् । ( ५ ) समर्थः । ( ६ ) देहि । ( ७ ) व्रतस्य । ( ८ ) आदेशम् । ( ९ ) भगिनीम् ॥७८॥

हील० शैशवे० । हे जामे ! अहं शैशवेऽपि मदमोहस्तीन् निहन्तुं केसरीव समर्थोऽस्मि । तस्मादाज्ञां देश(हि) । तदनु स बधाषे ॥★७८॥

हीसु० तस्य वीचिभिरिवामरसिन्धोरुक्तिभिरितोऽप्यैपराभिः ।  
ओमिति प्रवदति स्म कथश्चित्सापि <sup>१</sup>बाष्पभरगद्रदवाग्भिः ॥७९॥<sup>४</sup>  
( १ ) गङ्गाकल्पेलैरिव । ( २ ) अस्या अपि । ( ३ ) अन्याभिः । ( ४ ) निर्गच्छन्नयनाश्रुभिर्गद-दाभिरस्पष्टाभिर्वाणीभिः ॥७९॥

हील० गङ्गाया रङ्गत्तरङ्गैरिव तस्य वचनैः पूर्वोक्तादप्यपैः सा दुःखाश्रुभरेण गद्धदितस्वरैः ओमिति- एवमस्त्वति वदति स्मादेशं ददौ ॥७९॥

हीसु० <sup>१</sup>पूर्वमेव <sup>२</sup>नियमस्थितिकालात्सा <sup>३</sup>गलद्वहुलद्वजलपूरैः ।  
भ्रातरं <sup>४</sup>स्वयमिव स्नपयन्तीदं पुनर्गदितुमारभते स्म ॥८०॥  
( १ ) प्रथमेव । ( २ ) दीक्षाग्रहणावसरात् । ( ३ ) निः सरदस्वल्पलोचननीरपूरैः । ( ४ ) आत्मनेव हीरकुमारम् । ( ५ ) वक्ष्यमाणम् । ( ६ ) भाषितुम् ॥९०॥

हील० पूर्व० । दीक्षाग्रहणकालात्पूर्वमेव सा जामिर्गलदश्रुपूरैः सहोदरं स्नपयन्ती सती इदं कथयति स्म ॥८०॥

हीसु० <sup>१</sup>यादसां <sup>२</sup>भवधुनीधवमध्ये <sup>३</sup>मादृशा<sup>४</sup>मतिदुराकलनीयः ।  
संयमः <sup>५</sup>सुकृतविप्रद्युतानां भ्रातर्स्त्वपतरसामिव <sup>६</sup>दुर्गः ॥८१॥  
( १ ) नक्रादिजलचरजन्तुसद्वशानाम् । ( २ ) संसार समुद्रमध्ये । ( ३ ) अस्मत्सद्वशानाम् ।  
( ४ ) दुःखेनादरणीयः । ( ५ ) निष्पुण्यानाम् । ( ६ ) स्तोकबलानाम् । ( ७ ) कोङ्कः ॥८१॥

1. ०वेऽपि मदमोह० हीसु० । 2. तायिनं हील० । 3. विमलां प्रति कुमारस्यापि त्रुतीयवारं प्रतिवाक्यम् हील० । 4. इति विमलाया दीक्षादेशादानम् हील० ।

- हील० हे भ्रातः ! सुकृतरहितानां मीनसद्दशां माद्दशां संसारसरित्पतिमध्ये संयमश्चारित्रं दुर्ग्राह्यः । यथा स्तोकबलानां रज्ञां कोट्टः दुर्ग्राह्यः स्यात् ॥८१॥
- हीसु० **‘सन्ततोपचित्कर्मगणस्यानादिधाभवपरंपरयास्ते ।**  
**‘क्रीतभृत्य इव ‘भर्तृजनस्यायत्तधीरिह ‘सुधीरपि बन्धो ॥८२॥**  
 ( १ ) निरन्तर [ र ] पुष्टिकृतकर्मव्रजस्य । ( २ ) सुरनरनारकतिर्यग्स्तुपानेकप्रकारया संसार-संतत्योपार्जितकर्मव्रजस्य । “अनादिधाविश्वपरंपराया”मिति नैषधे । ( ३ ) मूल्यगृहीत सेवक इव । ( ४ ) स्वामिनः । ( ५ ) वशः । ( ६ ) पण्डितोऽपि ॥८२॥
- हील० सन्त० । निरन्तरं निबिडा जायमानस्य कर्मसमूहस्य भवश्रेण्या आदिनास्ति । यद्यस्माद्बुद्धिमानपि कर्मायत्तबुद्धिर्भवति । यथा द्रव्यमूल्यगृहीतो डिंगरः स्वस्वामिन आयत्तधीर्भवति । हे बन्धो ! इदमवसेयम् ॥८२॥
- हीसु० **‘कर्मसंतनितिरोहितभावश्वेष्टतेऽत्र निरवग्रहचेष्टः ।**  
**लोक एष निखिलोऽपि विशाचावेशिताशय इव व्रतकाङ्क्षन् ॥८३॥**  
 ( १ ) कर्मश्रेण्या आवृतः सम्यग्ज्ञानरूपो जीवस्य भावो यस्य । ( २ ) स्वेच्छया क्रीडति । ( ३ ) प्रेताधिष्ठितमनः ॥८३॥
- हील० हे दीक्षाभिलाषुक ! एषः समस्तोऽपि लोकः कर्मसन्तत्या आवृतो भावः -सम्यक्ज्ञानं यस्य । अत एव पिशाचगृहीतचित्तजन इव स्वतन्त्रं हास्यविनोदादिकरणे न चेष्टते विलसति ॥८३॥
- हीसु० **‘संसृतौ<sup>१</sup> सुखमर्शोषममुष्यां<sup>२</sup> बान्धवामृतमिवानुभवन्ति ।**  
**‘हीनसङ्घमिवारमणीयं जानते ननु जनाष्य( : प )रिणामे ॥८४॥**  
 ( १ ) संसारे । ( २ ) समस्तम् । ( ३ ) अस्यां संसृतौ । ( ४ ) नीचैष्य( : प )रिचयम् । ( ५ ) विरसम् । ( ६ ) वदन्ति । ( ७ ) प्रान्ते ॥८४॥
- हील० संसृतै० । हे बान्धव ! अस्य संसारस्य सुखं जना अमृतमिवानुभवन्ति । परं परिणामे -अन्ते नीचसङ्घम इव विरसं नैव विदन्ति ॥★८४॥
- हीसु० **संसृतेर्मतिमतां वर तस्यास्त्वं पृथग्भवितुमिच्छसि वत्स !**  
**‘पुण्डरीकमिव पल्वलपङ्कात्तस्तंगर्ब्म ! भुवि धन्यतमस्त्वम् ॥८५॥३**  
 ( १ ) बुद्धिभाजाम् । ( २ ) श्रेष्ठः । ( ३ ) कमलम् । ( ४ ) सरःकर्दमात् । ( ५ ) भ्रातः ! ॥८५॥
- हील० संसृ० । हे मतिमतां वर ! हे वत्स ! तस्याः संसृतेस्त्वं त्यक्तुं वाञ्छति । यथा सरःकर्दमात् कमलं भिन्नं भवति । हे सहज ! त्वं धन्यतमोऽसि ॥८५॥

1. ०सते: हीमु० । 2. ०मुष्यां: हीमु० । 3. दीक्षानुज्ञानन्तरं धर्मकारकत्वेन भगिनीरत्निः हील० ।

- हीसुं० १० एतदा॑लपितमात्मभगिन्या॒ श्रोत्रपत्रपुटकेन निपीयः ।  
          ३ सातमा॑प ३ मृ॒दुतैत्तिरपि च्छस्पर्शजातमिव हीरकुमारः ॥८६॥  
          ( १ ) पूर्वोक्तम् । ( २ ) भाषितम् । ( ३ ) सुखम् । ( ४ ) लेखे । ( ५ ) तित्तिरपक्षिसम्बन्धिपि च्छस्पर्शम्  
          मृदुलेन स्पर्शेन कर्णेऽतीव सुखं जायते । “२अन्तस्तैत्तिरपक्षिपत्रमथवा मन्दं मृदु भ्राम्यति”  
          ॥८६॥
- हील० भगिनीवाक्यं श्रुत्वा सुखं प्राप । यथा श्रवणयोर्मध्ये सुकुमालतित्तिरपक्षिपि च्छादिस्पर्शात्सातं भवति  
          ॥८६॥
- हीसुं० रोम॑हर्षणमिषात्तद॒नुज्ञोद्देलहर्षजलधौ॑ ३शिशुकाये ।  
          ४ उत्स्व( च्छव )सन्ति किमु किञ्चन लोलद्वालशालिशफराष्य( : प )रितोऽमी ॥८७॥  
          ( १ ) रोमाञ्चव्याजात् । ( २ ) भगिन्या आदेशरूपोत्कण्ठप्राप्नुमोदसमुद्रो यत्र । ( ३ ) हीरकुमार-  
          शरीरे । ( ४ ) किञ्चिच्चपला लघवः शोभमानाः उच्छलन्ति ।
- हील० रोम० । तस्या आदेशदानाद्वेलामतिक्रम्य प्रसरति हर्षसागररूपे बालकाये रोमोदममिषाच्छलाः  
          सूक्ष्माः लघवः अमी मीनाः ॥८७॥
- हीसुं० एतया॑ १८वनिनिरस्तविपञ्च्या॑ २भूतलोपगतयेव ३घृताच्या॑ ।  
          त्वं गृहाण च॑ ४सगोत्रजनेभ्यः॑ ५शासनं॑ ३पुनरिदं॑ जगदे सः ॥८८॥  
          ( १ ) वाणीविजितवीण्या । ( २ ) भूमण्डलं आगतया । ( ३ ) घृताचीनामाप्सरसा । ( ४ )  
          स्वस्वजनेभ्यः । ( ५ ) दीक्षादेशम् ॥८८॥
- हील० वीणास्वरया पुनर्घृताचीसदृशया एतलक्थितम् हे वत्स ! त्वं स्वजनवर्गेभ्यः सकाशात् आदेशमादत्स्व  
          ॥८८॥
- हील०→ भारती॑ श्रुतियुगाञ्जलिना तां॑ स्वस्वसुर्मधुसर्खी॑ विनिपीय ।  
          शैक्षवन्निजगुरोर्हितशिक्षां॑ स स्म॑ भूत्यमदमेदुरिताङ्गः॑ ॥८९॥←  
          तां वाचं श्रवणयुगेन पीत्वा हर्षपुष्टः स समजनि । यथा प्राथमकल्पिकः निजगुरोर्हितकामुष्मिक-  
          साधनकारिणीं शिक्षां सादरं श्रुत्वा हृष्टे भवति । किभूतां भारतीम् ?। मधुनः॑ -क्षौद्रस्य सर्खी॑-वयसी॑  
          मधुमृष्टम् ॥८९॥
- हीसुं० १० स्वानुजादिनिखिलस्वजनेभ्यः॑ २शासनं॑ व्रतविधेः॑ ३पृथुकोऽपि ।  
          आददे पुनरसौ॑ ४व्यवहारी लाभव॑द्विविधवस्तुगणेभ्यः॑ ॥८९॥<sup>4</sup>  
          ( १ ) निजलघुभ्राता॑ श्रीपालनामा॑ तत्पुरुषसमस्तगोत्रिवर्गात्॑ । ( २ ) दीक्षादेशम् । ( ३ )

1. उद्दत्तिर० हीमु० । 2. अन्तस्तिर० हीमु० । 3. स॒ पुनरेतदवादि॑ हीमु० । —><— एतदन्तर्गतः पाठे हीसुंप्रतौ  
          नास्ति । 4. इति भगिन्या दीक्षादेशनन्तरं तद्वचसैव स्वभ्रातुस्वजनवर्गादेशादानम् हील० ।

**हीरकुमारः । ( ४ ) व्यापारकर्ता । ( ५ ) बहुविधक्रियाणकेभ्यः ॥८९॥**

हील० स्वानुजाऽ । स्वस्य अनुजो लघुभाता श्रीपालनामा स आदौ येषां तावशा ये स्वजनास्तेभ्यः आदेशं आददे-गृहीतवान् । यथा व्यापारी वस्तुगणेभ्योऽधिकं अधिकं फलं गृह्णाति ॥९०॥

**हीसुं० भूचरानिव विधेरनुवादान्सोपवीतकृतवेदनिनादान् ।**

राजहंसगकमण्डलुपाणीनाजुहाव गणकान्स सुवाणीन् ॥९०॥

( १ ) भूमीसञ्चारिणः । ( २ ) अनुवदन्तीत्यनुवादाः स्वरुपाणि । ( ३ ) यज्ञोपवीतयुक्तान्कृत-वेदोच्चारांश्च । ( ४ ) राजहंसगमनान् कमण्डलुहस्तान् । ( ५ ) आकारयामास । ( ६ ) ज्योतिर्विदः ॥९०॥

हील० भूच० । यज्ञोपवीतयुक्तान्, कृतवेदोच्चारान्, पुना राजहंसगमनान्, पुनः कमण्डलुकरान्, सुवाणीन्, दैवज्ञान् स कुमार आकारयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । भुवि प्रासान् ब्रह्मानुकारान् ॥९१॥

**हीसुं० १आत्मकामितमुखानिव मूर्त्तान् पुष्पपल्लवफलाक्षतपुञ्जान् ।**

२तप्युरोऽयमुपहृत्य \*सगोत्रैः पृच्छति स्म चरणस्य मुहूर्तम् ॥९१॥

( १ ) स्वस्य वाञ्छितस्य प्रारम्भान् । ( २ ) ज्योतिषिकानामग्रे । ( ३ ) ढोकयित्वा । ( ४ ) गोत्रवृद्धैस्सार्द्धम् ॥९१॥

हील० आत्मका० । तेषां पुरः पुष्पानि(णि), किशलयानि, फलानि, तण्डुलाश्च, तेषां ब्रजान् उपहृत्य-ढोकयित्वा । उत्प्रेक्ष्यते । स्ववाञ्छितप्रारम्भान् मूर्त्तिमतः ढोकयित्वा स्वजनैः समं स कुमाराञ्चारित्रमुहूर्तं पृच्छति स्म ॥९२॥

**हीसुं० १पूर्वनिर्मितपरस्परतकैर्निःश्चितोच्चपदसंपदुदकैः ।**

२तस्थोच्यत ३महोदयसद्वद्वारावद्व०४तदिनं पृथुकेन्दोः ॥९२॥

( १ ) प्रथमं कृतोऽन्योन्यं विचारे यैः । ( २ ) निर्द्वारितोऽस्य **हीरकुमारस्य** उच्चैरतिशायिगण-धरादिपदस्य लक्ष्या उत्तरफलं यैः । ( ३ ) मोक्षमन्दिरस्य द्वारम् । ( ४ ) दीक्षाग्रहणदिवसम् ॥९२॥

हील० पूर्व० । कृतविचारैः पुनर्निधितः उच्चपदस्य सम्पदो लक्ष्या उदर्कस्तद्वं फलं यैस्तादौस्तैः कुमारस्य दीक्षादिनं उक्तम् । उत्प्रेक्ष्यते । मुक्तिद्वारम् ॥९३॥

**हीसुं० १स्वर्णरूप्यमणिमौक्तिकदानैरीश्वरानिव विधाय विधिज्ञः ।**

२निश्चितव्रतमुहूर्तदिनस्तान्वर्णिनः स विससर्ज कुमारः ॥९३॥

( १ ) व्यवहारिणः अतिदानैः । ( २ ) महेभ्यान् । ( ३ ) निर्द्वारितो दीक्षायाः सम्यग्दिवसः । ( ४ ) ब्राह्मणान् ॥९३॥

हील० स्वर्णादीन् दत्त्वा, इभ्यान् कृत्वा, निश्चितदीक्षादेशदिनः स तान् दैवज्ञान् यथागतं प्रैषीत् ॥९४॥

- हीसुं० आगतेऽहि रुद्रीव तदुके शुद्धगोचरनवांशकयुक्ते ।  
संमदाद्विजयसिंहमुखेभ्याः प्रारभन्त चरणक्षणमस्य ॥१४॥  
( १ ) दिवसे । ( २ ) मित्र इव । ( ३ ) मौहर्त्तिककथिते । ( ४ ) निर्देषा ग्रहा गोचरा  
रेखादानादयः नवांशकास्तैः सहिते । ( ५ ) कुमारभगिनीपतिप्रमुखव्यवहारिणः । ( ६ )  
दीक्षामहोत्सवम् ॥१४॥
- हील० तैरुके वासरे आगते । यथा मित्रमागच्छति । पुनः शुद्धे गोचरे रेखादानादौ नवांशके लग्नमध्य-  
गतविशिष्टवेलायां स्वभगिन्या विमलाया भर्ता विजयसिंहनामा स इभ्यस्तत्प्रमुखाश्चा-  
रित्रोत्सवमुपक्रामति स्म ॥१५॥
- हीसुं० केचिदुच्चमणिपीठनिष्ठन्नं( एणं ) गन्धबन्धुरपयोभृतकुम्भैः ।  
निर्जरा॒ इव जिनावनिजानिं दीक्षणस्य समयेऽस्त्रपयंस्तम् ॥१५॥  
( १ ) उन्नते रत्नमयासने स्नानार्थमुपविष्टम् । ( २ ) पुष्पादिभिर्वासितैष्यः पयसां घटैः ।  
( ३ ) देवा इव । ( ४ ) जिनेन्द्रस्य । ( ५ ) दीक्षासमये ॥१५॥
- हील० केचिं० । केचिज्जना उच्चासनस्थं तं दीक्षासमये स्त्रपयन्ति स्म । यथा जिनं सुराः स्त्रपयन्ति ॥१६॥
- हीसुं० साम्प्रतं कथममुष्य जडेनाश्लेषणं विबुधकैरवबन्धोः ।  
कोऽप्यरक्षयदितीव तदीयं वाससांतिमृदुलेन शरीरम् ॥१६॥  
( १ ) युक्तम् । ( २ ) कुमारस्य । ( ३ ) डलयोरैक्याज्जलेन-पानीयेन अथ च मूर्खेण । ( ४ )  
पण्डितपुरुंदरस्य । “पण्डितो हि मूर्खसङ्गं न कुर्या” दिति ख्यातिः । ( ५ ) निर्नीरयामास । ( ६ )  
सुकुमारवस्त्रेण । ( ७ ) कुमारकायम् ॥१६॥
- हील० साम्प्र० । कोऽपि तस्य कायं कोमलांशुकेन, इति कारणात् निर्नीरयामास । इतीति किम ? इदानीं  
पण्डितचन्द्रस्यास्य डलयोरैक्यात् जलेन मूर्खेण सङ्गः कः ॥१७॥
- हीसुं० काञ्चनप्रतिमयेव नितान्तोत्तेजनादनुपमप्रभयास्य ।  
मार्जनानामृदुलगन्धदुकूलैर्निर्मलेन वपुषा पुषुषे॑ श्रीः ॥१७॥  
( १ ) सुवर्णमूर्त्या । ( २ ) अतिशयेन निर्मलीकरणात् । ( ३ ) असाधारणकान्त्या । ( ४ )  
निर्नीरीकरणात् । ( ५ ) सुकुमालसुरभिवसनैः । ( ६ ) शोभा ॥१७॥
- हील० काञ्च० । निरन्तरं निर्मलीकृतकाञ्चनप्रतिमानुरुपेन(ए) निजवपुषा शोभा पुष्टा कृता ॥१८॥
- हीसुं० तत्कलाकुशलमानववर्गस्तं प्रसाधयितुमारभते स्म ।  
स्वस्तरूनिव निपातयितुं श्रीगर्वपर्वतशिखामधिरूढान् ॥१८॥  
( १ ) प्रसाधव( ? )नं मण्डनं तस्य कलायां विज्ञाने चतुरो जनः । ( २ ) मण्डयितुम् भूषयितुम् ।  
( ३ ) कल्पवृक्षान् । ( ४ ) अथःक्षेसुम् । ( ५ ) स्वशोभाभिमानगिरिशिखराध्याश्रितान् ॥१८॥
- हील० प्रसाधनपण्डितस्तं मण्डयितुं उपक्रामति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । गर्वादिः स्वस्तरून् पातयितुम् ॥१९॥

- हीसुं० 'सान्द्रवा( च )न्दनिकुरम्बकरम्बीभूतनूत( त )द्युसृणदवचर्च्चा ।  
तत्तनौ विलसति स्म सुपेरौ 'चन्द्रिकाखचितसान्ध्यरुचीव ॥१९॥
- ( १ ) स्निग्धं बहुलं वा कर्पूरसम्बन्धिवृन्दं तेऽन् व्यासं नवीनं कुड्हमजलविलेपनम् । "चन्द्रो विधौ कपीरे स्वर्णे चे" त्यनेकार्थः । ( २ ) चन्द्रज्योत्स्नामिश्रितसन्ध्याभ्रककान्तिः । "रुच्यो रुचीभिर्जितकाञ्छनाभि" रिति नैषधे ॥१९॥
- हील० कर्पूरमिश्रकुड्हमदवविलेपनं तत्काये शुशुभे । यथा मेरौ चन्द्रिकामिश्रसन्ध्यारागः ॥१००॥
- हीसुं० 'सौरभं सुमनसां॒ समुदायोऽ॑ध्यापयेद्यदि॒ 'महारजतस्य ।  
'अङ्गरागललितार्भकमूर्त्तेस्तल्लभेत तुलनां॒ 'कलयापि ॥१००॥
- ( १ ) सुगन्धताम् । ( २ ) पुष्पप्रकरः । ( ३ ) पाठयेत् । ( ४ ) सुवर्णस्य । ( ५ ) विलेपनेन मनोज्ञकुमारशारीस्य । ( ६ ) अंशेन ॥१००॥
- हील० सौर० । यदि पुष्पप्रकरः सुवर्णस्य स्वपरिमिलं पाठयेत् । दद्यादित्यर्थः । तदा विलेपनेन मनोज्ञाया बालस्य मूर्तेः अंशेनापि सदृशीभावं सुवर्णं प्राप्नुयात् ॥१०१॥
- हीसुं० 'विश्वजैत्रमिव 'मोहमहीन्द्रं हन्तुम॑र्भधरणीरमणेन ।  
खड्गरत्नमिव केश॑कलापो॒ 'धूपधूमपटलीभिर॑धूपि ॥१०१॥
- ( १ ) जगज्जयनशीलम् । ( ३ ) मोहराजम् । ( ३ ) हीरकुपारेण । ( ४ ) केशपाशः । ( ५ ) उत्क्षिप्यमाना( णा )गरुधूमवृन्दैः । ( ६ ) धूपितः ॥१०१॥
- हील० कुमेरण केशपाशो धूपितः । उत्त्रेक्षयते । मोहनामानं राजानं हन्तुं खड्गरत्नं धूपितम् । राज्ञापि वैरिणं व्यापादयितुं खड्गरत्नं धूप्यते ॥१०२॥
- हीसुं० 'स्वं॑ क्षणात्क्षय॑मवेक्ष्य॒ 'सृजद्विष्ट्या॑( : पा )रलौकिकसुखाय तपांसि ।  
'धूमपानमिव धूपजधूमव्याजतस्तदलकैः॒ क्रियते स्म ॥१०२॥
- ( १ ) आत्मीयम् । ( २ ) स्वल्पकाले विनाशं लोचलक्षणम् । ( ३ ) ज्ञात्वा । ( ४ ) कुर्वद्विः ।  
( ५ ) परलोकसम्बन्धिसुखाय । ( ६ ) केशपाशधूपनार्थं निर्मितधूमस्य कपटीधूमपानं क्रियते ॥१०२॥
- हील० स्वं-आत्मीयं क्षयं दृष्ट्वा तपः कुर्वद्विस्तस्य कचैर्धूपधूममिषात् धूमपानं क्रियते ॥१०३॥
- हीसुं० 'मानिनीजनमनोनयनस्वं॑ यैरनीयतः॑ हृतेर्विषयत्वम् ।  
'पारिपन्थिकभरैरिव लेभे॑ बन्धनं॑ किमिति॑ 'तच्चिकुरैरस्तैः ॥१०३॥
- ( १ ) नागरिकस्त्रीलोकस्य हृदयनेत्रस्तपविभवः । ( २ ) अपहृतः । ( ३ ) तस्करनिकरैरिव ।  
( ४ ) कुमारस्य केशैः ॥१०३॥
- हील० मानि० । किमिति कारणात्तकेशैर्बन्धनं लब्ध्यम् । यथा तस्करा बन्धन्ते । यैः केशैः स्त्रीणां मनांसि

नेत्राणि तान्येव द्रव्यं अपहरणगोचरतां प्रापितमपहतमित्यर्थः ॥१०४॥

हीसुं० **‘सूनसङ्गतशिलीमुखलेखासूनसायक धनुः शरराशेः ।**

**संश्रयन्श्रियमिर्वार्भकमल्लीकुइमलाकलितकुन्तलहस्तः ॥१०४॥**

( १ ) पुष्पेषु मकरन्दपानार्थं मिलिता या भृङ्गमाला सैव पुष्पबाणस्य कार्मुकबाण-  
गणस्तस्य । ( २ ) कुमारस्य मूर्धिन मल्लिकामुकुलमणिडतकेशपाशः ॥१०४॥

हील० सूनेषु पुष्पेषु आगता ये भ्रमणस्तेषां लेखा श्रेणी सैव सूनसायकस्य धनुंषि शरा बाणास्तेषां समूहस्य  
श्रियं श्रितोऽर्भकस्य मल्लिकाकोशरचितकेशपाशो भाति ॥१०५॥

हीसुं० **मूर्धिन तस्य मुकुटेन दिदीपेऽनर्घरत्नपटलीललितेन ।**

**‘बर्हचामरजयं चिकुराणां विभ्रमैरिव विधाय धृतेन ॥१०५॥**

( १ ) बहुमूल्यमणिगणमणिडतेन । ( २ ) मयूरपिच्छोमगुच्छानां विजयम् ॥१०५॥

हील० तन्मूर्धिन मुकुटेन रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । शिखिपिच्छानां चामराणां जयं धृतेन ॥१०६॥

हीसुं० **‘पट्टिकाऽर्भकविभोष्क( : क )नकस्यालीकमणडलमलंकुरुते स्म ।**

**‘विभ्रमेण ‘चिकुराम्बुधराणां ‘ह्रादिनीव ऐनिकटे ‘विलुठन्ती ॥१०६॥**

( १ ) स्वर्णपट्टिका कक्षित् आभरणविशेषः । “नलस्य भाले मणिवीरपट्टिका” । तथा दमयन्त्या  
अपि । “धृतैकया हाटकपट्टिकालिके ” इति स्त्रीपुरुषयोरपि भाले पट्टिकागच्छमाभरणविशेष  
इति नैषधे ( २ ) भालस्थलम् । ( ३ ) भूषयति स्म । ( ४ ) बुद्ध्या । ( ५ ) केशस्तप्तमेघानाम् ।  
( ६ ) विद्युत् । ( ६ ) समीपे । ( ८ ) मिलन्ती ॥१०६॥

हील० हेमः पट्टिका शिशुस्वामिनः भालस्थलमलङ्कुरुते । चिहु(कु)रा एव मेघास्तेषां भ्रमेण समीपवर्त्तिनी  
विद्युदिव ॥१०७॥

हीसुं० **‘दिद्युते र्मणिकरम्बितयास्ये शातकुम्भकृतपट्टिकयास्य ।**

**स्वैरमात्मन इवाननलक्ष्म्या निर्मितेन वरणेन निवस्तुम् ॥१०७॥**

( १ ) शुशभे । ( २ ) रत्नखचितया । ( ३ ) स्वर्णनिर्मितपट्टिकया । ( ४ ) वक्त्रश्रिया । ( ५ )  
प्राकारेण । ( ६ ) वासार्थम् ॥१०७॥

हील० **दि०** । अस्यास्ये कनकघटितया पट्टिकया दिद्युते । उत्प्रेक्ष्यते । मुखलक्ष्म्या स्वेच्छया वसितुं  
निर्मितेन प्राकारेण ॥१०८॥

1. हीसुं प्रतौ एतच्छ्लोकं लिखित्वा तदनन्तरं तस्य निम्लिखितं पाठान्तरं तदुत्तरार्थस्य टीका च दृश्यते-  
दीप्यते स्म मणिमणिडतयास्ये हाटकैर्वटितपट्टिकयास्य ।

\*इन्दुपद्ममुकुराद्यभिभावोद्भूतनृतमहसेव मुखस्य ॥ पाठः

पाठान्तरे - **चन्द्रकमलदर्पणादीनां विजयकरणोद्भूतनवप्रतापेन अर्थाद्वक्त्रस्य ॥**

हीलप्रतौ तु एतच्छ्लोकस्योत्तरार्थस्य पाठान्तरमेवं दृश्यते-

**इन्दुपद्ममुकुराद्यभिभावोद्भूतनृतमहसेव मुखस्य ॥ पाठान्तरम् ।**

- हीसुं० भालमण्डलममण्ड्यत राजज्ञातस्तपतिलकेन तदीयम् ।  
तस्थुषाऽत्र चरणक्षणवीक्षाकाङ्क्षणाल्पवपुषांशुमतेव ॥१०८॥  
( १ ) शोभमानकनकतिलकेन । ( २ ) कुमारसम्बन्धि । ( ३ ) ललाटपट्टस्थितवता । ( ४ ) भाले ।  
( ५ ) चारित्रमहोत्सवदर्शनाभिलाषिणा । ( ६ ) लघुशरीरेण । ( ७ ) सूर्येन(ण) ॥१०८॥
- हील० भाल० । शोभमानकनकतिलकेन तदीयं भालं भूषितम् । उत्प्रेक्ष्यते । चारित्रोत्सवं दर्शनाभिलाषिणा  
लघुना भाले स्थितवता भास्करेण ॥१०९॥
- हीसुं० यस्य ३भालतलचन्दनबिन्दोर्दम्भतो ३वदनकैरवबन्धुः ।  
कोपनां ४प्रियतमामिव तारामा५नुकूल्यविधये व्यधिता६ङ्गे ॥१०९॥  
( १ ) कुमारस्य । ( २ ) ललाटोदरे कृतश्रीखण्डस्य मण्डलाकारस्तिलकः । ( ३ ) मुखचन्द्रः ।  
( ४ ) क्रोधवतीम् । ( ५ ) अतिशयेन वल्लभाम् । ( ६ ) अनुकूलीकरणाय । ( ७ ) कृता । ( ८ )  
उत्सङ्गे ॥१०९॥
- हील० यस्य भाले चन्दनबिन्दुमिषाद्वदनचन्द्रः अत्यमर्षणां वल्लभां कामपि तारिकां अनुकूलीकरणायोत्सङ्गे  
कृतवान् ॥११०॥
- हीसुं० यस्य ३चान्दन उपभू बभासे ३बिन्दुरङ्गजभटं प्रणिहन्तुम् ।  
नासिकानलिकया ४गुलिकेयं येन मोक्षमनसा विधृतेव ॥११०॥  
( १ ) भ्रुवोःसमीपे चन्दनबिन्दुर्भाति । ( २ ) स्मरवीरं । ( ३ ) नासा नाम नलिकया ।  
नालिबन्धू(दू)क इति नामानि । ( ४ ) इयं चन्दनबिन्दुनामी गुलिका । 'जीर्गोली' ति  
प्रसिद्धा ॥११०॥
- हील० यस्य भ्रुवोः समीपे बिन्दुः शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । येन क्षेप्तुकामेन कामभटं प्रणिहन्तुं नासिका-  
बन्धूकेन गुलिका धृता इव ॥१११॥
- हीसुं० १अस्तु ३वाम५निशम५भ्युपगम्यो६७तष्य( : प )८ ४चटुलताप्रतिषेधः ।  
८५तदालपितु६मञ्जनरेखा कल्पिता नयनयोरिव तस्य ॥१११॥  
( १ ) युवयोः । ( २ ) नित्यम् । ( ३ ) आदरणीयः । ( ४ ) अद्यदिनादारभ्य यावज्जीवम् ।  
( ५ ) चापल्यनिषेधः । ( ६ ) इदं कथयितुम् । ( ७ ) लोचनयोः कञ्जलरेखा कृता ॥१११॥
- हील० चाप० । तस्य नेत्रयोः इति वकुं अञ्जनरेखा कृता । इतीति किम् ? । अतः परं युवाभ्यां चापल्यं  
न विधेयमिति कारणान्वेत्रे अञ्जिते ॥\*११२॥
- हीसुं० ९ख॒ञ्जनाम्बुजचकोरमुखारीन् ३यद्विलोचननृपौ ३परिभूय ।  
९सालयोः सुखमिवा४ञ्जनरेखानीलरत्नकृतयोर्वसतः स्म ॥११२॥

1. चापलस्य नियमो५भ्युपगम्यो६तः परं द्युनिशमत्र युवाभ्याम् हीमु० ॥ 2. उत्पलाब्जकमुदादिमदस्यून् हीमु० ॥

(१) खञ्जरीटः । “गंगेटिउ” इति लोकप्रसिद्धस्तथा कमलचकोरास्तत्प्रभुखशत्रून् । (२) कुमारनेत्रनामराजानौ । (३) जित्वा (४) प्राकारयोः । (५) कज्जललेखारूपमरकतमणिनिर्मितयोः ॥१२॥

हील० उत्पलं नीलकमलं पद्मं श्वेतकमलं एतानि जित्वा तस्य नेत्रनुपौ अञ्जनरेखा एव नीलरत्नं तत्कृतयोर्दुर्गयोर्मध्ये सुखेन वसतः स्म ॥\*१३॥

हीसुं० <sup>१</sup>भृङ्गसङ्गतवतंससरोजे तस्य कर्णयुगले शुशुभाते ।

<sup>२</sup>विग्रहीतुमनसी नयनाभ्यामागते किमित्तरेतरवैरात् ॥१३॥

(१) भ्रमरयुक्तावतंसकमले । (२) योद्धुकामे । (३) शोभया कृत्वा परस्परविरोधात् ॥१३॥

हील० भृङ्गयुक्ते कमले तत्कर्णयोः रेजतुः । उत्प्रेक्ष्यते । नेत्राभ्यां सह योद्धुकामे आगते । १४॥

हीसुं० <sup>१</sup>श्रोत्रपत्रयुगमाश्रितवत्या दिव्युते <sup>२</sup>मणिवतंसिकयास्य ।

<sup>३</sup>अर्चिषेव <sup>४</sup>वदनान्तरमा<sup>५</sup>न्त्या <sup>६</sup>पिण्डभावमितया स्थितयास्मिन् ॥१४॥

(१) कर्णयुगलम् । (२) रत्नावतंसिकया । (३) “विदर्भसु<sup>१</sup>भूश्रवणावतंसिके”ति नैषधे ।

(४) अर्चिः कान्तिवाची स्त्रीकलीबलिङ्गः । (५) मुखमध्ये । (६) बाहुल्यात्प्रथातुमशक्तुवत्या ।

(६) पिण्डीभूतया ॥१४॥

हील० श्रोत्राश्रितेन रत्नोत्तंसेन शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । मुखमध्ये अमान्त्या अत एव पिण्डीभूतया अस्मिन्कर्णे स्थितया कान्त्या ॥१५॥

हीसुं० <sup>१</sup>मन्महे <sup>२</sup>सकलशीतला( ल )भासां <sup>३</sup>सार्वभौमिदमाननचन्द्रम् ।

<sup>४</sup>कुण्डलच्छलतमीरमणाभ्यामन्यथा कथमुपास्यत एषः ॥१५॥

(१) वितर्क्यामः । (२) समस्तचन्द्राणाम् । (३) चक्रवर्तिनम् । (४) कुण्डलकपटाच्चन्द्राभ्याम् ॥१५॥

हील० मन्म० । वर्यं अस्य मुखचन्द्रं सकलचन्द्राणां चक्रवर्तिनं मन्महे विचारयामः । एवं चेत्र तर्हि कुण्डलच्छलाच्चन्द्राभ्यामेतमुखचन्द्रः कथं सेव्यते ॥१६॥

हीसुं० कुण्डले <sup>१</sup>कलयती प्रतिबिम्बे <sup>२</sup>गण्डयोर्वहति हीरकुमारः ।

<sup>३</sup>ऋोधमुख्यचतुरात्मविपक्षान् भेत्तुकाम इव <sup>४</sup>चक्रचतुष्कम् ॥१६॥

(१) सङ्क्रान्ती । (२) कपोलयोः । (३) चतुष्कषायद्वेषिणः । (४) चक्राणामायुधविशेषाणां चतुष्टयम् ॥१६॥

हील० कुण्डले० । द्वे प्रतिमे बिभ्रती । कुण्डले प्रति हीरकुमारो धारयति । उत्प्रेक्ष्यते । ऋोधादीन चतुःकषायान् हन्तुं चक्राणां चतुष्टयं बिभर्ति ॥१७॥

- हीसुं० 'व्यालवल्लिदलखण्डनजन्मा शोणिमाथरदले विललास ।  
 एतदीयहृदयादनुरागो निः सरन्बहिरिव स्थित एषः ॥११७॥  
 ( १ ) नागवल्लीपत्रचर्वणोद्भूतः । ( २ ) रक्तता । ( ३ ) कुमारमनसः ॥११७॥
- हील० व्याल० । ताम्बूलशोणिमा अधरपत्रे बभासे । इदं हृदयात्रिः सरन्यग एव बहिः स्थित एव ॥११८॥
- हीसुं० 'रागसङ्ग्रहदनच्छदराजत्तस्मितं दशति( न )दीधितिमिश्रम् ।  
 पल्लवोदरविहारिहमाभ्योविभ्रमं किमु जिधृक्षति लक्ष्म्या ॥११८॥  
 ( १ ) नागवल्लीदलास्वादनजातरक्तिमाकलिताधरे शोभमानम् । ( २ ) कुमारहसितम् । ( ३ )  
 दन्तकान्तिमिश्रम् । ( ४ ) प्रवालमध्यविलसन्तुहिना( न )जलशोभाम् । ( ५ ) ग्रहीतु-  
 मिच्छति ॥११८॥
- हील० राग० । ताम्बूलरागस्य सङ्गो यस्मिन्नादृशेऽधरे शोभमानं पुनर्दन्तकान्तिमिश्रं तस्य स्मितं प्रवालान्तः-  
 स्थानां हिमाभ्यसां विलासं किमु ग्रहीतुमिच्छति ॥११९॥
- हीसुं० 'रज्यते स्म दशनप्रकरेणामुष्य कुण्डल( लि )पुरन्दरबाहोः ।  
 रागिणीं सविधगां च रसज्ञां प्रेक्ष्य कैर्न ध्रियते हृनुरागः ॥११९॥  
 ( १ ) रक्तीभूय[ ते ] स्म । ( २ ) दन्तनिकरेण । ( ३ ) शेषनागसदृशभुजस्य । ( ४ ) रागयुक्ताम् ।  
 ( ५ ) पार्श्वस्थायिनीम् । ( ६ ) विविधरसेषु चतुराम् ॥११९॥
- हील० नागेन्द्रवदीर्घबाहोः कुमारस्य दन्ता रक्ताः कृताः । तद्युक्तं हि यस्मात् रक्तां नवरसज्ञां पार्श्वे दृष्ट्वा  
 कै रगो न ध्रियते ॥१२०॥
- हीसुं० 'संयमाध्यवसितिप्रथमानप्रावृष्टेण्यजलवाहघटायाः ।  
 बिन्दुवृन्दमुदियाय किमेतत्कण्ठपीठकृतमौक्तिकहारः ॥१२०॥  
 ( १ ) चास्त्रिपरिणामनामविस्तरद्वर्षाकालसम्बन्धिमेघमालायाः । ( २ ) जलकणनिकर । ( ३ )  
 प्रकटीभूतात् तम् ॥१२०॥
- हील० संय० । एतत्कण्ठस्थापितहारः । किमुत्प्रेक्ष्यते । चास्त्राध्यवसाय एव विस्तृतमेघघटाया बिन्दुवृन्दं  
 प्रकटीभूतम् ॥१२१॥
- हीसुं० 'एतदीयवदनामृतभासा स्पदर्धयेव सह शीतलभासा ।  
 भूत( नूल )तागकततिर्धियते स्मामुक्तमौक्तिकलताकपटेन ॥१२१॥  
 ( १ ) कुमारमुखचन्द्रेण सह । ( २ ) नवीनतारमण्डली । ( ३ ) परिधृतमुक्ताहारा मौक्तिकव्याजेन  
 ॥१२१॥
- हील० एतमुखचन्द्रेण अन्यचन्द्रस्पर्द्या परिहितमौक्तिकहारमिषात् । किमुत्प्रेक्ष्यते । नवीनतारकत्रेणिर्धृता  
 ॥१२२॥

- हीसुं० १भारसासहितया जितशेषः किं श्रितो ३वलयमस्य विभाति ।  
 \*मोहशूरमसुभिः ४प्रवियुज्यनेन वीरवलयं ५विधृतं वा ॥१२२॥  
 ( १ ) संयमभारसहनशीलतया । ( २ ) पराभूतशेषनागः । ( ३ ) कनककटकं स शेषः । ( ४ )  
 मोहनामानं वीरम् । ( ५ ) व्यापादयित्वा । ( ६ ) वीरवलयं धृतम् ॥१२२॥
- हील० भार० । अस्य वलयं विभाति । उत्प्रेक्ष्यते । भारसहनेन जितः शेषः श्रितः वा मोहणजानं प्रायो  
 पृथक्कृत्वा वीरवलयं धृतम् ॥१२३॥
- हीसुं० योगिनेव १वहतात्मनि २मुद्रामूर्मिकां च दधताम्बुधिनेव ।  
 ३फुल्लपल्लवविलासजुषा तत्पाणिनाधियत कापि विभूषा ॥१२३॥  
 ( १ ) मुद्रिकां योगमुद्रां च साक्षराङ्गगुलीयकम् । ( २ ) कल्लोलं च । ( ३ ) विकसितकिसलय-  
 शोभाभृता ॥१२३॥
- हील० यथा योगिनात्मनि मुद्रां मुद्रणं उद्यते तद्वत्साक्षरोर्मिकां दधता । यथार्णवेन ऊर्मय एव ध्रियन्ते  
 तद्वनिरक्षरोर्मिकां दधता तत्पाणिनाद्वैता श्रीर्धृता ॥१२४॥
- हीसुं० पाणिना विरुरुचे १पविरोचिश्चापचक्रविलसत्कटकेन ।  
 २गन्धसिन्धुरतुरङ्गशताङ्गालंकृतेन ३जगतीपतिनेव ॥१२४॥  
 ( १ ) वज्रमणिनिर्गतकान्तय एवेन्द्रधनुर्मण्डलं तेन दीप्यमानं वलयम् । “वृता विभूषा  
 मणिरश्मकार्पुके” रिति नैषधे । तथा-“विविधरत्नप्रभासंवलितं शक्रधनु” रिति कविप्रसिद्धिः ।  
 वज्रकान्तिस्थथा धनुश्क्राणि शास्त्राणि तेन विलसत्सैवं यस्य । ( २ ) गजहयरथाकारविभूषितेन  
 चतुरङ्गसेनाकलितेन । ( ३ ) राज्ञेव ॥१२४॥
- हील० पाणि० । वज्ररत्नकान्त्योत्पन्नधनुर्मण्डलैः शोभमानः कटको यस्य ताढेशेन । पुनर्लक्षणीभूतैर्गजतुर-  
 गरयैरलङ्घतेन करेण शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । राजा इव जज्ञे ॥१२५॥
- हीसुं० १रामणीयकहृतापरचित्तं तत्कलत्रमवलोक्य युवेव ।  
 २जातरूपकलितो ३गुणशाली ४शृङ्खलष्क( : कि )मकरोत्परिम्भम् ॥१२५॥  
 ( १ ) मनोज्ञतयाहृतं अपरेषां मनो येन । ( २ ) कुमारस्य कटिं जायां च । ( ३ ) स्वर्णेन उत्पन्नेन  
 रूपेण च युक्तः । ( ४ ) रज्जवः औदार्यादयश्च । ( ५ ) “सा शृङ्खला पुंस्कटिस्था” ।  
 स्वर्णकटिदवरकः । ( ६ ) आलिङ्गनम् ॥१२५॥
- हील० राम० चारुत्वे[न] हृतं चितं येन तादृशं कलत्रं कटीं स्त्रियं च वीक्ष्य हेमगुणशाली कटिदवरक  
 आलिङ्गनमकरोत् ॥१२६॥
- हीसुं० भूषणौष्ठक( : क )नकरतनिबद्धैर्भूषितो ४व्यरुचदेष कुमारः ।  
 ५मञ्जरीभरकरम्बितकायष्क( : क )ल्पसाल इव ६भूतलशाली ॥१२६॥

( १ ) स्वर्णमणिरचितैः । ( २ ) शुशुभे । ( ३ ) कलिकानिकरकलितवपुः । ( ४ ) भूमीमण्डलस्थास्तुः ॥१२६॥

हील० भूषणैरेष कुमारः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । भुवि आगतः कल्पवृक्षः ॥१२७॥

हीसुं० दर्पणोष्विव ॄगवेषयति ॄस्वं भूषणोषु ॄकिरणाङ्गुरितेषु ।  
ॄदर्पणार्पणविधाभिरॄमुष्मिंश्चिष्फलाभिरॄजनि स्वजनानाम् ॥१२७॥

( १ ) पश्यति । ( २ ) आत्मानम् । ( ३ ) कान्तिप्ररोहवत्सु । ( ४ ) आदर्शदर्शनप्रकारैः । ( ५ ) कुमारे । ( ६ ) निःप्रयोजनाभिः । ( ७ ) जातम् ॥१२८॥

हील० यथा कश्चिद्दर्पणेषु स्वं पश्यति तद्वाभरणे आत्मानं पश्य(श्य)ति । अमुष्मिन् कुमारे स्वजनानां दर्पणार्पणप्रकारैर्निष्प(ष्ट)लैर्जातिमित्यर्थः ॥१२८॥

हीसुं० दीप्यते किमधिकं सुषमाॄ नोऽमुष्य वा ॄमुषितमन्मथकान्ते: ।  
भूषणानि ॄमृगयन्त इतीव ॄस्फारस्त्वनयनैरिदिमॄङ्गम् ॥१२८॥

( १ ) नः-अस्माकं भूषणानां सातिशायिनी शोभा । ( २ ) कुमारस्य वा । ( ३ ) अपहृतस्मरशोभस्य । ( ४ ) पश्यन्तः । ( ५ ) दीप्यमानमणिनेत्रैः । ( ६ ) कुमारशरीरम् ॥१२८॥

हील० दीप्य० । भूषणानि अस्याङ्गं स्फारस्त्वैरेव नेत्रैः पश्यन्तीव । नोऽस्माकं शोभाधिका एतस्य वा इतीव ॥१२९॥

हीसुं० ॄतद्विभूषणमणीनिकुरम्बैः ॄस्पर्द्धिभिष्ठैः( : प्र )तिभटैरिव ॄभूत्या ।  
प्राप्य ॄतमृधधरां दधिरे ॄस्वज्योतिरङ्गुरसुरेन्द्रधनूषि ॥१२९॥

( १ ) कुमाराभरणस्त्विनि करैः । ( २ ) स्पर्द्धा कुर्वद्धिः । ( ३ ) वैरिभिः । ( ४ ) लक्ष्म्या ।  
( ५ ) कुमारस्त्वपसङ्ग्रामभूमीम् । ( ६ ) निजकान्तिप्ररोहस्त्वपेन्द्रचापाः ॥१२९॥

हील० अन्योन्यं स्पर्द्धावद्विद्विरभरणरलैः कुमार एव सङ्ग्रामभूमीं प्राप्य स्वज्योर्तीषि एव सुरेन्द्रचापा धृताः ।  
यथा भट्टेधर्नूषि धृ(ध्रियन्ते ॥१३०॥

हीसुं० ॄभूरुहैर्विहैसितैरिव ॄकुञ्जःॄसौरभैरिव ॄसरोरुहपुञ्जः ।  
ॄसान्दचन्दकिरणैरिव ॄदोषा भूषणैरपुषदेष ॄविभूषाम् ॥१३०॥

'इति कुमारशृङ्गारः ।

( १ ) वृक्षैः । ( २ ) स्मितैः । ( ३ ) वनम् । ( ४ ) परिमलैः । ( ५ ) कमलव्रजः । ( ६ )  
ज्योत्स्नाभिः । ( ७ ) रात्रिः । ( ८ ) शोभाम् ॥१३०॥

हील० भूरु० । एषः शोभां बिभर्ति स्म । शेषं सुगमम् ॥१३१॥

1. इति दीक्षासमये हीरकुमारस्य शङ्गराभरणादिवर्णनम् हील० ।

- हीसु० निर्जितेन यशसा ॑सितभासा ॒प्राभृतीकृतमि॑वैत्य ॒नभस्तः ।  
आनयन्नथ तुरङ्गममुष्यारोहणार्थं मनघस्य मनुष्याः ॥१३१॥  
( १ ) चन्द्रेण । ( २ ) ढौकितम् । ( ३ ) आगत्य । ( ४ ) गगनात् । ( ५ ) प्रशस्य । १३१॥
- हील० नग अस्यारोहणार्थं अश्वं आनयन्ति । उत्प्रेक्ष्यते । यशः॒श्वेत्यश्रिया जितेन चन्द्रेण आकाशादागत्य  
ढौकितमिव ॥१३२॥
- हीसु० ॑यन्नभस्वदतिपातिरयेन ॒न्यङ्कतेन ॑विनतातनयेन ।  
॒तत्तुलां ॑कलयितुं ॒बलिदस्युः ॑सेवनाम्॒गमि ॑यानतयेव ॥१३२॥  
( १ ) तुरगस्य वातजित्वरवेगेन । ( २ ) जितेन ( ३ ) गस्छेन । ( ४ ) तद्वेगसाम्यम् । ( ५ )  
प्रामुम् । ( ६ ) कृष्णः । ( ७ ) सेवाम् । ( ८ ) प्रापितः । ( ९ ) वाहनत्वेन ॥१३२॥
- हील० यस्य तुरगस्य समीरणजयकृदयेन(ण) जितेन गरुडेन तुरावेगसादृश्यं प्रामुं वाहनत्वेन कृष्णः सेवां  
गमित इव ॥१३३॥
- हीसु० यो ॑दृशा भुवि पुनर्दिवि ॒फालैर्ना॑गवेशमनि ॑खुरोत्खननैश्च ।  
॑स्फूर्तिभिस्तत इतस्त्रिजगत्यां ॑स्वाङ्ककारमिव पश्यति जेतुम् । १३३॥  
( १ ) दर्शनेन । ( २ ) उच्चैरुत्पत्तनलक्षणेन । ( ३ ) पाताले । ( ४ ) नखविलिखनैः । ( ५ )  
स्वबलोर्जितैः । ( ६ ) आत्मनो जैत्रमल्लम् । “दूरं गौरगुणैरहङ्कितभृतां जैत्राङ्ककारे चर(रे)ती”  
ति नैषधे ॥१३३॥
- हील० यो दृशा० । कोऽश्वः इतस्तः संस्फुरणैः कृत्वा जगत्ये स्वस्पर्द्धिनं पराभवितुं पश्यतीवः ॥१३४॥
- हीसु० स्पर्द्धयाऽ॑कर्कतुरगान्त्वं॒जिगीषून्धूननेन॑ शिरसः स॑मराय ।  
॑अङ्ककारविभवाभिभवाहंपूर्विकाभिरह्य?]यमाह्यतीव ॥१३४॥  
( १ ) रविहयान् । ( २ ) निजं जेतुमिच्छन् । ( ३ ) कन्धराकम्बकरणेन । ( ४ ) सङ्ग्रामाय ।  
( ५ ) जैत्रमल्लशोभापराभवकरणोद्भूताभिमानेन । ( ६ ) आकारयति ॥१३४॥
- हील० उत्प्रेक्ष्यते । सूर्योश्चान् प्रति सङ्ग्रामाय समस्तकधूननेन अयं तुरङ्ग आह्यतीव । काभिः ?  
स्वजैत्रप्रतिमल्लस्य विभवस्य योऽभिभवस्तेनाहंपूर्विका गर्वविशास्ताभिराकारयतीव ॥१३५॥
- हीसु० ॑आत्मफेनहरिचन्दनसान्द्रस्यन्दर्चनविधाभिरिवाव्वा॑ ।  
॑पत्प्रहारभव॑मम्बुधिनेमेः स्वापराधम्॑धरीकुरुते॑यः ॥१३५॥  
( १ ) निजमुखलालाफेनस्तपश्रीखण्डस्त्रिग्निग्निधि इव पूजाविधिभिः । ( २ ) तुरगः । ( ३ )  
चरणताङ्गनजनितम् । ( ४ ) भूमेः । ( ५ ) शामयति । निवारयति । ( ६ ) हयः ॥१३५॥
- हील० आत्म० । योऽव्वा॑ स्वास्यलाला एव श्रीखण्डस्य स्त्रिग्निधा ये स्यन्दा-रसा द्रवा वा तैः पूजनप्रकारैः  
पदप्रहारभवं स्वापराधं अम्बुधिनेमेभूमेः क्षामयतीव ॥१३६॥

- हीसुं० १वृत्तशात्रवतुरङ्गममुख्यान्वै॒भवेन अपरिभूय तुरगा(ङ्गा)न् ।  
२स्कन्धकेसरसटाकपटात्तच्चिह्नघामरमिवायमधत्त ॥१३६॥
- ( १ ) इन्द्रस्योच्चैःश्रवःप्रमुखान् । ( २ ) शोभया । ( ३ ) जित्वा । ( ४ ) स्कन्धप्ररूढ-  
केशनिकरव्याजात् । ( ५ ) जयसूचकम् । "मिषेण पुच्छस्य च केसरस्य चे" ति नैषधे ॥१३६॥
- हील० वृत्र० । इन्द्राश्मुख्यान् तुरङ्गान् जित्वा स्कन्धे प्ररूढानां केसरश्रेणीनां मिषात् अयं तस्य जयस्य  
चिह्नं चामरं बिर्भर्ति स्म ॥१३७॥
- हीसुं० १रोहिणीकमलिनीरमणाश्वा॒न्स्वोपरिस्थितिजुषः सुष्ठैमाभिः ।  
निर्जिगीषुरिव २निर्जरमार्गे ३फालकेलिमयमातनुते स्म ॥१३७॥
- ( १ ) चन्द्ररवितुरगान् । ( २ ) ऊर्ध्वगामित्वेन निजोपरिस्थितान् । ( ३ ) सातिशायिशोभाभिः ।  
( ४ ) गगने । ( ५ ) उच्चैरुल्ललनक्रीडाम् ॥१३७॥
- हील० चन्द्रसूर्ययोः अशान् जेतुमिषुरिवायं आकाशमार्गे उच्चैरुल्ललनस्य गतिविशेषस्य विलासं आतनुते स्म  
॥१३८॥
- हीसुं० १अर्जितानि गरुडस्य च अगत्या निर्जर्यैर्हरिहरेश्वरैविभूत्या ।  
२उद्गिरन्निव यशांसि ३हरिर्यष्टेऽ( : फे )नपिण्डपटलीकपटेन ॥१३८॥
- ( १ ) उपार्जितानि । ( २ ) गमनेन । ( ३ ) इन्द्राश्वस्य । ( ४ ) स्वलक्ष्म्या । ( ५ ) प्रकटीकुर्वन् ।  
( ६ ) अश्वः । ( ७ ) मुखनिर्गतफेनगणदम्भात् ॥१३८॥
- हील० अर्जिं० । गत्या गरुडस्य जये सि(स)ञ्चितानि । पुनर्विभूत्या इन्द्राश्वस्य जये अर्जितानि यशांसि यः ।  
पततफेनपिण्डकपटेन प्रकटीकुर्वन्निवास्ते ॥१३९॥
- हीसुं० आरुरोह १जितजिष्णुहयं तं २श्वैत्यतष्टैऽ( : फ )णिपतिं च ३जयन्तम् ।  
वाजिनं ४कनकवैभवभाजं कै॒टभारिरिव ५नीडजराजम् ॥१३९॥
- १इत्यश्ववर्णनम् ॥
- ( १ ) परिभूतोच्चैःश्रवसम् । ( २ ) धवलतया । ( ३ ) नागेन्द्रम् । ( ४ ) पराभवन्तम् । ( ५ )  
सुवर्णभूषणशोभाफलितम् । ( ६ ) विष्णुरिव । ( ७ ) गरुडम् ॥१३९॥
- हील० आस० । जितेन्द्रहयं तं तुरगं अध्यासामास । यथा कृष्णः पक्षिराजमारोहति ॥१४०॥
- हीसुं० तत्र १भावयतिनष्टु॒( : पु )लकोद्यत्कञ्जुकानणुमहष्टैऽ( : क )टकोघाः ।  
२मुक्तिपत्तनजिघृक्षुमनस्कौत्सुक्यभाज इव राजकुमाराः ॥१४०॥
- ३भूविहारिहयवाहनशस्याऽनेकमूर्तय इवो॒त्सवपश्याः ।  
वाहपृष्ठमधिरुद्ध्य कुमारा आगमन्नपि परे ४जितमाराः ॥१४१॥ युगमम् ॥

1. इति दीक्षासमये कुमाररोहणार्थमानीताश्ववर्णनम् हील० ।

( १ ) भावचारित्रिणः । ( २ ) रोमाञ्छस्फुरत्सन्नाहाः, बहुलैः किरणैः प्रतापैश्च युक्ता[ नां ] वलयानां सैन्यानां च समूहा येषाम् । ( ३ ) शिवनगरं ग्रहीतुमिच्छन्मनस्काः उत्सुकताकलिताः ॥१४७॥

( १ ) महीतलक्रीडत् रेवतस्य प्रकृष्टानेककायाः । ( २ ) उत्सवावलोकिनः । ( ३ ) विजितकन्दर्पाः ॥१४१॥

हील० तत्र० भुविद० । परेऽपि भावचारित्रिणः कुमारा अश्वमारुहां समागताः । पुलक एवोद्युत्सन्नाहो येषां तादृशाः । पुनः प्रचुरकान्तियुक्ता वलयौधा येषां ते । कर्मधारय । एवं विधां मुक्तिनगरीं ग्रहीतुमिच्छु मनो येषां तादृशाः सन्तः उत्सुका राजकुमाराः । इवोप्रेक्ष्यते । भूविहारिण्यः एवं तस्य शस्याः श्लाघ्या मूर्तयः शरीरणि ॥१४१-१४२॥

हीसुं० <sup>१</sup>पद्मिनीप्रियतमो <sup>२</sup>दिवासादौ <sup>३</sup>पावकादिव सहस्रमयूखैः ।

<sup>४</sup>पूरुषैर्निःखिलमण्डलमध्यात्तक्षणादु<sup>५</sup>पगतैष्य( : प)रिवत्रे ॥१४२॥

( १ ) सूर्यः । ( २ ) प्रभाते । ( ३ ) अग्ने: सकाशात् । “दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशन” इति रघुवंशे । ( ४ ) नरैः । “पुरुषः पूरुषो नर” इति हैम्याम् । ( ५ ) समस्तदेशमध्यात् । ( ६ ) आयातैः ॥१४२॥

हील० पद्मिद० । यथा सूर्यः प्रभाते वह्नैः समागतैः किरणैः परिक्रियते । सूर्यो हि सायं स्वकिरणान् वह्नौ निक्षिपति, प्रातर्गृह्णाति इति कविसमयः । तद्वत्सकलदेशजनैः स परिवृतः ॥१४३॥

हीसुं० तत्र <sup>१</sup>तद्वत्तमहो<sup>२</sup>पनतानां <sup>३</sup>मेलकः स्फुरति <sup>४</sup>पञ्चजनानाम् ।

कौतुकेन <sup>५</sup>निजशक्तिदिवृक्षोर्नाकिनिष्क( : कि )मिह <sup>६</sup>कायनिकायः ॥१४३॥

( १ ) कुमारदीक्षामहोत्सवे आगतानाम् । ( २ ) जनसङ्गमः । ( ३ ) मनुष्यानाम्( णाम् ) । ( ४ ) स्वसामर्थ्यं द्रष्टुमिच्छोः । ( ५ ) देहनिवहः ॥१४३॥

हील० तत्रागतजनौघः स्फुरति । उत्प्रेक्ष्यते । वैक्रियलब्धिं द्रष्टुमिच्छोः सुरस्य देहव्रज इव ॥१४४॥

हीसुं० <sup>७</sup>निष्पत्नमदविलोलकपोलास्तत्पुरः समचरन्द्रिरदेन्द्राः ।

<sup>८</sup>विन्द्यभूध इव <sup>९</sup>निर्झरशाली जङ्गमष्क( : क)रणबंहिममाली ॥१४४॥

( १ ) निःसहानवारिच्छ[ ल ]गण्डस्थलाः । ( २ ) विन्द्याद्रिः । ( ३ ) निर्झरणयुतः । ( ४ ) शरीरबाहुल्यधारी ॥१४४॥

हील० निष्प्र० । तस्य पुरः समदा गजाः सञ्चरन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । कायानां बंहिमा-बाहुल्यं मलते-धारयति, तादृशो विन्द्याचलः ॥१४५॥

हीसुं० <sup>१०</sup>स्यन्दनैः स्य<sup>११</sup>दविगानितवातैस्तत्पुरोऽङ्गविलसज्जनजातैः ।

पुस्फुरे <sup>१२</sup>सुरसमूहसनाथैः <sup>१३</sup>क्षमागतैरिव <sup>१४</sup>मरुदथसार्थैः ॥१४५॥

1. ०पगतानां हिम० ।

- ( १ ) रथैः । ( २ ) वेगविजितवातैः । ( ३ ) उत्सङ्घे शोभमानजनसमूहैः । ( ४ ) सुरवर्गयुतैः ।  
 ( ५ ) पृथ्वीसमेतैः । ( ६ ) देवरथैः ॥१४५॥
- हील० स्वन्द० । ऋडस्थितजनैः पुनर्वाताधिकगमनै रथैः शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । देवयुक्तदेवरथैः ॥१४६॥
- हीसुं० १स्वर्णपल्ययनपल्लविताङ्गाः तत्पुरः प्रविचरन्ति तुरङ्गाः ।  
 तत्तुरङ्गविजिताशशशिभास्वद्वाजिनच्छिकः किमु निषेवितुमेता: ॥१४६॥
- ( १ ) सुर्वर्णपर्याणमण्डितकायाः । ( २ ) चन्द्रसूर्यश्चाः ॥१४६॥
- हील० स्वर्ण० । हेमः पर्याणेन मण्डिताङ्गास्तुरङ्गास्तस्य पुरः प्रविचरन्ति । उत्प्रेक्ष्यते । कुमारतुरगजिताः  
 चन्द्ररविहयाः सेवितुमागताः ॥१४७॥
- हीसुं० १मागधा मधुरमङ्गलवाचः प्रोच्चकैरुदचरन्पुरतोऽस्य ।  
 २आह्वयन्त इह( व ) दर्शयितुं किं दिग्महेन्द्रनिवहान्महमेनम् ॥१४७॥
- ( १ ) बन्दिनः । ( २ ) आकारयन्त इव । ( ३ ) दिगीशगणान् । “आखण्डलो दण्डधरः  
 शिखावान्यतिः प्रतीच्या इति दिग्महेन्द्रा” इति नैषधे । ( ४ ) दीक्षोत्सवम् ॥१४७॥
- हील० माग० । मङ्गलपाठका मङ्गलमुच्चरन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । दीक्षोत्सवं दर्शयितुं लोकपालौषं आकारयन्त  
 इव ॥१४८॥
- हीसुं० १गायनैरयमगायि समेतैः ३स्वर्गृहात्किमिह ४तुम्बुरुवर्गैः ।  
 ५अभिः ( ६्य ) षिच्यत सुधाप्य॒वसीये वेणुभिः ६स्त्र॒( श्र ) वसि ७वैणविकौद्यैः ॥१४८॥
- ( १ ) गीतगातृभिः । ( २ ) गीतः । ( ३ ) देवलोकात् । ( ४ ) देवगायनैः । ( ५ ) अभिषिक्ता ।  
 ( ६ ) कुमारसम्बन्धिनि । ( ७ ) कर्णे । ( ८ ) वंशवादकवृद्धैः ॥१४८॥
- हील० गाय० । तुम्बुरुसदृशैर्गायनैर्यो अगायि । वैणविकैरस्य श्रोत्रे सुधा सिक्ता ॥१४९॥
- हीसुं० १घोषणाऽस्य यशसामिव २भेरीभाङ्गतिर्वर्यरचि कैश्चन मार्गे ।  
 किन्नरालिरिव ३वैणिकपदः क्तिः संमदात्तमु४पवीणयति स्म ॥१४९॥
- ( १ ) पठहृष्वनिः । ( २ ) भेरीध्वनिः । ( ३ ) वीणवादकमाला । ( ४ ) वीणया गायति स्म  
 ॥१४९॥
- हील० कैनैर्मार्गे दुन्दुभीभाङ्गरो निष्पादितः । पुनर्वीणवादकस्तं वीणया गायति स्म ॥१५०॥
- हीसुं० १साङ्गजे प्रबलमोहमहीन्दे प्रापिते ३पितृपतेरतिथित्वम् ।  
 यस्य ४चञ्चुपुटचञ्चुरावा ५मङ्गलध्वनितय( म )च्छिकः किमु मुदीणा ॥१५०॥
- ( १ ) समदेन सपुत्रे च । ( २ ) यमप्रायुणताम् । ( ३ ) तालानां प्रकृष्टध्वनयः । ( ४ )  
 मङ्गलगीतय इव । ( ५ ) प्रकटा कृता गीताः ॥१५०॥

- हील० साङ्घ० । तालवादकैः चञ्चुपुटास्तालास्तेषां रुवाः प्रकटीकृताः । उत्प्रेक्ष्यते । सहाङ्गजेन स्मरेण-पुत्रेण  
च वर्तते, तादृशे मोहराज्ञि पञ्चत्वं प्रापिते सति मङ्गलशब्दा इवोदीर्णाः ॥१५१॥
- हीसुं० १ताण्डवं व्यरच्चि २वारवधूभिस्तत्पुराष्ट्रिकः किमु३सुपर्व्ववधूभिः ।  
४तथ्यवत्पॅथिमिथः६७पृथु८मिथ्यायुद्ध९मुद्धतनरैर्निरमायि ॥१५१॥  
( १ ) नृत्यम् । ( २ ) वाराङ्गनाभिः । ( ३ ) देवीभिः । ( ४ ) सत्यमिव । ( ५ ) मार्गे । ( ६ )  
परस्परम् । ( ७ ) बहुलम् । ( ८ ) मृषासङ्ग्रामम् । ( ९ ) उत्कटपुरुषैः, शस्त्रशर्पकारिभिः  
॥१५१॥
- हील० ताण्ड० । देवाङ्गनासदृशाभिर्वाराङ्गनाभिस्तस्य पुरु नृत्यं विरचितम् । पुनरुद्धतपुरुषैर्मार्गे अन्योन्यं  
बहुलं मिथ्यायुद्धं निर्मितम् । यथा उद्धता नराः सत्यं युद्धं विदधते ॥१५२॥
- हीसुं० दुन्दुभिध्वनितिभिर्जयशब्दं तस्य बन्दिवदु॑दीरयतीव ।  
२तगद्गुणानिव॒३मुदा॑४निगदन्ती॑५दन्धवनीति॑६मधुरापि॑७नफेरी ॥१५२॥  
( १ ) उच्चरति स्म ( २ ) कुमारगुणान् ( ३ ) हर्षेण ( ४ ) कथयन्ती ( ५ ) अतिशयेन शब्दायते  
( ६ ) मधुरध्वनिः ॥१५२॥
- हील० दुन्दुभिं० । मदनभेरीशब्दैः कृत्वा जयारवं वदति । अपि पुनर्न फेरी न तद्गुणान्वदति ॥१५३॥
- हीसुं० १क्षात्रियैरिव सुतैर्युवराजोऽ॒लंकृतैष्यैः परिवृतोऽन्यकुमारैः ।  
२प्रस्थिर्ति पथि चकार कुमारोऽ॒३नल्पकल्पितमहेषु॑४सगोत्रैः ॥१५३॥  
( १ ) क्षत्रियाणां सम्बन्धिभिः । ( २ ) भूषितः ( तैः ) । ( ३ ) प्रचचालः । ( ४ ) बहुरचितोत्सवेषु ।  
( ५ ) स्वजनैः । १५३॥
- हील० क्षा० । कुमारे दीक्षायै प्रतस्थे ॥१५४॥
- हीसुं० १हेषितैर्हय॒गणस्य गजानां गर्जितैश्च रथचीकृतिभिश्च ।  
२रोदसी जनरवैरपि॑३शब्दाद्वैतवादकलिते इव जाते ॥१५४॥  
( १ ) “हेषा हेषा तुरङ्गाणां गजानां गर्ज्जर्वंहिते” इति हैम्याम् । ( २ ) अश्वव्रजस्य । ( ३ )  
भूमीनभसी । ( ४ ) केवलं शब्दमये इव सम्पन्ने ॥१५४॥
- हील० हेषि० । हयहेषारवैर्गजगर्जारवै रथचीकृतैरपि पुनर्जनकीलाहलैर्द्यावापृथिव्यौ शब्दमये इव जाते ॥१५५॥
- हीसुं० १रेणुभिः स॒मुदडीयत रङ्ग॒द्वाजिवारणरथाभ्युदिताभिः ।  
२दिक्पतीन्निगदितुं महमत्राऽ॒भूतभाविनमिवोत्सुकिताभिः ॥१५५॥  
( १ ) रजोभिः । रेणुशब्दः लिलङ्गः । ( २ ) उच्चैर्गतम् । ( ३ ) प्रचलदगजहयरथप्रथोत्थिताभिः ।

1. न(न)भेरी हीमु० 2. इति दीक्षाग्रहणप्रस्थाने पुरस्तोर्यत्रिकम् हील० ।

- ( ४ ) इन्द्रादिलोकपालान् । ( ५ ) कथयितुम् । ( ६ ) अजातमनुत्पत्स्यमानम् ॥१५५॥
- हील० रेणु० । रङ्गन्तः उपर्युपरि चलन्तो ये अश्वगजरथास्तेष्य उत्थिताभिः रेणुभिरुद्गीतम् । उत्प्रेक्ष्यते । लोकपालान् न कदाचिज्जातं न कदापि भविष्यन्तं एतादृशं उत्सवं गदितुमुत्कण्ठिताभिः । रेणुशब्दस्त्रिलिङ्गे, अतः स्त्रीलिङ्गे विवक्षितः ॥१५६॥
- हीसुं० १तद्रजादमरभारमैसहायं, स्वेन वीक्ष्य निरपेक्षमहीन्दः ।  
२याचितेन 'जलजन्मभुवेवा'चीकरत्कुलगिरीन्स्वैसहायान् ॥१५६॥
- १इति स्वजनकृतोत्सवः ॥
- ( १ ) तस्मिन्महोत्सवे समागतगजाश्वस्थजनानां भारम् । ( २ ) सोढुमशक्यम् । ( ३ ) निर्गता अपेक्षा परसहा[ यस्य ] यत्र एवं यथा स्यात्तथा एकेनात्मना वोढुमशक्यं भारं ज्ञात्वा । ( ४ ) प्रार्थितेन भारवहनसंविभागिनम् । ( ५ ) विधात्रा । ( ६ ) कारयति स्म । ( ७ ) अष्टौ महाकुलाचलान् । भूमिभारधारिणः । ( ८ ) आत्मनो भारधरणसहायान् ॥१५६॥
- हील० तदग० । तत्समयानीतगजाश्वादिभारं सहायमन्तरा असहायं दृष्ट्वा धात्रा कृत्वा स्वसखा(हा)यान् भूभारेद्वरणक्षमान् कुलाचलान् शेषनागः कारयमास ॥१५७॥
- हीसुं० १तद्विलोकनरसस्तिमितानां चित्रविभ्रममिवोपगतानाम् ।  
२त्पुरालयविलासवतीनां चेष्टितैरिति तदाविरभावि ॥१५७॥
- ( १ ) कुमारदर्शनरसेन निश्चिलीभूतानाम् । ( २ ) आलेख्यविलासम् । ( ३ ) प्रासानाम् । ( ४ ) पत्तनवासिनीनां स्त्रीणाम् । ( ५ ) विलसितैः । ( ६ ) प्रकटीबभूवे ॥१५७॥
- हील० तद्विं० । तन्महालोकनरसेन निश्चिलानां चित्रलिखितानामिव जातानां तत्रगरवास्तव्यवर्णिनीनां चेष्टितैर्विलासितैस्तस्मिन्समये आविर्भूतम् ॥१५८॥
- हीसुं० काचिदीक्षणरसेन बबन्धोद्देष्टितं न निजकुन्तलहस्तम् ।  
कौतुकादिव कलापिकलापश्रीकलापमनुमातुमनेन ॥१५८॥
- ( १ ) विलोकनरागेण । ( २ ) छोटितम् । ( ३ ) स्वकेशपाशम् । ( ४ ) मयूरपिच्छोभासमुदायम् । ( ५ ) अनुकर्तुम् ॥१५८॥
- हील० काचिद्वधू वीक्षणरसेन छोटितं केशपाशं न बबन्ध । उत्प्रेक्ष्यते मयूरबहस्य शोभासमुदयं अनेन केशपाशेनानुमातुमिव ॥१५९॥
- हीसुं० कापि वीक्षणरसत्वरमाणा स्वस्तमप्यधृत मूर्धिन न माल्यम् ।  
२यज्जितेन मदनेन निजौकःस्थायिनोज्जितमिवासमवेत्य ॥१५९॥
- ( १ ) आलोकनरागेण शीघ्रा । ( २ ) पतितम् । ( ३ ) न धृतम् । ( ४ ) मस्तके । ( ५ )

1. इति तत्समयानीतगजाश्वादिभारबाहुल्यम् हील० ।

कुसुमवृन्दम् । (६) कुमारपराभूतेन (७) स्त्रीमन्दिरस्थितेन । (८) त्यक्तम् । (९) ज्ञात्वा ॥१५९॥

हील० कापि मस्तकात्पतितं पुष्पदाम मूर्ध्नि न धृतवती । उत्प्रेक्ष्यते । कुमारेण जितेन स्मरेण त्यक्तं शश्रमित्यवेत्य ॥१६०॥

हीसुं० ॐ हं स पादभरिताद्वर्द्धम् ॥ हासीत्कैः शब्दर्त्म ॥ तमवेः क्षितुमन्या ॥

३पूर्णरागिणमिह प्रविधातुं ॥ श्यामलाशयम् ॥ लंभवतात्कः ॥१६०॥

(१) सिन्दुरपूरितार्धम् । (२) त्यजति स्म । (३) सीमन्तम् । (४) कुमारम् । (५) द्रष्टुम् ।

(६) अतिशायिरागयुक्तम् । (७) मलिनचित्तम् पिशुनम् । (८) समर्थीभवतु ॥१६०॥

हील० हंसो । तं द्रष्टुमुत्सुका काचित्सिन्दूरेणाद्वर्द्धपूरितं सीमन्तं तत्याज । युक्तोऽयमर्थः मलिनमनसं रागरङ्गयुक्तं कर्तुं कः क्षमः ॥१६१॥

हीसुं० भाति॑ मुक्तैः मलिके रभसेनाप्यान्य॒ याद्वद्वृक्तचन्दनचित्रम् ।

३स्पर्द्धजित्वरकलां॑ शिशुसोमोऽ॒ ध्येतुमागत इवैष॑ मुखाब्जात् ॥१६१॥

(१) त्यक्तम् । (२) भाले । (३) औत्सुक्येन । (४) अद्वमेव निर्मितं चन्दनस्य तिलकम् ।

(५) स्वशोभाविद्वेषिजयनशीलचातुरीम् । (६) बालचन्द्रः । (७) पठितुम् । (८) कुमारमुखकमलात् ॥१६१॥

हील० भाति० । कयाचिन्मस्तके अर्धकृतं चन्दनतिलकं त्यक्तं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । स्वविरोधिजैत्र चातुर्यमध्येतुमागतः ॥१६२॥

हीसुं० ३पातुमप्रभु॑ कुमारविभूषां स्वं दृशोद्दृश्य॑ मवेत्य कयाचित् ।

३लोचने इव धृते इतरे॑ स्वश्रोत्रयोः॑ स्मितवतंससरोजे ॥१६२॥

(१) सम्यकूनिरीक्षितुमसमर्थम् । (२) हीरकुमारशरीरशोभाम् । (३) ज्ञात्वा । (४) अन्ये द्वे नयने धारिते । (५) स्वकर्णयोः । (६) विकचावतंसस्य सरोजे कमले ॥१६२॥

हील० पातु० । कयाचित्स्वकर्णविषये विकसितोत्तंसकमले धृते । उत्प्रेक्ष्यते । कुमारशोभां द्रष्टुमक्षमं स्वं दृग्द्वयं ज्ञात्वान्ये नेत्रे धृते ॥१६३॥

हीसुं० राजतः॑ ३श्रुतिपुटे॑ धृतमेकं कुण्डलं च मुखमुत्सुकितायाः ।

३भास्करामृतकराविव॑ पर्वाप्यन्तरेण मिलितौ स्फुटमेतौ ॥१६३॥

(१) कर्णे । (२) औत्सुक्यादेके (देकस्मिन्) कर्णे एकमेव स्वर्णकुण्डलं क्षिप्तम्, अपरं च मुखं द्वे भातेः । (३) सूर्याचन्दमसावेव । (४) अमावास्यां विनापि मिलितौ ॥१६३॥

हील० उत्सुकायाः कस्याश्चित् एकस्मिन्कर्णे धृतं कुण्डलमन्यमुखं एवं द्वे राजतः । उत्प्रेक्ष्यते । अमावास्यां विना मिलितौ एतौ रविचन्द्रौ ॥१६४॥

- हीसुं० 'तद्विदूक्षुरैपराञ्जनयष्ट्यानञ्जे॑ सव्यनयनं न तदन्यत् ।  
 'वामतां भजति यः शिरैतमैव स्यात्तदानन्॑ इतीव विचिन्त्य ॥१६४॥  
 ( १ ) कुमारं द्रष्टुकामा । ( २ ) कञ्जलशि॒श ( श )लाकया । ( ३ ) वामं नेत्रम् । ( ४ ) न दक्षिणम् । औत्सुक्यात् । ( ५ ) प्रतिकूलतां सव्यतां च । ( ६ ) कृष्णता । ( ७ ) तस्य मुखे ॥१६४॥
- हील० तद्विदृ० । कुमारं द्रष्टुमिच्छुः काचिदञ्जनशलाकया वामं नयनमानञ्जे न दक्षिणम् । युक्तं यत्प्रतिकूलतां श्रयते तदास्ये श्यामतैव युक्ता ॥१६५॥
- हीसुं० काचना॑ तिरभसान्मृ॒गनाभीवारिणा॑ व्यलिखदेक॑ कपोलम् ।  
 मन्मुखं॑ जितशशी॑ श्रयतेऽसौ॑ गण्डमूर्तिरिति कीव( ? )॑ विवक्षुः ॥१६५॥  
 ( १ ) अत्यौत्सुक्यात् । ( २ ) कस्तूरीद्रवेण । ( ३ ) चित्रयति स्म । ( ४ ) एकमेव गण्डस्थलम् ।  
 ( ५ ) पराभूतचन्द्रमाः । ( ६ ) कपोलकायः । ( ७ ) वक्तुमिच्छुः । लोकानां पुरस्तादिति गम्यम् ॥१६५॥
- हील० काचन कस्तूरिका[वा]रिणा कपोलं चित्रयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । इति कारणादेव । इतीति किम् ?  
 अयं चन्द्रष्कः ( : क )पोलमूर्तिर्मन्मुखं सेवते इति वक्तुमिच्छुः ॥१६६॥
- हीसुं० 'तद्विभाव्यत( वन )रसव्यवसाया॑ नागवल्लिदलविभ्रमतोऽन्या॑ ।  
 कापि॑ केलिकमलं॑ निजवक्त्रस्पर्द्धयेव॑ कवलीकुरुते स्म ॥१६६॥  
 ( १ ) कुमारावलोकने राग एव व्यापारो यस्याः । ( २ ) ताम्बूलवल्लीपत्रबुद्ध्या । ( ३ )  
 ऋडापद्मम् । ( ४ ) वदनेन सर्वं स्पर्धा करोतीति हेतुः । ( ५ ) खादति स्म ॥१६६॥
- हील० तद्विलोकनव्यापारं या कापि बीटकभ्रान्तेः ऋडाकर्जं खादति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । स्वमुखेन सहेष्यया ॥१६७॥
- हीसुं० काचन॑ व्यधित॑ काञ्जनकाञ्ची॑ कण्ठपीठलुठितां॑ रभसेन॑ ।  
 'इन्दुजां मिलितुम॑ ब्जपिशङ्गां॑ यन्मुखाङ्गपितृसोममिव॑ ताम् ॥१६७॥  
 ( १ ) चकार । ( २ ) स्वर्णमेखलाम् । ( ३ ) गलकन्दलस्थायिनीम् । ( ४ ) औत्सुक्येन । ( ५ )  
 रेवानाम्नीं नदीम् । ( ६ ) कमलपरागपीतीभूताम् । ( ७ ) कुमारमुखमेवकायो यस्य तादृशं  
 पितरं चन्द्रम् । ( ८ ) आगताम् ॥१६७॥
- हील० काचन सुवर्णमेखलां कण्ठे क्षिसां चकार । उत्प्रेक्ष्यते । यस्य मुखमेवाङ्गं यस्य तादृशं पितरं चन्द्रं  
 मिलितुमागतां, अब्जैरर्थात्परागैः पीतां रेवामिव ॥१६८॥
- हीसुं० कापि॑ मौक्तिकलतां॑ स्वकटीरे॑ विभ्रमादधृत॑ सारसनस्य॑ ।  
 'वेशमनीव॑ रचितां॑ रतिर्भर्तुः॑ 'कुन्दकुडमिलितवन्दनमालाम् ॥१६८॥

(१) मुक्ताहारम् । (२) कटीतटे । (३) बुद्ध्याः । (४) मेखलायाः । (५) गृहे । (६) अवलम्बिताम् । (७) कामस्य । (८) मुचुकन्दमुकुलकलितमङ्गलमालाम् ॥१६८॥

हील० कपि मणिमेखलाया भ्रमात् स्वश्रोणौ हारं धृतवती । इवोत्प्रेक्षयते । कामस्य गृहद्वारे मुचुकन्द-  
मुकुलकलितां वन्दनमालां रचिताम् ॥१६९॥

हीसु० १हारचारिमकुचौ २परया ३नो ४वाससा५ सरभसं ६पिदधाते ।

७माल्यशालिकलशद्वितयोव ८श्रेयसे ९पथि १०धृता ११व्रजतोऽस्य ॥१६९॥

(१) मुक्तालतायाश्चारुत्वं ययोस्तादृशौ स्तनौ । (२) अन्यया स्त्रिया । (३) नो इति निषेधे ।  
“अमानोना प्रतिषेध” इति वचनात् । (४) चस्त्रेण (५) सोत्सुकम् । (६) पिहितौ । (७)  
पुष्पमालाकलितकुम्भयुगली । (८) कल्याणाय । (९) मार्गे । (१०) धारिता । पुरस्कृतेव ।  
(११) मार्गे गच्छतोऽस्य कुमारस्य ॥१६९॥

हील० हारेण चारुता ययोस्तादृशौ स्तनौ कयाचित् पिहितौ । उत्प्रेक्षयते । गच्छतोऽस्य श्रेयसे मार्गे कुम्भद्वयी  
धृता ॥१७०॥

हीसु० १नूपुरं २निजभुजे ३रभसेनाऽ४जीघट५त्कटकविभ्रमतोऽन्या ।

६वैभवै७भुजभवै८भिभूतं ९शीलितुं किमु मृणालमुपेतम् ॥१७०॥

(१) मञ्जीरम् । (२) स्वबाहौ । (३) उत्सुकत्वेन । (४) क्षिपति स्म । (५) वलयबुद्ध्या ।  
(६) बाहुसञ्चातशोभया । (७) जितम् । (८) कमलनालं सेवितुमागतमिव ॥१७०॥

हील० नूपु० । अन्या वलयभ्रमात् मञ्जीरं भुजे घटयामास । परिधृतवतीत्वर्थः । उत्प्रेक्षयते । भुजेन परिभूतं  
मृणालं सेवितुमागतम् ॥१७१॥

हीसु० १तदगवेषणरसोत्सुकचेताः काचना२ध्वनि धृत३श्लथबन्धम् ।

४अम्बरं ५हरिणदृक्स्वकरेणा६लम्ब्य ७संचरति ८चन्द्रकलेव ॥१७१॥

(१) कुमारावलोकनरागेणोत्सुकीभूतचित्ताः । (२) मार्गे । (३) शिथिलीभूतबन्धनम् ।  
(४) वस्त्रं गगनं च । (५) वनिताहस्तेन किरणेन वा । (६) आश्रित्य । (७) व्रजति ।  
(८) शशिलेखेव ॥१७१॥

हील० तन्महेक्षणोत्सुकमनस्का काचिद्धृतं शिथिलं बन्धनं येन तादृशं परिधानं हस्तेनालम्ब्य सञ्चरति ।  
चन्द्रलेखाम्बरं स्वकिरणेनालम्ब्य सञ्चरति ॥१७२॥

हीसु० अन्यया१द्वरचितात्मकलापात्पातिमौक्तिकभैर॒रभसेन ।

३सृज्यते स्म ४विधये किमु ५लाजोत्क्षेपणा वरयितु६व्रतलक्ष्म्याः ॥१७२॥

(१) अद्विप्रोतनिजमेखलायाः सकाशात्पतनशीलमुक्ताफलनिकरैः । (२) औत्सुक्येन । (३)  
क्रियते स्म (४) आचारार्थम् । (५) लाजानामक्षतानां वद्धपनम् । (६) चरणश्रीपरिणेतुः

॥१७२॥

- हील० अन्यथा अर्द्धप्रोतो यो निजकलापे मेखला, तस्मादासामस्त्येन पातुकानि मौकिकानि, तेषां ब्रजैष्ठः  
(: कृ)त्वा ब्रतलक्ष्मीपरिणेतुः कुमारस्य आचारार्थं वर्द्धापनं क्रियते ॥१७३॥
- हीसु० काचिद॑र्भकमपास्य ३धयन्तं ४यान्त्य॒वेदिक्षितुम्५मुं ७स्वगवाक्षम् ।  
८वेशमनि ९स्तननिपातिपयोभिं० जाह्नवीं११ जनयतीव१२ नवीनाम् ॥१७३॥  
( १ ) बालकम् । ( २ ) त्यक्त्वा । ( ३ ) स्तन्यं पिक्कन्तम् । ( ४ ) ब्रजन्ती । ( ५ ) विलोकितुम् ।  
( ६ ) कुमारम् । ( ७ ) आत्मगृहसम्बन्धिगवाक्षम् । ( ८ ) मन्दिरे । ( ९ ) निजकुचकुम्भ-  
निष्पन्नदुर्घैः । ( १० ) गङ्गाम् । ( ११ ) उत्पादयतीव । ( १२ ) नव्याम् ॥१७३॥
- हील० काचिन्नन्दनं धयन्तं त्यक्त्वा कुमारं द्रष्टुं स्वगवाक्षं यान्ती सती स्तनयोः पतिद्विरुद्धैर्गृहे नवीनां गङ्गां  
कृतवती ॥१७४॥
- हीसु० १प्रासरूपविभवं॒ वहते यः स्याऽल्किमत्रै॒ स ५जडैरुषङ्गी ।  
७अर्द्धधौतमितरा॒ स्वमिं॒ तीवोत्कृ० णिठता॑११ तरलदृकक्रृ॒ ममौ१३ ज्ञात् ॥१७४॥  
( १ ) अधिगतसम्यगूपत्वेन शोभां पण्डितत्वेन श्रियं वा । ( २ ) धारयति । ( ३ ) कथम् । ( ४ )  
जगति । ( ५ ) डलयोरैक्यान्नीर्मूर्खैश्च सार्द्धम् । ( ६ ) सङ्गमवान् कृतसङ्गे भवति । अपि तु  
स्यादेव ( ७ ) अर्द्धप्रक्षालितम् । ( ८ ) अन्या युवती । ( ९ ) इति हेतोरिव । ( १० )  
कुमारालोकनोत्सुकमना । ( ११ ) चपललोचना । ( १२ ) चरणम् । ( १३ ) त्यजति स्म  
॥१७४॥
- हील० प्राप्त० । यः क्रमः प्राप्तरूपस्य काञ्छनस्य कवेर्वा सम्पदं धत्ते, स जंडैर्मुखैर्जलैर्वा सह कृतसङ्गष्ठ-  
(: क)थं स्यादितीवार्द्धधौतं क्रमं काचिज्जहति स्म ॥१७५॥
- हीसु० १स्फटिकावनिषु॒ वेशमनि॑ ३यान्त्या॒ वीक्ष्य॑ ४यावकपदा॒ न्य॑ परस्याः ।  
६मुग्धभृङ्गविहौ० जलरोहदक्तपङ्कजधियेव॑ दधावे ॥१७५॥  
( १ ) स्फटिकरत्नबद्धासु भूमीषु । ( २ ) गृहे । ( ३ ) ब्रजन्ती( न्याः ) । ( ४ ) अलक्कक-  
रसार्दपदानि । ( ५ ) अन्यस्याः स्त्रियः । ( ६ ) मुग्धैर्भृमरपक्षिभिः । ( ७ ) नीरान्तरुदगच्छको-  
कनदध्रान्त्या । ( ८ ) तत्सन्मुखं धावितम् ॥१७५॥
- हील० स्फटिकभुवि अलक्ककपदानि दृष्ट्वा कोकनदध्रमेण भृङ्गा एव विहङ्गासैर्धावितम् ॥★१७६॥
- हीसु० २काप्य॑लक्ककधियो॒ त्सुकिताङ्गी॑ ३पादयोर॒ कृत॑ ४चन्दनचर्चाम् ।  
६चन्दिकां॑ शशभृता॑ सखितायै॑ ८क्तपत्कमलयोः॑ १० प्रहितां॑ किम् ॥१७६॥  
( १ ) यावकरसभ्रान्त्या । ( २ ) कुमारदर्शनरसैकतानमनाः । ( ३ ) चरणयोः । ( ४ ) कृतवती।

1. नि परस्याः हिमु० । 2. काप्यलक्ककधियोत्सुकिता पत्पदयोरकृत चन्दनचर्चाम् । रक्तयोर्न सविधे प्रहितां स्वां  
चन्दिकां शशभृता सखितायै हीमु० ।

(५) चन्द्रनसस्य विलेपनम् । (६) चन्द्रज्योत्सनाम् । (७) चन्द्रेण । (८) मैत्र्यार्थम् । (९) अनुरक्तयोश्शरणपङ्कजयोर्विषये । (१०) प्रेषिताम् ॥१७६॥

हील० काप्य० । काचिदुत्सुकिता अलक्षधिया चन्द्रनमण्डनं अकरेत् । उत्प्रेक्ष्यते । स्वोपरि रागवशैः पत्कजयोः सख्याय प्रेषितां चन्द्रिकां न ? अपि तु ज्योत्स्नेव । नकारे मौलार्थमेव वक्ति ॥\*१७७॥

हीसुं० दर्शयन्त्यं परपदामुखी तं कापि ॑पाणिमकरोन्निजमुच्चैः ।  
॒व्योमपल्वलमिव ॑स्मयमानोन्नालताम्रनलिनं ॑प्रणयन्ती ॥१७७॥

(१) अन्या स्त्रीः । (२) हस्तम् । (३) गगनतडगम् । (४) विकचानि अत्युच्चमृणानि रक्तानि कमलानि यत्र तादृशम् । (५) कुर्वन्तीव ॥१७७॥

हील० कापि कजमुखीं स्वपाणिमूर्ध्वमकरेत् । उत्प्रेक्ष्यते । विकसितमुत्रालं रक्तकजं यस्मिन् तादृशं गगनतट्यकं कुर्वन्ती(ती)व ॥१७८॥

हीसुं० ॑सुभूवा॒मिह ॑महे ॑जगृहे किं ॑चक्षुषैव ॑नि॑खिलेन्द्रियवृत्तिः ।  
॒ज्योतिर्चिरिव ॑च॒ण्डरुचा॑यत्क्वापि सा॑प्रभवति स्म न॑किञ्चित् ॥१७८॥  
॑इति पौराङ्गनाचेष्टितानि ॥

(१) स्त्रीणाम् । (२) अस्मिन् । (३) दीक्षामहोत्सवे । (४) गृहीता । (५) नेत्रेणैव । (६) चतुर्णा॑ श्रवण-नासिका-रसना-स्पर्शनानामामिन्द्रियाणां व्यापारः । (७) ग्रह-नक्षत्र-तारककान्तिः । (८) सूर्येन(ण) । (९) कुत्रापि । (१०) समर्थो भवति । (११) किञ्चिदिति श्रोतुमाघ्रातुमास्वादयितुं स्पर्षुमर्पीति ॥१७८॥

हील० स्त्रीनेत्र॑खिला वृत्तिर्गता । यथा सूर्येण नक्षत्राणां वृत्तिर्गृहीता । यतश्चतुरिन्द्रियवृत्तिः श्रोतुमाघ्रातुं आस्वादयितुं स्पर्षु न क्षमी बभूव ॥१७९॥

हीसुं० ॑रामणीयकतिरस्कृतकामं तं ॑निपीय नयनैष्य॑( : प )थि कामम् ।  
॑बल्कीकुलसरखीमिव वाणीमि॑त्यथो युवतिराजिरभाणीत् ॥१७९॥

(१) वपुःकपनीयत्वेन जितस्मरम् । (२) सादरमवलोक्य । (३) मार्गे । (४) अतिशयेन वीणाव्रजवयसीमिव । (५) अथ-कुमारस्य सम्यग्विलोकनानन्तरम् ॥१७९॥

हील० राम० । तं दृष्ट्वा वीणावंशसरखीमिव वाचं युवतिश्रेणिर्बाषे ॥१८०॥

हीसुं० ॑साम्प्रतं तदिह ॑शैशवशेषः सा॑म्प्रतं ॑व्रतजिघृक्षु॑रयं यत् ।  
अन्यथा कथमसाव॑नुकुर्यादात्म॑ना जगति ॑जम्बुकुमारम् ॥१८०॥

(१) युक्तम् । (२) किञ्चिद्विद्यमानबाल्यावस्था । “प्रणीतवान्॑शैशव॑शेषवानय”मिति

1. सकलेन्द्रिय० हीसु० । हीलप्रतौ ‘सकलेन्द्रिय’, इत्यस्य उपरि चतुरिन्द्रिय इति टि० । 2. भानुमता हीसु० ।

3. इति पौराङ्गनानां कुमारदर्शनौत्सुक्याद्विविधचेष्टिवर्णनम् हील० ।

नैषधे । ( ३ ) अधुना ( ४ ) दीक्षां ग्रहीतुकामः । ( ५ ) हीरकुमारः । ( ६ ) अनुकुर्यात् । सदृशीभवेत् । ( ७ ) स्वेन । ( ८ ) जम्बूस्वामिनम् ॥१८०॥

हील० साम्प्र०। इदानीं त्रयोदशवर्षीयोऽयमास्ते । अतो व्रतग्रहणं साम्प्रतं युक्तम् । कथमन्यथा जम्बूकुमारसदृशो भवेत् ॥१८१॥

हीसुं० ॐ अङ्गजाभिलषनो ( णो ) द्वककोपाचान्तचित्तचतुराननशापात् ।

३ रुद्रनेत्रशिखिनीब॑ निपत्या॒ दत्त जन्म कमनष्ठ( : प )रमेतत् ॥१८१॥

( १ ) पुत्राः तिलोत्तमाया वाज्छना कामक्रीडाभिलाषस्तस्मादुत्पन्नो यः क्रोधस्तेनाकुलं मनो यस्य तादृशस्य विधातुः शापात् । ( २ ) शम्भुभाललोचनवह्नौ । ( ३ ) पतित्वा । प्रज्वल्य । ( ४ ) कामः अन्यं भवं गृहीतवान् ॥१८१॥

हील० अङ्ग० । तिलोत्तमाया अभिलषनो(णो)त्पत्रकोपेन वान्तं पूरितं चित्तं यस्य तादृशो ब्रह्मणः कोपात् वहिमये हरनेत्रे झाप्यां दत्वा मारः एतन्मिषातिक्ति द्वितीयं जन्म आदत्त ॥१८२॥

हीसुं० ॐ अद्विजाद्वृद्धघटनाङ्गितमूर्त्या॑ व्रीडमाकलयता॒ गिरिशेन ।

४ प्रैयरूपकवती॑ तनुरेतत्कैतवात्किमु॒ रीक्रियते स्म ॥१८२॥

( १ ) पार्वत्याः शरीराद्देवेन योजनया कलितकायेन । ( २ ) लज्जाम् । 'व्रीड'शब्दः अकारान्तोप्यस्ति । "त्वयि स्मरव्रीडसमस्ययानये" ति नैषधे । ( ३ ) शम्भुना । ( ४ ) प्रियरूपस्य भावः प्रैयरूपकम् । मनोज्ञादित्वाद्गृहण् । प्रैयरूपकविशेषनिवेशै॒रिति नैषधे । ( ५ ) कुमारकायमिषात् । ( ६ ) अङ्गीक्रियते स्म ॥१८२॥

हील० अ० । पार्वत्या सह अद्वाङ्गत्वेन लज्जता रुद्रेण । प्रियरूपस्य भावः प्रैयरूपकं, तद्वती, तनुः शरीरमेतन्मिषात्प्रकटीकृता ॥१८३॥

हीसुं० ५ त्यक्तपूर्ववपुषा॑ निजयोषाविप्रयोगजनितान्तरदुःखात् ।

६ उर्वसीप्रियतमेन किमेतत्कैतवेन जगृहे तनुरन्या ॥१८३॥

( १ ) उज्जितं पूर्वं पुरुरवालक्षणं शरीरं येन । ( २ ) स्वप्रिया उर्वसीनामी तस्या विरहेणोत्पन्न-मनःखेदात् । ( ३ ) ये॑ ( ऐ॒ ) लेन ॥१८३॥

हील० त्यक्त० । स्वख्रीवियोगात्यक्तकायेन पुरुरवसा एतलक्षणः कायो गृहीतः ॥१८४॥

हीसुं० ७ दस्वयोष्किं॑ किमयमन्यतमोऽस्मिन्नागतस्त्रिं॒ दिवतः॑ क्षितिपीठे ।

८ निष्कलङ्क इव॑ विष्णुपदस्योपास्तिभिष्कु॒ ( : कु॑ ) मुदिनीदयितो वा ॥१८४॥

( १ ) अश्विनीपुत्रयोः । ( २ ) द्वयोर्मध्ये कक्षन् । ( ३ ) स्वर्गात् । ( ४ ) कलङ्करहितः । ( ५ ) नारायणपदसेवनाभिः । ( ६ ) चन्द्रः ॥१८४॥

1. इति हीरकुमाररूपदर्शनात्पत्तनगरसनागरीणां मनसि विचारणा हील० ।

- हील० दस्त्र० । अश्विनीजयोर्घ्ये अयं एकः कक्षिदागतः । अथवा निरङ्गश्चन्द्रः ॥१८५॥
- हीसुं० १<sup>१</sup>माद्यसि स्मर जगज्जयिनीभिर्हैतिभिष्क( : किं)मु हताश ! वशाभिः ।  
संश्रिते हि चरितश्रियमस्मिस्त्वमदोऽयम् वकेशिवदासीत् ॥१८५॥  
( १ ) मत्तो भवसि । ( २ ) विश्वजयनशीलाभिः । ( ३ ) शस्त्रैः । ( ४ ) निर्दलिताभिलाष ।  
( ५ ) स्त्रीभिः । ( ६ ) तवाभिमानः । ( ७ ) निष्कलद्वुम् इव ॥१८५॥
- हील० माद्य० । हे हताश ! जगज्जैत्रप्रहरणसदृशाभिर्वशाभिष्क( : किं) माद्यासि । यतोऽस्मिन् चारित्रं श्रिते  
त्वमदो वन्ध्यतरुरिव जातः ॥१८६॥
- हीसुं० २ैत्यमन्त्यमरुतां विजये त्वं साहस्रिक्यमथ मोह ! जहीहि ।  
४भूधरं हरिरिवाशनिनासौ संयमेन निहनिष्यति यत्त्वाम् ॥१८६॥  
( १ ) असुरनसुराणाम् । ( २ ) साहस्रकर्मसत्त्वं बलवत्तां वा । “अहो मदीयस्तव साहस्रिक्य”-  
मिति नैषधे । ( ३ ) त्यज । ( ४ ) शैलम् । ( ५ ) शक्रवज्रेण । ( ६ ) चारित्रेण ॥१८६॥
- हील० दैत्य० । हे मोह ! सर्वप्राणिविजये सत्वं मुच्च । यत् यस्मात्वां चारित्रेनाणायं हनिष्यति ।  
यथाद्रिमिन्द्रो वज्रेण हन्ति ॥१८७॥
- हीसुं० १संसृते ! व्रतरमानिरतोऽसौ दुःप्रवृत्तिमिव यत्त्यजति त्वाम् ।  
५निष्फला तदबलैव परस्यां सक्तमानसपतेरपमानात् ॥१८७॥  
( १ ) संसार ! । ( २ ) चारित्रश्रियामासक्तमनः । ( ३ ) दुष्टवार्ताम् । ( ४ ) वन्ध्या । ( ५ )  
अन्यवनितायाम् । ( ६ ) आदृतचित्तकान्तस्य ॥१८७॥
- हीसुं० हे संसार ! हीरकुमारः दुर्मार्गमिव त्वां त्यजति । तस्मात्वं निष्फलैव । यथान्यस्त्रियां आसक्तपते-  
रपमानात् स्वस्त्रीः सम्भोगानवासेनिरानन्दा स्यात् ॥१८८॥
- हीसुं० राग ! सागर इवासि निपीतोऽनेन पीततटिनीदयितेन ।  
३दर्प ! खर्परकरीभव सर्पन्दङ्कवद्युधि जितो यदनेन ॥१८८॥  
( १ ) चुलुकीकृतः । ( २ ) अगस्तिना । ( ३ ) अभिमानः । ( ४ ) घटादिकपालम् ।  
ठिक्करमित्यर्थः । पाणौ कुरु । ( ५ ) द्रमको भिष्ठुरिव । ( ६ ) कुमारेण ॥१८८॥
- हील० हे राग ! त्वमगस्तिसदृशेनानेन समुद्र इव पीतः । पुनरनेन जित हे दर्प ! त्वं खर्परं करे कृत्वा भिक्षां  
मार्ग्य ॥\*१८९॥
- हीसुं० मानमान[ न ]सरोरुहनत्या मानिनीजन ! जहीहि जहीहि ।  
४मोहनाहूमणिनेव मह( न )स्वी न व्यमु( मो )हृत या(यतो) भवतायाम् ॥१८९॥  
( १ ) लज्जया वदनपद्मनभीकरणेन । ( २ ) स्त्रीलोकः । ( ३ ) त्यज त्यज । ( ४ ) मोहकृदलेन ।

1. अथ काममोहादीनामुपालभाः हील० । 2. पतिनेव हीमु० ।

(५) विशिष्टप्रभोवाच(न्), सुरादिभिरख्षोभ्यमनाः । (६) मोहितः ॥१८९॥

हील० मान० । हे मानिनीजन ! मुखं नीचैः कृत्वा मानं त्यज त्यज । यतः श्रीमता अयं न मोहितः । यथा मोहकृदरत्नेन जनो मोह्यते ॥१९०॥

हीसुं० १स्वर्णजालकविमानगतानां २सुधुवां भ्रुव इवाप्सरसां सः ।  
३आननामृतरुचीभ्य ४उदीतास्ताः सुधा इव कथाष्पि( : पि )बति स्म ॥१९०॥

<sup>१</sup>इति पुराङ्गनानां मिथो वार्ताः ।

(१) कनकघटितगवाक्षरूपविमानेषु प्राप्तानाम् । (२) स्त्रीणाम् । (३) मुखचन्द्रेभ्यः । (४) उदगतां( ताः ) ॥१९०॥

हील० स्वर्ण० । पृथिव्याः सुराङ्गनानामत एव स्वर्णगवाक्षविमानस्थितानां मुखचन्द्रेभ्यो निर्गताः सुधा इव कथाः स सादरं श्रुणोति स्म ॥१९१॥

हीसुं० १नीरदोऽवनिभृतामिव तापं वृष्टिभी २रजतहेममयीभिः ।  
सोऽर्थिनां ४प्रमथयन्यथि ५दौस्स्थ्यं संचचार ६पुटभेदनमध्ये ॥१९१॥

(१) मेघः । (२) गिरीणाम् । (३) स्वर्णरूप्यप्रचुराभिः । (४) निवारयन् । (५) मार्गे ।  
(६) दरिद्रिताम् । (७) अणहिल्पत्तनमध्ये ॥१९१॥

हील० नीर० । यथा मेघोऽद्रीणां तापं हन्ति तद्व्याचकदारिण्यां दलयन् सन् स पत्तनविचाले सञ्चरति स्म ॥१९२॥

हीसुं० १तद्यशोधरणिभर्तुरिंतोऽन्यद्वीपनिर्जयकृते २प्रयियासोः ।  
५अध्वरोधिजलधिं<sup>२</sup> किमु ४रोद्धुं ६तत्क्षणे ३भुवि ८रजोभिरुदीये ॥१९२॥

(१) कुमारयशोराजस्य । (२) अस्माद्वीपात् । (३) अपरद्वीपसाधनार्थम् । (४) गन्तुमिच्छोः । (५) मार्गरोधकसमुद्रम् । (६) आवरीतुम् स्थलीकर्तुम् । (८) तस्मिन्प्रगतावे ।  
(८) धूलीभिः । (९) प्रसस्ते ॥१९२॥

हील० तद्यशो० । तत्समये पृथ्वी धूलीभिः प्रसृतम् । उत्प्रेक्ष्यते । इतो द्वीपादन्यद्वीपजयार्थं यातुमिच्छोऽकु( कु)मारयशोराजः मार्ग रुध्यन्ति । तादुशानर्णवान् रोद्धुं स्थलीकर्तुमिव रेणुभिः प्रसस्ते ॥१९३॥

हीसुं० १संयमाय २समियाय कुमारः ३पत्तनोपविपि<sup>४</sup>नं ४दितदोषः ।  
५पूर्वपर्वतशिरःशिखराङ्कं<sup>५</sup> ६पद्मिनीपतिरिवा७भ्युदयाय ॥१९३॥

(१) चारित्रिग्रहणाय । (२) समागतः । (३) पत्तनोद्यानम् । (४) दिताशिच्छन्ना दोषा

1. इति पत्तननगरनागरीणां हीरकमारदर्शनोद्भूतमिथःकथाप्रथा हील० । 2. ०धीनिव हीमु० । 3. क्षितिर० हीमु० ।

4. ०पिने हीमु० । 5. ०राङ्के हीमु० ।

अपगुणा रात्रयो वा येन । (५) उदयाचलमस्तकशृङ्गोत्सङ्गम् । (६) सूर्यः । (७) उद्गमनाय ॥१९३॥

हील० संय०। चारित्रिग्रहणार्थं स वने आजगाम । यथा रविरुद्गमनार्थं उदयाद्रावागच्छति । किंभूतः स रविश्च ?। दिताः खण्डिता दोषा अपगुणा ग्रन्थयश्च येन सः ॥१९४॥

हीसुं० १कौतुकाद्वुवमुपेत्य २वसन्ती ३स्वष्टु( : पु )रीमिव पुरीम॑वगत्य । आगतं किमनु ४नन्दनमत्रोद्यानमेष निपपौ नयनाभ्याम् ॥१९४॥

(१) भूतलावलोकनार्थं कौतुहलेन भुवमागत्य । (२) तिष्ठन्तीम् । (३) अमरावतीम् । (४) ज्ञात्वा । (५) नन्दनवनमिव ॥१९४॥

हील० कौतु०। हीरकुमारः वनं पपौ । उत्प्रेक्ष्यते । कुतुहलात्पृथ्व्यामागताममरवतीं वीक्ष्य अनु-पश्चात्रनन्दनवनं आगतम् ॥१९५॥

हीसुं० १शारिकाशुकशिखण्डिकपोतीपोतकेलीकलनाकमनीयम् । २मत्तवारणविचित्रितसालं प्राविशद्गृहमिवोपवनं सः ॥१९५॥

(१) शारिकाशुकमयूराः पारापतीशिशुक्रीडाकरणेन मनोज्ञम् । (२) “मत्तालम्बोपाश्रयः स्यादिति” हैम्याम् । विशिष्टानि चित्राणि संजातान्यस्यां तादृशी शाला यत्र । मदोद्धता गजास्तथा विशिष्टाश्चित्रा औषधैः यस्तद्युताः, ‘शसयोरैक्यात्’ द्वामा यत्र ॥१९५॥

हील० शारिका०। सदानि सारिकादीनां सद्भावात्ते रमणीयम् । पुनर्विशिष्टाश्चित्रा आखुपर्णी औषधयो वा । चित्रा उरगविशेषाः ‘चित्रिडि’ इति प्रसिद्धास्तैर्युक्ता वृक्षा यत्र, तथा विविधचित्रसहिता शाला यत्र । श्लेषे शसयोरैक्यात् । तादृशं वनं स प्रविशति स्म ॥१९६॥

हीसुं० पुष्पपल्लवफलानि दधानाः शाखिनः १स्मितशिखाग्रशयेषु । २स्वागतं ३द्विजरवैष्णिक( : किः)४मुदीर्याऽस्याऽतिथेयम॑तिथेरिह चक्रुः ॥१९६॥

(१) विकचशाखाशिखरहस्तेषु । (२) सुखेनागतं कुशलप्रश्नादि वा । (३) पक्षिशब्दैः । (४) उक्त्वा । (५) अतिथिसत्क्रियाम् । (६) प्राघुणाय ॥१९६॥

हील० वृक्षाः शाखाकरेषु पुष्पादीन् धृत्वा, पुनः पक्षिरवैः कुशलं पृष्ठ्वाऽस्य सत्क्रियां कुर्वन्ति स्म ॥१९७॥

हीसुं० तत्र १स्यभरगौरवभागिभः २कोकिलाक्वणितसंस्तववागिभः । पादपैरयमनम्यत ३वन्यै४भाविसूरिपुरहृतधियेव ॥१९७॥

(१) फलगणभारयुतैः । (२) पिककूजितस्तुतिवचनैः । (३) वनभवैः । (४) भविष्य-सूरीन्द्रधिया ॥१९७॥

हील० फलगौरवं कुर्वद्धिः पिकपञ्चमालापा एव संस्तववचनं येषां तादृशैर्वृक्षैर्नमस्कृतः ॥१९८॥

- हीसु० 'कामनीयकमशेषम्'मुष्याऽन्वेषयन्वटतरुं सै ददर्श ।  
 'श्रीतिरस्कृतसमग्रवनस्य छ्त्रमेतदिव मुर्धिन वनस्य ॥१९८॥  
 ( १ ) मनोज्ञताम् । ( २ ) का( क )मनीयस्य भावः कामनीयकम् 'मनोज्ञादित्वा'हुण् । ( २ )  
 वनस्य । ( ३ ) पश्यन् । ( ४ ) हीरकुमारः । ( ५ ) शोभया जितसमस्तभुवनकाननस्य ॥१९८॥
- हील० काम० । स वनस्य मनोज्ञतां पश्यन् वटं ददर्श । उत्त्रेक्ष्यते । धनाधिगजवनस्यालिके छत्रम् ॥१९९॥
- हीसु० 'न्यक्षरुक्षनिकरेषु गुरुत्वं यद्विभर्ति मनुजेष्विव भूमान् ।  
 गौरवात्किमिति लोलविहङ्गैर्वीज्यते स्म चमरैरिव पक्षैः ॥१९९॥  
 ( १ ) सर्ववृक्षगणेषु । ( २ ) महत्त्वम् । ( ३ ) लोलैरुद्युयनाच्चपलैष्य( : प )क्षिभिः ॥१९९॥
- हील० न्यक्ष० । समग्रवृक्षेषु महत्त्वात्पक्षिभिः पक्षैर्वीज्यते स्म ॥२००॥
- हीसु० 'रागिणः प्रणायतोऽखिललोकान्शैशवावधिजगज्जनगेयान् ।  
 'तदगुणानिव 'निशम्य 'सरागः 'पल्लवैरयम्'सा( शा )लत 'साल ॥२००॥  
 ( १ ) सरागान् । ( २ ) कुर्वतः । ( ३ ) बाल्यावस्थामारभ्य त्रिभुवनजनानां गातुं योग्यान् ।  
 ( ४ ) हीरकुमारगुणान् । ( ५ ) श्रुत्वा । ( ६ ) रागयुक्तः । ( ७ ) किसलयैः । ( ८ ) शुशुभे  
 ॥२००॥
- हील० रागि० । रागयुक्तान् कुर्वतस्तदगुणान श्रुत्वा सालः सरागः सन् पल्लवैरसोभत ॥२०१॥
- हीसु० 'वल्कलैष्य( : क )लयतात्मनि भूषां बिध्रता 'कपिशशालिजटालीम् ।  
 'काननस्थितिमता'जनि 'तेनात्नवता किमु 'तपो 'व्रतिनेव ॥२०१॥  
 ( १ ) वृक्षत्वग्निभिः । ( २ ) पिङ्गलशोभमानजटासटा योगिकेशाश्र । ( ३ ) वने वसता । ( ४ )  
 जातम् । ( ५ ) वटेन । ( ६ ) सृजता । ( ७ ) अनाहारलक्षणम् । ( ८ ) तापसेनेव ॥२०१॥
- हील० वल्क० । वल्कलैष्यलीभिः शोभितेन । पुनः पीतरक्तानां वृक्षमूलानां जटानां वा श्रेणीं दधता ।  
 पुनर्वने स्थितेन । पुनस्तपः कृर्वता वटेन यतिनेव जातम् ॥२०२॥
- हीसु० 'निष्कुहान्तरितविष्करवारा( र )स्फारतारनिनदैर्वटशाखी ।  
 यो मरु 'त्तरलपल्लवहस्तैरा 'ह्यन्निव निजान्तिकमेतम् ॥२०२॥  
 ( १ ) कोटरसंस्थितपक्षिनिकराणां पटुरुच्यैः कूजितरवैः । ( २ ) पवनचञ्चलकिसलयकरैः ।  
 ( ३ ) स्वसमीपे कुमारमाकारयतीव ॥२०२॥
- हील० निष्कुहान्तरितानां स्वकोटरमध्यगतानां पक्षिणां रावैः । पुनर्वायुवेपितशाखाहस्तैर्यो वटः एतं हीरकुमारं  
 स्वसमीपे आकारयन्निव ॥★२०३॥

1. शालः हीमु० । 2. ऋक एतम् हीमु० । 3. दीक्षादानेचितवटतरुवर्णनम् हील० ।

- हीसु० शिश्रिये विजयदान<sup>१</sup> मुनीन्द्रष्टू०( : पू०) वर्षमेव तदुपागमनाद्यः ।  
३छायया० खिलजनं सुखयन्तं कः श्रेयन्न धनदाश्रयमत्र ॥२०३॥  
( १ ) प्रथममेव । ( २ ) कुमारागमनात् । ( ३ ) प्रतिच्छायिकया । ( ४ ) समस्तलोकम् । ( ५ )  
सुखीकुर्वन्तम् । ( ६ ) कुबेरस्य दातृणां वाश्रयम् ॥२०३॥
- हील० शिश्रिये० । हीरकुमारस्यागमनात्सूर्वमेव सर्वसुखदायिनं यं वटं श्रीविजयदानसूरि: श्रितवान् ।  
प्रागेव तत्रागत्य निषत्र(ण्ण) इत्यर्थः ॥२०४॥
- हीसु० १तीर्थनाथमिव चैत्यतरोस्तत्पादपस्य ३सविधे स्थितिमन्तम् ।  
संमदेन स कुमारमहेन्द्रस्त्रिः ४प्रदक्षिणयति स्म मुनीन्द्रम् ॥२०४॥  
( १ ) जिनेन्द्रम् । ( २ ) तस्य व्यावर्णितस्वरूपस्य । ( ३ ) पार्श्वस्थितम् । ( ४ ) त्रिवारम् । ( ५ )  
प्रदक्षिणावर्त्तं भ्रमति स्म ॥२०४॥
- हील० तीर्थ० । कुमारे वटतले स्थितं विजयदानसूरि वारत्रयं प्रदक्षिणयति स्म । यथाशोकद्रुभतले स्थितं  
जिनमिन्द्रस्त्रिः प्रदक्षिणयति ॥२०५॥
- हीसु० उत्ततार तुसगात्स कुमारो १बर्हिणादिव सुतः३ सुरसिन्धोः ।  
श्रीगुरुं प्रमुदितश्च ५ललाटन्यस्तहस्तनलिनस्तम०नंसीत् ॥२०५॥  
( १ ) मयूरात् । “आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानी”ति रघुवंशे । ( २ ) स्वामिकार्त्तिकः । ( ३ )  
भालस्थलयोजितकरकमलः । ( ४ ) नमस्करोति स्म ॥१०५॥
- हील० उत्त० । स हयादुत्ततार । यथा षण्मुखो मयूरदुत्तरति । पुनः श्रीसूरि प्रणमति स्म ॥२०६॥
- हीसु० १रामणीयकविधेवरवृधेर्मेव३ ४भूषया ५वपुषि ६कृत्रिमया ७किम् ।  
८त्यजे ९निजतनोरिति १०सर्वाङ्गीणभूषणभरण्किम् । किमनेन ॥२०६॥  
( १ ) मनोज्ञताप्रकारस्य । रमणीयस्य भावो रामणीयकम् । योपथाद्वृज् । ( २ ) सीमायाः ।  
( ३ ) मम ( ४ ) आभरणैः । शोभया । ( ५ ) अङ्गे । ( ६ ) औपाधिक्या विरचितया । ( ७ )  
किम्, भवतु न किमपीत्यर्थः । ( ८ ) त्वक्तः । ( ९ ) स्वशरीरात् । ( १० ) सर्वाण्यङ्गानि  
व्याजोतीति सर्वाङ्गीणः । “पथ्या( य )ङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याजोती”ति सूत्रेण खः, ईनादेशश्च ।  
आभरणसमुदायः सर्वशरीरालङ्करणानि ॥२०६॥
- हील० राम० । स्वकायादाभरणभरं अनेन किमिति कारणात्यक्तः । इतीति किम् ?। रमणीयतायाः प्रकारयावधे:  
-सीमाया मे-मम शरीरे औपाधिक्या शोभया किम् ॥२०७॥
- हीसु० १षट्द्वयहेषु५शशि६सङ्घच्यमितेऽब्दे७५९६८कात्तिकस्य च तिथौ३ द्विकरसङ्घये ।  
९यन्निरस्तभवनिःस्व( श्व )सितार्चिर्धूमवर्तिभिरिवा८विशदास्ये ॥२०७॥

'संयमं विजयदानमुनीन्दोराददे सह पैरः स कुमारः ।

पृष्ठिनीप्रियतमात्रं विकाशं पुण्डरीकमिव पञ्जपुञ्जैः ॥२०८॥ युग्मम् ॥<sup>१</sup>

( १ ) षट्सङ्ख्या, ग्रहा नव, इषवो बाणाष्प( : प)ञ्च, शशी चन्द्र एक एव, एतत्सङ्ख्यमा प्रमाणीकृते वर्षे । ( २ ) कार्त्तिकमासस्य । ( ३ ) युग्मसङ्ख्ये तिथौ । तिति(थि)शब्दः पुंस्त्रीलिङ्गः । ( ४ ) हीरकुमारपराभूतसंसारनिःस्वा( श्वा)सानलधूमलेखाभिरिव । ( ५ ) श्यामलितमुखे । श्यामे इत्यर्थः । विक्रमार्कात्पञ्चदशशतेषु षण्णवत्यां वर्षेष्वतिक्रान्तेषु कार्त्तिकबहुलद्वितीयायां व्रतमादत्तेति तात्पर्यम् ॥२०७॥

( १ ) दीक्षाम् । ( २ ) श्रीविजयदानसूरीन्द्रात्सकाशात् । ( ३ ) सूर्यात् । ( ४ ) विकचताम् ।

( ५ ) सिताम्भोजम् । ( ६ ) कमलपटलैः । पुण्डरीकमिति प्राधान्यख्यापनाम्, "पुरिस्वर-पुंडरीयाण्"मिति वचनात् ॥२०८॥

हील० येन कुमारेण ध्वस्तो यः संसारस्तस्य निस्व(निःश्व)सितान्येव अर्चीषि वहयस्तेषां धूमलेखाभिः कृष्णमुखे द्वितीयातिथौ । "प्रश्नस्तिथ्यशनीमणिसृणि"रिति पुंस्त्रीलिङ्गानुशासने । शेषं सुगमम् ॥२०८॥ परैरसीपालकुमारप्रमुखैरित्यर्थः ॥२०९॥

हीमुं० 'संयमश्रियमवाप्य कुमारः साधिकं शरदमिन्दुरिवाभात् ।

साऽप्यनेन् सुषमां श्रयते स्माऽर्थेन वागिव पुरीव नृपेण ॥२०९॥

( १ ) चारित्रलक्ष्मीम् । ( २ ) अतिशायितया । ( ३ ) मेघात्ययम् । ( ४ ) चरणश्रीरपि । ( ५ ) कुमारेण । ( ६ ) वाणी अर्थेनेव ॥२०९॥

हील० सं० । स कुमारः चारित्रं प्राप्याधिकं शुशुभे । यथा शरदऋतुं चित्रानक्षत्रं वा प्राप्य चन्द्रः शोभते । सा चारित्रश्रीरपि अमुना शोभां प्राप्नोति स्म ॥२१०॥

हीमुं० हीरहर्ष इति नाम तदीयं निर्ममे विजयदानयतीन्दः ।

स्पद्धयेव यशसाऽस्य जनानां कर्णपूरपदवीं तदवापत् ॥२१०॥

( १ ) कुमारसम्बन्धिः । ( २ ) कृतवान् । ( ३ ) असूयया । ( ४ ) कर्णाभरणता सकलजगज्जन-श्रूयमाणतापदम् ॥२१०॥

हील० हीरहर्ष इति नाम कृतं तत्राम । अस्य हीरहर्षमुनेर्यशसा सह स्पद्धया जनानां कुण्डलपदवीं प्राप ॥२११॥

हीमुं० नभोङ्गणान्निर्जर्जरहस्तमुक्ता मरन्दलुभ्यन्मधुपानुषङ्गा<sup>२</sup> ।

पपात तस्योपरि पुष्पवृष्टिष्क( : क)टाक्षलक्ष्मा<sup>३</sup> इव मोक्षलक्ष्म्याः ॥२११॥

( १ ) आकाशात् । ( २ ) सुरनिकरकरैः कृता । ( ३ ) मकरन्दलुब्धीभवतां भ्रमराणां सङ्गे

1. संवत् १५९६.....कुमारः संयमश्रियं परिणीतवानिति हील० । 2. षड्गः इति हीमु० दृश्यते । स चाशुद्धो भाति ।

यस्याः । ( ४ ) लक्षाशब्दः स्त्रीकलीबः । तथा - “माने लक्ष” मिति लिङ्गानुशासने ॥२११॥

हील० नभो० । भ्रमरवेष्टिता पुनर्गगनादेवेन मुक्ता पुष्पवृष्टिस्तदुपरि पपात् । उत्प्रेक्ष्यते । मुक्तिश्रियः कट्यक्षशतसहस्राणि ॥२१२॥

हीसुं० ‘महाव्रती ३कालमनोभवारिमै॒होक्षलीलागतिगौ॑रकान्तिः ।

“शिवाश्रितः शं॒भुरिव क्रमेणेशानीं दिशं पूर्वं मयं बभाज ॥२१२॥

( १ ) पञ्चमहाव्रतवान् । ( २ ) कालः कलिस्तथा स्मरस्य शत्रुः । ( ३ ) वृषभगति, “मन्त्रोक्षगमनः पुमानि” ति काव्यकल्पलतायाम् । ( ४ ) स्वर्णरुचिः । गौरः पीतस्वेऽश्वे तयोः । ( ५ ) मङ्गलयुतः । ( ६ ) शंभुरपि “महाव्रती वह्निहिण्यरेता” इति हैम्याम् । कालदैत्यस्यारिमैत्युच्यत्वात् स्मरारिः, वृषभवाहनः, श्वेतद्युतिः, पार्वत्याश्रितः, अर्द्धशंभुत्वात्, तद्वत् । ईशान्यां( नीं ) दिशं प्राकृ जगाम ॥२१२॥

हील० महा० । हीरहर्षमुनिः पूर्वमीशानीं दिशं श्रितवान् । यथेश ईशानीं दिशं गच्छति, तदधिपतित्वात् । किंभूतः स ईशश्च ? पञ्चमहाव्रतवान् । “महाव्रती वह्निहिण्यरेताः” । कालदैत्यकामयोररिः । पुनर्वृषभेन(ण)वृषभवदगमनं यस्य । शिवैर्मङ्गलैः शिवया वा युक्ताः ॥२१३॥

हीसुं० ‘कलभो॑ यूथनाथेन॑ यद्वद्दम्यः॑ ककुद्यता॑ ।

हीरहर्षः समं सूरि-शक्रेण॑ विजहार सः ॥२१३॥

( १ ) कलभस्त्रिशदद्वकः करी । ( २ ) यूथाधिपेन सार्द्धम् । ( ३ ) “दम्यो वत्सतरः समा”-विति हैम्याम् । पुष्टवत्सन्धिवर्णीयः । ( ४ ) धुरिणेनेव । ( ५ ) विहारं कृतवान् । २१३॥

हील० यथा बालगजः षष्ठिवर्षीयगजेन विहरति । यथा वृषेन(ण) वत्सतरः तद्वद्हीरहर्षः सूरिणा विजहार ॥२१४॥

हीसुं० प्रीतिर्जिनेषु॑ वृजिनेषु॑ न तस्य जज्ञे,॑ योगं व्यगाहत मनो न कदापि॑ भोगम् । अङ्गीचकार “विरतिं न धर्ति॑ कदाचि-न्नव्योऽप्यनव्य इव सोऽजनि॑ साधुधुर्यः ॥२१४॥

( १ ) तीर्थकरेषु । ( २ ) न पापेषु ( ३ ) प्रणिधानम् । ( ४ ) सुखादिकं सांसारिकम् । ( ५ ) सर्वसावद्यविवरणम् । ( ६ ) चित्तासक्ति॑ मैथुनादि वा । “वृद्धास्त्रिव गतप्रायासु वर्षासु रतिमकुर्वाण” इति चम्पूसूत्रे । तद्विपनके रति॑ चित्तासक्तिमिति ॥२१४॥

हील० तस्य प्रेम जिनेषु जातं न पापेषु । शेषं सुगमम् ॥२१५॥

हीसुं० सूरीन्द्रोः॑ सन्निधौ॑ श्रीमान्कु॑मारश्रमणोऽनिशम् ।

सन्तानस्य नवोन्निदत्पारिजात इवाबभौ ॥२१५॥

( १ ) हीरहर्षसाधुः । ( २ ) कल्पद्रुः । “कल्पद्रुमाणामिव पारिजात” इति रघुवंशवचना-

त्पारिजातस्य सर्वकल्पद्रुमेषु प्राधान्यव्यापना ॥२१५॥

हील० सू० । यथा सन्तानकल्पद्रुमपार्श्वे पारिजातनामा कल्पद्रुः शोभते । तद्वत्सूरिसमीपे हीरहर्षबालः शोभते स्म ॥२१६॥

हीसुं० 'श्रमणधरणीभर्तुष्णा'( : पा )दारविन्दनिषेवना-

प्रमुदितमना नाथीदेवीतनूजयतीश्वरः ।

अनुपमशामक्षीराम्भोधौ विलासरसं सृज-

न्मितगरुदिवामन्दान्दं दिनानि निनाय सः ॥२१६॥

इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये हीरकुमारप्रतिबोधस्वजन-कृतमहोत्सवपुराङ्गनाचेष्टित-तत्सङ्गथा-दीक्षाग्रहणो नाम पञ्चमसर्गः ॥ ग्रं. ३०३॥

( १ ) श्रीविजयदानसूरीन्द्रस्य । ( २ ) चरणकमलोपासनाहृष्टचित्तस्य( चित्तं यस्य ) । ( ३ ) असाधारणोपशमरसदुग्धसमुद्रे । ( ४ ) विलासरसं - क्रीडास्वादम् । आस्वादोऽनुभवनम् । अथवा क्रीडायामनुरागं सृजन् । “सः स्वादे जले वीर्ये शृङ्गारादौ विषे द्रवे । बोले रागे देहधातौ तिक्कादौ पारदेऽपि चे” त्यनेकार्थः । ( ५ ) राजहंस इव । ( ६ ) परमानन्दः ॥२१६॥

इति पञ्चमः सर्गः ॥ ग्रं० ३३६ ॥

हील० श्रम० । श्रीसूरीश्वरचरणसेवनायां हर्षवान् नाथीसूतो मुनीशः सितच्छदो हंसस्तद्वक्षीरसमुद्रे क्रीडाया सं आस्वादं कुर्वन् दिवसान्तिक्रामति स्म । “सः स्वादे जले वीर्ये शृङ्गारादौ द्रवे विषे । बोले रागे देहधातौ तिक्कादौ पारदेऽपि च ॥” इत्यनेकार्थः । हंसानामपि क्षीरार्णवे सत्वाद्यथा “<sup>१</sup>हंसांसाहतपद्मरेणुक० इत्यादौ ॥२१७॥

हील→ यं प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः

पुत्रं कोविदसिंहसी( सिं )हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।

तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक-

सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गोऽभवत्पञ्चमः ॥२१८॥

इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये हीरकुमारस्य विजयदानसूरिविन्दन-देशनाश्रवण-वैराग्यभवन-सांसारिकवर्गदेशादान—भूषणा....तौर्यत्रिकादिमहोत्सवपुरः सरे विपिनागमन-वट्ठुमाधोदीक्षाग्रहणादिवन्दनो नाम पञ्चमः सर्गः ॥

1. हंसांसाहतपद्मरेणुकपिशक्षीरार्णवाम्भोभृतैः इति समग्रः पाठः ॥ → एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

ऐं नमः ॥

अथ षष्ठः सर्गः ॥

- हीसुं० १अथ सूरिपुरन्दरान्तिके निखिलं “वाङ् मयमा” मनन्त्रैयम् ।  
“गणधारिसुधर्मसत्रिधाविव” जम्बूः “सुषमाम्” पूपुष्टत् ॥१॥
- (१) अथ दीक्षाग्रहणानन्तरम् । (२) विजयदानसूरिसमीपे । (३) समस्तम् । (४) शास्त्रम् ।  
(५) पठन् । “पठत्यमनती” त्यपीति क्रियाकलापे । (६) हीरर्हः । (७) सुधर्मस्वामिपाश्चेऽ ।  
(८) जम्बूरिव । (९) सातिशायिनी शोभाम् । (१०) पुष्णाति स्म ॥१॥
- हील० अथ० सूरिसमीप आगमं पठन् शोभां पुष्णाति स्म । यथा सुधर्मस्वामिसमीपे पठन् जम्बूस्वामी  
शोभां पुष्णाति ॥१॥
- हीसुं० १श्रुतमत्र “गणो” न्दुनामुना निहितं “स्फूर्ति” मनुत्तरां दधौ ।  
इव “शुक्तिकसंपुटान्तरे सलिलं” स्वातिमिलत्ययोमुचाम् ॥२॥
- (१) शास्त्रम् । (२) विजयदानसूरिणा । (३) स्थापितमध्यापितमित्यर्थः । (४)  
चमत्कारकारिताम् । (५) असाधारणाम् । (६) मुक्ताशुक्तिसंपुटमध्ये । (७) स्वातिनक्षत्रेण  
सङ्घच्छमानघनानां नीरम् ॥२॥
- हील० श्रुतमेनं प्राप्य शोभते स्म । यथा शुक्तिकयोः सम्पुटमध्ये पतितं स्वातिपयो मुक्ताशोभां धते ॥★२॥
- हीसुं० १अधिगत्य ततः श्रुतं व्रतक्षितिभर्तुर्दिघिरेऽमुना श्रियः ।  
सुरभेः समिरेण “सौरभं” मलयोव्वीरुहकाननादिव ॥३॥
- (१) प्राप्य । “अधिगत्य जगत्यधीश्वरादथ मुक्ति पुरुषोत्तमात्तत” इति नैषधे । (३)  
विजयदानसूरिन्द्रात् । (३) वसन्तमारुतेन । मलयानिलेनेत्यर्थः । (४) सगम्धित्वं परिमिलमिति ।  
(५) चन्दनतरुवनात् ॥३॥
- हील० अधिं० सूरीश्वरच्छास्त्रं प्राप्यानेन शोभा धृताः । यथा वसन्तवायुना मलयाचलवनात्सुगन्धितां प्राप्य  
शोभा ध्रियन्ते ॥३॥
- हीसुं० सखलति स्म न कुत्रचिद्वाचोरचनां स्यां गमपारदृश्वनः ।  
“हृदिनी हृदयेशितुश्च” लज्जलकल्पोलपरम्परा इव ॥४॥
- (१) वाग्विलासः । (२) हीरर्हस्य । (३) शास्त्रपारगामिनः । (४) समुद्रस्य । (५)  
तरङ्गमाला इव ॥४॥
- हील० सखल० । अस्य वाक्वातुर्यं क्वापि शास्त्रे न सखलति स्म । यथा नदीशस्य जलकलोला क्वापि  
[न] सखलत्ति । अत्र किमु इवार्थे ॥★४॥

1. गणीन्दु० हीमु० । हीलप्रतौ ‘गणीन्दुना’ इतः परं मितेऽब्दे १५९६ कार्तिकस्य....एवं दृश्यते । पञ्चादवाच्यमस्ति ।

2. किम् हीमु० ।

- हीसुं० १असमानमहा दिनेशवन्मैतिमांश्च॒त्रशिखण्डपुत्रवत् ।  
२भटवच्चरणोल्लसन्मना विनयी यो रघुसूनुवद्व्यभात् ॥५॥
- ( १ ) परैसमह्यतापः । असाधारणतेजाश्च । ( २ ) रविरिव । ( ३ ) कुशाग्रीयमतिः । बृद्धिमान् ।  
( ४ ) वाचस्यतिरिव । “विचित्रवाक्विचत्रशिखण्डनन्दन” इति नैषधे । ( ५ ) चारित्रे  
विकसच्चेताः । चः पुनरथे, ‘सुभटस्तु सङ्ग्रामे प्रमाद्यन्मानसः विग्रहमिच्छन्ति ‘भटा’ इति  
वचनात् । ( ६ ) विनयकलितः । ( ७ ) लक्ष्मण इव । ( ८ ) “विनये लक्ष्मण” इति  
काव्यकल्पलतायाम् ॥५॥
- हील० अस०। यः असह्यप्रतापः सूर्यवत्, बृहस्पतिवत् बृद्धिमान्, पुनर्यः भटवत् चारित्रे उल्लासवान् । यथा  
भटो रणोल्लसन्मनाः स्यात् । पुनर्यः विनये रामभ्रातृवत् । अथवा विशेषण नयो न्यायो यस्मिन  
तादृशः सन् राम इव व्यभात् ॥५॥
- हीसुं० १गिरिराज इव क्षमाधरो बुधलक्ष्मी दधद॑भ्रमार्गवत् ।  
२जलजासनावद्व॑वान्तकृद्व॑तधुर्यः स महोक्षवद्व्यभौ ॥६॥
- ( १ ) हिमाचल इव । ( २ ) क्षमा-क्षान्तिर्भूमिश्च । ( ३ ) पाणिडत्यश्रियम् । सोमपुत्रस्य  
शोभाम् । ( ४ ) गगनमिव । ( ५ ) ब्रह्मा इव । ( ६ ) संसारच्छेदा(रोच्छेदकः) । ( ७ )  
पञ्चमहाव्रतभारोद्भारे धुरीणः । ( ८ ) वृषभ इव ॥६॥
- हील० गिरिराज०। यः क्षान्तिपाणिडत्ययुक्तः संसारेच्छेदकारी व्रतधुरुंधरः शुशुभे ॥६॥
- हीसुं० १तरुणी तपनात्मजन्मनो हरिदास्ते भुवि नाम दक्षिणा ।  
२किमु कस्यचनापि कोपिनो व्रतिनः स्वर्निप॑पात शापतः ॥७॥
- ( १ ) यमपत्नी । ( २ ) दिग् दक्षिणा । “निजमुखमितः स्मेरं धन्ते हरेमहिषी हरित्” । तथा  
“वरुणगृहिणीमाशामासादयन्तममुं रुची” ति नैषधे । इदमपि तद्वत् । ( ३ ) रोषवतः । ( ४ )  
तापसस्य ( ५ ) स्वर्गः । ( ६ ) उच्चैः स्थानात्रुटित्वा अधोभूमौ पतितः ॥७॥
- हील० तरु०। सूर्यसुतो यमस्तस्य वधूर्दक्षिणा दिगस्ति । उत्प्रेक्ष्यते । अनुकनामस्तापसस्य कोपादेवलोके  
भुवि आगतः ॥७॥
- हीसुं० १वसति स्म घटोदभुवो मुनिर्दिशि यस्यां चिरमुञ्जितान्यदिग् ।  
२किमु शम्भरवैरिविभ्रमैर्युवतीभिर्युववद्विमोहितः ॥८॥
- ( १ ) अगस्तितापसः । ( २ ) त्यक्तापराशः । ( ३ ) स्मरविलासैः । ( ४ ) दक्षिणात्यतरुणीभिः ।  
( ५ ) तरुण इव । ( ६ ) मोहं प्रापितः ॥८॥
- हील० यत्रागस्तिरस्ति । उत्प्रेक्ष्यते । दक्षिणात्यस्त्रीभिः कामविभ्रमैर्मोहितः ॥८॥

१. इति हीसणे: पठनगुणवत्वम् हील० ।

हीसुं० ॐरविष्टपजैत्रशस्त्रितरोदीर्णविनोद विभ्रमात् ।

व्रजतीव कुतु( तू )हलीक्षितुं किमु ३मन्दीभवदंहिरंशुमान् ॥१॥

( १ ) कन्दर्पस्य त्रिभुवनजयनशीलायुधवदावरिताभिः प्रधानस्त्रीभिः । प्रकटीकृतऋग्नीडाविलासात् । “रहः सहचरीमेतां राजन्नपि स्त्रितरां क्षण” मिति नैषधे । ( २ ) द्रुष्टम् । ( ३ ) गमने अत्वरितीभवन्तः तेजोभिः प्रतापै रहिता वा भव[ न्तः ] । [ अंह्रय ] श्वरणाः किरणा वा यस्य । “साहस्रैरपि पद्मरंहिभिरभिव्यक्तीभवन्मानुमा” निति अंह्रिशब्देन किरणा नैषधे । तथा दिशि मन्दायते तेज” इति रघुवंशे । ( ४ ) सूर्यः ॥१॥

हील० कुतूहलरसामन्दकरो रविर्याति । उत्प्रेक्ष्यते । स्मरस्य भूजैत्रायुधीभूताभिरामरामाभिः कृतविभ्रमान् द्रष्टम् ॥५॥

हीसुं० शमनस्य मृगीदृशो १दिशो ३मणिमुक्ताफलशालमानया ।

सरितां ३दयितस्य वेलया विलसन्मे४खलयेव दिव्युते ॥६०॥

( १ ) दक्षिणस्याः ( २ ) रत्नमौक्तिकयुक्तया । ( ३ ) समुद्रस्य । ( ४ ) काञ्च्येव ॥६०॥

हील० समुद्रवेलया रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । दक्षिणस्य दिश(शो) मेखलया ॥६०॥

हीसुं० तिलकं १हरिताम॑सौ हरिद्यदगस्तिमुनिरप्यमुं श्रितः ।

३किमपा॒च्यपयोनिधिः ४स्वनौरिदमा॑वेदयते ५तरङ्गजैः ॥६१॥<sup>२</sup>

( १ ) सप्तस्तदिशाम् । ( २ ) चित्रम् । ( ३ ) दक्षिणा तत्र वासादक्षिणसमुद्रः । ( ४ ) कथयति ।

( ५ ) कल्लोलजातशब्दैः ॥६१॥

हील० दक्षिणार्णवः किमिति वक्तीव । इतीति किम् ? । दक्षिणा दिग् दिशां तिलकं यस्मान्माणिक्यस्वामी ऋषभदेव एनां श्रितः ॥★६१॥

हीसुं० ३मलयो १मलयद्वमेदुरः शुशुभे यत्र ३सुमेरुसोदरः ।

३शमनस्य ४विलाससानुमानिव ५रन्तुं ६निजदिङ्गमृगीदृशा ॥६२॥

( १ ) चन्दनतरुयुतः । ( २ ) मेरुबन्धुरुच्यैस्तरत्वात् । ( ३ ) यमस्य । ( ४ ) ऋग्नीपर्वतः ।

( ५ ) ऋग्नीडितुम् । ( ६ ) दक्षिणदिक्पत्न्या सार्वम् ॥६२॥

हील० मलयाचलः । उत्प्रेक्ष्यते दक्षिणदिशा सह ऋग्नीडितुं यमस्य पर्वतः ॥६२॥

हीसुं० मलयो १बलिवेशमवद्वभौ कलयन्कु॒३ण्डलिमण्डलीरिह ।

३विशदामृतकुण्डमण्डितो ४धृतपुन्नागबलाहकोत्सवः ॥६३॥

( १ ) नागलोक इव । ( २ ) भुजङ्गममालाः । ( ३ ) निर्मलानां जलानां सुधानां च

1. ०मसावमुं जिनमाणिक्यविभूर्यतः श्रितः हीमु० । 2. इति केवलदक्षिणा दिग् हील० । 3. अथ कतिचित्पदार्थवर्णनावसरः ।

- कुण्डैर्विभूषितः । ( ४ ) दुमविशेषाः । पुमान्नागो वासुकिश्च । तथा मेघो नागविशेषश्च । “धुर्जटिजटाजूट इव पुन्नागवेष्टितो वापीपरिसर” इति चम्पूकथायाम् । पुमान्नागो वासुकिरिति तद्विपनके । “अथ कम्बलाश्वतरथृतराष्ट्रबलाहका” इत हैर्ष्याम् ॥१३॥
- हील० मलयो नागलोक इवाभाति । किंभूतः ? सर्पयुक्तः । पुनः किंभूत ? अमृतानां सुधानां जलानां वा कुण्डैर्मण्डितः, धृताः पुन्नागाः सुरपर्णिवृक्षाः । पुमान्नागो वासुकिर्येन । तथा मेघयुक्तो वा बकयुक्तः ॥१३॥
- हीसु० मलयो ॑मलयदुसौरभैः प्रतिदिक्षु प्रहितैर्नैरिव ।  
 ॒रसिकायितदिग्वलासिनीर्निजैभूमौ ॑ह्यतीव ॒खेलितुम् ॥१४॥  
 ( १ ) चन्दनपरिमलैः । ( २ ) रसयुक्तोभूतदिगङ्गनाः । ( ३ ) स्वस्थाने । ( ४ ) आकारयति ।  
 ( ५ ) ऋडां कर्तुम् ॥१४॥
- हील० मलयश्चन्दनसौरभैर्दिगङ्गना आकारयतीव ॥१४॥
- हीसु० ॑यदुदीतसमीरणोऽन्वितः ॒प्रसरच्चन्दनसारसौरभैः ।  
 ॑कटकैर्विजयीव भूपतिर्निखिलाशा अपि ॑पर्यपूरयत् ॥१५॥  
 ( १ ) मलयाद्रेष्टत्पन्नो वातः । ( २ ) विस्तरच्चन्दनतरूपां प्रकृष्टपरिमलैः कलितः । ( ३ ) सैन्यविजयी रजेव । ( ४ ) समस्तदिशः । ( ५ ) निर्भरति स्म ॥१५॥
- हील० य० । मलयाचलवायुः सौरभैर्दिशः पूरितवान् ॥१५॥
- हीसु० इह॑शंकरभूमिभृत्सुखंकरमाणिक्यविभुर्विभासते ।  
 ॑महिषाङ्कदिगङ्गनाऽनने किमु ॑माणिक्यमयो विशेषकः ॥१६॥  
 ( १ ) शंकरनामनृपस्य रोगोपशमकरत्वात्सुखकरो माणिक्यस्वामी । ( २ ) दक्षिणादि-  
 गङ्गनामुखे । ( ३ ) रत्नघटिततिलकः ॥१६॥
- हील० इह दक्षिणस्यां शंकरनाम(नो) रज्ञो रोगोपशमको माणिक्यस्वामी शोभते ॥★१६॥
- हीसु० ॑विविधाभरणप्रभाङ्कुरच्छुरिता या जिनमूर्त्तिराबभौ ।  
 किमशेषयशःप्रशस्तिका ॑प्रथमार्हत्तनुजन्मचक्रिणः ॥१७॥<sup>४</sup>  
 ( १ ) अनेकभूषणकान्तिव्याप्ता । ( २ ) “चन्दनच्छुरितं वपु” रिति पाण्डवचरित्रे । ( ३ ) समस्तयशसां लिखितवर्णमालिका । ( ४ ) ऋषभसुतस्य भरतस्य चक्रवर्तिनः ॥१७॥
- हील० वि�० । आभरणाभाव्यासा सा मूर्त्तिर्भाति । उत्प्रेक्ष्यते । भरतचक्रिणो यशोऽक्षराणि ॥१७॥
- हीसु० ॑अपि ॑पार्श्वजिनान्तरिक्षकाभिध उच्चैः स्थितिकैतवादिह ।  
 किमु ॑लभ्यितुं ॑महोदयं ॑भृविनां ॑भूवलयात्र॑खेलिवान् ॥१८॥

1. ०रणः समं हीमु० । 2. इति मलयाचलः हील० । 3. ०नामुखे हीमु० । 4. इति माणिक्यस्वामी ऋषभदेवः हील० ।  
 5. ०जिनोऽन्तः हील० । 6. भविनो हील० ।

( १ ) अपि पुनर्थे । ( २ ) अन्तरिक्षपार्श्वनाथः । ( ३ ) प्रापयितुम् । ( ४ ) मोक्षनगरम् ।  
 ( ५ ) भव्यानाम् । ( ६ ) भूतलात् । ( ७ ) चलितः ॥१८॥

हील० अपि पुनरन्तरीकपार्श्वः सुखकृत् आस्ते । उत्त्रेक्ष्यते । गगने स्थितिदभ्यात् प्राणिनो मोक्षं प्रापयितुम् ॥१८॥

हीसु० १फणभृद्धैगवन्निभालनादेनुभूताहिविभुत्ववैभवः ।

२सृहयन्मुवनन्नायीशतां फणदम्भाद्वजतीव यं पुनः ॥१९॥<sup>2</sup>

( १ ) नागेन्द्रः । ( २ ) पार्श्वनाथदर्शनात् । ( ३ ) प्रासधरणेन्द्रश्रीकः । ( ४ ) काङ्क्षन् । ( ५ )  
 त्रैलोक्यैश्वर्यम् ॥१९॥

हील० फण०। श्रीपार्श्वनाथदर्शनात् प्रासादीन्द्रत्वसम्पद् नागेन्द्रः स्वर्गमृत्युद्धयीशतां वाञ्छन् यं सेवते ।

हीसु० ३इह जीवतः आदिमप्रभोरपि सोपारकनामपत्तने ।

प्रतिमा प्रतिभासते सतां ४वृषकोशः प्रकटः किमार्षभेः ॥२०॥<sup>4</sup>

( १ ) जीवतस्वा( त्वा)मी ऋषभदेवः । ( २ ) पुण्यभाण्डागारः । ( ३ ) भरतचक्रिणः ॥२०॥

हील० इह दक्षिणास्यां जीवतस्वामिप्रतिमा भासते । उत्त्रेक्ष्यते आर्षभेर्भरतचक्रिणः । पुण्यभाण्डागार इव ॥२२॥

हीसु० ३१कर्त्ताभिधपार्श्वनायको दिशि २यत्रास्ति पुनः ३प्रभाववान् ।

न ४जहाति कदापि ५यत्पदं किमु ६तस्यैव समीहया ७फणि ॥२१॥

( १ ) करहडानामपार्श्वनाथः । ( २ ) करहडापुरे । ( ३ ) माहात्म्ययुक्तः । ( ४ ) त्यजति । ( ५ )  
 पार्श्वनाथचरणम् । ( ६ ) तीर्थकृत्पदकाङ्क्षया । ( ७ ) नागः ॥२१॥

हील० करहेटकपार्श्वनाथः समस्ति । फणी नागेन्द्रो यत्पदं न त्यजति । उत्त्रेक्ष्यते । तस्यैव पदं मोक्षः  
 तीर्थकृत्पदवी वा तस्य वाञ्छया ॥\*२०॥

हीसु० ३२विभवैः सह ३माधवादयः प्रतिवर्ष यमु॒येत्व ४भेजिरे ।

किमिदं ५गदितुं ६तनुमतां ७मरुतामव्ययमेव ८देवता ॥२२॥<sup>7</sup>

( १ ) स्वसर्वपरिवारेः । ( २ ) कृष्णप्रमुखा देवा । ( ३ ) करहडापार्श्वप्रभोः सन्निधौ समागत्य ।

( ४ ) स्वसेवककृतगीतनाटकादिभक्तिभिः सेवन्ते स्म । ( ५ ) कथयितुम् । ( ६ ) जनानाम् ।

( ७ ) देवानामपि । ( ८ ) देवः ॥२२॥

हील० विभ०। कृष्णादयो देवाः स्वस्वभक्तपुरषपात्रवाद्यादिभिः सार्द्धः समीपे उपेत्य यं पार्श्वनाथं भेजिरे ।

1. ०द्वयीश० हीमु० । 2. इत्यन्तरिक्षपार्श्वनाथः हील० । 3. हील०प्रतौ हीमु० चैतेषां त्रयाणां श्लोकानामेषोऽनुक्रमः २२-२०-२१ । 4. इति जीवतस्वाम्यादिदेवः हील० । 5. करहेटकपार्श्व० हीमु० । 6. ०वर्षे य० हील० । 7. इति श्रीकरहेटकपार्श्वनाथः हील० ॥

उत्प्रेक्ष्यते । भूस्पृशां देवानामयमेव देवो, नान्य इति वकुम् ॥२१॥

हीसुं० दिशि ॑बिभृति यत्र ॒भूभृतः श्रियमैभृङ्गशृङ्गसङ्ग्निः ।

॑किमगस्तिमुनिं ॒कुलाचला निज॑विद्वेषिभयद्रुताः ॒श्रिताः ॥२३॥

( १ ) धारयन्ति । ( २ ) शैलाः । ( ३ ) गणनालिङ्गिशिखरकलिताः । ( ४ ) मन्दरप्रमुखगिरयः ।

( ५ ) स्वरिपुरिन्द्रस्तद्भयेन नष्टाः । ( ६ ) आश्रिताः ॥२३॥

हील० दिशि० यत्रोतुङ्गशृङ्ग गिरयः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । इन्द्रभयादन्तरीक्षं श्रिताः ॥२३॥

हीसुं० ॑विपिनानि ॒पदे पदे मुदं ददते यत्र ॑विलासशालिनाम् ।

॑स्फाटिकाचलमूर्द्धनीव ॒यद्विजितं चै॒त्ररथं ॒हिया ययौ ॥२४॥

( १ ) वनानि । ( २ ) स्थाने स्थाने । ( ३ ) तरुणानाम् । ( ४ ) कैलासशिखरे । ( ५ )  
चैर्वनैर्विजितम् । ( ६ ) धनदवनम् । ( ७ ) लज्जया ॥२४॥

हील० यत्र विलासिनां हर्षदानि वनानि सन्ति । येन जितं चैत्ररथं कैलाशशिखरे गतम् ॥२४॥

हीसुं० ॑सरितो दिशि यत्र निष्ठगेत्य॒पवादं ॑व्यपनेतुपात्मनः ।

॑स्थितवन्त्य॒उपेत्य सेवितुं किम॑पाचीगृहनाभिसम्भवम् ॥२५॥

( १ ) नद्यः । ( २ ) निष्ठाम् । ( ३ ) अपहर्तुम् । ( ४ ) स्थिताः । ( ५ ) आगत्य । ( ६ )  
दक्षिणदिस्थायुक्तमाणिक्यस्वामिनम् ॥२५॥

हील० सरि० । यत्र नद्यो नीचगामिनीत्यपवादं निरकर्तुं श्रीऋषभदेवं श्रिताः ॥२५॥

हीसुं०→ पिबतान्मुनिरेष नोऽपि मा पतिवत्पर्वजा भयादिति ।

दिशि यत्र समेत्य संश्रिता इव जीवदवृषभाङ्गपारगम् ॥२५॥ ←

इति पाठान्तरम् । इति गिरिवननद्यः ॥

हील० पिब०। यथास्मत्पतिर्णवः पीतः तद्वदेष मुनिरस्मान्मा पिब इति भयादिगरिजा नद्यः श्रीऋषभदेवं  
श्रिताः ॥२५॥

हीसुं० ॑मणिकाञ्छनकल्पनन्दनै॒र्विबुधैः ॒श्रीहरिभिः स॑जिष्णुभिः ।

इह ॑देवगिरेरिव श्रियं कलयन्दे॒वगिरिर्विरोचते ॥२६॥

( १ ) रत्नैः, स्वर्णैः, आचारैः कल्पद्रुपैश्च, पुत्रवर्वनेन च । ( २ ) पण्डितेर्देवैश्च । ( ३ ) शोभा-  
कलिताश्वैर्लक्ष्मीयुक्तकृष्णैश्च । ( ४ ) जयनशीलभट्टैः, इन्द्रेश सहितैः । ( ५ ) मेरोः । ( ६ )  
देवगिरिनाम नगरम् ॥

हील० मणिं०। मेरुरिव देवगिरिर्भाति । कैः कृत्वा ?। नन्दनवनेन सुतैर्वा लक्ष्मीकृष्णैर्वा श्रीयुक्ततुरुणैः  
जैत्रभरैर्वा इन्द्रेण वा ॥२६॥

1. किम् शक्रभयद्रुताः श्रिताः कुलशैला जिनमन्तरिक्षम् हीमु० । → एतदन्तर्गतः पाठे हीसुंप्रतौ नास्ति ।

- हीसु० १क्व[ चि ]दिन्दुमणीमिथोमिलद्बहलोद्योतनिकेतकैतवात् ।  
 २श्रुववासविधानकाङ्गिक्षणी वसति स्वैरमिवांत्र पूर्णिमा ॥२७॥
- ( १ ) चन्द्रकान्तमणीनां परस्परमेकीभवन्निबिडालोको येषां तादृशानां गृहणां कपटात् । ( २ ) शाश्वतस्थितिकरणाभिलाषुका । ( ३ ) अत्र देवगिरौ ॥२७॥
- हील० क्वचिच्चन्द्रकान्तकृतगृहच्छलात् निश्चला पूर्णिमैव ॥२७॥
- हीसु० १क्व॒चिदिन्द्रमणीनिकेतनच्छलभूच्छाय॑मुदीत्वैः २कै॒ः ।  
 ३द्विषतेव ४विवस्वता पुरीं शरणीकृत्य ५युयुत्सु ६लक्ष्यते ॥२८॥<sup>२</sup>
- ( १ ) कुत्रापि । ( २ ) नीलरत्नभवनकपटं तमः । ( ३ ) उच्चैर्निःसरद्धिः । ( ४ ) कैरैः किरणैर्हस्तैश्च । ( ५ ) वैरिणा । ( ६ ) रविणा । ( ७ ) योद्धुमिच्छुः । ( ८ ) दृश्यते ॥२८॥
- हील० अपि नीलरत्नकृतगृहच्छलादध्वानं उच्चैः किरणैः सूर्येण सह योद्धुमिच्छुर्दृश्यते ॥२८॥
- हीसु० नगरे १नगरस्थकृदद्युतो २नितरां ३दिद्युतिरेऽत्र नागराः ।  
 ४मरुतां ५तनुगर्व्वखर्व॑तामिव कर्तुं विधिना विनिर्मिताः ॥२९॥
- ( १ ) स्वामिकार्त्तिकसमानकान्तयः । “सनगरं नगरस्थकरोजसः” इति रघौ । क्रौञ्चाचलस्तस्य छिदकर्त्ता गुहः बाणेन विद्ध इति तद्वृतिः । ( २ ) अतिशयेन । ( ३ ) रेजुः । ( ४ ) देवानाम् । ( ५ ) शरीरसौन्दर्याभिमानाधरीकरणाय ॥२९॥
- हील० नग० । क्रौञ्चाचलस्य छिद्रं करः स्वामिकार्त्तिकस्तद्वृत्कान्तिमन्तः पौरा: शुशुभिरे । उत्प्रेक्ष्यते । देवान् गर्वगिरेः पातयितुं धात्रा कृताः ॥★२९॥
- हीसु० १रतिकान्तकलावहेलियत्तरुणानां २तनुरामणीयकम् ।  
 ३स्पृहयन्त इवा॑त्मजन्मनो ४निकटेऽहर्निशमाऽसते सुराः ॥३०॥<sup>४</sup>
- ( १ ) स्मरूपश्रीतिरस्कारिणां देवगिरेर्यूनाम् । ( २ ) शरीरचारुताम् । ( ३ ) ब्रह्मणः । ( ४ ) समीपे । ( ५ ) नित्यम् । ( ६ ) तिष्ठुन्ति ॥३०॥
- हील० रति० । ब्रह्मणो निकटे सुरास्तिष्ठन्ति । उत्प्रेक्ष्यते । देवगिरेर्नार्गणां स्मराधिककायसौन्दर्य वाञ्छन्त इव ॥३०॥
- हीसु० १प्रतिपञ्चमुखं २द्विषं ३व्ययीकृतसर्वास्त्रतया ४निरायुधः ।  
 ५अकरोदि६दमङ्ग्ननानिभादिव ७हेतीः शतशः स्परः पुनः ॥३१॥
- ( १ ) ईश्वरम् । ( २ ) रिपुम् । ( ३ ) क्षिमसमस्तशस्त्रत्वेन । ( ४ ) निरस्त्रीभूतः । ( ५ ) देवगिरिमणीकपटात् । ( ६ ) प्रहरणानि ॥३१॥

1. अपि नीलमणी० हीमु० । 2. इति देवगिरिगृहाः हील० । 3. ०ताकृतये विश्वकृता कृता इव हीमु० ।  
 4. इति देवगिरिनगरनागराः हील० । 5. ०नामिषा० हीमु० ।

- हील० पञ्चमुखं ईक्षरं प्रति प्रहितानि आयुधानि । अतो निःशस्त्रः स्मरः दक्षिणस्त्रीदम्भाङ्गेतीरायुधानि कृतवान् ॥★३१॥
- हीसुं० 'स्वपदाभिककुम्भसम्भवं तपसः' पातयितुं 'मरुद्वता ।  
 'इदमिन्दुमुखीमिषादिह प्रहिताः' 'स्वर्गिमृगीदूशः' किमु ॥३२॥
- ( १ ) निजपदस्य इन्द्रत्वस्याभिलाषिणमगस्तिम् । इदं शैवशास्त्रानुयायिवचो न जैनं परं कविसमयानुगतत्वादुच्यते । ( २ ) तपः करणात् । ( ३ ) भ्रंशयितुम् । ( ४ ) इन्द्रेण । ( ५ ) देवगिरिवनिताकपटात् । ( ६ ) अप्सरसः ॥३२॥
- हील० अगस्ति तपात्(तपसः) पातयितुं दक्षिणस्त्रीमिषादेवरमा मुक्ताः ॥३२॥
- हीसुं० 'जलकेलिगलद्विलेपनीकृतगोशीर्षविलोचनाञ्जनैः ।  
 पुरि पद्मदूशः' प्रकुर्वते गृहवापीर्विधुं मण्डलीरिव ॥३३॥<sup>1</sup>
- ( १ ) सलिलक्रीडायां सलिलसङ्घान्निपतत्तद्येऽङ्गरागात्तचन्दनैस्तथा नेत्रकञ्जलैश्च । ( २ ) चन्द्रबिम्बानीव । चन्दनदवेण जलस्यौज्ज्वल्यं लाञ्छनस्थाने कज्जलकालिमा । "शुद्धा सुधादीधितिमण्डलीयम्" इति नैषधे ॥३३॥
- हील० स्त्रियश्वन्दनैरञ्जनैर्गृहवापीषु चन्द्रत्वं दद्युः ॥३३॥
- हीसुं० पुरि तत्र 'निजामसाहिनाजनि राजा' 'रघुसूनुनीतिना ।  
 'तदुपात्तदिशा' 'महस्विना विदधे येन यमोऽपि' 'दण्डभृत्' ॥३४॥
- ( १ ) निजामसाहिनी नामराजा । ( २ ) रामतुल्यन्यायेन । ( ३ ) निजामसाहिना गृहीतहरीता । ( ४ ) प्रतापवता । ( ५ ) दण्डो राजदेयांशः यष्टिश्च ॥३४॥
- हील० तत्र निजामसाहिः पतिर्जातिः । गृहीताशेषप्रतापवता येन यमोऽपि दण्डदो दण्डधरो वा कृतः । ३४॥
- हीसुं० 'समरे' 'निहतारिनिष्पतदुधिराह्वासवपानकाङ्गक्षया ।  
 'यदसिच्छलतः' 'स्फुटीकृता' 'रसनेवा' 'म्बुजबन्धुसूनुना' ॥३५॥
- ( १ ) सङ्ग्रामे । ( २ ) व्यापादितरिपुशरीरनिःसरलोहितमाध्वीकपानाभिलाषेण । ( ३ ) निजामसाहिखड्गलताच्छलात् । ( ४ ) प्रकटीकृता । ( ५ ) जिह्वा । ( ६ ) सूर्यपुत्रेण । यमेनेत्यर्थः ॥३५॥
- हील० सम०। यत्खड्गदम्भाद्यमेन रक्तपानार्थं जी(जि)ह्वा प्रकटीकृता ॥३५॥
- हीसुं० 'महसां' 'निवहे' 'महीशितुं' 'र्विपिनेऽपि' 'स्फुरितेऽतिदुःसहे ।  
 'दवधीविधुरास्त' 'दाश्रयाः' 'प्रतिपक्षाः' सं 'रसीर्जं' 'गाहिरे' ॥३६॥
- ( १ ) प्रतापानाम् । ( २ ) समूहे । ( ३ ) निजामसाहेः । ( ४ ) वने । ( ५ ) प्रकटीभूते । ( ६ )

1. इति देवगिरिनगराङ्गनाः हील० ।

अतिशयेन सोद्गुमशक्ये । ( ७ ) दावानलभ्रमेण व्याकुलाः । ( ८ ) वनवासिनः । ( ९ )  
शत्रवः । ( १० ) महातडागान् । ( १२ ) अवगाहन्ते स्म ॥३६॥

हील० महा० यस्य रजः प्रतापानां व्यूहे वनेऽपि प्रकटीभूते सति दवबुद्ध्या व्याकलीभवन्तो वनस्थायिनो  
वैरिणः सरस्यु प्रविष्टाः ॥३६॥

हीसुं० १अहिता ३अमुना पराहता ५वनवासाः ४शबरा इवाभवन् ।  
५अबला इव ६वातवेपितादपि ७पत्राद्विपिनेऽपि ८बिष्यरे ॥३७॥<sup>१</sup>

( १ ) वैरिणः । ( २ ) निजामसाहिना । ( ३ ) अरण्यचारिणः । ( ४ ) भिला इव । ( ५ ) स्त्रिय  
इव । ( ६ ) पवनकम्पितान् । ( ७ ) तरुपर्णात् । ( ८ ) भयमापुः ॥३७॥

हील० अहि० । अमुना शत्रवो परिभूताः सन्तो भिला इव जाताः । वायुकम्पितात्पत्रादपि अबला निःसत्त्वा  
इव स्त्रिय इव वनेऽपि पलायन्ते स्म ॥३७॥

हीसुं० अथ १तत्पुरि २देवसीत्यभूदभिधानेन वणिक्युरन्दरः ।  
३विधिना४स्य यशःप्रशस्तयोऽम्बरपट्टे लिखिता ५इवोडवः ॥३८॥

( १ ) तत्र देवगिरौ । ( २ ) देवसीनामा वणिक्षेष्ठः । ( ३ ) विधात्रा । ( ४ ) देवसीव्यवहारिणः ।  
( ५ ) आकाशपट्टके । ( ६ ) तारका एव वर्णाः ॥३८॥

हील० तत्पुरि देवसीवणिगास्ते । धात्रा तारमिषात्कीर्तिवर्णा लिखिताः ॥३८॥

हीसुं० १सुरयौवतजैत्रकान्तियद्युवतीसङ्गमरङ्गिमानसः ।  
२वपुरस्य ३दधत्सु४धाशनः किमु कोऽप्यत्र पुरेऽवतीर्णवान् ॥३९॥

( १ ) सुराङ्गनागणजयनशीला शोभा यासां तादृशीनां देवगिरिसुन्दरीणां सङ्गमे सरागमानसः ।  
( २ ) देवसीशरीरम् । ( ३ ) दधानः । ( ४ ) देवः ॥३९॥

हील० सुर० सुरीसमूहजैत्राणां देवगिरिस्त्रीणां सङ्गमे लानचितः । एतद्वपुर्दर्शी कोऽपि देवोऽवतारं  
गृहीतवान् ॥३९॥

हीसुं० १कमनः २कमनात्प्र३सेदुषः सह ४सारङ्गदृशोप५शीलितात् ।  
भव ६साङ्ग इतीव ७तन्त्रिभाद्व८रमाप्याजनि ९मूर्त्तिमानिह ॥४०॥<sup>२</sup>

( १ ) स्मरः । ( २ ) वेधसः । ( ३ ) प्रसभीभूतात् । ( ४ ) रत्या समम् । ( ५ ) सेवितात् । ( ६ )  
शरीरयुक्तः । ( ७ ) देवसीकपटेन । ( ८ ) विधातुर्करं प्राप्य । ( ९ ) शरीरवान् ॥४०॥

हील० स्मरो रत्या समं सेवितादतः प्रसन्नात्कमनाद्विधातुः सकाशात्साङ्गे भवे'ति वरं प्राप्येभ्यनिभाच्छरीरी  
जातः ॥४०॥

1. इति देवगिरिस्वामिनिजामसाहिः हील० । 2. इति देवसीव्यवहारी हील० ।

- हीसुं० 'अदसीयविलासवत्यभूज्जैसमादेव्यभिधानधारिणी ।  
विधिना ग्रहितेव वर्णिका त्रिदिवस्त्रैणदितृक्षुभूस्पृशाम् ॥४१॥  
( १ ) देवसीपत्नी । ( २ ) जसमादेवीनामी । ( ३ ) भूमौ प्रेषिता । ( ४ ) स्वर्गाङ्गा( झना )नां  
गणं द्रष्टुमिच्छूनां नराणाम् ॥४१॥
- हील० अस्य जसमादेवी स्त्रीरभूत । उत्प्रेक्ष्यते । स्वर्गिवध्वालोकनरतानां जनानां धात्रा कनी प्रेषिता ॥४१॥
- हीसुं० 'कमलान्मधुपानुषङ्गिनः सितकान्ते रुदयास्तदूषितात् ।  
'कमला'ब्धिशश्यालुकेशवादतिखिन्नेव तमेत्य ग्रेजुषी ॥४२॥  
( १ ) पद्मात् । ( २ ) मद्यपैर्भृङ्गैश्च सङ्घवतः । ( ३ ) उद्गमनास्ताभ्यां सदोषाच्चन्द्रात् । ( ४ )  
लक्ष्मीः ( ५ ) समुद्रे शयनशीलात्कृष्णात् । ( ६ ) उद्विग्ना । ( ७ ) श्रिताः ॥४२॥
- हील० मद्यपैरुद्धात्कजात् पुनरुदयास्तदूषिताच्चन्द्रात् पुनः समुद्रे सुसात्कृष्णदुद्विग्ना श्रीस्तं भेजे ॥४२॥
- हीसुं० 'वृषभध्वजगोधिलोचनानलकीलाशलभं स्ववल्लभम् ।  
'अवगत्य रतिष्य( : प)रं जनुर्निभतोऽस्याः प्रतिपेदुषी किमु ॥४३॥  
( २ ) ईश्वरललाटनयनवह्निज्वालायां पतङ्गम् । भस्मीभूतमित्यर्थः । ( २ ) ज्ञात्वा । ( ३ )  
अन्यजन्म । ( ४ ) प्रपन्ना ॥४३॥
- हील० वृष० शंभोर्ललाटनेत्रगिनज्वालायां पतङ्गं कामं ज्ञात्वा रतिरस्या मिषान्त्रवं जन्माददे ॥४३॥
- हीसुं० 'अनया निजस्तपसम्पदाऽभिभवं लभिभतया श्रिया किमु ।  
'जलधौ' विमनायमानया 'दयितोपास्तिनिभाद' गम्यतः ॥४४॥  
( १ ) जसमादेव्या । ( २ ) स्वरूपश्रिया । ( ३ ) प्रापितया । ( ४ ) समुद्रे । ( ५ ) विरुद्धमनस्की-  
भवन्त्या । "चिरायतस्थे विमनायमानया" इति नैषधे । ( ६ ) भर्तुः समुद्रशायिनः कृष्णास्य  
सेवाकपटात् ( ७ ) गता ब्रूडिता ॥४४॥
- हील० अनया रूपेन(ण) जितया श्रिया उन्मनस्त्वेन कृष्णसेवानिभादगम्यत-गता । ब्रूडितेत्यर्थः ॥४४॥
- हीसुं० 'युवसंमदकन्दलीघनैः 'कमलानन्दनकेलिशीलनैः ।  
'त्रिदशाविव' दम्पती सुखं वसतस्तौ 'त्रिदिवोपमे' पुरे ॥४५॥  
( १ ) तरुणानामानन्दकन्देषु मेघसदृशैः । ( २ ) स्मरक्रीडासेवाभिः । ( ३ ) देवदेवाविव ।  
'पुमान्स्त्रिया' स्त्रीया सहोक्तौ पुमान्शिष्यते, न स्त्री । उदाहरणम् -ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च-  
ब्राह्मणौ इति प्रक्रियाकौमुद्याम् । तथाऽत्रापि त्रिदशी च त्रिदशश्च-त्रिदशौ । ( ४ ) जसमादेवी-  
देवसीनामानौ । ( ५ ) स्वर्गतुल्ये । ( ६ ) नगरे ॥४५॥

1. इति जसमादेवी हील० ।

- हील० यूनामानन्दा एव कन्दल्यः कन्दास्तेषु मेघसदृशैः कामक्रीडाकरणैः । देवी च देवश्च देवौ । 'स्त्रिया सहोक्तौ पुमान् शिष्यते न खी' । ताविव दम्पती सुखं वसतः ॥४५॥
- हीसु० <sup>१</sup>परशासनशास्त्रमालिकाम॑यम॑ध्येतुमथो <sup>२</sup>गुरोर्गिरा ।  
व्रजति स्म कदापि दक्षिणां <sup>३</sup>हरितं <sup>४</sup>हीरमुनिर्दिनेशब्द[ त् ] ॥४६॥  
( १ ) शैवशासनस्यागमश्रेणीम् । ( २ ) हीरहर्षः । ( ३ ) पठितुम् । ( ४ ) विजयदानसूरिवचनेन ।  
( ५ ) दिशम् । ( ६ ) हीरकुमारनामा मुनिः । ( ७ ) रविरिव ॥४६॥
- हील० अयं सूर्यवत् कदापि दक्षिणां दिशं व्रजति स्म ॥४६॥
- हीसु० अथ देवगिरावगम्यतां खिलतर्काधिजिगांसयामुना ।  
पटलेन<sup>१</sup> पयोमुचां यथा <sup>२</sup>सलिलादानसमीहयाम्बुधौ ॥४७॥  
( १ ) समस्तप्रमाणशास्त्रपिपठिषया । इदृश्च । 'इदृशं अध्ययने' इत्यस्य गम स्यात् । सनि परे अधिजिगांसते, इति प्रक्रियायाम् । ( २ ) मेघवृन्देन । ( ३ ) जलग्रहणकाङ्क्षया ॥४७॥
- हील० अथ० । अमुना हीरहर्षगणिना देवगिरौ पढितुं गतम् । यथा जलग्रहार्थं अब्धौ अब्दौघेन गम्यते ॥४७॥
- हीसु० पढता सह धर्मसागरव्रतिना देवगिरौ गुरुवर्यभात् ।  
<sup>१</sup>सहकार इव प्रफुल्लता<sup>२</sup> नवराजादनशाखिना वने ॥४८॥  
( १ ) आप्र इव । ( २ ) विकसितनवप्रियालतरुणा ॥४८॥
- हील० धर्मसागरयतिना सह गुरुर्भाति स्म । यथा विकसत्प्रियालदुमेण सह वने सहकारे भाति ॥४८॥
- हीसु० पुरसङ्ख्यजनैः <sup>१</sup>प्रणोदितैर<sup>२</sup>मुना<sup>३</sup>धीतिकृते कृतीन्दुना ।  
प्रतिबिम्बमिव <sup>४</sup>द्युसद्गुरोर्द्विज <sup>५</sup>आनायि ततः कुतश्चन ॥४९॥  
( १ ) प्रेरितैः । ( २ ) हीरहर्षमुनिना । ( ३ ) अध्ययनाय । ( ४ ) बृहस्पतेः । ( ५ ) आहूतः ॥४९॥
- हील० हीरहर्षमुनिना प्रेरितैः सङ्ख्यरथ्यनार्थं बृहस्पतितुल्यः आकारितः ॥४९॥
- हीसु० <sup>१</sup>तदुपान्तभुवं व्यभूषयत्स ततो <sup>२</sup>गौरगरुदगतिर्द्विजः ।  
अवतीर्ण इवा<sup>३</sup>रविन्दभूः स्वयं( ? )<sup>४</sup>स्वकर्मस्य <sup>५</sup>दिदृक्षया क्षितौ ॥५०॥  
( १ ) हीरहर्षसमीपभूमीम् । ( २ ) हंसगमनः । ( ३ ) ब्रह्मा । ( ४ ) स्वकृतभूलोकस्य । ( ५ ) दण्डिमिच्छया ॥
- हील० स हंसगतिर्द्विजस्तत्समीपे स्थितः । उत्प्रेक्ष्यते । स्वसृष्टि द्रष्टुं ब्रह्मा भुव्यागतः ॥५०॥
- हीसु० <sup>१</sup>मृडमू<sup>२</sup>र्ध्नि निवास सौहृदान्मिलितुं <sup>३</sup>जह्नुतामिवागताम् ।  
<sup>४</sup>अलिकादर्धविधुं <sup>५</sup>ललाटिकां <sup>६</sup>वहमानो <sup>७</sup>हरचन्दनोद्दवाम् ॥५१॥

( १ ) ईश्वरमस्तके । ( २ ) एकत्रस्थितिमैत्रात् । ( ३ ) गङ्गामिव । ( ४ ) भालरूपार्द्धचन्द्रम् ।  
 ( ५ ) ललाटमण्डनम् । तिलकमित्यर्थः ( ६ ) दधानः । ( ७ ) चन्दनरचिताम् ॥५१॥

हील० किंभूतो द्विजः ? । चन्दनतिलकं वहन् । उत्प्रेक्ष्यते । शंभुमस्तके सदा स्थितिमैत्राद् भालार्द्धचन्द्रं  
 मिलितुं गङ्गां आगतां वहन् ॥५१॥

हीसुं० 'उपवीतमुरःस्थलान्तरे कलयंश्चन्दनचन्दचर्चितः ।

दमनो<sup>३</sup> मदनस्य \*भूतिमानिव 'वैकक्षितकुण्डलीश्वरः ॥५२॥

( १ ) यज्ञसूत्रम् । ( २ ) कर्पूरमिश्रचन्दनकृताङ्गरागः । ( ३ ) ईश्वरः । ( ४ ) भस्मयुक्तः । ( ५ )  
 उत्तरासङ्गीकृतशेषनागः ॥५२॥

हील० चन्दनकर्पूरगभ्यां चर्चितः । उत्प्रेक्ष्यते । भस्मवान् पुनः प्रावारीकृतशेषनागः, स्मरशत्रुः ॥५२॥

हीसुं० 'शिववाङ्मयवार्द्धपारगोऽनिशष्टकमर्मरतो व्रतान्वितः ।

वपुरेभ्युपगत्य \*वर्णिनामिव धर्मः प्रकटीभवन्निवा॥५३॥

<sup>१</sup>चतुर्भिः कलापकम् ॥

( १ ) नैया[ यि ]कशास्त्रसमुद्रपारगामी । ( २ ) नियमयुतः । ( ३ ) अङ्गीकृत्य । ( ४ ) ब्राह्मणधर्मः  
 ॥५३॥

हील० पुनः किंभूतः ?। शैवशास्त्रे निपुणः स्वमार्गनिष्ठः । उत्प्रेक्ष्यते । कायवान् । ब्राह्मणानामयं धर्मः  
 ॥५३॥

हीसुं० २पठति 'सधर्मसागरः सविधे तस्य स तस्य \*वाङ्मयम् ।

'समयं 'सुगतस्य \*सौगतादिव 'हंसष्ठ( : प )रमादिहंसयुक् ॥५४॥

( १ ) धर्मसागरगणिसहितः । ( २ ) तस्य ब्राह्मणस्य । ( ३ ) तस्य नैयायिकस्य । ( ४ )  
 शास्त्रम् । ( ५ ) शास्त्रम् । ( ६ ) बौद्धस्य । ( ७ ) बौद्धाचार्यात् । ( ८ ) परमहंससहितो हंसः।  
 हरिभद्रसूरिभागिनेयो हंसपरमहंसौ ॥ ५४॥

हील० धर्मसागरसहितः स पठति स्म । यथा हंसः परमहंससंयुक्तो बौद्धाचार्याद्वौद्धस्य सिद्धान्तं पठति स्म  
 ॥५४॥

हीसुं० कलयन्प्रतिभामनुत्तरामतितीक्ष्णां स कुशः \*शिखामिव ।

'प्रथमं 'प्रविधाय 'तवर्कयुक्परिभाषामुखशास्त्रसङ्ग्रहम् ॥५५॥

'द्रविणार्पणहृष्टमानसादथं चिन्तामणिमग्रहीद्विजात् ।

'परिशीलनकर्मतोषितादिवं चिन्तामणिमादितेयतः ॥५६॥ युग्मम् ॥

1. इत्यादि चतुःकलापकेन पण्डितद्विजवर्णनम् हील० 2. स पपाठ सधर्मसागरोऽखिलनैयायिकवाङ्मयं ततः ।  
 हीसुं० ।

(१) बुद्धिम् । (२) असाधारणाम् । (३) दर्भः । (४) अग्रमिव । (५) पूर्वम् । (६) पठनं कृत्वा । (७) तर्कपरिभाषाप्रमुखाणां शास्त्राणाम् ॥ ५५॥

(१) यथेप्पितदव्यप्रदानेन सन्तुष्टहृदयात् । (२) चिन्तामणिनाम शैवं शास्त्रम् । (३) सेवाप्रसन्नीकृतात् । (४) चन्तामणिरत्नमिव । (५) देवात् ॥ ५६ ॥ युग्मम् ॥

हील० यथा दर्भस्तीक्ष्णां शिखां धत्ते तद्वत्तीक्ष्णां मर्ति दधन् सन् पूर्वं तर्कभाषादिकमधीत्य द्रव्यदान-  
तुष्टद्विजाच्चिन्तामणिं अग्रहीत् । यथा सेवातुष्टदेवात् कश्चिच्चिन्तारत्नं गृह्णति ॥५५-५६॥

हीसुं० १प्रतिभाविभवैः पठन्त्रमांत्समयस्यास्य स पारमाप्नवान् ।  
प्रचरन्यैवमानवर्त्तनोऽध्वरथैर्भानुमतामिव व्रजः ॥५७॥

(१) बुद्धिगुणौः । (२) तर्कशास्त्रस्य । (३) आकाशस्य । (४) पारियानिकैः । (५) सूर्याणाम् । (६) गणः । द्वादशत्वादभानूनां समूहपदोपादानम् ॥ ५७॥

हील० प्रतिठ० स शास्त्रपारं प्राप्नवान् । यथा पारियानिकैः कृत्वा सूर्यब्रजो नभसः पारं प्राप्नोति ॥५७॥

हीसुं० १अमुनांध्ययने सैमापिते ४द्विजराजदविणार्पणाविधौ ।  
५सुमनोलतिकेव केवलं ५जसमादेव्यजनिष्ट सा तदा ॥५८॥

(१) हीरहर्षगणिना । (२) पठने । (३) पूर्णीकृते सति । (४) पाठकब्राह्मणधनप्रदानप्रकारे ।  
(५) कल्पवल्लीव । (६) पूर्ववर्णिता देवसीपली जसमादेवी ॥५८॥

हील० अध्ययने जाते सति जसमादेवी तस्मिन्कल्पवल्लीव जाता ॥५८॥

हीसुं० शिरसीवै शिवस्य जाह्नवी शरदचन्द्रमसीव चन्द्रिका ।  
अलिनीवै ५मृणालिनीवने हृदि रेमेऽस्य १मुनेः ५कलन्दिका ॥५९॥

(१) ईश्वरस्य मस्तके । (२) गङ्गा । (३) चन्द्रे । (४) कमलिनीकानने । (५) सर्वविद्या ॥५९॥

हील० यथा शिवमस्तके गङ्गा रमते, शरचन्द्रे ज्योत्स्ना रमते, कमलवने भ्रमरी रमते, तथाऽस्य चित्ते  
सर्वविद्या रेमे ॥★५९॥

हीसुं० विधिना १वचसामधीश्वरी किमुताकारि बृहस्पतिः शक्तिः ।  
३निखलागमपारगाहिनं तमुदीक्ष्येदमतर्कि ४तार्किकैः ॥ ६०॥<sup>2</sup>

(१) सरस्वती । (२) स्वर्णे तु द्वावपि वर्त्तेते । अयं तु भूमेः । (३) समस्तानां जैनशैवशास्त्राणां  
पारगामिनम् । (४) विचारचतुरैः ॥६०॥

हील० तं दृष्ट्वा तार्किकैरिदं विचारितम् । यदसौ धात्रा सरस्वती कृता वा पृथिव्याः बृहस्पतिष्कृ-  
(तिः कृ)तः ॥६०॥

1. गणे० हीमु० । 2. इति हीरहर्षगणे: पण्डितद्विजसमीपपठनवर्णनम् हील० ।

- हीसुं० भवति स्म विचक्षणः क्षणादथ सामुद्रिकवत्स लक्षणे ।  
अपि काव्यविशेषविज्ञया विजितः काव्य इवाभजन्नभः ॥६१॥  
(१) चतुरः । (२) व्याकरणशास्त्रे करचरणाद्याकारविशेषे च । (३) काव्यानां रघु-  
नैषधादीनां रहस्यज्ञातृत्वेन । (४) शुक्रः ॥६१॥
- हील० यथा सामुद्रिको लक्षणे निपुणस्तद्वलक्षणात्मकशास्त्रे विचक्षणः सोऽभवत् । पुनर्षः (प)-  
ञ्चकाव्यज्ञानाज्जितः काव्यः - शुक्रो नभसि गतः ॥६१॥
- हीसुं० पदमस्य हृदि व्यतन्तनीदनिशं ज्योतिरिवाभ्रवर्त्मनि ।  
नग्नित्यति नर्तकीव धीरपि तर्कागग्नरङ्गवेशमनि ॥६२॥  
(१) ज्योतिःशास्त्रम् । तारकादिव (२) बुद्धिः । (३) तर्कशास्त्ररूपनर्तनगृहे ॥६२॥
- हील० अस्य चिते ज्योतिःशास्त्रं रेमे । यथाकाशे ज्योतिर्नक्षत्रं रमते । पुनरस्य मतिस्तर्कशास्त्रे अतिशयेन  
नृत्यं कुरुते, यथा नर्तकी रङ्गगृहे नृत्यं करोति ॥६२॥
- हीसुं० गणितं ह्यानुरागिगागवन्न विसस्मार मानसान्निजात् ।  
प्रसृतास्य मतिर्जिनागमेऽम्बुधिकाञ्च्यामिव चक्रिणश्चमूः ॥६३॥  
(१) स्वस्मिन्ननुरक्तज्ञनस्तेह इव । (२) चित्तात् । (३) जैनशास्त्रम् । (४) भूमौ । (५)  
चक्रवर्तिसेना ॥६३॥
- हील० यथा स्तेहिस्तेहो न विस्मरति तथा गणितं शास्त्रं न विस्मरति स्म । यथा चक्रिसेना क्षोणीमण्डले  
आसमुद्रानां प्रसरति, तद्वदस्य मतिः प्रवचने प्रसृता ॥६३॥
- हीसुं० बहुना किमु तन्मनस्विनोऽखिलषद्वर्णनशास्त्रसंन्ततिः ।  
गलकन्दलमालिलिङ्गं यद्युं (द्यु)ववत्खञ्चनमञ्जुलेक्षणा ॥६४॥  
(१) किं बहूत्तेन । (२) प्रकृष्टमनसः । (३) जैन १ बोद्ध २ नैयायिक ३ साहृदय ४  
वैशेषिक ५ नास्तिक ६ इत्याच्यानि षड्वर्णनानि, तेषामागममालिका । (४) कण्ठपीठम् ।  
(५) यद्-यस्मात्कारणात् । (६) तरुणस्येव । (७) कण्ठकामिनी ॥६४॥
- हील० बहूतेन किम् ?। षट्वर्णनशास्त्रश्रेणीगिरे स्थिता । यथा प्रौढा युवानमालिङ्गति ॥\*६४॥
- हीसुं० सविधे स्वगुरोः सगौरवं गमनायोत्सुकमाशयं ततः ।  
अयमर्जितशास्त्रवैभवोऽधित् सार्थेश इव व्रतीशीता ॥६५॥  
(१) पार्श्वे । (२) विजयदानसूरे । (३) सबहुमानम् । (४) गन्तुम् । (५) उत्कण्ठितम् ।  
(६) चित्तम् । (७) उपार्जितशैवशास्त्रसम्पत्तिः । (८) सार्थनाथ इव ॥६५॥

1. इवाभवन्नराभः: इति हीसुं० दृश्यते । स चाशुद्धः । 2. मालिका० हीसुं० । 3. इति हीरहर्षगणे: स्वसमयपरसमयशास्त्राणां  
परिज्ञानम् हील० ॥

- हील० अयं स्वगुरुसमीपे गमनमकरेत् । यथा सार्थपतिः पितुः समीपे गच्छति ॥६५॥
- हीसुं० अथ १दक्षिणदेशतो मैहाव्रतभूमूर्च्छितमच्छच्य( त्य )लाज्जनः ।  
मलयानिलवत्स<sup>१</sup> चेलिवान्यशसा ३सौरभयन्भुवस्तलम् ॥६६॥  
( १ ) दक्षिणदेशात् । ( २ ) मूर्च्छा निधनावस्थ्यं प्रापितः वार्द्धितोत्साहश्च स्मरो येन । महाव्रतधारी,  
ईश्वरश्च । सोऽपि हतस्मरः ( ३ ) वासयन् ॥६६॥
- हील० अथ० । मूर्च्छा नीतो मकरध्वजो येन, तादृशः स प्रचलति स्म । यथा मलयवायुः प्रचलति ॥६६॥
- हीसुं० मरुतामिव<sup>१</sup> पद्धतीः पुरीर्वृष्टकन्यामिथुनाजराजिनीः ।  
मैकरान्वितभीनशालिनीः सरितः सा॑ञ्जबलाहकाः पुनः ॥६७॥  
वसतीरिव वल्यु॑विष्ट्राः सकुरङ्गाः शशिमण्डलीरिव ।  
॒स्फुरदप्सरसो यथा दिवष्य॑( : प )दवीर्लङ्घितवान्मुनीश्वरः ॥६८॥ युग्मम् ॥२  
( १ ) आकाशमार्गाः । ( २ ) वृषभाः कुमारिकाः तरुणीतरुणयुगलानि मेषास्तैः राजन्ते  
इत्येवंशीला: गगने तु मेषवृषमिथुनकन्याराशयः । ( ३ ) जलयादांसि मतस्यास्तैः शोभमानाः ।  
पक्षे-मकरमीनौ राशी । ( ४ ) कमलानि बकास्तैर्युक्ता नद्याः । गगनं चन्द्रमेघैः सहितम् ॥६७॥  
( १ ) आसनं वृक्षश्च । ( २ ) अप्प्रधानानि सरांसि यत्र । ( ३ ) इतस्ततो भ्रमन्त्य उर्वशीमुखाप्सरसो  
यत्र ( ३ ) मार्गान् ॥६८॥
- हील० मरु०। स मुनिः पुरीरुलङ्घितवान् । उत्प्रेक्ष्यते । देववीथीः । कैः ?। वृषभैः कन्याभिः  
स्त्रीपुंयुगलैर्जैश्छागैः शालिनीः । पक्षे-चतुर्भिः राशिभिर्युक्ताः । पुनर्देववीथीरीव नदीरुलङ्घितवान् ।  
किंभूताः ? मकरर्युक्तमत्स्ययुक्ताः । पुनः किंभूताः ?। कमलैर्बैर्युक्ताः । पक्षे राशिद्वयकलिताः ।  
अञ्जेव चन्द्रेण मेर्घैर्वा सहिताः ॥६७॥
- यथा गृहं मनोज्ञासनं भवति तद्वन्मनोज्ञवृक्षाः पुनश्चन्द्र इव मृगयुक्ताः । पुनः स्फुरन्ति अप्प्रधानानि  
सरांसि यासु तादृशाः पदवीर्मार्गानुलङ्घयति स्म । यथाप्सरेयुक्ता दिवः ॥६८॥
- हीसुं० मरुदेशमभूषयत्क्रमादथ कु॑राङ्गजसाधुसिन्धुरः ।  
॒अतुलैरिव धन्व॑३जन्मनां सुकृतैः ॑स्वःशिखरी समीयिवान् ॥६९॥  
( १ ) हीरहर्षगणिः । ( २ ) असाधारणैः । ( ३ ) मरुनरणाम् । ( ४ ) कल्पद्रुः मेरुर्वा  
कल्पद्रुयुक्तः ॥६९॥
- हील० धन्वजन्मनां मरुसम्बन्धिनाम् ॥६९॥
- हीसुं० ॑कविना च ॒बुधेन ॑सन्त्रिधिस्थितिभाजा॒॑क्षितिज॑३न्मनान्वितः ।  
सविधे स गु॑रोरुपेयिवान्वि॑धुवद्वागमृतं ततः किरन् ॥७०॥

1. उवत्प्रवेष्ट हीमु० । 2. इति मार्गवर्णनम् हील० । 3. उजन्मिं० हीमु० । 4. उना पुनः । हीमु० ।

( १ ) काव्यकर्ता शुक्रेण च । ( २ ) पण्डितेन सोमपुत्रेण च । ( ३ ) समीपस्थितेन । ( ४ ) भूषौ जन्म यस्य तथा मङ्गलेन च युक्तः । गगने सर्वेषां स्थितत्वात् । ( ५ ) विजयदानसूरे-  
र्वृहस्पतेश्व । ( ६ ) चन्द्र इव ॥७०॥

हील० यथा चन्द्रो वृहस्पतिगृहे समायाति तथा गुरुसमीपमागतः । शुक्रेण, बुधेन, मङ्गलेन ॥७०॥

हीसुं० स चुचुम्ब पदाम्बुजं गुरोर्मिनोनूय नवैः स्तवैस्ततः ।

पर्तिदर्घणिकानुबिम्बितश्रुतिभावस्म॑ ( : शा )क<sup>१</sup>डालसूनुवत् ॥७१॥

( १ ) स्तुत्वा । ( २ ) प्रज्ञादर्शिकायां प्रतिर्बिबिताः शास्त्राणां भावा रहस्यानि यस्य । "मन्त्रतौ  
विमलदर्घणिकाया"मिति नैषधे । ( ३ ) स्थूलभद्र इव ॥७१॥

हील० <sup>२</sup>अग्रे वृत्तं सुगमम् ॥७१-७८॥

हीसु० अथ नारदनाम्नि॑ पत्तने॒ तुरग॑व्योम०रसेदन्तु॑वत्सरे १६०७ ।

३वृषभाङ्गजिनालये॑ गिरेरिव शंभोर्विभवैः सहोदरे ॥७२॥

पदमा॑प्यत ३पण्डिताहृयं गणिना तेन यति क्षितीशितुः ।

३अभिभूय ४बुधं ५बुधश्रिया पद॑मस्यैव कि॑मात्तमात्मना ॥७३॥ युग्मम् ॥

( १ ) पत्तनशब्दः सामान्येन नगरवाची न मुख्यवृत्त्या पत्तनस्य । नडुलाई नगरे । ( २ )  
विक्रमार्कात्समाधिकषोडशशतवर्षे १६०७ । ( ३ ) ऋषभदेवप्रासादे । ( ४ ) कैलाशस्य ॥७२॥

( १ ) प्रासम् । ( २ ) प्रज्ञांशाभिधानम् । ( ३ ) जित्वा ( ४ ) सोमसुतम् । ( ५ ) पाणिडत्यलक्ष्म्या ।  
( ६ ) रोहिणीसुतस्यैव । ( ७ ) गृहीतम् ॥७३॥

हीसुं० ४५ तपसः ६सितपञ्चमीदिने ७कुलशैलाई०रसादत्म॑वत्सरे१६०८ ।

अपि नारदपुर्य॑नुत्तरैरिव ८सख्यां विभवैर्हरः ९पुरः ॥७४॥

८सुहृदेव समेत्य शोभिते १वरकाणाख्यजिनावनीन्दुना ।

१जलजध्वजसार्वमन्दिरे पदमस्याजनि २वाचकाहृयम् ॥७५॥ युग्मम् ॥

( १ ) असाधारणसम्पत्त्या । ( २ ) अपरावत्या । ( ३ ) वयस्यामिव । ( ४ ) माधमासस्य ।

( ५ ) शुक्लपञ्चम्या । ( ६ ) विक्रमनृपादघ्याधिकषोडशशतवर्षे १६०८॥७४॥

( १ ) मित्रेण । ( २ ) वरकाणकनामपार्श्वनाथेन । ( ३ ) नेमिनाथप्रासादे । ( ४ ) उपाध्यायपदम्  
॥७५॥

हीसु० १विबुधावथ रा॒जपूर्वको विमलो धर्मयुतश्च सागरः ।

३सचिवाविव वाचकेश्वरौ कृतवान्सूरिमहीपुरन्दरः ॥७६॥

1. ०कटाल० हीमु० । 2. 'अग्रे' इति ७१तमश्लोकादारभ्य ७८तमश्लोकपर्यन्तं ज्ञेयम् । 3. हीलप्रतौ हीमु० चैषा द्वितीया  
पद्धतिः । 4. ०णाख्यफणीदुकेतुना हीमु० हील० ।

( १ ) पण्डितौ । ( २ ) राजविमल-धर्मसागरनामानौ । ( ३ ) प्रधानाविव । ( ४ ) विजयदानसूरि: ॥७६॥

हीसुं० श्रियमाश्रयते स्म वाचकत्रितयी सा ॑श्रमणावनीशितुः ।  
॒प्रतिबोधयितुं ॒जगत्त्रयीमिव ॑मूर्तित्रितयी ॒समद्यता ॥७७॥

( १ ) विजयदानसूरे: । ( २ ) त्रैलोक्यम् । ( ३ ) प्रतिबोधयितुम् । ( ४ ) मूर्तित्रयीव । ( ५ ) प्रकटीभूता ॥७७॥

हीसुं० विहरन्सह ॑वाचकेन्दुना ॒शिवपूर्या ॑समवासरद्गुरुः ।  
॒वसुभूतिसुतेन सङ्गतौ ॑भगवानाजगृहे यथान्तिमः ॥७८॥

( १ ) हीरहर्षउ( घों)पाध्यायेन सह । ( २ ) श्रीरोहीनगर्याम् । ( ३ ) समवसृतः । ( ४ ) गौतमेन ।  
( ५ ) महावीरः ॥

हीसुं० ॑त्रिदिवोज्जयिनीं पूरीं तदाजनि दूदाहृनृपो विभूषयन् ।  
॒सुखयन्जैनतां व॑दान्यतां कलयन्विक्रमभानुमानिव ॥७९॥

( १ ) स्वर्ग उत्प्राबल्येन जयतीत्येवंशीलाम् । पक्षे त्रिदिवतुल्या अवन्तीनगरीम् । ( २ )  
सुखीकुर्वन् । ( ३ ) जनसमूहम् । ( ४ ) दानशीलताम् ॥७९॥

हील० त्रिदि० स्वर्गजयन्तीं सीरोहीनगरीं विभूषयन् दूदाराजाऽभूत । यथा स्वर्गतुल्यामुज्जयिनीं विभूषयन्  
सुखदः दानी विक्रमो जातः ॥७९॥

हीसुं० ॑सचिवः पुनरस्य॒ भूभुजोऽजनि चाऽङ्गाभिधसङ्गनायकः ।  
जिनधर्मरतो निधि॒र्धियाम॒भयः श्रेणिकभूपतेरिव ॥८०॥

( १ ) प्रधानः । ( २ ) दूदानुपस्य । ( ३ ) जातः । ( ४ ) ‘चाङ्गे संघवी’ इति नामा  
श्राद्धः । ( ५ ) बुद्धीनां निधानम् । ( ६ ) अभयकुमारः ॥८०॥

हील० अस्य चाङ्गाहृ॒मात्योऽजनि ॥८०॥

हीसुं० ॑निरमापयदस्य पूर्वजो धरणो रा॑णपुरे चतुर्मुखम् ।  
॒वृषभध्वजतीर्थकृदगृहं न॑लिनीगुल्ममि॑वागतं क्षितौ ॥८१॥

( १ ) कारितवान् । ( २ ) धरणाख्यः । ( ३ ) राणपुरामि॑ स्ववासनगरे । ( ४ ) चतुर्मुखं  
ऋषभदेवप्रासादम् । ( ५ ) नलिनीगुल्मनाम विमानम् । ( ६ ) स्वर्गाद् भूमावागतमिव ॥८१॥

हील० निर० । चाङ्गाहृस्य पूर्वजो धरणो नलिनीगुल्मसदृशं ऋषभचैत्यं अकारयत् ॥८१॥

हीसुं० ॑गणपुङ्गवमन्त्रम॑न्वहं विधिनाऽराद्धमना मुनीश्वरः ।  
अथ ॑सुस्थितसूरिशक्रवत्प्रणिधानं विदधे स तंत्युरे ॥८२॥

( १ ) सूरिमन्त्रम् । ( २ ) निरन्तरम् । ( ३ ) साधयितुम् । ( ४ ) सुस्थितनामाचार्य इव । ( ५ ) ध्यानम् । ( ६ ) शिवपुर्याम् ॥८२॥

हील० ग० । सूरिमन्त्रागाधनार्थं स ध्यानं विदधे ॥८२॥

हीसुं० विषयेऽप्यखिले तदा 'पुरीपतिना 'मारिवारि जन्मिनाम् ।  
‘परमार्हतभूमिभास्करं किमु ‘संस्मारयितुं स्वयं नृणाम् ॥८३॥  
( १ ) समस्ते देशो । ( २ ) द्वदानुपेण । ( ३ ) अमारिः प्रवर्तिता । ( ४ ) कुमारपालराज-  
( जम् ) । ( ५ ) स्मृतिविषयं कारयितुम् ॥८३॥

हील० समस्तेदेशोऽमारिः प्रवर्तिता । उत्प्रेक्ष्यते । कुमारपालराजानं नृणां स्मृतिगोचरीकर्तुम् ॥८३॥

हीसुं० 'अनिशं वरिवस्यितस्य तत्पसः सिद्धिरिवाङ्ग्नसङ्ग्निनी ।  
‘स्वककान्ततयातिहार्दतो 'व्रतलक्ष्मीरिव वा 'वपुष्मती ॥८४॥

‘ब्रैतिशीतरुचः कदाचन 'प्रणिधानाम्बुधिमध्यगाहिनः ।

‘जिनशासनैन्निर्जरप्रिया प्रकटीभावमबीभजत्पुरः ॥८५॥ युगम् ॥३

( १ ) निरन्तरम् । ( २ ) सेवितस्य । ( ३ ) मूर्तिमती । ( ४ ) निजस्वामित्वेनातिस्तेहात् ।  
( ५ ) चारित्रश्रीरिव । ( ६ ) शरीरिणी ॥८४॥

( १ ) विजयदानसूरे: । ( २ ) ध्यानसमुद्रमवगाहमानस्य । ( ३ ) शासनदेवता । ( ४ ) प्रकटीभूता  
॥८५॥

हील० अनि० । सुर० । यथेन्द्रगजः समुद्रमध्यं गाहते तद्वदध्यानाङ्गिमध्यावगाहिनः सूरः पुरो जिनशासनदेवता  
प्रकटत्वमासा । प्रादुर्भूतेत्यर्थः । उत्प्रेक्ष्यते । निरन्तरं क्रियमाणस्य तपसः मूर्तिमती सिद्धिः वाथवा  
स्वर्भर्तृत्वेनातिस्तेहात्कायमङ्गीकृत्यागता चारित्रलक्ष्मीः ॥८४-८५॥

हीसुं० 'सफलीकुरु 'किङ्करीमिव 'वचिदादिश्य 'विधौ व्रतीन्द्र ! माम् ।  
प्रणिपत्य पदाम्बुजं प्रभोरिति सा शासननिर्जरी जगौ ॥८६॥

( १ ) कृतार्थय । ( २ ) सेविकामिव । ( ३ ) कस्मिन्नपि । ( ४ ) कार्ये । ( ५ ) नियोज्य ।  
( ६ ) बभाषे ॥८६॥

हील० सफली० । सा शासनाधिष्ठायिका इति वर्दति स्म । इतीति किम् ? । यथा किङ्करी आदेशेन  
सफलीक्रियते तद्वत् हे यतीन्द्र ! त्वं वचिदादेशनिष्पादने मां सफली कुरु । चरणं नमस्कृत्येति  
वर्दति स्म ॥८६॥

हीसुं० निजगाद गुरुर्गं भीरिमाधरितद्वीपवतीपतीस्ततः ।  
‘भविताभ्युदयष्य( : प )दस्य 'मे वद कस्मात्शारदो 'मुनेरिव ॥८७॥

1. सुरिसिन्धुरुखलकदा० हीमु० । 2. नदेवता प्रभोः । हीमु० । 3. इति विजयदानसूरे[ध्यानम्] हील० ।

- (१) गाम्भीर्यनिर्जितसमुद्रः । (२) मम । (३) पदस्योदयो भावी । (४) अगस्तेस्वि ।  
“मुनिद्रुमः कोरकितः शितिद्युति” रिति नैषधे । “मुनिद्रुमोऽगस्तितरु” रिति तदवृत्तौ ॥८७॥
- हील० निज० । समुद्रगम्भीरगुरुर्वदति स्म । यथा शरत्कालान्मुनेरास्तेरुदयो भर्वाति, तद्रुत्कस्मादुदयो भावी ॥८७॥
- हीसुं० अवधे॑रनुभावतो गुणै॒रसमानं॑ जिनमेदिनीन्द्रवत् ।  
अतिर्थि॑ प्रविधाय भृङ्गवत्ह॑दयाम्भोरुहि॑ हीरवाचकम् ॥८८॥  
अनयेत्थमभण्यत प्रभुर्भगवन्न॑भ्रमणेर्दिनादिव ।  
भविता भवतः॑ पदोदयो भुवि॑ नाथीसुतसाधुसिन्धुरात् ॥८९॥ युगम् ॥
- (१) अवधिज्ञानप्रभावात् । (२) असाधारणगुणम् । (३) जिनेन्द्र इव । (४) हृदयकमलगोचरम् । (५) कृत्वा । (६) हीरहर्षोपाध्यायम् ॥८८॥
- (१) शासनदेवतया । (२) सूर्यस्य । (३) पदस्योदयः । (४) हीरकमारात् ॥८९॥
- हील० तीर्थकृद्वदगुणाद्यं हीरोपाध्यायं अवधिज्ञानप्रभावतो हृदयकमले धृत्वानयेदमुक्तम् — यथा दिनात्सूर्योदयः स्यात्तथा हीरहर्षोपाध्यायात्त्वपदोदयो भावी ॥८८-८९॥
- हीसुं० एपदपद्मविलासलालसभ्रमरीभूतवसुन्थराधवः ।  
भगवन्स युगप्रधानव॑महिमश्रीभवनं भविष्यति ॥९०॥
- (१) चरणकमले क्रीडारसिकभृङ्गभूतभूपः । (२) पूर्वाचार्यवत् । (३) माहात्म्यलक्ष्मीगृहम् ॥९०॥
- हील० हे भगवन् ! अयं वज्रस्वाम्यादिवदराजमान्यो भविष्यति ॥९०॥
- हीसुं० अयमेव हि हीरवाचकोऽस्त्युचितः— सूरिपदस्य नापरः ।  
धरणीधरा॑सूनुरेव यद्वसुधाधीशपदस्य नेतरः ॥९१॥
- (१) हीरहर्षोपाध्यायः । (२) आचार्यपदस्य । (३) योग्यः । (४) राजपुत्रः । (५) राज(ज्य)स्य । (६) न हीनकुलः ॥९१॥
- हील० अयमेव सूरिपदयोग्यो, नान्यः । यथा रज्जः सुतो राज्ययोग्यो, नान्यः ॥९१॥
- हीसुं० प्रणिगद्य पुरो गुरोरिदं प्रमदेनापि विनम्य तत्पदम् ।  
त्रिदशी क्षणतस्तिरोदधे तनयित्वा॑ स्तनयितुपङ्किवत् ॥९२॥<sup>२</sup>
- (१) उक्ता । (२) विजयदानसूरेण्ये । (३) तच्चरणम् । (४) प्रणम्य । (५) शासनदेवता ।  
(६) अदूशीभूता । (७) गर्जित्वा । (८) मेघमालेव ॥९२॥

१. ऋब० हीमु० । २. इति सूरिपुरो ध्यानप्रत्यक्षीभूतशासनदेवीप्रोक्ताचार्यपदोचितहीरवाचककथनम् हील० ।

- हील० प्रणिं० । गुरोः पुर इत्युक्त्वा पुनष्प(ः प)दं प्रणम्य शासनाधिष्ठात्री अदृश्यीभूता । यथा मेघमाला गर्जित्वा विनम्योन्नतीभूयार्थाद्विष्ट्वा तिरोधते, अदृश्या स्यात् ॥१२॥
- हीसुं० स १ तदीयगिरं निपीय रेतां शितिवल्लीमिव वैहेमकन्दलः ।  
‘मुदम्भृत्तरनु॑त्तरां दधदग’मयामास दिनानि कानिचित् ॥१३॥  
( १ ) शासनदेवतासम्बन्धिनी वाणीम् । ( २ ) पूर्वोक्ताम् । ( ३ ) कृष्णवल्लीम् । ( ४ ) विद्रुमः ।  
( ५ ) हर्षम् । ( ६ ) चित्ते । ( ७ ) असाधारणाम् । ( ८ ) अतिक्रामति स्म ॥१३॥
- हील० स त० । स सूरिदेवीवचनं श्रुत्वा, यथा प्रवालः कृष्णलतां ‘कालिवेल’नाम्नो धत्ते तद्वदसाधारणां मुदं दधन् कियन्ति दिनानि कियतप्रमाणान्वासरानामयामासातिक्रामति स्म । पीत्वेत्यत्यादरेण निशम्येत्यर्थः ॥१३॥
- हीसुं० अथ १साधुसुधाशनाधिपः प्रणिधानं ३परिपूर्य ४सूर्यरुक् ।  
‘शशभृत्सर्दभ्रकादिव ५प्रणिधानास्पदतो ६विनिर्ययौ ॥१४॥  
( १ ) विजयदानसूरि । ( २ ) ध्यानम् । ( ३ ) समाप्य । ( ४ ) रविरिव कान्तिर्यस्य । ( ५ ) चन्द्रः । ( ६ ) शरत्कालोत्पन्नजलरिक्तघनाभ्रकादिव । ( ७ ) ध्यानगृहात् । ( ८ ) निर्गतः ॥१४॥
- हील० अथ० । सूर्यवल्कान्तिर्यस्य तादृशः सूरीन्द्रः ध्यानगृहान्तिर्गतः । यथा शरदोऽभ्राच्चन्द्रो निर्गच्छति ॥१४॥
- हीसुं० स १बभाज २समाजमात्मना श्रमणानां ३श्रमणाव॑नीमणिः ।  
४क्षितिमानिव ५बाहुजन्मनां ६विलसन्मङ्गलतूर्यनिस्वनैः ॥१५॥  
( १ ) मुनिसभ( भाष् ) । ( २ ) शिश्राय । ( ३ ) विजयदानसूरि । ( ४ ) राजेव । ( ५ ) सुभटानाम् । ( ६ ) वाद्यमानमङ्गलवाद्यैः ॥१५॥
- हील० स ब० । मङ्गलध्वनिभिः स सूरिः साधुनां पर्षदं बभाज । यथा राजा राजन्यानां पर्षदं भजते ॥१५॥
- हीसुं० १जहिरे २मिहिरौजसा ३महीपतिना ४चारचरा नरास्तदा ।  
२५अरुणाभ्युदयेन ६षट्पदा इव ७पङ्केरुहकोशवासिनः ॥१६॥  
( १ ) त्यक्ताः । ( २ ) सूर्यतुल्यप्रतापेन । ( ३ ) द्रुदानृपेण । ( ४ ) कारागारस्थायिनो जनाः ।  
( ५ ) अरुणोदयेन । ( ६ ) भ्रमराः । ( ७ ) कमलमुकुलस्थायिनः ॥१६॥
- हील० पतङ्गप्रतापेन नृपेन(ण) बन्दीजना मुमुचिरे । यथा विकसितकमलौधेन प्रातमुकुलसुस्ता अलिनो मुच्यन्ते ॥१६॥

1. बनीशिता हील० । 2. भ्रमरा इव कोशशायिनो दिववक्त्रे स्मितपद्मराशिना । हीमु० । 3. इति सुरेर्धानविधाननन्तरं ततो बहिरागमनम् हील० ।

- हीसुं० १व्रतिनामिव ३तथ्यभाषिणां ३जनिभाजां ४विधिनाभ्रचारिणाम् ।  
५श्रमणेन्दुरवेक्षयत्पुनः स ६निमित्तानि ७निमित्तवेदिभिः ॥ ९७ ॥
- ( १ ) साधूनामिव । ( २ ) सत्यभाषणशीलानाम् । ( ३ ) प्राणिनाम् । ( ४ ) वनचारिणां  
गगनचारिणां च । ( ५ ) विजयदानसूरिः । ( ६ ) शकुनानि । ( ७ ) शकुनज्ञैः ॥९७॥
- हील० यतिनामिव सत्यवादिनां मृगशृगालादयो वनचारिणः, चाष-खज्जन-शिखि-तित्ति-देवी-भारद्वाजादयो  
गगनचरास्तेषां प्राणिनां शकुनानि स सूर्यिलोकयति स्म ॥९७॥
- हीसुं० १न्यगद॒न्निति ३ते पुरो गुरोः ४सितपक्षादिव ५शीतदीधिते ।  
उदयो भविता पदस्य ते भुवि ६कुराङ्गज॑साधुपुङ्गवात् ॥ ९८ ॥  
( १ ) कथयन्ति स्म । ( २ ) इत्यमुना प्रकारेण । ( ३ ) निमित्तवेदिनः । ( ४ ) शुक्लपक्षादिव ।  
( ५ ) चन्द्रः । ( ६ ) हीरहर्षोपाध्यायात् ॥ ९८ ॥
- हील० शकुनज्ञा निगदन्ति स्म । यथोज्जलपक्षाच्चन्द्रोदयस्तद्व्याहर्षवाचकत उदयो भावी ॥\*९८॥
- हीसुं० १विधुवदग॑णपुङ्गवं नवोदयमालोकयितुं हृदी॒च्छता ।  
अथ ५सूरिपदार्पणाविधौ ६प्रभुरागृह्णत ७धीसखेन सः ॥ ९९ ॥
- ( १ ) चन्द्रमिव । ( २ ) सूरीन्द्रम् । ( ३ ) वाञ्छता । ( ४ ) आचार्यपदप्रदानप्रकारे ।  
“सेवाचणदर्पणार्पणा”मिति नैषधे । ( ५ ) सूरिः । ( ६ ) चाङ्गाख्यसद्बुनायकेन ॥९९॥
- हील० धीसखेनेति अर्थात् शिवपुरी[सद्बुपुरः]सरीकृतं चाङ्गमन्त्रिणाचार्यपदार्थमाग्रहः कृतः ॥९९॥
- हीसुं० १अवधार्य ३तदाग्रहं ३हितामिव वाणीं ४भणितां ५हितैषिणा ।  
तत ६ओमिति ७वक्त्रवारिजं वचसा योजितवान्स ८तत्पुरः ॥ १०० ॥
- ( १ ) हृदये निधाय । ( २ ) चाङ्गाख्यस्याग्रहम् । ( ३ ) पथ्यामिव । ( ४ ) कथिताम् । ( ५ )  
सुखकाङ्गिक्षणा । ( ६ ) ओमिति स्वीकारे वचनम् । ( ७ ) वदनकमलम् । ( ८ ) सद्बुपतिपुरः  
॥१००॥
- हील० यथायतौ हितां वाणीं मित्रेणोक्तां कश्चिद्द्वयवधारयति तद्वत्तदाग्रहां ज्ञात्वा ओमितिस्वीकारवाक्यं  
वदति स्म ॥१००॥
- हीसुं० १निरधारि मुहूर्तमात्मना ३गणकैः ३श्रीश्रमणावनीन्दुना ।  
४महनीयमहो ५विवाहवत्पुनर्ग्रभ्यत मन्त्रिणा ६पुरे ॥१०१॥
- ( १ ) निश्चयीकृतम् । ( २ ) ज्योतिषिकैः । ( ३ ) सूरिणा । ( ४ ) प्रशस्योत्सवः । ( ५ ) पाणिग्रहणे  
इव । ( ६ ) ग्रारब्धः । ( ७ ) शिवपुर्याम् ॥१०१॥

1. ०वाचकेन्द्रतः हीसु० । 2. इति शकुनावलोकनम् हील० ।

- हील० निर० । श्रीसुरिणा मुहूर्तं गृहीतम् । पुनश्चाङ्गामन्त्रिणा श्लोघ्योत्सवः आरब्धः ॥१०१॥
- हीसुं० अथ ३शिल्पिचरणौचीकरन्नैनुवादैरिव ४विश्वकर्मणः ।  
मणिमण्डपमंशुडम्बराधरितादित्यममात्यमानवाः ॥१०२॥  
( १ ) शिल्पिचरणौ:-प्रकृष्टविज्ञानिभिः । ( २ ) कारयन्ति स्म । ( ३ ) प्रतिरूपैः । ( ४ ) त्वष्टः ।  
( ५ ) किरणाङ्गदरेण तिरस्कृतमार्तण्डम् ॥१०२॥
- हील० देवसूत्रधारसदृशैः शिल्पषु चतुर्मन्त्रिमत्त्वा रत्नमण्डपं कारयन्ति स्म ॥१०२ ॥
- हीसुं० १मणिकल्पतशिल्पकौतुकप्रकरालोकनलालसाशयाः ।  
त्रिदशास्त्रिदशीसखादिवः किमिहालेख्यमिषादुपागमन् ॥१०३॥  
( १ ) रत्ने रचितविज्ञानीकुतूहलनिकरनिरीक्षणे लम्पटचित्ताः । ( २ ) देवीयुताः । ( ३ )  
चित्रकपटात् ॥१०३॥
- हील० उत्प्रेक्ष्यते । चित्रदम्भादेवीयुक्ता देवा आगताः ॥१०३॥
- हीसुं० १स ३मूर्त्तदिने गुरुः ३समं मुनिभिः४मण्डपमध्यमीयिवान् ।  
सदसः सदनं ५द्युसद्यभिः प्रतिपन्थी६ पृथिवीभृतामिव ॥१०४॥  
( १ ) सूरिः । ( २ ) निश्चितवासरे । ( ३ ) समेतः । ( ४ ) सभागृहम् । “नृपस्य नातिप्रमनाः  
सदोगृहैमिति रघुवंशे । ( ५ ) देवैः । ( ६ ) शक्रः ॥ १०४ ॥
- हील० स मु० । स सूरिः साधुसहितो मण्डपमागतः । यथा गिरिवैरीन्द्रो देवैः सह सभागृहमागच्छति  
॥१०४॥
- हीसुं० १इदमीयमहामहेक्षणोपनतैः पौरनरैः २परःशतैः ।  
३निभृतं भ्रियते स्म न मण्डपो ४नवकासार इवाम्बुदाम्बुभिः ॥१०५॥  
( १ ) सूरिपदसम्बन्धिमहोत्सवविलोकनार्थमागतैः । ( २ ) सहस्रसङ्घचैः । ( ३ ) निर्भरम् ।  
( ४ ) नवीनसर इव । ( ५ ) मेघनरैः ॥१०५॥
- हील० इदमी० । अस्य पदोत्सवालोकनार्थमागतैर्लक्षबद्धनरैर्मण्डपोऽत्यर्थं भ्रियते स्म । यथा नवीनतडाकः  
मेघजलैनिर्भरं पूर्यते ॥ १०५ ॥
- हीसुं० १त्रिशलातनुजन्मशासनाभ्युदयं ३मूर्त्तमिव ४व्रतीश्वरम् ।  
५यतिभिस्तमैजूहवदगुरुस्त्रिदशीशंसितभाग्यवैभवम् ॥ १०६ ॥  
( १ ) महावीरशासनस्योदयम् । ( २ ) मूर्त्तैर्त्तिमिव । ( ३ ) हीरहर्षोपाध्यायम् । ( ४ )  
साधून्नेषित्वा । ( ५ ) आकारयति स्म । ( ६ ) शासनदेवीकथितपुण्यसम्पदम् ॥१०६॥
- हील० त्रिश० । श्रीसूरिः त्रिभिस्तं हीरहर्षोपाध्यायं आकारयामास । उत्प्रेक्ष्यते । श्रीवर्द्धमानस्वामिनः

शासनस्य मूतिमन्तमभ्युदयमाहयतीव ॥१०६॥

- हीसु० १गगनात्मरसेन्दुहयने विशदे २पोषजपञ्चमीदिने ।  
 ३धृतशीतरु चीरुचिच्छलोज्ज्वलवस्त्रे किमु ४त्पदोत्सवे ॥ १०७ ॥  
 ५व्रतिवारिधिनेमि६नायकः७स्वपदे ८स्थापितवान्स वाचकम् ।  
 इव ९पञ्चमकं १गणाधिपं २त्रिशलायास्तनुजो जिनेश्वरः ॥१०८॥ युग्मम् ॥  
 ( १ ) विक्रमार्कादशाधिकघोडशशतवर्षातिक्रमे । ( २ ) पोषशुक्लपञ्चमीवासरे । ( ३ ) परिधृत-  
 चन्द्रचन्द्रिकाज्ज्वलवसने । ( ४ ) हीरहर्षोपाध्यायस्याचार्यपददानमहोत्सवे ॥१०७॥  
 ( ५ ) विजयदानसूरि६ । ( ६ ) निजपदे । ( ७ ) स्थापयति स्म । ( ८ ) सुधर्मस्वामिनम् । ( ९ )  
 गणाधरम् । ( १० ) महावीरजिनः ॥ १०८ ॥
- हील० उज्ज्वले पोषमासस्य पञ्चमीदिने । उत्प्रेक्ष्यते । तस्य पदोत्सवे धृतं परिहितं, शीतरुचीरुचिश्वन्द्रचन्द्रिका  
 तस्याश्छलेनोज्ज्वलं वस्त्रं येन एवंविधे एव वासरे ॥१०७-★१०८॥
- हीसु० १हृदि २हीर इवैष ३विष्टपे विजयोऽस्यैव पुनर्भविष्यति ।  
 ४अत एव कृतास्य६ ५सूरिणा विजयाह्वा किमु ६हीरपूर्विका ॥१०९॥  
 ( १ ) हृदि अर्थाज्जगतां हृदये । ( २ ) हीर इव वज्रपणिरिव । जनभाषया “हीरो” । रहस्यं च  
 तद्विष्यति । ( ३ ) भुवनेऽस्यैव विजयो भावी । ना परस्येति । ( ४ ) अतः कारणात् । ( ५ )  
 विजयदानसूरिणा । ( ६ ) हीरहर्षस्य । ( ७ ) हीरविजयसूरिरिति नाम निर्ममे ॥१०९॥
- हील० हृदि । एतदीयाभिधा हीरविजयसूरिरिति चक्रे ॥१०९॥
- हीसु० १इदमेव दिनं जगत्पतेरभिषेकार्हमितीव सम्मदात् ।  
 २उदयादिमसिंहभूमिमानभिषिक्तोऽत्र३ ४तदैव ५बाहुजैः ॥११०॥  
 ( १ ) अयमेव दिवसः चक्रवर्त्यादीनामभिषेकुं योग्यः । ( २ ) अत्र शिवपुर्याम् । ( ३ )  
 तस्मिन्नेव दिने । ( ४ ) राजन्यैः । ( ५ ) उदयसिंहो नृपो राज्येऽभिषिक्तः ॥११०॥
- हील० चक्रवर्त्यादेरभिषेकयोग्यं इदमेव दिनम् । अत एव श्रीरोहिणीमण्डलराज्ये राजन्यैरुदयसिंह भूपः  
 स्थापितः ॥११०॥
- हीसु० १भूवि २मङ्गलतूर्यनिस्वनो ३दिवि ४दिव्योऽजनि ५दुन्दुभिध्वनिः ।  
 इति ६तौ किमु ७शंसतो ८गुरुन्त्र ऋतेऽस्मादपरोऽस्ति रोदसोः ॥१११॥  
 ( १ ) भूमौ । ( २ ) श्रेयःसूचकवाद्यनिनादः । ( ३ ) आकाशे । ( ४ ) देवसम्बन्धी । ( ५ )  
 भेरीशब्दः । ( ६ ) द्वावपि शब्दौ । ( ७ ) कथयत इव । ( ८ ) द्यावापृथिव्योहीर्विजयसूरिभ्यः

1. वासव० । हीसु० । 2. मुगराजध्वजतीर्थनायकः । हीसु० । 3. संवत् १६१० पोषशुक्लपञ्चमीदिने हीरहर्षवाचकस्य  
 सूरिपदस्थापना । इति हीरविजयसूरेगचार्यपदम् । हील० ।

कोऽपि असाधारणगुणो गुरुर्नास्ति ॥१११॥

हील० तौ द्वौ निनादौ इति कथयतः । इतीति किम् ? द्यावापृथिव्योर्विषये एतस्मादपरे गुरुर्नास्ति ॥१११॥

हीसुं० ॑पिकपञ्चमकूजितक्वणास्तमैगायन्द्वयैणुकोदरीगणाः ।

॒अदसीययशोजिगासयो॑पगताः ॑किंपुरुषाङ्गना इव ॥११२॥<sup>1</sup>

( १ ) कोकिलानां पञ्चमालापतुल्यध्वनयः । ( २ ) गायन्ति स्म । ( ३ ) स्त्रियः 'शृङ्गारसर्ग-  
द्वयणुकोदरीय'मिति नैषधे । ( ४ ) हीरविजयसूरेर्यशसां गातुमिच्छ्या । ( ५ ) गताः । ( ६ )  
किन्नर्य इव ॥११२॥

हील० पिकपञ्चमारववत् नादो यासां तादृशा वध्वस्तं गायन्ति स्म । उत्प्रेक्षयते । एतद्यशो गातुमागतांकिं-  
( : किं)नर्यः ॥११२॥

हीसुं० ॑त्रिजगन्नयनामृताञ्जनं शुशुभाते ॒यतिपुङ्गवाकुभौ ।

॒सुरभीकृतभूतलौ ॑यशः सुमनोभिर्मैधुमाधवाविव ॥११३॥

( १ ) त्रिभुवनजनलोचनेषु सुधाञ्जनतुल्यौ । ( २ ) विजयदान-हीरविजयसूरीश्वरौ । ( ३ )  
वासितमहीमण्डलौ । ( ४ ) कीर्तिपुष्टैः । ( ५ ) चैत्र-वैशाखमासाविव ॥११३॥

हील० त्रिज० । यथा चैत्र-वैशाखमासौ पुष्पैर्दिशः सुरभयतस्तद्वद्यशोभिः सुरभीकृतभूतलौ सूरीन्द्रौ  
शुशुभाते ॥११३॥

हीसुं० द्युसदामिव ॑मेदिं नी ]रुहौ ॒जगतीजङ्गमतानुषङ्गिनौ ।

स्म विभूषयतः क्रमेण तौ ॑विहरन्ता॑वणहिल्पत्तनम् ॥११४॥

( १ ) कल्पवृक्षाविव । ( २ ) पृथिव्याम् । ( ३ ) सञ्चरन्तौ । ( ४ ) अणहिल्नामपत्तनम् ॥११४॥

हील० द्युस० । जङ्गमामरलतासदृशौ विचरन्तौ तावणहिल्पत्तनं आगतौ ॥११४॥

हीसुं० ॑श्रमणद्युमणी॑मणीव तौ ॑मुनिमुक्तावलिमध्यशालिनौ ।

पुरि तत्र ॑तमोनिशुभ्नौ॑गणलक्ष्मीः॑मदयांबभूवतुः ॥११५॥<sup>2</sup>

( १ ) सूरीश्वरौ । ( २ ) नायकरत्ने इव । ( ३ ) साधुरूपहारयष्टिमध्यस्थौ । ( ४ )  
अज्ञानात्थकारद्वेषिणौ । ( ५ ) तपगच्छलक्ष्मीम् । ( ६ ) शृङ्गारकलितां चक्रतुः ॥११५॥

हील० मुनिमार्तण्डौ मुनिपद्मिकमुक्ताहरे मध्यमणीसदृशौ ध्वान्तरिपू तौ तपागच्छलक्ष्मीं मदयांबभूवतुः ।  
शृङ्गारकलितां कुवति स्मेत्यर्थः । मणीवादिवर्जमिति द्विवचनेऽपि सन्धिः स्यात् ॥११५॥

हीसुं० अथ ॑तत्र॑समर्थनामभृद्धण॑साली भवति स्म भूतिमान् ।

सचिवो यवनस्य भूभुजो मतिवार्द्धिश्च॑णकाङ्गन्मवत् ॥११६॥

1. इत्याचार्यपदमहोत्सवः हील० । 2. इति द्वयोः सूरीन्द्रयोः पतने पादावधारणम् हील० । 3. उशाली हीम० ।

( १ ) तत्र-पत्तने । ( २ ) समरथभणसाली नाम म्लेच्छभूपस्य सचिवो जज्ञे । भणसालीति  
व्यापारकारिणां कश्चित्संज्ञाविशेषः । ( ३ ) चाणक्य इव बुद्धिनिधानम् ॥११६॥

हील० अथ त० । तत्र समर्थनामा भणसाली सेरखानपठाणस्य प्रधान आसीत् । चाणक्यवन्निपुणः  
॥११६॥

हीसुं० उपचक्रमिरे \*महामहा अमुैनाचार्यपदस्य ३नन्दये ।

\*शिवशैवलिनीवरोद्धोपयमार्थं प्रथमोत्सवा इव ॥११७॥

( १ ) प्रारब्धाः । ( २ ) सूरिपदस्य । ( ३ ) नन्दर्थम् । ( ४ ) महोत्सवाः । ( ५ ) मुक्तिरूपा या  
शैवलिनी तद्वरः समुद्रस्तस्योद्ध्रहा पुत्री लक्ष्मीस्तस्या विवाहस्याद्या उत्सवा इव ॥११७॥

हील० तेन सूरिपदोत्सवा आरब्धाः । उत्प्रेक्ष्यते । मुक्तिलक्ष्मीकरपीडनार्थमुत्सवाः ॥११७॥

हीसुं० \*पुरि ३जानपदीयमानवव्रंज आकार्यत ३तेन \*सेवकैः ।

\*पिकभृङ्गभरः \*स्वसौरभैरिव \*कुञ्जे \*स्मितचूतशाखिना ॥११८॥

( १ ) पत्तने । ( २ ) देशसम्बन्धिजनव्रजः । ( ३ ) समरथभणसालिना । ( ४ ) स्वसेवकैः ।  
( ५ ) कोकिलमधुकरनिकरः । ( ६ ) निजपरिमिलैः । ( ७ ) वने । ( ८ ) विकचमाकन्दद्वमेण  
॥११८॥

हील० पुरि० । तेन समग्रा जना आकारिताः यथा प्रफुल्लमेण स्वसौरमैः कुञ्जे कोकिलभ्रमरौघ आकार्यते  
॥११८॥

हीसुं० \*सुकृतं ३प्रविधाय ३सत्क्रियाममुना सङ्घजनस्य \*संमदात् ।

\*समचीयत ‘शम्बलं \*महोदयपूर्या \*प्रयियासुना किमु ॥११९॥

( १ ) पुण्यम् । ( २ ) कृत्वा ( ३ ) सत्कारम् - भोजनवस्त्रादिदानैः । ( ४ ) हर्षात् । ( ५ ) पुष्टं  
कृतम् । ( ६ ) मुक्तिनगरे । ( ७ ) गन्तुमिच्छुना ( ८ ) पाथेयम् ॥ ११९ ॥

हील० अमुना सङ्घभक्तिः सुकृतं सञ्चितम् । उत्प्रेक्ष्यते । मोक्षे यियासया शम्बलम् ॥११९॥

हीसुं० गुरुनन्दिमहेऽङ्गैनासखैर्वैैसतिः<sup>1</sup> काममभूषि ३मानुषैः ।

\*जिनजन्ममहे \*मरुद्विरेतिव \*गीर्वाणगणैर्धित्यका ॥ १२० ॥

( १ ) स्वस्त्रीयुतैः । ( २ ) उपाश्रयः । ( ३ ) जनैः । ( ४ ) तीर्थकरजन्ममहोत्सवे । ( ६ )  
सुमेरोः । ( ७ ) देवब्रजैः । ( ७ ) चूलिका ॥१२०॥

हील० गुरु० । स्त्रीयुक्तैरर्गृहमध्यं भूषितम् । यथा जिनजन्ममोत्सवे मेरोरुद्धर्भूदेवैभूषिता ॥\*१२०॥

हीसुं० गणिनन्दिमहेऽप्सरोगणैरिव मुक्ताभिरुपेत्य ३यौवतैः ।

\*करपीडनमण्डपो यथा क्षतपुञ्जैः \*समवद्धर्यतांलयः ॥१२१॥

1. उत्तर्मध्यमभू० हीमु० ।

( १ ) देवीव्रजैः । ( २ ) आगत्य । ( ३ ) स्त्रीसमूहैः । ( ४ ) पाणिग्रहणस्य मण्डपः । ( ५ )  
लाजन्नरजैः । ( ६ ) वर्धाप्यते [ सम ] । ( ७ ) उपाश्रयः ॥१२१॥

हील० गणिनन्दिमहे युवतीव्यौर्विवाहमण्डपवदालयो वद्वापितः ॥१२१॥

हीसुं० 'जिनवद्गणधारिणः पदं समनुज्ञाप्य संसूरिचक्रिणः ।

'गुरुरस्य 'सहस्रदीधितिप्रभितावर्त्तनवन्दनान्यदात् ॥१२२॥

( १ ) तीर्थकर इव । ( २ ) सम्प्रक अनुज्ञाप्य । ( ३ ) हीरविजयसूरेः । ( ४ ) विजयदानसूरिः ।  
( ५ ) द्वादशावर्त्तवन्दनकानि । ( ६ ) ददौ ॥१२२॥

हील० यथा जिनः सुधर्मस्वामिनो गणधारिणः समनुज्ञापयति, तद्वद्वत्वा सूरीन्द्रो द्वादशावर्त्तवन्दनानि ददाति  
स्म ॥१२२॥

हीसुं० 'वशिनोऽस्य ततो वशंवदां गणभृद्भूमिमणिर्गणश्रियम् ।

स्वसुतस्य पितेव 'सम्पदं 'प्रणयेन 'प्रणिनाय नीतिमान् ॥१२३॥'

( १ ) जितेन्द्रियस्य ( २ ) आयत्ताम् । ( ३ ) विजयदानसूरीन्द्रः । ( ४ ) पिता निजपुत्रस्य ।  
( ५ ) गृहसम्पत्तिम् । ( ६ ) स्नेहेन । ( ७ ) चकार ॥१२३॥

हील० वशिनो० । श्री सूरीशस्तपागच्छलक्ष्मीं अस्यायतां प्रणिनाय-चकार । यथा गुरुः पिता च स्वसुतस्य  
सम्पदं ददाति, तद्वत् ॥१२३॥

हीसुं० 'मुदमा दधिरे मुमुक्षवस्तम्' वाप्याभिनवोदयं प्रभुम् ।

'ननृते नरकद्विषं पुनर्गणलक्ष्म्या 'पुरुषोत्तमं पतिम् ॥१२४॥

( १ ) हर्षम् । ( २ ) प्रापुः । ( ३ ) तपगच्छसाधवः । ( ४ ) हीरविजयसूरिम् । ( ५ ) प्राप्य । ( ६ )  
नर्तितम् । ( ७ ) नरकस्य कुगतेदैत्यस्य द्वेषिणम् । ( ८ ) पुरुषेषु श्रेष्ठं नारायणं च ॥१२४॥

हील० मुद० । तं प्राप्य यतयो मुदं प्राप्ताः । पुनस्तपागच्छलक्ष्म्या नरकस्य दैत्यस्य दुर्गतेशं शत्रुं कृञ्जं उत्तमं  
वा प्रभुं प्राप्य नर्तितम् ॥१२४॥

हीसुं० 'गणपूर्वगिरौ महोदयिश्रमणव्योममणीनिरीक्षणात् ।

'कुनयैरिह कौशिकायितं भविकैः पङ्कजकाननायितम् ॥१२५॥

( १ ) गच्छरूपोदयाचले । ( २ ) हीरविजयसूरिसूर्यालोकनात् । ( ३ ) परपाक्षिकैः । ( ४ )  
मूकवदाचरितम् । ( ५ ) पुनर्भव्यैः । ( ६ ) कमलवनवदाचरितम् । विकसितमित्यर्थः ॥१२५॥

हील० गच्छोदयाद्वौ श्रीसूर्यवुदीते कुमतिभिः घूकवत्प्रणष्टम् । भव्यैः कमलवनवद्विकसितम् ॥★१२५॥

1. इति समरथभणसालीकृतमहोत्सवपूर्वकं हीरविजयसूरेः सूरिपदनन्दिवन्दनकप्रदानवर्णनम् हील० । 2. दयश्रमण० हीमु०।

3. मणीसमीक्षणात् हीमु० ।

हीसुं० १स्वयमेष शिवं २गमी ३परानपि ४सम्प्रापयितुं ५प्रभुः ६प्रभुः ।

इति वक्तुमिवेश्वरान्दिशां यशसा १०व्यानशिरेऽखिला दिशः ॥१२६॥

(१) आत्मना । (२) सूरि: । (३) मोक्षम् । (४) गमिष्यति । (५) भवान्तरितः तथा परानपि । (६) मोक्षं प्रापयितुम् । (७) समर्थोऽस्ति । (८) अयम् । (९) दिव्यपालान् । (१०) दशापि दिशो व्यासा ॥१२६॥

हील० स्वयं मोक्षगमी परं परानपि प्रापयितुं क्षमः । इति दिव्यपालान्वकुं कीर्त्या दिशो व्यासाः ॥१२६॥

हीसुं० १कजपाणितमोद्विषज्जगन्नयनस्यास्य २महोभैरभर्भरात् ।

किमु ३चण्डरुचेर ४सूयया ५भ्रियते ६भूमिनभस्तलद्वयी ॥१२७॥

(१) कमलतुल्यः पाणिर्यस्य । पक्षे-पद्मं पाणौ यस्य । अज्ञानस्यान्धकारस्य च वैरी । विश्वस्य धर्ममार्गदर्शकत्वाच्चक्षुरिति । पक्षे जगच्चक्षुरितिनामा सूरि: सूर्यशः । (२) प्रतापप्रकैः । (३) सूर्यस्य प्रतापैः सार्द्धम् । (४) स्पर्द्धया । (५) भृता । (६) पृथिवीगगनयोर्यामिली ॥१२७॥

हील० कजवद्रक्तकरस्य कमलाङ्कितकरस्याज्ञानद्विषतो धर्मोपदेशकस्य । रविपक्षे-कजे करा यस्य पुनरन्धकारवैरी च । पुनर्जगच्चक्षुस्तादृशस्य रवेरीर्षयास्य प्रतापैर्द्यावाभूम्योर्व्यासम् ॥१२७॥

हीसुं० स १पतिव्रतयेव २बलभो गणलक्ष्म्या समुपास्यत प्रभुः ।

३अमृना४गमि सा पुनर्मुदं नगरी ५नीतिमतेव ६भूभृता ॥ १२८ ॥<sup>1</sup>

(१) सत्येव । (२) भर्ता । (३) हीरविजयसूरिणा । (४) गणश्रीः । (५) प्रापिता । (६) हर्षम् । (७) न्यायवता । (८) नृपेण ॥१२८॥

हील० सूरिणा गणलक्ष्मीमुदं नीता ॥१२८॥

हीसुं० अभजन्त १यतिव्रजा विभुं २विहगाः ३स्मेरमिवावनीरुहम् ।

४पृणाति स्म स ५तान्पुनर्महोदयसस्य ६प्रदिशंस्तानिव ॥१२९ ॥<sup>2</sup>

(१) साधवः । (२) पक्षिणः । (३) स्मिततरुम् । (४) प्रीणायति स्म । (५) साधून् । (६) मोक्षफलम् । (७) दत्त्वा । (८) तरुः पक्षिणां फलानि दत्त्वा प्रीणाति ॥१२९॥

हील० यतयस्तं अभजन्त । स यतीन्प्रीणाति स्म । यथा स तरुः फलं विश्राणयन्विहगान् तान् प्रीणाति ॥१२९॥

हीसुं० १कुनयान्नयता विनप्रतां २जयिनेव ३प्रतिगर्जतोऽमुना ।

४दधताधरितः ५क्षमां द्विया किमु ६पातालमहीश्वरोऽविशत् ॥१३०॥

1. पाठान्तरे -तस्मीवत्तरुणेन सूरिणा हील० । 2. इति सूरेस्तपागच्छसाम्राज्यम् हील० ।

(१) कुपाक्षिकान् । (२) जयं कुर्वता नृपतिनेव । (३) प्रतिगर्जतः-स्पद्धा कुर्वतः ।  
 "सुहृदयो हृदयः प्रतिगर्जता"मिति रघुवंशे । (४) क्षमां-क्षान्ति धरणी च । (५) शेषनागः ॥१३०॥

हील० यथा जयिना राजा प्रतिस्पद्धनो नप्रतां नीयन्ते तद्वच्छक्यादीनप्रतां नयता क्षमाधारित्वेन हीनीकृतो नागाधिपः पातालं विशति स्म ॥१३०॥

हीसुं० 'परिशीलितशीललीलया तुलयन्श्रीस( श )कडालनन्दनम् ।  
 स अभीरतयेव सागरं गुणमणिक्यनिधिः 'पराभवन् ॥ १३१ ॥

(१) चिरपालितब्रह्मचर्यविलासेन । (२) स्थूलभद्रम् । (३) गाम्भीर्येन( ण ) । (४) गुणमणिस्थानम् । (५) 'पराजयति स्म ॥१३१॥

हील० स्थूलभद्रानुकारी स समुद्रं 'परजैषीदिव ॥१३१॥

हीसु० 'निजधैर्यवदान्यताश्रिया विजिता येन सुराचलद्रुमाः ।  
 किमु तद्विजयाय 'मन्त्रणं 'सहवासच्छलतो 'वितन्वते ॥१३२॥<sup>2</sup>

(१) स्वस्य धीरिम्ना दानशौण्डत्वेन च । (२) मेरुकल्पद्रुमाः । (३) सूर्विजयं कर्तुम् ।  
 (४) आलोचम् । (५) एकत्र निवसनकपटात् । (६) कुर्वन्ति ॥१३२॥

हील० निज० । धैर्येण दानेन सुराणां पर्वता द्रुमाः । पञ्चमेरवः कल्पवृक्षाश्च जिताः सन्तो मिलित्वा मन्त्रणं कुर्वते ॥१३२॥

हीसु० 'अधिपौ निखिलक्ष्माभृतां सुरसेव्यौ 'कलधौतदीधिती ।  
 'हिमहेमगिरी 'नु 'जङ्गमौ मुनिचन्द्रौ भुवि तौ 'विजह्रतुः ॥१३३॥

(१) स्वामिनौ । (२) साधुनां पर्वतानां च । (३) देवैरुपासनीयौ । (४) कलधौतं-स्वर्णं तद्वत्कायकान्ती ययोः । पक्षे हेमरजतयोः कान्ती ययोस्तौ । (५) हिमाचलसुमेरु इव । (६) नु इति उत्प्रेक्षे । (७) विचरन्तौ (८) विहारं चक्रतुः ॥

हील० द्वौ सूरी विजह्रतुः । क्षमावतां गिरीणां वा मुख्यौ । पुनः "कलधौतं स्वर्णरूप्ययो"रित्यनेकार्थः । तद्वतेन वा कान्तियुक्तौ जङ्गमौ हिमगिरि-हेमगिरी किम ? ॥१३३॥

हीसु० अथ 'भावडसूनुसूरिगाढ् मुदिैर्मेदुरिते नभस्तले ।

इव मानस इष्टमानसः कृतवान्सुरतिबन्दिरे स्थितिम् ॥१३४॥

(१) श्रीविजयदानसूरिः । (२) मेघव्यापैर्गणमण्डले । वर्षाकाले इत्यर्थः । (३) मानसनाम्नि सरसि । (४) हंसः । "नृपमानसमिष्टमानस"इति नैषधे । (५) सुरतिनामपुरे । (६) चातुर्मासं चक्रे ॥१३४॥

1. परावर्जेः ३-३-२८ इति सिद्धहेमसूत्रानुसारेण पराजयते पराजेष्ट च रूपद्वयं योग्यम् । 2. इति हीरविजयसूरिगृणाः हील० ।

- हील० भावडेभ्यपुत्रः श्रीविजयदानसूरिमेघपुष्टे गगने प्रावृषि सूरतिबन्दिरे स्थितवान् । यथा हंसो मानससरसि  
तिष्ठति ॥१३४॥
- हीसु० १विलसत्य॑थ मेद॒पाटकाभिधदेशो ३वसुधाविशेषकः ।  
४निखिलेष्वपि मण्डलेषु यः ५प्रमुखोऽङ्गावयवेषु ६वक्त्रवत् ॥१३५॥  
( १ ) अथेति एकस्मिन्स्मये । ( २ ) मेदपाटनामा देशः । ( ३ ) पृथिव्यास्तिलक इव । ( ४ )  
समस्तदेशेषु । ( ५ ) मुख्यः । ( ६ ) शरीरावयवेषु । ( ७ ) मुखमिव ॥१३५॥
- हील० न्यक्षदेशमुख्यो मेदपाटकदेशोऽस्ति ॥१३५॥
- हीसु० १सुरमन्दिरजित्वरश्रिया गमितं येन ३विमाननीयताम् ।  
४फणभृद्गुवनं ५भुवस्तलं भजति ६व्रीडभरोदयादिव ॥१३६॥  
( १ ) स्वर्गलोकजयनशीललक्ष्म्या । ( २ ) अवगणनाम् । ( ३ ) नागलोकः । ( ४ ) रसातलम् ।  
( ५ ) लज्जातिशयोदयादिव ॥१३६॥
- हील० येन हीनीकृते नागलोकः पातालं गतः ॥१३६॥
- हीसु० १अलकायितपूःपरम्पराः २परमं बिश्रति यत्र विश्रमम् ।  
३नभसोऽनवलम्बनच्युतेः ४शतशोऽशा इव ५भूतले ६दिवः ॥१३७॥  
( १ ) धनदनगरीवदाचरिता पुरीणां श्रेणयो यत्र । ( २ ) उल्कष्टशोभाम् । ( ३ ) धारयन्ति ।  
( ४ ) आकाशात् । ( ५ ) आधारहितत्वेन पतनात् । ( ६ ) शतसङ्क्षेपाः विभागाः । ( ७ )  
भूमण्डलोपरि । ( ८ ) स्वर्गस्य ॥१३७॥
- हील० यत्रालकासदृशाः पुर्यः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । आकाशान्त्रिग्राधारत्वेन च्युतिर्यस्यास्तादृश्या दिवः  
स्वर्गस्य शतमंशाः ॥१३७॥
- हीसु० १त्रिजगद्विजयोद्यतस्य २यद्वनराज्यो ३रतिजानिथन्विनः ।  
४सुमसङ्गतषट्पदा ५धनुर्विशिखोळासि खलूरिका इव ॥१३८॥  
( १ ) त्रैलोक्यं जेतुं कृतोद्यमस्य । ( २ ) नारदपुरीवनश्रेणयः । ( ३ ) कामधनुर्धरस्य । ( ४ )  
पुष्पेषु मकरन्दपानार्थं लीनभृद्गा यासु । ( ५ ) कोदण्ड बाणयुक्ताः शस्त्राभ्यासभुव इव ॥
- हील० अलिकलितपुष्पयुक्ता वनत्रेण्यः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । कामस्य धनुर्भिर्बाणैः शोभिन्यः खलूरिका  
धनुर्विद्याभ्यसनभूमयः ॥१३८॥
- हीसु० १श्रितनागसगन्धसा[ र ]भूरुहमाला व्यलसन्निहाचलाः ।  
२मलयस्य ३विलासमूर्त्यः ४शमनाशाङ्कम् ५पास्य हृष्यतः ॥१३९॥

1. अथ विजयसेनसूरिदीक्षावसरः हील० । 2. इति मेदपाटमण्डलः हील० ।

( १ ) आश्रिता गजा याभिस्तथा सह गन्धैष्य( : प )रिमलैस्तथा सारैर्मज्जि( ज्जा )भिर्वर्त्तने ये तादृशास्तरु श्रेणयः । मलयाचलपक्षे-आश्रिता भुजङ्ग याभिस्तादृशाश्वन्दनतरु पइक्तयः । ( २ ) क्रीडाकायाः । ( ३ ) यमवाञ्छाक्रोडं तत्त्वतस्तु दक्षिणदिश उत्सङ्घम् । ( ४ ) त्यक्त्वा ॥१३९॥

हील० श्रिता नागाः - सर्पा हस्तिनो वा तथा सह गन्धैः सारैर्मज्जिभिश्च वर्तन्ते, तादृशा वृक्षा येषु । तत्त्वतश्वन्दन वृक्षयुक्ताः पर्वताः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । यमस्य वाञ्छाया अङ्कमुत्सङ्घम् । तत्त्वतः दक्षिणदिक्क्रोडम् । त्यक्त्वा मुदितस्य मलयगिरेः क्रीडार्थां कायाः ॥१३९॥

हीसुं० इह 'नीवृति नारदाभिधा नगरी नागपुरीव राजते ।

बलिराजविराजितान्तरा रममाणानणुभोगिभाजिनी ॥१४०॥

( १ ) मेदपाटे । ( २ ) बलवत्ता राजा शोभिता । पक्षे- बलिनाम्ना राजा शोभिता । ( ३ ) स्वैरं क्रीडन्तोऽनणवो महान्तो भोगभाजो राज्यादिसातयुताः पुरुषास्तान्भजन्ते इत्येवंशीला । पक्षे- खेलत्प्रलम्बभुजगययुक्ता ॥१४०॥

हील० इह नी० मेदपाटे नडुलाई बलिष्ठराजा युक्ता । पुनर्बहुधनाढ्यैरहिभिर्वा युक्ता शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । भोगा(ग)वती ॥१४०॥

हीसुं० 'उपमातुमिवामरावती भुवनं तन्निभभावदुर्विधे ।

कृतवानरविन्दनन्दनः पुरमेतां विबुद्धैरुपासिताम् ॥१४१॥

( १ ) उपमायुक्तां कर्तुम् । ( २ ) तत्तुल्यापरनगरदरिद्रे । ( ३ ) ब्रह्मा । "पद्मनन्दनसूतारिंसुना" इति नैषधे । तद्वदरविन्दनन्दनः । ( ४ ) पण्डितैर्वैश्व । ( ५ ) सेविताम् ॥१४१॥

हील० अमरवतीतुल्यार्थैर्दरिद्रे जगति तत्सदृशमेनां विधिरकरेत् ॥१४१॥

हीसुं० 'युवती युवराजिराजिते नगरे सालनिभान्मनोभवः ।

स्थितवान्नवृसूरिसाध्वसादिव दुर्गं प्रविधाय सानुगः ॥१४२॥

( १ ) तरुणी तरुणश्रेणीभूषिते । ( २ ) प्राकारकपटात् । ( ३ ) स्मरः । ( ४ ) नवीनः सूरि: श्रीहीरविजयसूरिस्तस्य भयात् । ( ५ ) ससेवकः ॥१४२॥

हील० पुरुद्गदभाकोट्टुं कृत्वा । उत्प्रेक्ष्यते । स्वसेवकयुक्तः कामः स्थितः ॥१४२॥

हीसुं० 'यदनन्यहिरण्यशीतरुग्मणिकलृसालयलक्ष्मिकाङ्क्षया ।

चरणं मुरवैरिणोऽनिशं शुचिचन्द्रावुपचेरतुः किमु ॥१४३॥

( १ ) यस्याः पुर्या असाधारणानां स्वर्णश्वन्दोपलैः कल्पितानां गृहाणां शोभां प्राप्तुं वाञ्छन्तौ । ( २ ) विष्णुपदम् । ( ३ ) सूर्याचन्द्रमसौ । "हरि: शुचीनौ गगनाध्वजाध्वगा" विति हैम्याम् ॥ ( ४ ) भजेते स्म ॥१४३॥

हील० यस्य पुरस्य साधारणस्वर्णश्वन्दकान्तमणिभिः कृतगृहशोभेच्छ्या सूर्यचन्द्रौ विष्णुपदं सेवेते स्म ॥१४३॥

- हीमु० १प्रविभाव्य २भवेन ३भस्मितं स्मरमे४तन्निखिलानुजीविनः ।  
किमु यत्र समेत्य चक्रिरे वसति५पौरपरम्परोपधे: ॥१४४॥  
( १ ) दृष्ट्वा । ( २ ) शंभुना । ( ३ ) भस्मीकृतम् । ( ४ ) स्मरस्य समस्ताः सेवकाः । ( ५ )  
नागरणां कपटात् ॥१४४॥
- हील० स्मरं दरथं दृष्ट्वा तत्सेवकाः । उत्प्रेक्ष्यते । नागरजनदम्भात्तत्पुरे वासं कृतवन्तः ॥१४४॥
- हीमु० कुतुका६द्वृहस्तपिणं स्मरं हृदि७निश्चित्य रतिर्युवै८भ्रमात् ।  
स्वयमप्यकरोदि९दंमिता निजमू१र्त्तीः किमु॒यद्वधूपधे: ॥१४५॥  
( १ ) अनेकाणि( नि ) रूपाणि सन्त्यस्येति । ( २ ) ज्ञात्वा । ( ३ ) पुरीजनोपधे: । ( ४ )  
स्मरशरीरसङ्घच्छाः । ( ५ ) नगरीनागरीकपटात् ॥१४५॥
- हील० कुतु० । बहुरूपधारिणं स्मरं दृष्ट्वा रतिर्यद्वधूदम्भात्तावन्ति रूपाणि कृतवतीव ॥१४५॥
- हीमु० १मुरवैरिपुरीवै२माधवो३जनि तत्रोदयसिं४[ ह ]भूधनः ।  
धरणीरमणं५प्रणीय यं शुशुभे श्वै६( सूर्यम् )रमिवा१रविन्दिनी ॥१४६॥  
( १ ) द्वारिकायामिव । ( २ ) कृष्णः । ( ३ ) पृथ्वी यं पतिं प्रविधाय । ( ४ ) सूर्यम् । ( ५ )  
पद्मिनीव ॥१४६॥
- हील० यथा द्वारिकायां कृष्णः तद्वनारादपुर्याै उदयसिंहराजा जातः । यं भर्तारं कृत्वा भूरेजे । यथा रविमाप्य  
कमलिनी राजते ॥१४६॥
- हीमु० १युवतीवै२युवानमङ्गै३जान्कै४लधौतप्रमुखान्खनी॑वजान् ।  
पृथिवीै५पृथिवीपुरन्दरं यमवाप्यै६प्रमदादजीजनत् ॥१४७॥  
( १ ) ऋती । ( २ ) पुरुषं प्राप्य । ( ३ ) पुत्रान्जनयति । ( ४ ) स्वर्णरूप्यादीन् । ( ५ )  
खानिनिकारान् । ( ६ ) उदयसिंहनृपम् । ( ७ ) हर्षात् ॥१४७॥
- हील० यथा युवानं प्राप्य युवतीं सुतान्जनयति तद्वत् यं पतिमाप्य स्वर्णरूप्याकरण्ड्रकटीकृतवती ॥१४७॥
- हीमु० १विपुलां॒२विपुलाहवाहताहितशूरस्ववदस्वराशिना ।  
३हृदयेशवै४दूर्पुणा॑( ना )व यो॒५नवकौसुम्भिकवासै॒सा ] वशाम् ॥१४८॥  
( १ ) पृथ्वीम् । ( २ ) महासङ्ग्रामे हतानां रिपूणां सुभटानां शरीरनिः सरदुधिरव्रजेन । ( ३ )  
भर्त्तेव । ( ४ ) आच्छादयामास । ( ५ ) कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रं कौसुम्भिकम् ॥१४८॥
- हील० यो रजा महासङ्ग्रामेषु हतशत्रुभ्यो निःसरदक्तौघेन पृथ्वीमूर्णनावच्छादयामास । यथा भर्ता नवेन  
कुसुम्भरक्तवसनेन वशामूर्णोनोति । ह्वदिको धातुः ॥१४८॥

1. ०र्त्तीर्थिव हीमु० । 2. इति नारदपुरी हील० ।

- हीसुं० बहुना महिमाभिनन्द्यते १किमु यस्योदयसिंहभूभुजः ।  
न १चिराद॒जरामरीभवे॑द्युधि॒यो४०मुष्य॑ हि॒सम्मुखीभवेत् ॥१४९॥  
( १ ) शीघ्रम् । ( २ ) देवभावं भजेत् । ( ३ ) सङ्ग्रामे । ( ४ ) यः सुभटः । ( ५ ) अस्य ।  
( ६ ) सङ्ग्रामाय सम्मुखीभवेत्सङ्ग्रामं कुर्यादनेत्यर्थः ॥१४९॥
- हील० बहुना० । उदयसिंहराज्ञे महिमा किं वर्णयते ?। योऽनेन सह सङ्ग्रामं कुर्यात् स शीघ्रं देवभूयं  
भजेत् ॥★१४९॥
- हीसुं० अपि॑ तत्र कमाख्य॑नैगमोऽजनि॒ तदभू॑पुरुहूतसम्मतः ।  
व्यवहारिषु यः॑ पुरो॒गतामिव॑ वर्गेषु॒ दधार॑ धर्मवत् ॥१५०॥  
( १ ) नारदपुर्याम् । ( २ ) वणिक । ( ३ ) राज्ञो मान्यः । ( ४ ) प्रकृष्टताम् । ( ५ ) अर्थकामेषु ।  
( ६ ) धर्मः । प्रधानस्तयोस्तदधीनत्वात् ॥१५०॥
- हील० तत्र कमोसाधू राजमान्योऽभवत् । यथा चतुर्वर्गेषु धर्मः श्रेष्ठः ॥★१५०॥
- हीसुं० किमपा॑स्य रजिनांह्लिसेवया॒ शशिनाऽ॑ येन॑ कलङ्ककश्मलम् ।  
स्थितमेत्य॑ दिवः॑ क्षितौ॑ पुनर्न॑भसो॑ नीलिमसङ्गशङ्क्या ॥१५१॥  
( १ ) त्वक्त्वा । ( २ ) जिनो-वीतरागः कृष्णश्च तस्याह्वेः-पदस्य सेवया । विष्णुपदसेवया ।  
( ३ ) कलङ्कमलम् । ( ४ ) येन यद्युवहारिष्टपेण । ( ५ ) आकाशादागत्य । ( ६ ) भूमौ  
स्थितम् । ( ७ ) व्याघ्रव्य । ( ८ ) आकाशस्य सङ्गस्याशङ्क्या ॥१५१॥
- हील० स्वविमानस्थप्रतिमां गगनं वा तत्सेवया कलङ्करहितश्चन्द्र आकाशकालिमस्पर्शभयाद् भुव्यागतः  
॥१५१॥
- हीसुं० करबीरगृहत्व॑मुग्रतां॒ प्रविहाया॑त्मविरूपनेत्रताम् ।  
पुरि॑ यन्निभतोऽवतीर्णवानिव॑ पीयूषमयूखशेखरः ॥१५२॥  
( १ ) श्मशानवेशमताम् । ( २ ) चण्डत्वम् । ( ३ ) स्वस्य विरुद्धं विकृताकारं वह्निमयत्वान्नेत्रं  
तत्, ताम् । “अहिर्बुद्धो विरूपाक्षविषान्तकौ” इति हैम्याम् । ( ४ ) नारदपुर्याम् । ( ५ )  
कमाकपटात् । ( ६ ) चन्दशेखरः । शंभुः ॥१५२॥
- हील० श्मशानगृहत्वं चण्डतां विरूपतां त्यक्त्वा शंभुरुत्तरितः ॥१५२॥
- हीसुं० कोडाईत्यस्य कान्ता॑भूज्जग॑तीयुवतीमणिः ।  
यथा सुमनसां॒ सार्वभौमस्य॑ जयवाहिनी ॥१५३॥  
( १ ) त्रिभुवनवनिताचूडामणिः । ( २ ) इन्द्रस्य । ( ३ ) शाची । ( ४ ) यथा इवार्थे ॥१५३॥

1. किमपुष्योदय० हीमु० । 2. योऽभ्येत्य हीमु० । 3. इत्युदयसिंहराणकः हील० । 4. ०गतां समवर्गें० हीमु० ।
5. ०नापास्य कल० हील० । 6. इति कमोसाहः हील० । 7. ०न्तासीज्ज० हीमु० ।

- हील० तस्य कोडां नाम्नीस्त्रीरत्नं जातम् । यथेन्द्रस्य पौलोमी स्यात् ॥१५३॥
- हीसुं० रम्भा दम्भादिवाऽमुष्याऽन्निदशी अत्रिदशौकसः ।  
“विमोहिता कमारूपं अनिस्त्राप्या क्षमामुपागता ॥१५४॥
- ( १ ) कोडिमदेव्याः । ( २ ) देवी । ( ३ ) देवलोकात् । ( ४ ) अनुरक्ता जाता । ( ५ ) दृष्ट्वा ।  
( ६ ) पृथ्वीम् । ( ७ ) समेता ॥१५४॥
- हील० रम्भा० । अस्या दम्भादम्भा नाम्नी देवी कमारूपं दृष्ट्वा मोहिता । स्वर्गृहात्पुर्यामागता ॥१५५॥
- हीसुं० दृष्ट्वा अपतिं रतं अत्यां प्रीत्येव अत्यक्तकायया ।  
दुःखात्संपत्यास्तंपत्या व्याजाज्जन्माददेऽपरम् ॥१५५॥
- ( १ ) स्मरम् । ( २ ) अत्यासक्तम् । ( ३ ) रतिविषये । ( ४ ) अपरपत्या प्रीतिनाम्या । ( ५ )  
दुःखादुज्जितशरीरया । ( ६ ) समानः पतिर्यस्याः सा सपल्नी । “सपत्यादिषु नित्यं नुक  
वाच्यः” इति सपल्नी । ( ७ ) कमाकान्तायाः । ( ८ ) अन्यमवतारम् ॥१५५॥
- हील० रतिसक्तं स्मरं दृष्ट्वा प्रीत्या सपल्नीदुःखादन्यज्जन्म गृहीतम् ॥१५५॥
- हीसुं० अत्यक्त्वा अवतीण्णां पुरुषं पुरुणां स्वमिमां अरमाम् ।  
विलक्ष्यः प्रेक्ष्य तद्वःखान्मं मज्जेवार्णवे जले ॥१५६॥
- ( १ ) वृद्धपुरुषत्वान्निजमपास्य । ( २ ) कोडिमदेवीरूपाम् । ( ३ ) लक्ष्मीम् । ( ४ ) वतीण्णाम् ।  
( ५ ) ज्ञात्वा । ( ६ ) कृष्णः समुद्रे बुब्रूः ॥१५६॥
- हील० स्वं पतिं अत्यक्त्वा मृत्वा कोडारूपेणात्तावतारं दृष्ट्वा श्रीपतिर्णवजले मानवान् ॥१५६॥
- हीसुं० स्पर्द्धयेव अदिवा दम्भादस्याः अन्नैणशिरोमणे ।  
“धृतेतराऽपुराऽरम्भा अचित्तभूभूमिभृत्सभा ॥१५७॥
- ( १ ) स्वर्णेण । ( २ ) त्रिभुवनस्त्रीगणचुडामणिरूपायाः । ( ३ ) अपरा रम्भा । ( ४ ) धारिता ।  
( ५ ) नारदुपुर्या ( ६ ) स्पर्सराजस्थानसभा ॥१५७॥
- हील० दिवा सह स्पर्द्धया नारदपुरा अस्या मिषादितरा रम्भा धृता । किंभूता रम्भा ?। चित्तभूः कामराजा  
तस्यास्थानसभा ॥१५७॥
- हीसुं० अमन्दानन्दसन्दोहमेदुरौ तौ वधूवरौ ।  
गमयांचक्रतुः कालं केलतीश्रीसुताविव ॥१५८॥
- ( १ ) वर्द्धमानप्रमोदसमुदयपुष्टौ । ( २ ) तौ कोडिमदेवी-कमाव्यवहारिणौ । ( ३ ) रतिरतीशाविव ।  
“केलतीमदनयोरुपश्रये” इति नैषधे ॥१५८॥
- हील० रतिस्मराविव तौ कालमतिचक्रमतुः ॥१५८॥

1. ०यास्याम्० हीमु० । 2. इति कोडिमदेवी हील०

- हीसुं० 'कदाप्यदर्शि तत्पत्त्या स्वप्ने शुखशयानया ।  
उत्सङ्घसङ्घतः सिंहः \*श्रेयोराशिरिवा\*ङ्गवान् ॥१५९॥  
( १ ) कस्मिन्प्रप्यवसरे । ( २ ) कमाकान्तया — कोडिमदेव्या । ( ३ ) सुखेन सुमया । ( ४ )  
पुण्यसमूह इव । ( ५ ) मूर्त्तिमान् ॥१५९॥
- हील० कदा० । तत्पत्त्या स्वप्ने सिंहो दृष्टः ॥ १५९ ॥
- हीसुं० मृणालधवलान्स्कन्थे बिभ्रद्वन्धुरकेसरान् ।  
शिखरे शिखरी शंभोः शारदीनानिवाम्बुदान् ॥१६०॥<sup>१</sup>
- हील० यथा कैलाशः शरन्मेघान् धत्ते, तद्वुज्ज्वलकेसरान् दधन् ॥१६०॥
- हीसुं० किम॑भ्यर्थयमानानामुच्छेत्तुं दौस्थ्यमर्थिणाम् ।  
\*कुम्भिकुम्भभिदालग्ना मुक्ता बिभ्रन्वेखान्तरे ॥१६१॥  
( १ ) याचमानानाम् । ( २ ) निवारयितुम् । ( ३ ) दरिद्रताम् । ( ४ ) याचकानाम् । ( ५ )  
करिशिरोविदारणावसरे लग्ना । ( ६ ) नखानां रन्ध्रेष्वन्तराले ॥१६१॥
- हील० भद्रहस्तिवधालग्नानि मुकाफलानि नखान्तर्बिभ्रन् । उत्प्रेक्ष्यते । याचकान् धनाढ्यीकर्तुम् ॥१६१॥
- हीसुं० 'जृम्भणादाननं काशप्रतीकाशो विकाशयन् ।  
मत्तस्तम्बेरभीकान्तकवलीकृतये किमु ॥ १६२ ॥ आदिश्वतुर्भिः कुलकम्<sup>२</sup>  
( १ ) जृम्भीकरणावसरे । ( २ ) काशाः प्रसिद्धास्तेषां प्रतीकाशस्तुल्यशुभ्रत्वात् । "विलसत्काश-  
चामर" इति रघुवंशे । ( ३ ) मत्तेभकवलीकरणाय ॥१६२॥
- हील० जृम्भीकरणान्मुखं विकाशयन् । उत्प्रेक्ष्यते । मत्तेभभक्षणाय ॥१६२॥
- हीसुं० 'जहे श्वेतलया निद्रा विनिद्रन्नेत्रपत्रया ।  
सङ्गतिदौर्जनीयेव सज्जनानां समज्यया ॥१६३॥  
( १ ) त्यक्ता । ( २ ) कोडिमदेव्या । ( ३ ) विकसितनयनकमलपत्रया । ( ४ ) दुर्जनसम्बन्धिनी ।  
( ५ ) सभया ॥१६३॥
- हील० जहे० । विकसन्नेत्रया तया निद्रा जहे- त्यक्ता । यथा सज्जनानां साधूनां पर्षदा, दुर्जनानामियं  
दौर्जनीया सङ्गतिः, सा हीयते ॥१६३॥
- हीसुं० 'कंसारेत्रिव रुक्मिण्या स श्वप्नः श्वपतेः पुरः ।  
तया मुदितयाभाषि भाषितेशोपमेययाः ॥१६४॥  
( १ ) कृष्णस्य । ( २ ) सिंहस्वप्नः । ( ३ ) कमाख्यस्याग्रे । ( ४ ) कोडिमदेव्या । ( ५ )

1. हीसुंप्रतौ अस्य श्लोकस्य टीका नास्ति । 2. इति कोडिमदेवी हील० ।

वाक्चातुर्यात्सरस्वत्या सादृश्मुपमीयते ॥१६४॥

हील० कंसारेऽ । भाषितेशया सरस्वत्योपमीयते । तादृश्या तया स स्वप्नः स्वभर्तुः पुरो भाषितः । यथा रुक्मिण्या श्रीपतेः पुरो नक्तदृष्टः स्वप्न उक्तः ॥१६४॥

हीसुं० स ॑विचार्य ॒विचारज्ञोऽङ्गनाऽमिदमजीगदत् ।

सूनुः सिंह इवाऽधृष्यो भविता तव भामिनि ! ॥१६५॥

( १ ) विमृश्य । ( २ ) विचारचतुरः । ( ३ ) स्वपलीम् । ( ४ ) इदं वक्ष्यमाणम् । ( ५ ) कथयति स्म । ( ६ ) अनाकलनीयः ॥१६५॥

हील० स कमानामव्यवहारी प्रियामिति कथयति स्म । हे वर्णनि ! तव सिंहतुल्यः पुत्रो भविता ॥१६५॥

हीसुं० ॑गन्धसिन्धुरराजस्य ॒वशेवालसगामिनी ।

अन्तर्वर्ती ततः पत्नी ॑महेभ्यस्य ॒बभूवुषी ॥१६६॥

( १ ) मदमत्तगजेन्द्रस्य । ( २ ) वशा रुद्री । एतावता हस्तिनी । यद्यपि वशाशब्दो हस्तिन्यां प्रवर्तते तथापि बाहुल्यान्नार्यामेव प्रयुज्यमानत्वाद्गन्धसिन्धुरराजस्य वशा हस्तिनी । वशा रुद्री-गजयोषितो “इत्यनेकार्थः । ( ३ ) गुर्विणी । ( ४ ) महेभ्यपली कोडिमदेवी । ( ५ ) भूता ॥१६६॥

हील० ततो हस्तिनीव मन्थरगामिनी इभ्यस्त्री गर्भवती सज्जायते स्म । “वशा नार्या वस्यगव्यां हस्तिन्यां दुहितर्यपि । वेश्यायां०” इत्यनेकार्थः । वशाशब्दो नार्या बाहुल्यात्समग्रपदोपादनं न केवलम् ॥१६६॥

हीसुं० समयेऽथ ॑तया ॒रत्या ॒ब्रह्मसूरिव ॒नन्दनः ।

सुषुवे ॑सुषमास्तोमः ॒प्रोद्धवन्मूर्तिमानिव ॥१६७॥

( १ ) कोडिमदेव्या । ( २ ) सुतः । ( ३ ) कन्दर्पपल्या । ( ४ ) अनिरुद्ध इव । ( ५ ) सातिशायिशोभासमूह इव । ( ६ ) प्रकटीभवन् ॥१६७॥

हील० सम० । यथा स्मरपत्या अनिरुद्धनामा नन्दनः प्रसूतः तथा तया सुतः प्रसूत । उत्प्रेक्ष्यते । मूर्तः शोभातिशयः ॥१६७॥

हीसुं० ॑तनूजन्माननज्योत्स्नानाथे ॒लवणिमामृतम् ।

चकोरेणेव ॑पिबता ननृते ॑पितृचक्षुषा ॥१६८॥

( १ ) पुत्रमुखचन्दे । ( २ ) लावण्यसुधाम् । ( ३ ) सादरं विलोकयता । ( ४ ) कमानयनेन ॥१६८॥

हील० सुतवदनचन्दे लावण्यसुधां पिबता सादरं विलोकयता पितृनेत्रेण निर्त्तिम् । यथा चकोरेण नृत्यते ॥१६८॥

- हीसु० क्षीरकण्ठः ॑कृतोत्कण्ठः सञ्चाते ॒जातकर्मणि ।  
 ॒उत्तेजित ॑इवादर्शः शिश्रिये परमां श्रियम् ॥१६९॥  
 ( १ ) कृता स्वजनानामौत्सुक्यं येन । ( २ ) अशुचिकर्मनिवर्तनादिकम् । ( ३ ) शाणोळि-  
 खितः । ( ४ ) दर्पणः ॥१६९॥
- हील० सौन्दर्यादिभिः कृता उत्कण्ठा येन, तादृशः शिशुर्दर्पण इव शुशुभे ॥१६९॥
- हीसु० ॑अयं ॒जयं यतः ॑कर्ता: सिंहवद्द्वेषि॑दन्तिनाम् ।  
 जयसिंह इतीवास्य ॑बीजी॑नाम विनिर्ममे ॥१७०॥  
 ( १ ) कुमारः । ( २ ) पराभवम् । ( ३ ) करिष्यति । ( ४ ) वैरिगजानाम् । ( ५ ) बीजी तत्पिता  
कमाख्यः । ( ६ ) जयसिंह इति नाम । ( ७ ) चक्रे ॥१७०॥
- हील० कुनयगजाना॑ जयकृद्वावीति पिता जयसिंहनामाकरेत् ॥१७०॥
- हीसु० ॑धात्रीभिः॑प्रेमपात्रीभिः पाल्यमानः स ॑बाल्यतः ।  
 ॑रामो॑यादवरामाभिरि॑वा॑वर्द्धि दिने दिने ॥१७१॥  
 ( १ ) उपमातृभिः । ( २ ) स्नेहभाजनैः । ( ३ ) जन्मदिनमारभ्य । ( ४ ) बलभद्रः । ( ५ )  
 यादवाङ्नाभिः । ( ६ ) वर्द्धतः ॥ १७१ ॥
- हील० यथा बलभद्रो यदुवंशोत्पत्रवनितापाल्यमानो वर्द्धते । तथा स वर्द्धते स्म ॥१७१॥
- हीसु० पुषोषा॑वयवैर्वृद्धि स॑क्रमेण॑स्तनंधयः ।  
 ॑आलवालाम्बुपायीव शि(शा)खाभिः॑श्रन्दनाङ्गुरः ॥१७२॥  
 ( १ ) शरीरङ्गोपाङ्गः । ( २ ) जयसिंहकुमारः । ( ३ ) सत्न्यपायी । ( ४ ) स्थानकजलपानशीलः ।  
 ( ५ ) शाखाभिः श्रीखण्डप्ररोहः ॥१७२॥
- हील० स पयोधरपयः पायी बालोऽङ्गोपाङ्गानि पुष्णाति स्म । यथा स्थानकाम्बुना श्रीखण्डवृक्ष उपचयं  
 लभते ॥१७२॥
- हीसु० स॑प्राक्च॑इक्रमणैः पित्रोरारोप्य॑प्रीतिव॒ल्लीम् ।  
 ॑आलपन्सफलीचक्रे वर्षन्निव॑घनाघनः ॥१७३॥  
 ( १ ) प्रथमम् । ( २ ) हिणडनैः । ( ३ ) स्नेहवल्लीम् । ( ४ ) ब्रुवन् । ( ५ ) फलयुक्ताम् । ( ६ )  
 मेघः ॥१७३॥
- हील० स बालः पूर्वं हिणडनैः स्नेहलतां स्थानके रोपयित्वा पश्चात् ब्रुवन्सन् सफलां चक्रे । यथा मेघो वर्षन  
 प्राक् वल्लीं वृक्षादिष्वारोप्य सफलीकुरुते ॥\*१७३॥

1. ओवासौ वव्यथे क्रमात् हीमु० । 2. ओवीरुधम् । हीमु० ।

- हीमु० १वृद्धमानः क्रमे॑णाथ सोऽजनिष्टा॒ष्ट्रहायनः ।  
३प्रत्यहं॑ प्रणय॑क्लेनीः॒ सिम्भुराधिपोतवत् ॥१७४॥
- ( १ ) वृद्धि प्राप्नुवन् । ( २ ) अष्टवर्षः । ( ३ ) नित्यम् । ( ४ ) कुर्वन् । ( ५ ) क्रीडः । ( ६ ) गजेन्द्रबालः । “स्यात्पोतो दशवार्षिकः” इति हैम्याम् ॥१७४॥
- हील० यथा गजपोतो । दशवर्षीयगजः केलिं कुरुते तद्वक्त्रीडां कुर्वन्सोऽष्टवार्षिकः सज्जातवान् ॥१७४॥
- हीमु० १सोऽनवद्यास्ततो विद्या॒॑ स्माधीते॒॑ गुरुसन्निधौ॑ ।  
३हार्द॒॑ तासां॒॑ स जग्राहाऽभिज्ञव॒॑ मुरुधचेतसाम् ॥१७५॥
- ( १ ) जयसिंहकुमारः । ( २ ) प्रशस्याः । ( ३ ) पठति स्म । ( ४ ) कलाचार्यपार्श्वे । ( ५ ) रहस्यविशेषादि । ( ६ ) विद्यानाम् । ( ७ ) विदग्धः । ( ८ ) निर्बुद्धीनाम् ॥१७५॥
- हील० स विद्या॑ः पठति स्म । च पुनस्तासां विद्यानां रहस्यं जगृहे । यथा विद्वान् मुखपुंसा रहस्यं गृह्णाति ॥★१७५॥
- हीमु० १सिद्ध्यध्वानं॒॑ प्रतिष्ठासुर्विधित्सुर्धर्मम्॒॑ मार्हतम् ।  
३सखायमिव॒॑ तद्वसा॒॑ संयमं॒॑ समुपाददे ॥१७६॥
- ( १ ) मुक्तिनगरीमार्गाम् । ( २ ) प्रतिस्थातुकामः । ( ३ ) कर्तुमिच्छुः । ( ४ ) तीर्थकप्रणीतं धर्मम् । ( ५ ) मित्रमिव । ( ६ ) जयसिंहपिता कमाख्यः । ( ७ ) चास्त्रिम् । ( ८ ) जग्राह ॥१७६॥
- हील० सिद्ध्य० । सिद्धिमार्गं प्रस्थातुमिच्छुष्पि(ः पि)ता सखायं संयमं गृह्णाति स्म ॥१७६॥
- हीमु० १ततो॒॑ नमसितुं॒॑ सूरि॒॑ कुमारः॒॑ स ऐकदाचन ।  
३प्रतिष्ठते॒॑ स्म॒॑ सानन्दं॒॑ वृषभाङ्गमिवार्षभिः ॥१७७॥
- ( १ ) पितृदीक्षानन्तरम् । ( २ ) कियति काले । ( ३ ) वन्दितुम् । ( ४ ) विजयदानसूरिम् । ( ५ ) जयसिंहः । ( ६ ) चलति स्म । ( ७ ) सहर्षम् । ( ८ ) ऋषभदेवम् । ( ९ ) भरतः ॥१७७॥
- हील० ततः॒॑ कुमारः॒॑ सूरि॒॑ नन्तुं॒॑ प्रचलति॒॑ स्म । यथा भरतचक्री॒॑ स्वतातं॒॑ ऋषभदेवं॒॑ प्रणेतुं॒॑ प्रचलति॒॑ स्म ॥★१७७॥
- हीमु० १प्रीतिवापीपयः॒॑ पूराप्लवनैः॒॑ पुलकाङ्गिता॒॑ ।  
३प्रसूस्तमनु॒॑ याति॒॑ स्म॒॑ गौरिवाङ्गमात्मनः ॥१७८॥
- ( १ ) स्नेहरूपदीर्घिकाजलप्लवे॒॑ स्नानकरणैर्मज्जनैः । ( २ ) रोमाङ्गिता॒॑ । ( ३ ) माता॒॑ क्रोडिमदेवी॒॑ ।

1. उणासावजनिं० हीमु० । 2. च । हीमु० । 3. उतुं॒ तातं॒ । हीमु० ।

(४) अनुगच्छति स्म । (५) धेनुर्निजवत्सम् ॥१७८॥

हील० प्रसूः कोडाई तमनुयाति स्म । यथा गौर्वत्समनुगच्छति ॥१७८॥

हीसुं० 'श्रीमन्मुनिनिशारतं जयर्सिंहकुमारराट् ।

प्रणते<sup>३</sup>गौर्चरीचक्रे<sup>३</sup>श्रीवीरमति<sup>४</sup>मुक्तवत् ॥१७९॥

(१) विजयदानसूरिम् । (२) नमस्करोति स्म । (३) महावीरम् । (४) अतिमुक्तकनामा  
कुमारः ॥१७९॥

हील० कुमारेण श्रीविजयदानसूरिन्प्यते स्म । यथातिमुक्तकः श्रीवीरं प्रणतवान् ॥१६९॥

हीसुं० अथ <sup>१</sup>पृथुकपुरोगस्सं<sup>२</sup>मदेन <sup>३</sup>व्रतीन्दोरिव <sup>४</sup>गजसुकुमालः स्वामिनो<sup>५</sup>उर्णिनेमेः ।  
अधिकम्<sup>६</sup>धरयन्तीं <sup>७</sup>साधिमानं <sup>८</sup>सुधानां श्रवणविषयभावं देशनां<sup>९</sup>मानिनाय ॥१८०॥

(१) कुमारसाजः । (२) प्रीत्या । (३) विजयदानसूरः । (४) कृष्णलघुभ्राता । (५)  
नेमिनाथस्य । (६) तिरस्कुर्वतीम् । (७) चारुताम् । (८) अमृतानाम् । (९) देशनां  
शृणोति स्म ॥१८०॥

हील० अथ पृ० । शिशुमुख्यः सुधाचारुतां धिकुर्वतीं सूरिदेशनां श्रुतवान् । यथा कृष्णलघुभ्राता देवक्या  
अष्टमपुत्रो गजसुकुमालः श्रीनेमिनाथस्य देशनां शुश्राव ॥१८०॥

हील०→ असाराद्वेहिनां देहात्सारोऽर्हद्वर्द्धम् एव हि ।

उद्घार्योऽनर्थकार्यर्थाद्वानशौपडेन दानवत् ॥१८१॥←

असा० प्राणिभूघनाद्वर्द्धम् एवोद्घरितव्यः । यथानर्थकारिणोऽर्थाद्वान्येन दानमुदधियते ॥१८१॥

हीसुं० '<sup>१</sup>प्रबुबुधे <sup>२</sup>प्रभुदेश<sup>३</sup>नया तया <sup>४</sup>शिशुसहस्रदृशा समम्बया ।

<sup>५</sup>विशदचन्द्रिकयेव<sup>६</sup> कुमुद्वृतीलतिकया <sup>७</sup>कुमुदेन <sup>८</sup>तमीमणेः ॥१८१॥

(१) प्रतिबुध्यते स्म । (२) विजदानसूरिगिरा । (३) कुमारेण । (४) कोडिमदेव्या साद्वर्द्धम् ।

(५) निर्मलचन्द्रज्योत्सनया । (६) कुमुदिनीवल्ल्या सह । (७) कैरवेण । (८) चन्द्रस्य ॥

हील० जनन्या समं कुमारेन्द्रेण प्रबोधः प्राप्यते । यथा चन्द्रज्योत्सनया कैरविण्या सह कैरवेण प्रबुद्ध्यते  
॥१८२॥

हीसु० '<sup>१</sup>प्रभोरुपान्ते समम्बया महामहैर्महेभ्यीभवदर्थिमण्डले ।

<sup>२</sup>सुनन्दया सी( सिं )हगिरिः स वज्रस्वामीव जग्राह <sup>३</sup>शिशुस्तपस्याम् ॥१८२॥

(१) सूरिसमीपे । (२) जनन्या समम् । (३) धनाढ्या जायमाना याचकव्रजा येषु ।

(४) वज्रस्वामिनो जननी सुनन्दानामी । (५) जयर्सिंहकुमारः । (६) दीक्षाम् ॥१८२॥

हील० प्रभो० । धनाढ्यीकृतयाचकजनैरुत्सवैरम्बया समं शिशुर्दीक्षां जग्राह । यथा सुनन्दया मात्रा सह

\* एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति । 1. ०यानया० हीमु० । 2. ०डलैः । हीमु० ।

वज्रस्वामी दीक्षां जग्राह ॥★१८३॥

हीसुं० जयविमल इदं ॑तन्नामधेयं विधिज्ञो ॒व्यधित विजयदानः ॓सूरिसारङ्गराजः ।  
पुनरभिनवसूरेस्तं प्रदत्ते स्म सूनो॒-॑र्विनयिन इव वसा ॑स्वं क्रमा॑दागतं॒० स्वम  
॥१८३<sup>२</sup>॥

( १ ) कुमारमुनेरभिधानम् । ( २ ) चकार । ( ३ ) सूरिसिंहः । ( ४ ) नवीनाचार्यस्य हीरविजयसूरेः ।  
( ५ ) जयविमलमुनिम् । ( ६ ) पुत्रस्य ( ७ ) विनयवतः । ( ८ ) आत्मीयम् । ( ९ ) पितृपरिपाटच्चा  
समागतम् । ( १ ) द्रव्यम् ॥१८३॥

हील० श्री सूर्जियविमल इति नाम दत्त्वा तं नवीनसूरेः प्रत्तवान । यथा पिता विनयवतः सुतस्य स्वकीयं  
स्वं द्रव्यं प्रदत्ते ॥★१८४॥

हीसुं० विजयदानविभुर्वट॑पल्लिकाभिधपुरेऽथ विभूषितवार्ण्डिवम् ।  
॒भुवि ॑भरेण ॒विसार्य पुनर्दिवि ॑प्रथयितुं ॑महिमानमि॑वात्मनः ॥१८४॥  
( १ ) वडलीनामनगरे । ( २ ) स्वलोकमलङ्गोति स्म । ( ३ ) पृथिव्याम् । ( ४ ) अतिशयेन ।  
( ५ ) विस्तारयित्वा । ( ६ ) विस्तारयितुम् । ( ७ ) माहात्म्यम् । ( ८ ) स्वस्य ॥१८४॥

हील० वडलीग्रामे विजयदानसूरिः स्वर्गतः । उत्तेक्ष्यते । भुवि शोभां विस्तार्य स्वर्गे विस्तारयितुं गतः  
॥१८५॥

हीसुं० ॑सूरीन्द्रहीरविजयः ॑प्रतिपद्य ॑पद्मलक्ष्मीं शुरोरनु ॑विशिष्य ॑पुषोष ॑भूषाम् ।  
॑वमुर्निजस्य युवराज इवार्थिपत्यं ॑क्रान्तारिचक्रम॑खिलाम्बुधिमेखलायाः ॥१८५॥  
( १ ) श्री हीरविजयसूरीन्द्रः । ( २ ) विजयदानसूरेः पश्चात् । ( ३ ) पद्मश्रियम् ( ४ ) प्राप्य ।  
( ५ ) विशेषप्रकारेण । ( ६ ) शोभाम् । ( ७ ) पुष्णाति स्म । ( ८ ) तातस्य ( ९ ) प्रभुताम् ।  
( १० ) वशीकृतशत्रुवृन्दम् । ( ११ ) भूमेः ॥१८५॥

हील० अनु-पश्चात्सूरीन्द्रो विशेषात् शुशुभे । यथा पितुः साम्राज्यं प्राप्य युवराजोऽधिकं दीप्यते ॥१८६॥

हीसुं० ॑मण्डयत्य॑भरमन्दिरं ॑गुरो ॑दीप्यते स्म ॑मुनिवासवो॑धिकम् ।  
॑पद्मिनीप्रियतमेऽपराम्बुधेर्मध्यभागमिव ॑शर्वरीवरः ॥१८६॥  
( १ ) अलङ्कुर्वति ( २ ) स्वर्गलोकम् । ( ३ ) विजयदानसूरीन्द्रे । ( ४ ) स्फूर्तिं धत्ते स्म । ( ५ )  
हीरविजयसूरीः । ( ६ ) अतिशयेन । ( ७ ) सूर्ये । ( ८ ) पश्चिमसमुद्रमध्यप्रदेशम् । ( ९ ) चन्द्रः  
॥१८६॥

हील० गुरै स्वर्गे गते श्रीसूरिधिकं दीप्यते स्म । यथा पश्चिमसमुद्रस्य मध्यमभागं गते चन्द्रे सूर्योऽधिकं  
दीप्यते ॥१८७॥

1. श्रीसूरिधिकं । हीमु० । 2. इति विजयसेनसूरिदीक्षा-जन्मवर्णनम् हील० । 3. पद्मिनीप्रियतः हीमु० ।

- हीसुं० १यदगेहशृङ्गाङ्गणनद्वमारुतप्रेहृत्पताकापटपल्लवच्छलात् ।  
२गोष्ठीमनुष्ट्रातुमिवा॑मरावर्ती॒प्रियां॑ सखीमाहृयतीव पाणिना ॥१८७॥
- (१) डीसानगरगृहशिखरप्राङ्गणबद्धवातान्दोलितध्वजपटकपटात् । (२) रहस्यवाच्चार्ताम् । (३) कर्तुम् । (४) इन्द्रपुरीम् । (५) इष्टवयसीम् । (६) आकारयति ॥१८७॥
- हील० यत्पुरं डीसानगरं गृहाणां शृङ्गाङ्गणबद्धः पुनर्वायुना कम्पितो यो ध्वजपल्लवः । 'जातावेकवचनम्' । तस्य दम्भात् स्वसखीमिन्द्रपुरीं गोष्ठीकर्तुं पाणिनाहृयतीवाकारयतीव । 'ध्वजवाचके एकत्कम्' ॥१८८॥
- हीसुं० १यदीयराजद्विभवाभिभूतया॒ पौलस्त्यपूर्या॑ किमभाजिः॑ लज्जया ।  
२यदुज्ज्यतेऽद्यापि॑ तया न॑ भङ्गभिज्ञानमी॑शानशिलोच्चयाश्रयः ॥१८८॥
- (१) डीसानगरस्य विलसलक्ष्म्या जितया । (२) अलकानगर्या । (३) प्रणष्टम् । (४) यस्मात्कारणात्यज्यते । (५) धनदपुर्या । (६) पलायनचिह्नम् । (७) कैलासनिवासलक्षणम् ॥१८८॥
- हील० यदी० । यस्याधिकशोभया जितया लज्जया धनदपुर्या नष्टं यदद्यापि भङ्गलक्षणं कैलाशशिखरावस्थितिर्न त्यज्यते ॥१८९॥
- हीसुं० १यदीयलक्ष्म्या॑ विजितेव॒ लङ्घा॑ प्रणश्य॑ मध्येऽम्बुनिधेविः॑वेश ।  
कदाचन॑ प्रावृषि॑ सूरिगाजो॑ डीसाहृयं॑ तत्पुरमा॑ससाद ॥१८९॥
- अत्रिभिर्विशेषकम् ।
- (१) डीसानगरस्य श्रिया । (२) रावणपुरी । (३) समुद्रमध्ये । (४) प्रविष्टा । (५) वर्षाकाले । (६) हीरविजयसूरिः । (७) डीसानाम । (८) पूर्ववर्णितम् । (९) आश्रयति स्म ॥१८९॥
- हील० येन जिता लङ्घाऽब्ध्यौ पतिता । तदडीसानगरं भजति स्म ॥ १९०
- हीसुं० १कुलाद्विवार्द्धप्रतिनादमेदुरीभविष्णुनिःस्वानिततूर्यनिःस्वनम् ।  
२ जिनेश्वरस्येव जना॑ वितेनिरे॑ पुरे॑ प्रवेशस्य॑ महं॑ मुनीशितुः ॥१९०॥
- (१) मन्दरप्रमुखकुलशैलकन्दरेषु तथा समुद्रमध्ये प्रतिशब्दैः पुष्ट(ष्टी)भवनशीला वादिता राजवाद्यानां नीसाणेत्यभिधानां तूर्याणां वादित्राणां शब्दा यत्र । (२) तीर्थकरस्य । (३) चक्रुः । (४) डीसानगरे । (५) प्रविवेशनोत्सवम् । (६) हीरविजयसूरेः ॥१९०॥
- हील० कुलाचलेषु समुद्रे यः प्रतिशब्दस्तेन पुष्टा वादितवादित्रा रवा यत्र, तादृशमुत्सवं प्रवेशे चक्रुः ॥१९१॥

1. श्रिया हीमु० । 2. इति विजयदानगरौ स्वर्गते हीरविजयसूरे: पद्मधरत्वम् हील० । 3. इत्यन्ते (?) त्रिभिर्विशेषकम् हील० ।  
4. पुरप्रवेशेऽतिमहं मुनी० हीमु० ।

हीसुं० १सूरिवासवसमागमस्फुरत्प्रीतिपल्लवितचित्तवृत्तिभिः ।  
२नागरैरमितपृत्क( रिक्थ )वर्षिभिः ३स्पद्धयेव ४धनदो निधीश्वरः ॥१९१॥  
( १ ) श्रीहीरविजयसूरीद्वागमनेन प्रकटीभूतप्रमोदेनानुरक्तीभूतमनोव्यापारैः । ( २ ) नगरनरैः ।  
( ३ ) मानातीतद्विणदायिभिः । ( ४ ) इर्ष्येव । ( ५ ) संहृष्टेण । ( ६ ) कुबेरोऽपि  
दव्यप्रदो बभूव ॥१९१॥

हील० सूरिसमागमने बहुद्रव्यवर्षिभिः पौरैः सह स्पद्ध्या निधीश्वरे-वैश्रवणो धनं ददति । इति धनदो बभूव  
॥१९२॥

हीसुं० १नृत्यच्यन्दकिचक्रमु॒म्मदनदद्वप्पीहबालाकुलं  
२श्रीसूनोरिव यौवराज्यसमयं ३व्यालोक्य ४वर्षागमम् ।  
५क्रीडा॒शान्तरसाह्वपानससरोजम्माकरे० हसंव-  
६त्श्रीसूरीश्वरहीरहीरविजयस्तस्मिन्सुखं ७तस्थिवान् ॥१९२॥

इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये दक्षिणदिग्गमन-  
द्विजसमीपपठन-गुरुसमीपागमन-पण्डितवाचकाचार्यपदप्रदान-नन्दिभवन-श्रीविजयसेनसूरि-  
जमदीक्षादिवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः । ग्रंथाग्रम् ॥२५४॥

( १ ) नृत्यम्यूरनिकरम् । ( २ ) मदोद्धताः शब्दायमानाश्वकोरा यत्र । ( ३ ) कन्दर्पस्य । ( ४ )  
दृष्ट्वा । ( ५ ) वर्षाकालागमनम् । ( ६ ) शान्तरसनाम्नि मानसरसि । ( ७ ) मराल इव । ( ८ )  
खेलन् । ( ९ ) डीसानगरे । ( १० ) स्थितः । चातुर्मासीं प्रतिक्रान्तवान् ॥ १९२ ॥

इति षष्ठः सर्गः ॥ ग्रंथाग्रम् ॥ २७५ ॥

हील० १नृत्य० । नृत्यन्ति चन्द्रकिणां मयूरणां चक्राणि यत्र तम् । चन्द्रकं-पिच्छं विद्यते येषां ते । इति  
उन्मदा ये नदन्तो बप्पीहानां बालाः शिशवः लियो वा । प्रायो विपदि खीणां शिशूनां कातर्याद्वाल-  
पदप्रयोगः, तैर्व्यासम् । कामस्य युवराजपदाभिषेकप्रस्तावसदृशं वर्षासमयं दृष्ट्वा शमरसनाम्नि  
मानसे तयके हंसवत्क्रीडां कुर्वन् श्रीहीरविजयसूरिर्दीसापुरे चातुर्मासीमासीदति स्म ॥१९३॥

हील०→ यं प्रामूर्त शिवाह्वसाधुमधवा सौभाग्यदेवी पुनः ।

पुत्रं कोविदसिंहसी( सिं )हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।

तदब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक्-

सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते षष्ठोऽत्र सर्गोऽभवत् ॥१९४॥

इति पं. सी(सिं)हविमलगणिशिष्यपण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि  
महाकाव्ये षष्ठः सर्गः ॥६॥

ऐं नमः ॥  
अथ सप्तमः सर्गः ॥

- हीसुं० १सूरीन्दुरानन्दयति स्म ३तस्मिन्पुरे समग्रानपि ४नागरान्सः ।  
५पचेलिमप्राक्तनपुण्यपुञ्जः ६प्रादुर्भवन्मुर्त इवैष तेषाम् ॥१॥
- ( १ ) श्रीहीरविजयसुरिः । ( २ ) हर्षमुत्पादयति स्म । ( ३ ) डीसानगरे । ( ४ ) नगरलोकान् ।  
( ५ ) परिपाकं प्राप्तः पुर्वजन्मोपार्जितसुकृतराशिः । ( ६ ) प्रकटीभवन् । ( ७ ) शरीरवानिव ।  
( ८ ) डीसापुरलोकानाम् ॥१॥
- हील० सूरीन्दः पौरानानन्दयति स्म । उत्त्रेक्ष्यते । पौराणां परिपाकं प्राप्तः पुण्यप्रादुर्भावः ॥१॥
- हीसुं० १मिलद्वलाकाम्बरमुद्वहन्ती ३लीलागतोद्वेजितराजहंसा ।  
४श्यामा५लसज्जातिपयोधरोद्यद्वाराभिरामा ६पिहिताननेन्दुः ॥२॥
- ७सुरायुधभूलतिका८त्मयोनिमुज्जीवयन्तीव ३तडिद्विलासा ।  
मुदे ४तदानीमजनिष्ट ५यूनां २वर्षा६नवोढा ७वर्वर्णिनीव ॥ ३ ॥ ३युगम् ॥
- ( १ ) आश्लिषन्त्यः पत्या सह सङ्गं कुर्वत्यो वा बकप्रिया यत्र तादृगाकाशम् । “सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवत्तं बलाकाः” तथा- “गर्भाधान क्षणपरिचयात्” इति मेघदूते । पक्षे- बकवदुज्ज्वलं वस्त्रं धारयन्ती । ( २ ) वर्षादिविलासेनागमनेनोद्वेगं प्राप्तिविजयकरणेविचिता विजयिनृपश्रेष्ठा यया । “विश्रान्तजिष्णुक्षमापालयुधि” इति चम्पूकथायाम् । तथा जम्बालाविलजलावलोकनेनोद्वेगं नीता मानसं प्रति प्रस्थातुमुत्सुकीकृता राजहंसा यया । पक्षे विलासगत्या विजितमराला । ( ३ ) कृष्णाच्छविः षोडशवार्षिकी च । स्मेरन्ती मालतीलता यत्र तथा मेधेभ्यः प्रकटीभवन्तीभिर्जलवृष्टिभिर्नोज्ञा पक्षे दीप्यमानवंशी तथा स्तनयोर्दीप्यमान- हारहरिणी । ( ४ ) धनैर्वसनैर्वा आच्छादितः मुखतुल्यो मुखमेव वा चन्द्रो यया ।
- ( १ ) नव्यत्वे सलज्जत्वात् इन्द्रधनुरेव तद्वद्वाभूवली यस्याः । ( २ ) स्मरं प्रकटोकुर्वन्ती ।  
( ३ ) विद्युतस्तद्वद्वा विचेष्टिं यस्याः । ( ४ ) प्रातः । ( ५ ) तरुणानाम् । ( ६ ) नवप्रणीता ।  
( ७ ) प्रथानस्त्री ॥३॥
- हील० यथा नवोढा स्त्री यूनां हर्षाय स्यात्, तद्वत्प्रावृट् यूनां मुदे जाता । वृद्धानां तु शीतवात्कर्दमादिना दुःखदायिन्यत एव यूनामिति पदम् । किलक्षणा प्रावृट् वर्वर्णिनी च ? । मिलदबकाङ्गना यत्र तद्वद्वा श्वेतं गगनं वस्त्रं वा दधती । पुनर्वर्षितुमागमेन गत्या वा आतुरीकृता विजयिराजानो हंसा वा यया सा । पुनः कृष्णा षोडशवार्षिकी वा गिर्यादिषु गुर्वादिषु वा नप्रा । पुनः पयोधरेभ्यः पयोधरयोर्वा उद्यद्वराभिर्वा उद्यता होरेण रम्या, आच्छादितो वदनतुल्यस्तदेव वा चन्द्रो यया । पुनरिन्द्रधनुरेव ततुल्या वा भूलता यस्याः । पुनर्मृतं कामं जीवन्तं कुर्वन्ती(ती) । पुनर्विद्युतां तद्वद्वा विलासा यस्याम् ॥२★-३॥

1. मातिनप्त्रा च पयो० हीमु० । 2. प्रावृण । हीमु० । 3. युगलम् । इति वर्षा समयः हील० ।

- हीसु० अथंव्यधत्तं प्रणिधानमिच्छन्कं चित्सं संस्थापयितुं स्वपद्वे ।  
\*पुरेऽपि जीवातुरिवांखिलेऽत्र प्रावर्ततं प्राणभृतां ममारिः ॥४॥  
( १ ) चकार । ( २ ) ध्यानम् । ( ३ ) कमपि शिष्यम् । ( ४ ) डीसानगरे । ( ५ ) जीवनौषधम् ।  
( ६ ) समस्ते । ( ७ ) जीवानाम् । ( ८ ) मारणनिषेधः ॥४॥
- हील० कच्छित्स्थापयितुमिच्छन् सूरिध्यानं चक्रे । जीवनौषधमिवामारिः प्रावर्तत ॥★४॥
- हीसु० द्वारं स्वसिद्धेरिव सूरिगिजो ध्यानं दधानो वसुभूतिसूनोः ।  
अहान्यं हर्वान्धवबन्धुरौजास्तं निष्ठयेवागं मयदबहूनि ॥५॥  
( १ ) आत्मनः देवतागमनलक्षणफलनिष्पत्तेः । ( २ ) गौतमस्य । ( ३ ) दिनानि । ( ४ )  
सूर्यप्रकृष्टप्रतापः । ( ५ ) ध्यानविधिना । ( ६ ) नयते स्म ॥५॥
- हील० स्वकार्यसिद्ध्यै हेतुगौतमध्यानं कृत्वा सूर्यतेजाः स दिनानि गमयामास ॥५॥
- हीसु० सम्प्रिती कामितमुत्सुकानां दिग्जैत्रयात्रासु धराधवानाम् ।  
अथोपतस्थे शरदस्य सूरेर्विधित्सयेव प्रणिधानसिद्धेः ॥६॥  
( १ ) सम्पूर्यन्ती । ( २ ) वाञ्छितम् । ( ३ ) समुत्कण्ठितानाम् । ( ४ ) दिशां जयनशीलप्रस्थानेषु ।  
( ५ ) नृपाणाम् । ( ६ ) अथ ध्यानकरणावसरे । ( ७ ) आगता । ( ८ ) कर्तुमिच्छ्या ॥६॥
- हील० सम्पि० । दिग्विजयोद्यतानां राज्ञां वाञ्छां पूर्यन्ती शरत्सूरीष्टसिद्ध्यै आगता ॥६॥
- हीसु० मलीमसीभूतमशेषमभ्रमातङ्गसङ्गेन पदं मुरारेः ।  
द्विजाधिपः क्षालयतीव यस्यां निस्तन्दचन्द्रातपनीरपूरैः ॥७॥  
( १ ) मलिनीभूतम् । ( २ ) समस्तम् । ( ३ ) ऐरावणो गगनश्वाणडालश्च । ( ४ ) आकाशम् ।  
( ५ ) चन्द्रो ब्राह्मणश्च । ( ६ ) विकचच्चन्द्रिकापयःपूरैः ॥७॥
- हील० यथा ब्राह्मणेष्वश्वाणडालस्पृष्टं क्षालयति, तद्वच्चन्द्रोऽभ्रस्य गगनस्य चाणडालो मेघो वा तत्सङ्गेन  
मलिनीभूतगगनं मेघाभ्रहिमधूम(मै)रामुको यश्चन्द्रातपश्चन्द्रिका ततुल्यैस्तैरेव जलपूरैः क्षालयति ॥७॥
- हीसु० गाधा व्याधांद्यां भवरचुम्बिरङ्गतरङ्गपूरानपि वार्द्धिदारान् ।  
जगत्प्रसारोत्सुकयद्यशः क्षमाधरस्य किं सुप्रतराः प्रणेतुम् ॥८॥  
( १ ) पादोत्तरणयोग्याः । ( २ ) या शरत् । ( ३ ) गगनस्पर्शकचलत्कल्पेलमालान् । ( ४ )  
नदीः । ( ५ ) त्रिभुवने प्रसरणोत्कण्ठितसूरियशोनृपस्य । ( ६ ) सुखेन तरीतुं शक्याः । ( ७ )  
कर्तुम् ॥८॥
- हील० शस्त्रदीर्घाधाश्वकार । उत्प्रेक्ष्यते । यद्यशसः सुखोत्तरणाय ॥★८॥

1. उलेऽपि हीमु० । 2. इति हीरविजयसूरेः सूरिमन्त्राधनध्यानविधानरम्भः हील० । 3. सिन्धु० हीमु० ।

- हीसु० १ आस्वादितस्वादुभृणालकाण्डा: २ कूजन्ति ३ लीलालसराजहंसा: ।  
 ४ आगन्तुकार्हन्मतदेवतायाः ५ स्मरथवजाः ६ पूर्वमिव ७ ध्वनन्तः ॥१॥  
 ( १ ) जग्धाः स्वादनीयकमलनालपटलाः । ( २ ) शब्दायन्ते । ( ३ ) ऋद्यो मन्थरा राजहंसाः ।  
 ( ४ ) आगमनशीलशासनदेवतायाः । ( ५ ) वाद्यानि । ( ६ ) प्रथमपेव । ( ७ ) शब्दायमानाः ॥१॥
- हील० काण्डाः स्तम्बाः राजहंसाः शब्दायन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । सुरः पुर आगन्तुकायाः शासनदेव्या वाद्यानि ॥१॥
- हीसु० १ निर्मिति॒ षष्ठिः॑ शोषनिषद्वरायाः॑ कि॒ वर्ण्यते॒ इस्याः॑ २ शरदिन्दिरायाः॑ ।  
 ३ जडाशयानप्यसृजत्प्र॒ सन्नाशयान्क॒ विश्रीकलितांश्च॑ यत्सा ॥१०॥  
 ( १ ) अपहृतसमस्तर्कद्विमायाः । ( २ ) शरक्षक्षम्याः । ( ३ ) मूर्खान्सरांसि च । ( ४ ) स्वच्छमध्यान् प्रसादयुक्तचित्तान् । “दयासमुद्दे स तदाशयेऽतिथी-चकार कारुण्यरसापागागिर” इति नैषधे । ( ५ ) पानीयपक्षिशोभायुतान् काव्यकर्तृलक्ष्मीसहितांश्च ॥१०॥
- हील० शुष्कपद्मकयाः शरच्छोभायाः किं वर्ण्यते । डलयोरैक्याङ्गडचित्तान्कवीन् च पुनः काव्यकर्त्तव्यकरंत । तत्त्वतो निर्मलजलमध्यान् । पुनः कस्य जलस्य वयसः पक्षिणो हंसादयस्तैर्युक्तांश्चक्रे ॥१०॥
- हीसु० १ स्मितेषु॑ २ पद्मेषु॑ मुखेष्विवास्या॑ ३ रङ्गत्सु॑ नेत्रेष्विव खञ्जनेषु॑ ।  
 ४ बन्दिष्विव॑ ५ स्मेरसरोजपौष्पनिष्पातिगुञ्जन्म॒ धुपव्रजेषु॑ ॥११॥  
 ६ पटीश्विवो॑ हामकलामकौधावदातकेदारवसुन्धरासु॑ ।  
 ७ भूषास्विवास्या॑ विविधासु॑ ८ लीनशिलीमुखस्मेरसुमावलीषु॑ ॥१२॥  
 ९ गणाधिराजे॑ १० प्रणिधानदुग्धपाथोनिधौ॑ ११ मीन इवातिलीने॑ ।  
 १२ तदा॑ कदाचिद्गणनाध्वनीनो॑ १३ पराचलाभ्यर्णभुवं॑ बभाज ॥१३॥  
 त्रिभिर्विशेषकम् ॥३ इति शरत् ॥
- ( १ ) विकचेषु । ( २ ) कमलेषु । ( ३ ) चलत्सु । ( ४ ) मङ्गलपाठकेषु । ( ५ ) विकचकमलपरागेषु निष्पतनशीलशब्दायमानभ्रमरनिकरेषु ॥११॥
- ( १ ) वस्त्रेषु । ( २ ) उक्तसत्कलमशालिश्रेणिशुभ्रकेदारभूमीषु । ( ३ ) आभरणेस । ( ४ ) मकरन्दपानागतनिलयमानभ्रमरविकचत्कुसुमपडिक्तषु ॥१२॥
- ( १ ) हीरविजयसूरीन्दे॑ । ( २ ) ध्यानक्षीरसमुद्दे॑ । ( ३ ) मच्छ्यत्यस्य॑ इव । ( ४ ) शरदि॑ ।  
 ( ५ ) सूर्यः॑ । ( ६ ) अस्ताचलसमीपस्थानम् ॥१३॥
- हील० गगनपान्थः॑ सूर्यो॑ स्ताद्रिभुवं॑ भजति॑ स्म । केषु॑ सत्सु॑ ?। अस्याः॑ शरदो॑ विकसितकमलापु॑ मुखेषु॑ सत्सु॑ । पुनः॑ खञ्जनेषु॑ चलन्त्रेषु॑ सत्सु॑ । पुनर्विकसत्कमलामरन्दे॑ लोलुपमधुपेषु॑ बन्दिषु॑ मङ्गलपाठकमु॑ सत्सु॑ । उच्चशालिसमूहेनोज्ज्वलकेदारभूमिषु॑ अस्याः॑ शरदः॑ परिधानवस्त्रेषु॑ सत्सु॑ । पुनर्नानाविधासु॑

भ्रमरसुक्तासु कुसुमावलीषु अस्या भूषासु सतीषु । पुनः सूर्ये ध्यानक्षीराङ्ग्लौ मीनवल्लीने सति ॥११★१२-१३॥

हीसुं० विधेऽर्नियोगेन निजास्तपश्यान्पुत्रानिवोऽत्सङ्गजुषः ॥स्वरश्मीन् ।  
दृष्ट्वा विद्यासूंस्तदुटीतकोपादिवाऽरुणीभूतमथारुणेन ॥१४॥  
( १ ) दैववशेन । ( २ ) निजस्य सूर्यात्मनः अस्तं पश्यन्तीति । ( ३ ) उत्सङ्गसङ्गिनः । ( ४ ) निजकिरणान् । ( ५ ) गन्तुमिच्छून् । ( ६ ) तेषु किरणेषु प्रकटीभूतक्रोधात् । ( ७ ) रक्तीभूतम् ।  
( ८ ) भानुना ॥१४॥

हील० विधेऽ । निजस्य सूर्यात्मनः अस्तं क्षयं पश्यन्ति, तादृशान्स्वकिरणान् यातुमिच्छून् दृष्ट्वा  
तेषूटीतकोपात्सूर्येण रक्तीभूतम् ॥१४॥

हीसुं० जहेऽम्बरं सायम् शीतभासा नीत्वा स्तथात्रीधरगृहान्तः ।  
प्रदोषनाम्ना परिमोषिणेवाऽसहायिभावेन बलादगृहीतम् ॥१५॥  
( १ ) त्यक्तम् । ( २ ) वस्त्रमाकाशं च । ( ३ ) सन्ध्यायाम् । ( ४ ) भानुना । ( ५ )  
अस्ताचलगहनमध्ये । ( ६ ) रजनीमुखनामतस्करेण । ( ७ ) एकत्वेन सहायराहित्येन ॥१५॥

हील० जहेऽ । सूर्येणाम्बरं-गगनं वसनं वा त्यक्तम् । उत्प्रेक्ष्यते । अस्ताद्रेगुहान्तर्नीत्वा प्रदोषतस्करेण  
एकाकित्वेन गृहीतम् ॥१५॥

हीसुं० कलङ्कवानि न्दुरथाऽभ्युदेताऽकलङ्किनो विश्वविबोधिनो मे ।  
न साम्प्रतं साम्प्रतमत्र वस्तुमितीव याति क्वचिदिंशुमाली ॥१६॥  
( १ ) दोषाभ्युदितापवादवान्सलक्ष्मा च । ( २ ) चन्द्रः । ( ३ ) उदयिष्यति । ( ४ ) निष्कलङ्कस्य ।  
( ५ ) जगत्प्रतिबोधविधातुः । ( ६ ) युक्तम् ।

हील० कलङ्कवांशन्द्रोऽधुनोदेष्यति । अकलङ्कवतो मे वस्तुमिदानीं नोचितमितीव रविः क्वचिद्याति ॥१६॥

हीसुं० स्वरागिणीमञ्जनकुम्भकुम्भं प्रगल्भपीनस्तनदिगमृगाक्षीम् ।  
निर्वर्ण्य रागीव दिनावसाने किं पद्मिनीप्राणपतिः प्रयाति ॥१७॥  
( १ ) [ अत्र किञ्चित्त्रूटितमिव प्रतिभाति । ] तावेव प्रोद्धामौ पुष्टै स्तनौ यस्यास्तादृशी दिग्पश्चिमा  
सैव तरुणी ताम् । ( २ ) दृष्ट्वा । ( ३ ) रागवान् । ( ४ ) सायम् । ( ५ ) सूर्यः ॥१७॥

हील० स्वस्मिन् स्नेहलां अञ्जनः पञ्चमदिगगजस्य कुम्भावेव पीनौ स्तनौ यस्यास्तादृशी पश्चिमदिग् मृगनेत्रां  
वा दृष्ट्वा सूर्यो रागी सन् सायं तत्सन्निधौ याति ॥१७॥

हीसुं० उत्तुङ्गतारङ्गशिखावलम्बि किञ्चल्कलीलायितरश्मराशि ।  
पयोधिपूरेऽम्बुजबन्धुबिम्बं स्मेरारुणाम्भोरुहवद्विभाति ॥१८॥  
( १ ) उच्चैस्तरतरङ्गणाग्रमाश्रयन् । ( २ ) केसरलीलायमानकिरणनिकरः । ( ३ ) समुद्रजले ।

(४) रविमण्डलम् । (५) विकचकोकनदमिव ॥१८॥

हील० रविबिम्बं अव्यधिपूरे कोकनदवद्विभाति । किंभूतः ?। उत्तुङ्गे गगनचुम्बी यस्तरङ्गाणां समूद्रतारङ्गयतास्य  
शिखामवलम्बते, तादृशम् । पुनः किंभूतः ?। कमलकेसरवदाचरितः करनिकरणे यस्य, तादृशम् ॥१८॥

हीसुं० पूरे समुद्रस्य 'बभस्ति बिम्बं राजीविनीजीवितनायकस्य ।  
'पयोधिपल्यङ्कृतले शयालो'रुल्लासि चक्रं किमु 'चक्रपाणे: ॥१९॥  
(१) भाति । (२) सूर्यस्य मण्डलम् । (३) समुद्रशश्यामध्यशयनशीलस्य । (४) स्फुरन्चक्रम् ।  
(५) कृष्णस्य ॥१९॥

हील० पूरे० । समुद्रस्य पूरे सूर्यबिम्बं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । समुद्रशायिकृष्णस्य चक्रम् ॥२०॥

हीसुं० 'खण्डेन चण्डद्युतिमण्डलेन च्यमञ्जिष्ठे पूरे 'मकराकरस्य ।  
'सूर्यमहःसाम्यकृतेऽब्धिङ्गम्पासृजा शनैर्निष्पततेव 'भीतिः ॥२०॥  
(१) किंचिन्न्यूनेन । (२) मार्त्तण्डबिम्बेन । (३) ब्रूडितम् । (४) समुद्रजलप्लवे । (५) हीरविजयसूरिप्रतापसाम्यार्थः । (६) समुद्रपतनकृता । (७) भयात् ॥२०॥

हील० सूर्यस्य बिम्बस्याद्वयण्डेऽर्णवे मग्नः, अर्द्धः स्थितः । उत्प्रेक्ष्यते । सूर्यप्रतापं प्राप्तं शम्पां कुर्वता  
शनैर्भयात्पतता ॥२०॥

हीसुं० 'अभ्योधिमध्येऽर्धितबिम्बमभोजिनीवरस्य स्फुरति स्म 'सायम् ।  
'अतादृशीं प्रेक्ष्य 'दशां 'प्रियस्य किमु 'ब्धिमञ्जद्विनलक्षिमभालम् ॥२१॥  
(१) समुद्रमध्ये । (२) अर्द्धभूतमण्डलम् । अर्द्ध समुद्रे मग्नमर्द्धं च बहिर्दृश्यमानाण । (३)  
सूर्यस्य । (४) सम्भ्यायाम् । (५) शोच्याम् । (६) अवस्थाम् । (७) रवे: (८) दुर्ब्रात्समुद्रे  
ब्रूडिवसकमलाललाटमिव ॥२१॥

हील० समुद्रमध्ये रवेर्द्धबिम्बं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । स्वस्वामिनो विश्वशोच्यां दशां चीक्ष्य ब्रूडात्स्वगतात्प्रयाः  
ललाटम् ॥२१॥

हीसुं० भानोर्बभौ 'मण्डलखण्डमव्यौ गन्तुः 'पुरारेमिलितुं 'मुरारिम् ।  
'मृगाङ्कलेखेव 'सरोषचण्डीसालक्तपादाहतशोणितश्रीः ॥२२॥  
(१) बिम्बस्यांशमात्रम् । चतुर्थांश इत्यर्थः । (२) गच्छतीति गन्ता तस्य । (३) शंभोः ।  
(४) कृष्णम् । (५) चन्द्रकलेव । (६) कुपितपार्वत्या अलक्तयुक्तचरणप्रहारेण  
रक्तीभूतशोभः । कुपितां गिरिजामनुनेतुं पदपतित ईश्वरस्य शिरसि प्रहारः प्रदत्तस्तदवसरे  
चरणालक्तरसेन लग्नेन रक्तेवत्यर्थः ॥२२॥

हील० भानोर्बिम्बखण्डं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । कृष्णं मिलितुं यातुकस्येशस्य चरणं पर्ततग्न्य कृदपानत्या  
यावकाक्तचरणहननरक्ता चन्दलेखा ॥२२॥

- हींसु० द्वीपे १परस्मिन्निरोऽस्ति ३कश्चिदस्य ४व्रतीन्द्रस्य वशी सदृक्षः ।  
 ५दिदृक्षयान्तः कुतुकादितीव ६पतिस्त्विषां याति ७परत्र खण्डे ॥२३॥  
 (१) अन्यस्मिन्द्वीपे । (२) अन्यः । (३) कोऽपि जितेन्द्रियः । (४) हीरविजयसूरेस्तुल्यः ।  
 (५) द्रष्टुमिच्छया । (६) भानुः । (७) अन्यस्थाने ॥२३॥
- हील० द्वीपे० । सूर्यः अन्यस्मिन् द्वीपे याति । उत्प्रेक्ष्यते । अन्यस्मिन्द्वीपे श्रीसूरस्तुल्यो मुनीशोऽग्निः नर्वात् द्रष्टुम् ॥२३॥
- हींसु० १अनक्षिलक्ष्यीभवति स्म २भास्वान्निजाऽङ्गनायामैऽनुरागिभावात् ।  
 ३क्वचिन्निगूढं वरुणेन रोषादिवैष पाशेन ४नियन्त्र्य ५मुक्तः ॥२४॥
- इति सूर्यास्तः ।
- (१) अदृश्यीभवति स्म । (२) सूर्यः । (३) स्वपत्न्याम् - पश्चिमदिशि । (४) अनुरक्तत्वेन ।  
 (५) कुत्रापि । (६) बद्ध्वा । (७) रक्षितः ॥२४॥
- हील० अन० । सूर्योऽदृग्गोचरोऽदृश्यो जातः । उत्प्रेक्ष्यते । पश्चिमदिग्मृगलोचनायां रक्तत्वेनाद्वृतको पात्प्रतीचीपतिना क्वचित्कुत्रापि प्रदेशो पाशेन नियम्य बद्ध्वा गुप्तस्थाने मुक्तः स्थापितो रक्षित इन ॥२४॥
- हींसु० १आवासविस्मेरमहीरुहाणां सायं २शिखाः ३शिश्रियरे ४शकुन्ताः ।  
 ५विश्वोपकर्त्ता क्व गतः स॒गोत्रः ६खगस्त॑दीक्षार्थमिवा॒स्थुरु॑०च्चैः ॥२५॥  
 (१) आवासार्थं विकसिततरूपाम् । (२) शाखाः । (३) पश्चिणः । (४) श्रिताः । (५) विश्वयोर्भून् [ भ ]सोरालोकनकारकत्वेनोपकर्त्ता । (६) स्वजनः । (७) खगत्वेन । (८) तस्य खगस्य भानोर्वीक्षणार्थम् । (९) स्थिताः । (१०) उच्चैस्तरुशिखरेषु ॥२५॥
- हील० आवा० । वयसः स्वनीडवदृक्षशिखिरणि भजन्ते स्म । विश्वोपकारी खगः पक्षी सूर्यो वा क्व गत इति विलोकनार्थं उच्चैरास्थुः ॥२५॥
- हींसु० १मरन्दनिस्पन्दितमालतालीः सायं स्म शीलन्ति २कलापिमालाः ।  
 ३प्रावृट्पयोदस्य धियेव मैत्र्याऽदुपेयुषः<sup>1</sup> ४स्वं मिलितुं ५नभस्तः ॥२६॥  
 (१) मकरन्दरसकलिततापिच्छाजतालीः । (२) मयूरगणाः । (३) वार्षिकपेघबुद्ध्या ।  
 (४) प्राप्तवतः । (५) स्वं पेघम् (६) आकाशात् ॥२६॥
- हील० तमालास्तालास्तान् मन्दारमालाः श्रयन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । गगनात्क्षमायां मिलितुमागतरय मेघस्य बुद्ध्या ॥★२६॥
- हींसु० १विकालवेलामनु २सूत्रकण्ठा ३अनीनदन्त्री४डसनीडभाजः ।  
 दृष्ट्वा ५जगच्चक्षुरनिष्टमेते ६पठन्ति किं शान्तिकमन्वपाठान् ॥२७॥

1. ०षोऽभ्यमिलितुं क्षमायाम् । हींसु० ।

( १ ) सन्ध्यामनुलक्ष्यीकृत्य । ( २ ) शुकाः । ( ३ ) शब्दायन्ते स्म । ( ४ ) कुलाय समोपस्थाः ।  
 ( ५ ) जगतशक्षुरिव । दर्शकत्वात्सर्वमार्गाणां चक्षुः सूर्यस्तस्यासालक्षण्यापापदं दृष्ट्वा  
 शान्तिकमन्त्रपाठान् । ( ६ ) उच्चरन्ति ॥२७॥

हील० सन्ध्यासमयं अनुदृष्ट्वा सूत्रकण्ठा द्विजाः शुकाश्च सूर्यस्यापदं तारणार्थं शान्तिकमन्त्रपाठान् ॥२७॥

हीसुं० १वियन्मणीवल्लभविप्रयुक्तां पाथोजिनीं ३मुद्रितवक्त्रकोशाम् ।  
 १पौ३ध्यार्पणप्रीतहृदस्तैदानीमालापयन्तीव ४रवै॒द्विरफः ॥२८॥

( १ ) रविणेव कान्तेन वियोगिनीम् । ( २ ) पिहितवदनमुकुलाम् । ( ३ ) मकरन्ददानेन हृष्मनमः ।  
 ( ४ ) सन्ध्यायाम् । ( ५ ) शब्दैः । ( ६ ) भ्रमराः ॥

हील० सूर्याद्वियुक्तां दुःखार्ता कमलिनीं भ्रमरा आरवैरश्चासयन्तीव ॥★२८॥

हीसुं० १सरोजिनीं ३कोशकुचौ॒३निपीड्या॑धरच्छदे॑४पीतरसैः॑५स्ववातात् ।  
 ५मीलन्मुखी॑६कम्पमिषान्निषेदध्यी॑७जहे॑८महेलेव॑९युवद्विरेफैः ॥२९॥

( १ ) कमलिनी । ( २ ) मुकुलावेव स्तनौ । ( ३ ) पीडयित्वा । ( ४ ) अधस्तनगपत्रे ओष्ठे च ।  
 "स्वमाह सन्ध्यामधरोष्ठलेखा" इति नैषधे । अधस्तनोष्ठ इति तद्वच्चिः । ( ५ ) आस्वादितामकरन्दः ।  
 ( ६ ) निजपक्षपवनात् । ( ७ ) सङ्कुचन्मुखकमला । ( ८ ) पुनः कम्पकपटाचिवारयन्ता । ( ९ )  
 त्यक्ता । ( १० ) स्त्रीव । ( ११ ) तरुणभूङ्गैः ॥२९॥

हील० सरो० । कमलिन्याः कुचसदूशौ कोशौ निपीड्याधःपत्रे ओष्ठदले वा पीतरसै॑५युवद्विरेफै॑६निगपथपवनायः  
 कम्पस्तद्भान्निषेधनशीला कमलिनी त्यक्ता । यथा युवती निरिखिनं कृल्या त्यजते ॥२९॥

हीसुं० २१मृगीदृशाम॑ञ्जनमञ्जुलाभिर्विलोचनश्रीभिरिवाभिभूता ।  
 २२व्रीडेन॑३नीडदुमकोटरान्तः प्रयान्ति॑४सन्ध्यामनु खञ्जरीटाः ॥३०॥

( १ ) स्त्रीणाम् । ( २ ) कज्जलकान्ताभिः । ( ३ ) नेत्रलक्ष्मीभिः । ( ४ ) लज्जया । ( ५ )  
 कुलायदुमनिष्कुहमध्ये । ( ६ ) दिवसावसानमनुलक्ष्यीकृत्य ॥३०॥

हील० खञ्जरीटाः सन्ध्यां दृष्ट्वा वृक्षकोटे प्रविष्टः । उत्प्रेक्ष्यते । मृगीदृशां निरीगमयना इन ॥३१॥

हीसुं० २३विश्वं॑४विशन्ती॑५द्विषती॑६मुषां स्वा॑७मन्विष्य तस्याः॑८किममङ्गलाय ।  
 ८रथाङ्गनाम्नां निवहै॑९र्वियुक्तै॑३र्विमुक्तकण्ठं रुरुदे॑३०दिनान्ते ॥३१॥

( १ ) लोकम् । ( २ ) मध्ये समायान्तीम् । ( ३ ) वैरिणीम् । ( ४ ) निशाण । ( ५ ) द्राघ्ना ।  
 ( ६ ) रात्रेशकुनाय । ( ७ ) चक्रवाकनिकरेण । ( ८ ) विरहिभिः । ( ९ ) गाढ़स्वरेण । ( १० )  
 सन्ध्यायाम् ॥३१॥

१. रसार्प० हीसुं० । २. हीलप्रतौ हीसुं० चानयोर्द्वयोः श्लोकयोरेषोऽनुक्रमः ३१-३० ।

- हील० चक्रवाकै रुदनं कृतम् । उत्प्रेक्ष्यते । जगति आगच्छन्तीं रात्रिं दृष्ट्वा तस्याः किममङ्गलाशेषम् ॥३०॥
- हीसुं० **‘दोषामुखेन रद्विषतेव वाद्धौं क्षिप्तं रसमीक्ष्य रस्विपक्षम्’** कर्म ।  
शत्रोर्गोत्रीभवनादिर्वाभ्रभुवोर्मुदाभ्राम्यत घूकलोकैः ॥३१॥
- (१) सन्ध्यया । (२) वैरिणा । (३) दृष्ट्वा । (४) निजरिपुम् । (५) सूर्यम् । (६) नामाभावभवनात् । शत्रोनामोऽप्यभावो जातः सूर्यागमनतः । (७) गगनभूमितलायाः । (८) उलूकनिकरैः । “आलोकतालोकमुलूकलोक” इति नैषधे । तथा “आकाशे मावकाणे तमसि सममिते कोकलोके सशोके” इति नाटकशास्त्रेऽपि पक्षिशब्दानां पुरः रामूहवाची लोकशब्दो दृश्यते ॥३२॥
- हील० दोषामु० । सन्ध्यासमयवैरिणा सूर्य जले क्षिप्तं दृष्ट्वा शत्रुनिर्मूलनाशादुलूकेभ्रान्ताम् ॥३२॥
- हीसुं० **‘कपोतपालीतटसन्निविष्टा रुंकुर्वते कवापि कपोतपोताः ।**  
**‘शोच्यां दशां प्रासमुदीक्ष्य रमित्रमुदीयमानान्मनसीव दुःखात् ॥३३॥**
- (१) विटङ्गप्रदेशस्थिताः । “कपोतपाली विटङ्ग” इति हैम्याम् । (२) हुक्कारं कुर्वन्ति क्रां कुर्वन्ति । “सदा निनादपटले ते पिष्ठलेर” इति सुभाषिते । (३) पारापतबालाः । (४) शोचनार्हाम् । (५) अवस्थाम् । (६) दृष्ट्वा । (७) सूर्य सुहृदं च । (८) प्रकटीभवतः । (९) हृदये ॥३३॥
- हील० विटङ्गप्रान्तदेशस्थाः पारापता हुक्कारं कुर्वते । उत्प्रेक्ष्यते । मित्रं रक्षं सुहृदं वा विराद पातां दृष्ट्वा दुःखात् ॥३३॥
- हीसुं० पिकाश्रुकूजुः **‘सहकारकुञ्जे रत्या रतश्चान्ततया शयालोः ।**  
**‘जगज्जयस्यावसरं जिगीषोः संसूचयन्तीव रतीशभर्तुः ॥३४॥** इति सन्ध्या ।
- (१) कूजन्ति स्म । शब्दायन्ते स्म । (२) माकदकानने । (३) स्मरपत्या । (४) सुतेनोदभूतश्रमत्वेन । (५) शयनशीलस्य । (६) विश्वविजयस्य । (७) प्रस्तावाण । (८) जगतां जयं कर्तुमिच्छोः । (९) स्मरस्य प्रभोः ॥३४॥
- हील० पिकाः शब्दायन्ते स्म । रत्या सह रतकरणेन श्रमात्सुसस्य स्मरस्य जयगामयं नाथयतीय ॥३४॥
- हीसुं० **‘समुल्लासा भ्रपथे इथं सन्ध्यारागो विरागीकृतचक्रचक्रः ।**  
**‘पञ्चेषुणा विश्वजिगीषुणेयं प्रादायि शोणीव नवोपकार्या ॥३५॥**
- (१) प्रकटीबभूव । (२) व्योमाङ्गणे । (३) सन्ध्याभवनानन्तरम् । (४) सन्ध्यायां रक्तिपा । (५) दुःखीकृतचक्रवाकप्रकरः । (६) स्मरेण । (७) जगज्जेतुमिच्छुना । (८) प्रदना । (९) रक्ता । “रचयति रुचिः शोणीमेतां कुमारितरारवै” रिति नैषधे । (१०) नवीनपटकटी ॥३५॥

1. इति सन्ध्यासमयवर्णनाधिकारे सर्वविहगविरुतादिवर्णनम् हील० ।

- |        |   |
|--------|---|
| हील०   | विरहव्याकुलीकृतचक्रौघः सन्ध्यारागो जातः । उत्प्रेक्ष्यते । स्मरेण रक्ता नवपटकुटी दत्ता ॥३५॥   |
| हीसुं० | ॑नभोद्गणे ॒सान्दितसान्ध्यरागैर्बभे॑उम्बुधि॑शीलति॑हेलिबिम्बे ।<br>॒भर्तुर्विं॑धोरागमने॑प्रणीतै॒रात्रिस्त्रिया॒कुङ्कुमहस्तकैः॑किम् ॥३६॥   |
|        | ( १ ) गगनमण्डले । ( २ ) निबिडीभूतसन्ध्यासम्बन्धिरागै रक्तिमभिः । ( ३ ) सूर्यमण्डले ।<br>( ४ ) समुद्रम् । ( ५ ) श्रयति । ( ६ ) कान्तस्य । ( ७ ) चन्द्रस्य । ( ८ ) कृतैः । ( ९ ) धुसृत<br>इव हस्तबिम्बैः ॥३६॥   |
| हील०   | रविमण्डले॑र्णवं गते सायंतनरागैः शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । स्वस्वामिन आगमे रात्रा कुङ्कुमहस्तबिम्बैः<br>॥३६॥  |
| हीसुं० | ॑मज्जत्ककुप्कुञ्जरबिन्दुवृन्दारुणीभवद्योमसरित्तरङ्गैः ।<br>॒अभ्रे॑उरुणाम्भोजरजोविमिश्रैरद्भ्रसन्ध्याभ्रनिभात्र॑सस्ते ॥३७॥   |
|        | ( १ ) जलक्रीडां कुर्वतां दिग्गजानां बिन्दुवृन्दैर्मदकणनिकरैः । पञ्चम्यां हि दशायां करीन्द्राणां<br>कपोलेषु रक्ता बिन्दवो निर्गच्छन्तीति शास्त्रोक्तेस्तथा- “भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणा” इति<br>कुमारसम्भवे । तै रक्तीभवद्गगनगङ्गातरङ्गैः । ( २ ) व्योम्नि । ( ३ ) कोकनदपरागैः करम्बितैः ।<br>( ४ ) प्रसृतम् ॥३७॥ |
| हील०   | भग्नदिग्गजमदै रक्तैः स्वर्गनदीतरङ्गैः सन्ध्यारागमिषादगगने प्रसृतम् ॥३७॥   |
| हीसुं० | ॑आगामुकं॑कामुकम॑क्षिलक्ष्यं॑प्रणीय॑राजानम॑नन्तलक्ष्म्या ।<br>॒अङ्गे॑उङ्गरागो॑धुसृष्टैः॑प्रणीतैः॑०सान्ध्योल्लसल्लोहिता( तिमा )किमेषः ॥३८॥  |
|        | ( १ ) आगमनशीलम् । ( २ ) कामयितारमभिलाषिणम् । ( ३ ) दृग्गोचरम् । ( ४ ) कृत्वा ।<br>( ५ ) चन्द्रम् नृपं च । ( ६ ) गगनश्रिया । ( ७ ) वपुषि । ( ८ ) विलेपनम् । ( ९ ) कृतः ।<br>( १० ) सन्ध्याभवस्फुरदक्तिमा ।   |
| हील०   | आगा०। गगनलक्ष्म्या आगन्तुकं पर्ति चन्द्रं दृष्ट्वा सन्ध्यारागमिषादङ्गे रक्तचन्द्रनैर्विलेपनं कृतमिव<br>॥३८॥   |
| हीसुं० | ॑निशानने॑श्रीसुतकान्तमत्तैरत्युत्सवायोत्सुकभावभागिभः ।<br>॒दिग्वारसारङ्गविलोचनाभिः सन्ध्यारुणश्रीरुदगारि रागः ॥३९॥  |
|        | ( १ ) सायम् । ( २ ) स्मरमदोद्घतैः । ( ३ ) सुरतक्रीडोत्सुकाशयैः । ( ४ ) दिग्ङ्गनाभिः । ( ५ )<br>उद्गीर्णः ॥३९॥   |
| हील०   | सन्ध्यासमये कामेन मत्तैर्दिग्नायकैः सार्थं रते: सुखस्योत्सवायोत्सुकाभिर्दिग्ङ्गनाभिः सन्ध्यारुणत्वमेव<br>राग उद्गीर्णः ॥३९॥   |

- हीसुं० १स्वर्योवतांहिप्रतिकर्मसज्जप्रसाधिका ३पाणिपयोरुहेभ्यः ।  
 ३निपातुकालक्तकपङ्कपद्मित्तः ४सन्ध्याभ्र( भ्रि )का व्योम्नि ५बभूवुषीव ॥४०॥  
 ( १ ) स्वर्गयुवतीगणस्य मण्डनकरणप्रवणमण्डनकारिका । ( २ ) करकपलेभ्यः । ( ३ )  
 पतनशीलयावकज्जलमालाभिः । ( ४ ) सान्ध्यरागपटली । ( ५ ) जाता ॥४०॥
- हील० स्वर्गाङ्गनाप्रतिकर्मकारिकाहस्तेभ्यः पतिता लक्तकश्रेणी ॥४०॥
- हीसुं० १अनीदूशी ३व्योममणे३र्दिनश्रीचूडामणे: प्रेक्ष्य दशां ४स्वभर्तुः ।  
 दुःखेन ताम्बूलम्३हायि वक्त्रात्सन्धाभ्रदम्भादिव ४दिग्वधूभिः ॥४१॥  
 ( १ ) निकृष्टामस्तलक्षणाम् । ( २ ) सूर्यस्य । ( ३ ) दिवसलक्ष्म्याः शिखामणिसदृशस्य ।  
 ( ४ ) निजनाथस्य । “दिशो हरिद्विर्हरितामिवेश्वर” इति रघुवंशे । ( ५ ) त्यक्तम् । ( ६ )  
 दिग्ङ्नाभिः ॥४१॥
- हील० स्वभर्तुः सूर्यस्यासम्यगवस्थां दृष्ट्वा दिग्ङ्नाभिस्ताम्बूलं त्यक्तम् ॥४१॥
- हीसुं० पत्यौ॑गवां क्वापि गते॑स्य बन्धून्यद्वान्॑थाङ्गा॑निपुवत्प्रा॑दोषः ।  
 ५विलशनाति ॑कोपात्किमतो ७दिगीशैः सन्ध्याभ्रदम्भाद॑रुणीवभूवे ॥४२॥  
 इति सन्ध्यारागः ॥
- ( १ ) सूर्ये भूपे च । ( २ ) अस्य-गोपते: । ( ३ ) चक्रवाकान् । ( ४ ) शत्रुरिव । ( ५ )  
 यामिनीमुखम् । ( ६ ) पीडयन्ति । ( ७ ) दिवपतिभिः । ( ८ ) रक्तीभूतम् । ( ९ ) क्रोधात्  
 ॥४२॥
- हील० भूस्वामिनि किरणस्वामिनि वा गते तरणिभ्रातृन् कमलान् चक्रवाकान् सन्ध्या सुखरहितान् करेति ।  
 अतो दिग्नायकैः कोपाद्रक्तीभूतम् ॥४२॥
- हीसुं० १अभ्रे॑८मनाक्स॑न्तमसैः प्रदोषः ४रागान्तरेऽथ प्रकटीवभूवे ।  
 ५प्रवालपुञ्जे॑८स्मयमानकृष्णवल्लीप्ररोहैरिव वार्द्धिमध्ये ॥४३॥  
 ( १ ) आकाशे । ( २ ) किमपि । ( ३ ) अन्धकारैः । ( ४ ) सन्ध्यारागमध्ये । ( ५ ) विद्रुमवृन्दे ।  
 ( ६ ) विकसत्कृष्णलताङ्गुरैः ॥४३॥
- हील० सन्ध्यारागमध्ये॑न्धकारैः प्रकटीभूतम् । यथा समुद्रमध्ये प्रवालपुञ्जे कृष्णवल्लीप्ररोहैरङ्गुरैः प्रकटीभूयते  
 ॥४३॥
- हीसुं० १विभ्राजिसन्ध्याभ्रपरम्पराभिर॑र्लम्भि॑३भूच्छयभरै॑र्विभूतिः ।  
 ५स्मेरारुणाम्भोरुहमण्डलीभिर्भृङ्गैरिवा॑न्तर्मधुपानलीनैः ॥४४॥  
 ( १ ) शोभनशीलसन्ध्यरागाभ्रिकाश्रेणीभिः । ( २ ) प्राप्ता । ( ३ ) अन्धकारनिकरैः ।

(४) शोभा । (५) विकचकोकनदमालाभिः । (६) कोशमध्ये मकरन्दपानार्थं निश्लीभूतैः ॥४४॥

हील० शोभनशीलाभिरभ्रश्रेणिभिरन्धकारैः कृत्वा शोभा प्राप्ता । यथा रक्ताम्भोजपडिक्तभिर्भृङ्गैः शोभाप्सते ॥४४॥

हीसुं० १त्मोगणालिङ्गिनभोङ्गणश्रीः ३सन्ध्याभ्ररागच्छुरिता ३चकासे ।

४वृद्धारकैः ५कुङ्गमगन्धधूलीदवैरिवा६सिच्यत ७शक्रमार्गः ॥४५॥

(१) तमोनिवहाश्लिष्टगगनलक्ष्मीः । (२) सन्ध्याघनरक्तिमा व्याप्ता । "चन्दनच्छुरितं वपु"-  
सिति पाण्डवचरिते । (३) शुशुभे । (४) देवैः । (५) घुसृणमृगनाभिपङ्क्षैः । (६) सित्कः ।  
(७) आकाशम् । "येनामुना बहुविगाढसुरेश्वराध्व" इति नैषधे ॥४५॥

हील० अन्धकारयुक्तं यत्सन्ध्यारागयुक्तं गगनं भाति । देवैः । उत्स्रेक्ष्यते । कुङ्गमकस्तूरिकाभिर्गगनं सिच्यते ॥४५॥

हीसुं० १सुधान्धसामध्वनि ३सान्ध्यरागोल्लासं ३विलुप्य प्रसृतं ४त्मोभिः ।

५मलीमसाः ६स्वावसरं ७प्रपद्य ८परोदयं हन्त कुतः सहन्ते ॥४६॥

१इति सन्ध्यारागः ॥

(१) देवानां मार्गे । नभसीत्यर्थः । (२) सन्ध्यारक्तिमानम् । (३) अपाकृत्य । (४) अन्धकारैः । (५) मलीनाः । (६) स्वसमयम् । (७) प्राप्य । (८) परेषामुन्नतिम् ॥४६॥

हील० गगने सन्ध्यारागमतिक्रम्य ध्वान्तैः प्रसृतम् । नीचाः पापाः प्रस्तावं प्राप्यान्येषामुदयं न सहन्ते ॥४६॥

हीसुं० १पुरारिकंसारिपदप्रसते२रजव्यवीर्यं शशिनं ३निशम्य ।

४ध्वान्तोपथेस्तं५न्निजिघृक्षयेव ६त्मोभिर्भ्रे७बहूवे ॥४७॥

(१) ईश्वरस्य विष्णुपदस्य च प्रसादात् । (२) जेतुमशक्यपराक्रमम् । (३) श्रुत्वा । (४) तस्य शशिनः निग्रहं कर्तुमिच्छ्या । (५) अजव्यवीर्यत्वादूपबाहुल्यं राहुभिः । (६) गगने ।  
(७) बहुभिर्जातिम् ॥४७॥

हील० ईशकृष्णयोः पदमनन्तं तत्सेवया बलवन्तं चन्द्रं श्रुत्वा ध्वान्तमिषानिग्रहकर्तुं ध्वान्तेर्बहुलं जातम् ॥★४७॥

हीसुं० १कवचिज्जं॒गत्साक्षिणमे॑क्ष्य यातं ४जगज्जगज्जीवपिबो॒५जिघत्सुः ।

६स्वीयं०७विभाव्यावसरं१स्मरारिर्भूच्छायकायां॒सृजतीव मायाम् ॥४८॥

(१) कुत्रापि । (२) जगतः साक्षिभूतम् । सर्वकर्मणामित्यर्थः । (३) दृष्ट्वा । (४) विश्वम् । (५) विश्वप्राणहरः । "जीवेऽत्सु(सु)जीवितप्राणा" इति हैम्याम् । "क्षये जगज्जीवपिबं

1. इति सन्ध्यारागमध्यगतमिषावर्णनम् हील० । 2. भिर्भू० हीसु० ।

शिवं वद'निति नैषधे । ( ६ ) खादितुमिच्छुः । ( ७ ) दृष्ट्वा । ( ८ ) शंभुः ( ९ ) तमोमयाम् ॥४८॥

हील० सूर्यं क्वचिद्गतं दृष्ट्वावसरं प्राप्य प्राणहर ईशो जगत्खादितुमिच्छुर्धान्तरूपां मायां करेति ॥४८॥

हीसुं० 'पशोरिवोऽव्वीदिवगोचरस्य ध्वान्तस्य भोः पश्यति( त ) ३मन्दिमानम् ।

निहन्यमानोऽपि मुहुः ४करेण ५चंडद्युता धावति ६रोदसोर्यत् ॥४९॥

( १ ) तिरश्च इव । ( २ ) भूमिनभसीविषयश्वरणस्थानं यस्य । ( ३ ) मन्दिमानं मूढताम् ।

"मन्दिमानमगमच्छनैः शनै"-रिति वस्तुपालकीर्तिकौमुद्याम् । ( ४ ) किरणेन हस्तेन च । ( ५ )

सूर्येण । ( ६ ) द्यावापृथिव्योः ॥४९॥

हील० उच्चनीचस्थाने चरणशीलस्य पशोरिव ध्वान्तस्य मूढतां भोः भूस्पृशः पश्यत । यत्सूर्येण हस्तेन सचा वा हन्यमानोऽपि दिवस्पृथिव्योर्धावति आयाति ॥४९॥

हीसुं० 'अङ्गाऽच्युताया रभसेन बाल्याऽल्लीलां ४सृजन्त्याः ५स्वपितुर्गुभस्तेः ।

जामे६र्यमस्येव पयःप्रवाहैर्भृते ७नभोभूमितले ८तमोभिः ॥५०॥

( १ ) उत्सङ्गात् । ( २ ) पतितायाः । ( ३ ) औत्सुक्येन । ( ४ ) क्रीडाम् । ( ५ ) कुर्वत्याः ।

( ६ ) निजतातस्य । ( ७ ) खेः । ( ८ ) यमुनायाः । ( ९ ) गगनभूमी । ( १० ) अन्धकारः ॥५०॥

हील० तमोभिर्गगनभूतले व्यासे । उत्त्रेक्ष्यते । स्वपितुस्तरणेष्ठो(ः क्रो)डात्पतिताया यमुनायाः प्रवाहैर्व्यसि ॥५०॥

हीसुं० 'रथाङ्गनाम्नां ३दिवसावसाने ४वियोगभाजां सममङ्गनाभिः ।

५स्फुरद्विषादानलधूमलेखा मन्ये ६तमिस्त्रा ७बहुलीबभूवुः ॥५१॥

( १ ) चक्रवाकानाम् । ( २ ) सन्ध्यायाम् । ( ३ ) विरहिणाम् । ( ४ ) प्रकटीभवत्खेदरूपदुःखा-नलधूमावलीव । ( ५ ) अन्धकाराणि । तमिस्त्रशब्दः स्त्रीकलीबलिङ्गे । ( ६ ) प्रचुरा जाता ॥५१॥

हील० अन्धकारा बहुला जाताः । तत्रैवमहं मन्ये-वियुक्तानां चक्रवाकानां दुःखाग्नेर्धूमरेखा ॥५१॥

हीसुं० गते गवां ४स्वामिनि ५नाभ्युदीते ६राजन्यथाराजकवद्विभाव्य ।

७स्वैरप्रचारेण जगत्समग्रमु८पादवद्व९स्युरिवान्धकारः ॥५२॥

( १ ) सूर्यं नृपे च । ( २ ) उद्गते न । ( ३ ) चन्द्रे भूपे च । ( ४ ) अथ पुनरर्थे । ( ५ ) निःस्वामिकवत् । "हाहा महाकष्टमराजक जग"दिति धनपालोक्तिः । ( ६ ) स्वेच्छया संचरणेन । ( ७ ) उपद्रवति स्म । ( ८ ) वैरीव ॥५२॥

हील० भूस्वामिनि खौ वा गते सति पुनर्नवीनपट्ठधे चन्द्रेवानुदिते सत्यराजकं दृष्ट्वा ध्वान्ताशतिर्जगदुपद्रवति स्म ॥५२॥

- हीसु० कियद्विहायः कियती क्षितिर्वा प्रमातुकामस्तमसां समूहः ।  
कुतूहलाक्रान्तमना इतीव द्यावापृथिव्योः प्रसरीसरीति ॥५३॥  
( १ ) किं प्रमाणमस्येति । ( २ ) गगनम् । ( ३ ) प्रमाणीकर्तुमनाः । ( ४ ) कौतुकव्यासचेताः ।  
( ५ ) नभोभूम्योः । ( ६ ) अतिशयेन प्रसरति स्म ॥५३॥
- हील० तमः प्रसरति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । कुतूहलेन द्यावापृथिव्यौ प्रमाणीकर्तुम् ॥५३॥
- हीसु० तेषे तपो 'भूधरगह्वरान्तस्त्यैकाशनाभ्यः 'प्रतिवासरं यत् ।  
'व्योमावनी व्यापकसिद्धिरस्मादलम्भ भूच्छायभरैरिवैष्णा ॥५४॥  
( १ ) तदां( ? ) गिरिगुहासु । ( २ ) मुक्तान्नपानम् । ( ३ ) नित्यम् । ( ४ ) द्यावाभूमी-  
व्यापनरूपफलनिष्पत्तिः । ( ५ ) लब्ध्या ( ६ ) प्रत्यक्षा ॥५४॥
- हील० गिरिगुहान्तर्यत्पस्तसं तस्मात्तपसः फलं भूनभसोर्वापिकसिद्धिरासा ॥५४॥
- हीसु० 'अथोऽददीप्यन्त नभःपदव्यां 'इगज्जगित्युस्त्रविमिश्रताराः ।  
'स्वकान्तमायान्तम्'वेत्य रात्र्या 'पुष्पोपचारो 'व्यरचीव मार्गे ॥५५॥  
( १ ) तमःप्रसारानन्तरम् । ( २ ) उद्दीपिताः । ( ३ ) इगज्जगिति कृद्धिः किरणैः करम्बिताः ।  
"इगज्जगितिकान्तय" इति पाण्डवचरित्रे । ( ४ ) निजपतिम् । ( ५ ) ज्ञात्वा । ( ६ )  
कुसुमप्रकारः । ( ७ ) रचितः ॥५५॥
- हील० दीप्यमानकिरणकरम्बितास्ताराः स्फुरन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । स्वपर्ति चन्द्रमागच्छतं ज्ञात्वा निशा  
कुसुमप्रकारे व्यरचि कृतः ॥५५॥
- हीसु० 'कुर्क्षिभरि 'क्षोणिनभःपदव्योदृ॒साहितं सन्तमसं 'जिघांसोः ।  
ताराः स्वयं राज्ञः 'इहा॑यियासोः 'पताकिनीव प्रसृता 'पुरस्तात् ॥५६॥  
( १ ) भूतमध्यम् । ( २ ) भूगगनमार्गयोः । ( ३ ) मत्तरिपुम् । ( ४ ) हन्तुमिच्छोः । ( ५ ) चन्द्रस्य  
नृपस्य च । ( ६ ) इह गगनमण्डले । ( ७ ) आगन्तुमिच्छोः । ( ८ ) सेना । ( ९ ) अग्रे ॥५६॥
- हील० ध्वान्तं हन्तुं स्वयमागन्तुकस्य चन्द्रस्य पुरस्तात्तारारूपा वाहिनी प्रसरति स्म । यत्र राज्ञोऽभिषेणनाभि-  
लाषसत्र पुरस्त्वरितमनीकं प्रसरतीति रीतिः । किंभूतं ध्वान्तम्? भूगगनयोर्भृतमध्यं, पुनर्जगदाक्रमकारकं  
शत्रुरूपम् ॥५६॥
- हीसु० चिरं 'विनोदैर्दिननायकेनाभिकेन साकं 'सुरवर्त्मलक्ष्म्या ।  
'नक्षत्रलक्षात्क्लिमशेषवक्षः 'श्रमाम्बुभिर्बिन्दुकितं बभूव ॥५७॥  
( १ ) विलासैः । ( २ ) रविणा । ( ३ ) स्वाभिलाषुकेन( ण ) । पतिनीव ( ? ) ( ४ ) गगनश्रिया  
( ५ ) उडुकपटात् । ( ६ ) जलकणकलितं ज्ञातम् । "स्वेदविन्दुकितनासिकाशिखं" इति

1. इत्यन्थकारः । हील० । 2. उमरुत्य० हील० ।

नैषधे ॥५७॥

हील० चिर० रविणा सार्द्धं विनोदैर्गगनश्रियास्तारामिषाद्वक्षः श्रमाम्बुधिर्बिन्दुकलितं जातम् ॥५७॥

हीसु० १आगन्तुकस्योदयशृङ्गशृङ्गस्थानीं तमोद्विइदमनस्य राज्ञः ।

२नभोवितानं किमकारि तारामुक्ताङ्कितं सृष्टिकृतोपरिष्ठात् ॥५८॥

( १ ) आगन्तुमिच्छतः । ( २ ) उदयाचलशिखरसभाम् । ( ३ ) अन्धकाररिपुहन्तुः । ( ४ ) चन्द्रस्य । ( ५ ) गगनचन्द्रोदयः । ( ६ ) ब्रह्मणा । ( ७ ) चन्द्रोपरि ॥५८॥

हील० उदयाद्रिरूपां सभामागन्तुकामस्य तमःसंहारकृतश्चन्द्रस्योपरि धात्रा मुक्ताङ्कितश्चन्द्रोदयो धृतः ॥५८॥

हीसु० १नभोगसारङ्गदृशां रतीशराभस्यवश्यप्रियखेलिनीनाम् ।

२वक्षःस्थहारश्रु( च्यु)तमुक्तिकाभिर्नभःस्थली तारकिता किमासीत् ॥५९॥

( १ ) देववधूनाम् । ( २ ) कामौत्सुक्येन स्वायत्तैः कान्तैः सह क्रीडनशीलानाम् । ( ३ ) हृदयस्थलस्थायुक्तमुक्तिकहारत्रुटितमुक्ताफलैः । ( ४ ) तारायुक्ता ॥५९॥

हील० स्मरेत्कर्षेण वशीभूतैः प्रियैः सह रम्माणानां देवाङ्गनानां हृदयात् त्रुटित्वा पतितैर्मुक्ताफलैर्भस्ताराङ्कितं जातमिव ॥५९॥

हीसु० १स्वर्गदण्डं दधता तमिस्त्रवासो वसानेन वितरशि ।

२कपालमालेव धृता विहायःकपालिना वक्षसि तारताराः ॥६०॥

( १ ) स्वर्गदण्डः । लोके 'पितृपथ' इति प्रसिद्धः । गगनान्तरामार्गं इव दृश्यमानः स एव यष्टिः । ( २ ) अन्धकाररूपं वस्त्रम् । ( ३ ) परिधानेन । ( ४ ) श्यामम् । ( ५ ) नरमस्तकखर्परपड़िक्तः । ( ६ ) आकाशकपालिकेन ॥६०॥

हील० स्वर्गदण्डं दधता पुनः कृष्णं ध्वान्तवसनं दधानेनानन्तरुद्रेण तारमिषात्कपालप्रेणिर्भृता ॥६०॥

हीसु० १तथा तवाप्यस्तु यथा त्रियामे ! निष्कास्यतेऽहं गलहस्तयित्वा ।

२शपन्नितीवा क्षिपद्वक्षलक्षाक्षतान् हर्योग्यभिमन्त्य गच्छन् ॥६१॥

( १ ) तेनैव प्रकारेण-गलहस्तदानादिना । ( २ ) निष्कासनं भवतु । ( ३ ) सम्बोधने रात्रे ! ।

( ४ ) लोकमध्यात् । कथम् ? ते गलहस्तं दत्वा । ( ५ ) शापं ददानः । ( ६ ) क्षिपति स्म ।

( ७ ) नक्षत्रनिभात् । लाजानक्षत्रतण्डुलान् वा । ( ८ ) दिवसयोगी । ( ९ ) मन्त्रयित्वा ॥६१॥

हील० तथा० । चतुर्यामाया अपि त्रियामे इति सम्बोधनं क्षयकृतसूचकम् । यथाहं दिवसस्त्वया निष्कास्ये तथा तवाप्यस्तु इति वासरयोगी तारादम्भादक्षतानक्षिपत् ॥६१॥

हीसु० १प्रस्थातुकामेन तमो जिधांसोर्जयाय पूर्वावनिभृतेन ।

२अक्षेपि राज्ञा दशदिक्षु मन्ये शान्त्यै बलिस्तारकतन्दुलाली ॥६२॥

- ( १ ) चलितुमनसा । ( २ ) अन्थकारम् । ( ३ ) हन्तुमिच्छोः । ( ४ ) उदयाचलस्थितेन । ( ५ ) क्षिसः । ( ६ ) निर्विघ्नकृते । ( ७ ) तारा एव तन्दुलमाला ॥६२॥
- हील० ध्वान्तरूपराहोर्हन्तुमुदयाद्रावागतेन चन्द्रेण तारकरूपे बलिः कृतः ॥६२॥
- हीसुं० 'कान्ते निमग्नेऽम्बुनिधौ 'प्रणश्य दिनश्रियोऽन्नाणतया 'प्रयान्त्याः ।  
'आच्छिद्य 'मुक्ताभरणानि 'तारा 'द्विषत्तये 'वाददिरे रजन्या ॥६३॥
- ( १ ) सूर्ये । ( २ ) दिवसलक्ष्म्याः । ( ३ ) अरक्षकत्वेन । ( ४ ) नष्ट्वा । ( ५ ) गच्छन्त्याः ।  
( ६ ) हठत् गृहीत्वा । ( ७ ) मौक्तिकभूषणानि । ( ८ ) तारास्तपाणि । ( ९ ) शत्रुतया । ( १० ) गृहीतानि ॥६३॥
- हील० श्रीसूर्ये समुद्रे ब्रूडिते सति रात्रा दिनश्रिया मुक्ताभरणानि गृहीतानि ॥६३॥
- हीसुं० 'स्वःकूलिनी ] कूलविलासिनीनां 'प्रदोषविश्लेषिविहंगमीनाम् ।  
विलोचनोदभूतपयः पृष्ठद्विः 'किमम्बरं 'तारकितं पतदभिः ॥६४॥
- ( १ ) गगनसरित्तटे ऋद्धारीशीलानाम् । ( २ ) रात्रिमुखे वियोगे विद्यते यासां तादृशीनां पक्षिणीनाम् । चक्रवाक्नीनामित्यर्थः । "निजपरिदृढं गाढप्रेमा रथाङ्गविहङ्गमी" ति नैषधे ॥ ( ३ ) नयननिः सरद्वाष्पकणैः । ( ४ ) आकाशम् । ( ५ ) तारकलितम् ॥६४॥
- हील० स्वर्गाङ्गास्थानां सन्ध्यया वियुक्तरथाङ्गीनां नेत्रेभ्यः पतद्विः पयोविन्दुभिर्भस्ताराङ्गितम् ॥६४॥
- हीसुं० स्वां 'निष्ठितां प्रेक्ष्य सुधां 'सुधाशैः पुनः 'कृतेऽस्या इव 'मथ्यमानात् ।  
'सुधाम्बुधेव्योम्नि 'समुच्छलद्विरम्भः कणैस्तारभरैः र्बभूवे ॥६५॥<sup>१</sup>इति तारा: ॥
- ( १ ) व्ययिताम् । ( २ ) देवैः । ( ३ ) सुधाया अर्थम् । ( ४ ) विलोडचमानात् । ( ५ ) क्षीरसमुद्रात् । "सुधाभ्योनिधिडिण्डीरपिण्डपाण्डुयशः कुशेशायखण्डमण्डितसकलसंसारसरा" इति चम्पूकथायाम् । ( ६ ) उच्चैरुत्पतद्विः ॥६५॥
- हील० स्वसुधाक्षयं दृष्ट्वा पुनः सुधार्थं मथ्यमानादर्णवात् उद्भौतैरम्भः कणैस्तारैर्वैर्जातम् ॥६५॥
- हीसुं० 'अथोदधे 'चण्डकरे प्रयाते प्राच्या मुखे किञ्चन 'पाण्डमश्रीः ।  
स्मितं 'प्रमोदादिव 'सौम्यराजोदयं 'प्रकृत्यै[ व ] 'दिशां समीक्ष्य ॥६६॥
- ( १ ) तारकप्रकटनानन्तरम् । ( २ ) प्रचण्डदण्डे - नृपे भानौ च । ( ३ ) विशादिमशोभा ।  
( ४ ) हसितम् । ( ५ ) हर्षप्रादुर्भावात् । ( ६ ) सोमतायुक्तस्य राजश्वन्दस्य नृपस्य च उदयम् ।  
( ७ ) प्रजया नगरलोकेन । ( ८ ) पूर्वदिशाम् ॥६६॥
- हील० अथो० । खौ याते प्राच्या मुखे पाण्डुता धृता । उत्प्रेक्ष्यते । चन्द्रं दृष्ट्वा स्मितं कृतम् । यथा प्रजा सौम्यपतिं दृष्ट्वा मोदते ॥६६॥

1. इति तारकोदयः हील० ।

- हीसु० 'संसूज्य रज्यद्वितेन पत्नी॑ हरेर्हैरिता॒ रविभूषणश्रीः ।  
गर्भं वहन्ति॑ मिहिकामयूखं मुखेपुष्टत्या॑ एङ्गुरिमाणमूहे ॥६७॥
- (१) सङ्गं कृत्वा । "निर्वापयिष्यन्निव संसिसृक्षो" रिति नैषधे । सङ्गं कर्तुमिच्छोरिति तद्वृत्तिः । (२) अनुरक्तीभवत्कान्तेन । "रज्यन्नरखस्याङ्गुलिपञ्चकस्ये" ति नैषधे (३) शक्रपत्नी । (४) दिग् पूर्वा । "निजमुखमितः स्मेरं धत्ते हरेर्हिषी हरित्" इति नैषधे । (५) तारा उज्ज्वला मनोज्ञास्ताररूपा वा आभरणानां श्रीर्यस्याः । "प्रथममुपहत्यार्थं तारैरखण्डिततन्दुलै" रिति नैषधे । (६) चन्द्रम् । (७) श्वेतताम् ॥६७॥
- हील० रगिपतिना -इन्द्रेण पतिना वा सह सङ्गं कृत्वा चन्द्रगर्भं वहन्ति गुर्वीणी जाता ॥६७॥
- हीसु० 'आकण्ठमम्भस्सु निमज्य रैकाममन्त्रोऽलिशब्दैः 'कुमुदैरैसाधि ।  
विकाशलक्ष्मीं ददती किमेषा॑ तत्सिद्धिरिन्दुद्युतिराविरासीत् ॥६८॥
- (१) कण्ठमर्यादीकृत्य । (२) अभिलाषदायिमन्त्रः । (३) भ्रमणुज्ञारवैः । (४) साधितः । (५) कैरवैः । (६) चन्द्रचन्द्रिकारूपा तस्य मन्त्रस्य फलनिष्पत्तिर्जाता ॥६८॥
- हील० कुमुदैर्मन्त्रः साधितः । उत्प्रेक्ष्यते । कुमुदानां विकाशं ददती तत्सिद्धिशन्दिका उद्भूता ॥६८॥
- हीसु० 'सान्ददुमोळासिनि पूर्वशैलग्रन्थाङ्गंणे रैचञ्चति चन्दलेखा ।  
रैकिञ्चिंैन्निरीक्ष्या॑ 'हरिदिग्मृगाक्ष्याश्शूडामणिः किं॑ रैचिकुरान्तरस्था ॥६९॥
- (१) सच्छायतरुशालिनि । (२) शोभते । "चकस्ति चञ्चति लसत्यपि शोभते" इति क्रियाकलापे । (३) स्वल्पम् । (४) दृश्या । (५) पूर्वाकान्तायाः । (६) केशपाशमध्यस्थासनः ॥६९॥
- हील० उदयादिदुमान्तश्चन्दलेखा संशोभते । उत्प्रेक्ष्यते । पूर्वस्याक्षिकुरान्तर्वर्त्तिनी चूडामणिः । 'मणिशब्दः पुंसियोः' ॥६९॥
- हीसु० दत्वा॑ धिपत्यं॑ निखिलाचलानां॑ रैस्वदिग्गिरेः॑ रैस्वर्गिरिचक्रिणेव ।  
रैमौलिस्थले राजतपट्टबन्धो॑ विनिर्मितः॑ रैस्फूर्जति॑ रैसामिसोमः ॥७०॥
- (१) राज्यम् । (२) सर्वगिरीणाम् । (३) पूर्वादेः । (४) इन्द्रेण । "जाम्बूनदोऽर्वाधरसार्वभौम" इति नैषधे । (५) शिरसि । (६) दीप्यते । (७) अर्द्धचन्द्रः । "पूर्वं गाधिसुतेन सामिघटिता मुक्ता नु मन्दाकिनी" ति नैषधे । अर्द्धनिर्मितेति तद्वृत्तिः ॥७०॥
- हील० दत्वा०। अर्द्धश्चन्द्रः शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । उदयाद्रेः पर्वताधिपत्यं दत्वेन्द्रेण मौलौ रूप्यपट्टबन्धो॑ निर्मितः ॥७०॥
- हीसु० 'सुरेन्ददिग्भूधरमूर्धिनि बिम्बम॑पूर्णमाभासत्॑ रैशीतभासः ।  
खण्डं शिखायामिव॑ रैसैंहिकेयदंष्ट्रान्तरायन्त्रणतोऽजनिष्ट ॥७१॥

( १ ) उदयाचलशिखरे । ( २ ) किञ्चित्पूनम् । ( ३ ) चन्दस्य । ( ४ ) राहुदंष्ट्रामध्यनिर्गमनतः ॥७१॥

हील० असम्पूर्णश्वन्दः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । राहुणार्द्धकृतः ॥७१॥

हीसुं० 'सम्पूर्णपीयूषमयूखबिम्बं बधौ ततः स्वीयदिगङ्गनायै ।

<sup>३</sup>मरन्दलीनालिपुरन्दरेण १किम् पूर्वते स्म स्मितपुण्डरीकम् ॥७२॥

( १ ) अखण्डचन्द्रमण्डलम् । ( २ ) निजदिग्मृगाक्ष्यै । पूर्वायै । ( ३ ) मकरन्दपानार्थमन्तर्निश्चली-  
भूता भृङ्ग यत्र । ( ४ ) अर्पितम् ॥७२॥

हील० अथ सम्पूर्णः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । इन्द्रेणालिकलितं पुण्डरीकं पूर्वस्याः प्रत्तम् ॥★७२॥

हीसुं० <sup>३</sup>पितामहस्य 'व्रतिराट्चरित्रैश्चिंत्रीयमाणस्य 'विधूतमौले: ।

कमण्डलुश्चान्द इवोऽत्पलाङ्कः 'स्वस्तः 'शयादुऽल्लसति स्म 'सोमः ॥७३॥

( १ ) कवेरपरवर्णनराभस्येन मा ग्रन्थनायको विस्मृतो भूदिति तमेव स्मारयति । हीरविजयसूरि-  
चरितैः ( २ ) विस्मयं दधानस्य । ( ३ ) विधेः । ( ४ ) कम्पितशिरसः । ( ५ ) चन्द्रकान्तमणिमयः  
कमण्डलुः । ( ६ ) कुवलयकलितः । ( ७ ) पतितः । ( ८ ) हस्तात् । ( ९ ) स एव चन्द्रः ।  
( १० ) स्फुरति ॥७३॥

हील० चन्द्रो भाति । उत्प्रेक्ष्यते । श्रीहीरविजयसूरिचरित्रैः कम्पितशिरसो व्रह्माणः करात्पतितः कमलसहितः  
चन्द्रकान्तरत्नघटितः कमण्डलुरिव ॥७३॥

हीसुं० 'पीयूषपूर्णः 'कलधौतक्लृप्तोऽभिषेककुम्भः किमु 'शीत<sup>२</sup>कान्तिः ।

'शृङ्गरयोर्निं 'जगदाधिपत्येऽभिषिञ्चता विश्वकृता 'व्यधायि ॥७४॥

( १ ) अमृतभृतः । ( २ ) रूप्यनिर्मितः । ( ३ ) अभिषेककरणाय कलशः । ( ४ ) चन्द्रः ।  
( ५ ) स्मरम् । ( ६ ) भुवनानां राज्ये । ( ७ ) विधिना । ( ८ ) कृतः ॥७४॥

हील० पीयू०। सङ्कल्पयोनिमाधिपत्ये न्यस्यता विधिना विधुः कुम्भः कृतः ॥★७४॥

हीसुं० 'क्षयात्सुधायाश्चिरकालपानात्तां याचमानाऽनुगृह्य देवान् ।

'सुधारुचिर्विश्वसृजा सुधाया 'अक्षीणकुम्भः किमु 'कल्प्यते स्म ॥७५॥

( १ ) नाशात् । ( २ ) सुधाम् ( ३ ) अनुग्रहं कृत्वा । ( ४ ) चन्द्रः । ( ५ ) धात्रा ।  
( ६ ) अक्षयकलशः । ( ७ ) कृतः ॥७५॥

हील० सुधाक्षयात्पुनः सुधां याचमानान्देवाननुग्रहं कृत्वा ध्रुवेण चन्द्रोऽमृत कुम्भः कृतः ॥७५॥

हीसुं० 'प्रागिदग्मृगाक्ष्या 'प्रणयेन पत्यौ 'समीयुषि 'स्वावसर्थं 'सुरेन्द्रे ।

'उद्बोधितो 'भेत्तुमिवान्धकारं 'निशीथिनीनायकदीप्रदीपः ॥७६॥ <sup>३</sup> इति चन्द्रः॥

1. सम० हीसु० । 2. कोमुदीशः हीसु० । 3. इति चन्द्रोदयः हील० ।

- (१) पूर्वदिक्षान्तया । (२) स्नेहेन । (३) शक्रे । (४) समागते । (५) निजगृहम् । (६) प्रकटीकृतः । (७) रात्रित्वात्तमो निराकर्तुम् । (८) चन्द्र एव दीपनशीलदीपः ॥७६॥
- हील० स्वगृहमागच्छति वज्रिणि प्राचीवध्वा ध्वानं निराकर्तु त्रियामेशरूपे दीपो दीपो विहितः ॥७६॥
- हीसु० १‘पूर्वादिमौलेरथं ३मन्दमन्दं ४प्रचक्रमे गन्तुम्’४चण्डरोचिः ।  
‘निजोदयश्रीनवनृत्तसूत्रधारापरादिं मिलितुं ५किमुत्कः ॥७७॥
- (१) उदयाचल शिखरात् । (२) शनैः शनैः । “गगनमवजगाहे मन्दमन्दं मृगाङ्कः” इति चप्पूकथायाम् । (३) प्रारब्ध[ वान् ] । “प्रचक्रमे वक्तुमनुक्रमज्ञा” इति रघुवंशे । (४) चन्द्रः । (५) निजस्यात्मनः अभ्युदयलक्ष्म्बा नतीनताण्डवस्य कलाचार्यः । यथा प्रातर्वर्णनं-“उदयगिरि-कुरङ्गीशृङ्गकण्डूयनेन स्वपिति सुखमिदानीमन्तरेन्दोः कुरङ्गः ॥” “परिणतरविगर्भव्याकुला पौरहूती, दिगपि घनकपोती हुंकृतैः क्रन्थतीव ॥” इत्युदयनाचार्यकालिदासयोः पदद्वयं पृथक् पृथक् । पश्चिमदिग्गिरिम् । (६) सोत्कण्ठः । चन्द्रस्य तु प्रतिपदद्वितीयायाः पश्चिमायामेवोदयस्तस्मा-दस्ताचलश्नदस्योदयादिः ॥७७॥
- हील० पूर्वां०। चन्द्रश्वलति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । उदयलक्ष्म्यारब्धनाट्यसूचकास्ताचलं मिलितुम् ॥७७॥
- हीसु० १‘स्वर्भाणुभीतेः ३शरणीकृतेन ४प्राचीधवेनाय ५मुपेक्षितः सन् ।  
५त्रस्यन्शाशाङ्कः किमु ६पश्चिमाशापते: ७शरण्यस्य समेत्युपान्तम्’ ॥७८॥
- (१) राहुभयात् । (२) आश्रितेन । (३) शक्रेण । (४) अकृतमपत्वः सन् । (५) रिपोस्त्रासं प्राज्ञवन् । (६) वरुणस्य । (७) शरणागतवत्सलस्य । (८) पार्श्वम् ॥७८॥
- हील० पूर्वशरणं मुक्त्वा पश्चिमापतिं शरणं याति ॥७८॥
- हीसु० १‘प्राचीपयोराशिपयःप्लवान्तर्विलासमाधाय मरालबालः ।  
क्रीडां ३चिकीर्षुः किमु ४पश्चिमाब्धौ ५नभोधवनासौ प्रचचाल चन्द्रः ॥७९॥
- (१) पूर्वसमुदपयःपूरमध्ये क्रीडां कृत्वा । (२) कर्तुमिच्छुः । (३) पश्चिम समुदे । (४) गगनमार्गेण ॥७९॥
- हील० चन्द्रः प्रचचाल । उत्प्रेक्ष्यते । हंसबालः ॥७९॥
- हीसु० १‘सञ्चारि ३निर्दण्डमिवातपत्रं ४विहस्तको वा ५चलदात्मदर्शः ।  
क्रीडातडागः किमु ६जङ्गमो वा स्मरावनीन्दोः ७शशभृद्भासे ॥८०॥’इति सञ्चारः॥
- (१) सञ्चरणशीलम् । (२) दण्डरहितम् । (३) हस्तकेन रहितम् । (४) प्रचलन्दर्पणाः । (५) सञ्चलन् । (६) चन्द्रः ॥८०॥
- हील० चन्द्रो भाति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । स्मरस्य छत्रं वा दर्पणं वा कासारे वेति कविविमर्शः ॥८०॥
- 
1. ०ते । हीमु० । 2. इति नभसि चन्द्रबिम्बसञ्चारः हील० ।

- हीसुं० १भीतेः स्विकाया दिवसस्य लक्ष्मीं विज्ञाय २नष्टामिह ३जीवनाशम् ।  
विद्यो ४वसत्या ५हसितं ६हसन्त्या ७ज्योत्स्ना ८जजूम्भे गगने सुधांशोः ॥८१॥  
( १ ) भयात् । ( २ ) स्वस्य । "मुनेमनोवृत्तिरिव स्विकाया" मिति नैषधे । ( ३ ) ज्ञात्वा ।  
( ४ ) पलायिताम् । ( ५ ) जीवं गृहीत्वा । ( ६ ) निशायाः । ( ७ ) स्मितम् । ( ८ ) हासं  
कुर्वत्याः । ( ९ ) चन्द्रिका । ( १० ) प्रकटिता ॥८१॥
- हील० चन्द्रिका सपुलसति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । रत्निभीतेनष्टं दिनलक्ष्मीं ज्ञात्वा हसन्त्या गत्या हसितमिति  
वर्णं विद्यः ॥८१॥
- हीसुं० अम्बरे १विरुद्धुचे सुधारुचेश्च २न्दचञ्चुरमरीचिसञ्चयः ।  
३दुर्घवारिनिधिरात्मजं विधुं किं ४चिराय मिलितुं ५समीयिवान् ॥८२॥  
( १ ) भाति स्म । ( २ ) कर्पूरशुभ्रकिरणनिकरः । ( ३ ) क्षीरसमुद्रः । ( ४ ) पुत्रम् । ( ५ )  
सागरोत्पन्नत्वात् चिरकालेन मिलितुम् । ( ६ ) समागतः ॥८२॥
- हील० कर्पूरवत्कान्तिप्रकरः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । क्षीरसमुद्रः स्वपुत्रं चन्द्रं मिलितुं समागतः ॥८२॥
- हीसुं० १स्वर्गं गता २क्रतुभुजां ३प्रभवामि तृप्त्यै ४तद्वन्नृणामपि ५धराम६धिगत्य नित्यम् ।  
पीयूषसन्ततिरितीव विचिन्तयन्ती ७ज्योत्स्नातनूरवततार ८तलेऽचलायाः ॥८३॥  
( १ ) देवलोकं गता सती । ( २ ) देवानाम् । ( ३ ) तृप्त्यै समर्थीभवामि । ( ४ ) तेनैव  
प्रकरेण । ( ५ ) पृथिवीम् । ( ६ ) प्राप्य । ( ७ ) नरणामपि तृप्त्यै प्रभवामि । ( ८ )  
चन्द्रिकाकायः । ( ९ ) भूमण्डले ॥८३॥
- हील० अहं सुधा स्वर्गं गता सती क्रतुभुजां देवानां तृप्त्यै जाता, पुनः पृथिवीं प्राप्य नरणां तृसिकागिणी  
स्यामिति चिन्तयन्ती अमृतश्रेणिज्ज्वैत्स्नामिषाङ्गुरातले उत्तरति स्म ॥८३॥
- हीसुं० प्रससार १महीविहायसो २र्मिहिकादीधिति दीधितिव्रजः ।  
युवतेरिव ३शीतदीधितेरु ४पसंव्यानम् ५मेचकद्युति ॥८४॥  
( १ ) द्यावापृथिव्योः । ( २ ) चन्द्रचन्द्रिकानिचयः । ( ३ ) चन्द्रपत्न्या निशायाः । ( ४ )  
परिधानवस्त्रम् । ( ५ ) श्यामम् ॥८४॥
- हील० प्रससार० १द्यावापृथिव्योश्चन्द्रिका प्रसरति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । चन्द्रपत्न्या गत्या: श्रेष्ठं परिधानवस्त्रम्  
॥८४॥
- हीसुं० वारिशाशिरशनाविहायसोः कौमुदीभिरुदरं स्म पूर्यते ।  
अन्धकाररिपुनिर्जयोद्भवत्कीर्तिभिः किमु कुमुद्वतीपते: ॥८५॥  
( १ ) भूमीनभसोः । ( २ ) मध्यम् । ( ३ ) पूर्णीकृतम् । ( ४ ) अन्धकार एव शत्रुस्तस्य  
पराभवनात् अथवा सूर्यस्याभिभवाच्चन्द्रोदये हि भानुरस्तं यातीति प्रकटीभवन्तीभिः

कीर्तिभिः । ( ५ ) चन्द्रस्य ॥८५॥

हील० द्यावापृथिव्योर्मध्यं पूर्यते स्म । उत्प्रेक्ष्यते । चन्द्रकीर्तिभिः ॥८५॥

हीसुं० १भूमीनभोमण्डलमेदुरश्रीज्योत्स्नावपुर्विष्णु॒पदीप्रवाहैः ।

४नक्तंदिनं ५जहुपदप्रसत्तेः ६प्राकाम्यरूपा ७किमवापि ८सिद्धिः ॥८३॥

( १ ) पृथ्वीगगनयोरुपचितशोभा । ( २ ) चन्द्रिकाकाया । ( ३ ) गङ्गाजलैः । ( ४ ) नित्यम् ।

( ५ ) विष्णुपदस्य सेवनात् । ( ६ ) रोदःकन्द्रविस्तरणशीला । बहुरूपा । ( ७ ) प्राप्ता । ( ८ ) फलनिष्पत्तिः ॥८६॥

हील० भूमीनभसोर्मण्डले मेदुर शोभा यस्यास्तादृशी ज्योत्स्ना सैव वपुर्यस्यास्तादृशी या गङ्गा तस्याः प्रवाहैरकाशसेवातः किं बहुरूपकारिणी सिद्धिराप्ता ॥८६॥

हीसुं० १चूर्णैः २पूर्णा किमु मौक्तिकानां ३पीयूषपङ्क्खैः किमु वा विलिमा ।

४श्रीखण्डनीरैः किमुताभिषिक्ता ५ज्योत्स्नाभिरु६वीर्धवलीकृताभात् ॥८७॥

( १ ) क्षोदैः । ( २ ) पूरिता । ( ३ ) अमृतद्रवैः । ( ४ ) चन्दनवारिभिः । ( ५ ) चन्द्रचन्द्रिकाभिः । ( ६ ) भूमी । ( ७ ) बभौ ॥८७॥

हील० चूर्णैः प्र०। एतस्मिन्काव्ये कर्वेर्वितक्त्वात्सुगमम् ॥८७॥

हीसुं० १आप्लाविते किं ३सुरसिन्थुसुभ्रुवः ४स्त्रोतःसहस्रैः परितः ५प्रसूत्वरैः ।

६कर्पूरपारीविलसद्यशोभरैः सूरीशितुर्वा ७विशदीकृते इव ॥८८॥

८विलीयमानैस्तु९हिनावनीभूनीहारचारैर्निभृतं भृते वा ।

प्रपूरिते ३सान्दितचन्द्रचन्द्रातपैर्विभातः स्म ५दिवस्पृथिव्यौ ॥८९॥ युगम् ॥<sup>1</sup>

( १ ) निर्भरं भृते । ( २ ) देवनद्याः । सिन्धोः समुद्रस्य पत्न्य गङ्गाया इत्यर्थः । ( ३ ) प्रवाह-सहस्रैः । ( ४ ) प्रसूमरणशीलैः । ( ५ ) पार्यः । “फडसि” इति प्रसिद्धाः । कर्पूरश्रेण्येव तद्वद्भासमानकीर्तिभिः । ( ६ ) धवलीकृते इव ॥८८॥

( १ ) गलद्धिः । ( २ ) हिमाचलहिमनिवैः । ( ३ ) निबिडीभूतशशिचन्द्रिकाभिः । ( ४ ) नभोभूमी ॥८९॥

हील० आप्ला०। भूमीपृथिव्यौ भातः स्म । उत्प्रेक्ष्यते । गाङ्गैषैव्यसि । पुनः सूरीन्द्रयशोभिर्विमलीकृते । पुनर्हिमाद्रितुषारैर्भृते इव चन्द्रचन्द्रिकाभिर्व्यासयोर्भूमी(नैभः)पृथिव्योरित्येवं विद्वज्जनानां मतिविकल्पादुपमाप्रादुर्भावः सम्भवः ॥८८-८९॥

हीसुं० गङ्गावज्जल॒॑जन्मबन्धुतनया॒॑स्वःकुम्भवत्कुञ्जरो  
नीरं क्षीरवदु॒त्पलं॒॑कुमुदवत्का॒॑दंबवद्वा॒॑यसः ।

1. इति चन्द्रचन्द्रिकाप्रचारः हील० ।

वल्ली 'मौक्तिकहारवन्मरकतश्रेणीशशाङ्काशमव -

'लक्ष्मी काञ्चिदप्ती० दधुः ११सितरुचौ चन्द्रातपं १२चिन्वति ॥१०॥

( १ ) पद्मबन्धुः सूर्यस्तस्य पुत्री यमुना । ( २ ) ऐरावणः । ( ३ ) नीलकमलम् । ( ४ ) श्वेतकमलवत् । ( ५ ) हंस इव । ( ६ ) काकः । ( ७ ) नीलरत्नमाला । ( ८ ) चन्द्रकान्त इव । ( ९ ) शोभाम् । ( १० ) पूर्वोक्ता गङ्गाप्रभृतयष्णः पदार्थः । ( ११ ) चन्द्रे । ( १२ ) विस्तारयति सति ॥१०॥

हील० गङ्गाव०। चन्द्रिकायां सत्याममी पदार्थः पूर्णा शोभां दधुः । यतो यमी गङ्गा जाता ऐरावणवत् दुधवत् नीलोत्पलम् । शेषं सुबोधम् ॥१०॥

हीसुं० 'स्मेरत्कैरवशङ्क्या ३कुवलयान्युत्तंसयत्यङ्गना

भृङ्गान्मालिकबालिकाः ४सुमधिया गृह्णन्ति केलीवने ।

'मुक्ताभ्रान्तिभृतः ५किरातवनिताश्शिन्वन्ति गुञ्जाव्रजां -

६शश्चच्यन्दमसो भ्रमं ७वितनुते नो कस्य चन्द्रातपः ॥११॥

( १ ) विहसत् । "स्मेरदभोरुहारामपवमानमिवानिल" इति पाण्डवचरित्रे स्मेरदिति विकासनार्थे दृश्यते । ( २ ) नीलकमलानि । ( ३ ) अवतंसानि कुर्वन्ति । अवतंसकरणं शिरसि श्रवसि च शास्त्रे दृश्यते । "आपीडशेखरोत्तंसावतंसाः शिरसः स्नजि" इति हैम्याम् । तथा - "विदर्भ-सुभूत्रवणावतंसिके" ति नैषधे । ( ४ ) पुष्पभ्रान्त्या । ( ५ ) मौक्तिकभ्रमधारिण्यः । ( ६ ) भिन्नाङ्गनाः । ( ७ ) दीप्यमानचन्द्रस्य । ( ८ ) करोति ॥११॥

हील० चन्द्रचन्द्रिका कस्य भ्रमं नो कुरुते ?। श्वेतकजधिया नीलोत्पलानि अवतंसयन्ति । सुमधिया पुष्पबुद्ध्या ॥११॥

हीसुं० ज्ञायन्ते १वसुधासुधाकरगृहा गज्जरावैः २कुम्भिनां

दुग्धाब्धिः ३प्रतिनादमेदुरमिलत्कल्लोलकोलाहलैः ।

४शैलाः ५कन्दरमन्दिराङ्कविलुठत्कण्ठीरवक्ष्वेडितै -

जर्ति श्वेतकरोदये ६सुरसरिद्विण्डीरपिण्डोपमे ॥१२॥

( १ ) वसुधा पृथ्वी तस्याः सुधाकराश्चन्द्रा नृपा इत्यर्थं तेषां सौधाः । "इदं तमुर्वीतिल-शीतलद्युति" मिति नैषधे । ( २ ) हस्तिनाम् । ( ३ ) क्षीरसमुद्रः । ( ४ ) प्रतिशब्देन पुष्टास्तथा सन्निहितीभवन्तः तरङ्गध्वनयस्तैः । ( ५ ) पर्वताः । ( ६ ) गुहा गृहास्तेषामुत्सङ्घे विलुठतां पार्श्वे परिवर्त्तनां कुर्वतां सिंहानां नादैः । ( ७ ) चन्द्रोदये । ( ८ ) गङ्गाफेनपटलधवलैः ॥१२॥

हील० ज्ञाय० । गगनगङ्गाफेनसदृशे चन्द्रोदये जाते सति रुद्धगृहा हस्तिर्गर्जितैर्ज्ञायन्ते, क्षीरार्णवाः कल्लोलशब्दे-

ज्ञायन्ते, गुहान्तर्वर्त्तिसिंहसिंहनादैः शेला ज्ञायन्ते ॥\*१२॥

- हीसु० १दुग्धाम्भोनिधिनिर्जरा इव नराः सर्वेऽपि संजज्ञिरे  
२स्वःसिन्धोरधिदेवता इव बभुस्त्रस्यत्कुरङ्गीदृशः ।  
३स्फारस्फाटिक'कोटिनिर्मिततलेवासीत्पुनर्मेदिनी  
४क्षुभ्यत्क्षीरसमुद्रसान्दविभवे जाते शशाङ्कोदये ॥१३॥

( १ ) क्षीरसमुद्राधिष्ठायका इव । ( २ ) गङ्गादेव्या इव । ( ३ ) स्त्रियः । ( ४ ) प्रकृष्टस्फटिक-  
रलनिकरघटितेव । ( ५ ) क्षोभं प्राप्नुवतः क्षीरसमुद्रस्येव निबिडा शोभा यस्य ॥१३॥

- हील० क्षीरर्णवसदूरे चन्द्रोदये जाते सति पञ्चजनाः स्वस्तिकदेवा इव शुभ्रा जाताः । पुनः स्त्रियो गङ्गादेव्य  
इव शुभ्रा जाताः । पुनरुत्प्रेक्ष्यते । दीप्यमानैः स्फटिकरत्नैर्धटिता रचिता इव मेदिनी वसुन्धरा जाता  
॥१३॥

- हीसु० १विजयिन इव राज्ञः ३श्वेतभासो ४विभाव्या-  
भ्युदयम'खिलकाष्ठामध्यराजत्करस्य ।  
५विहितसकलसन्ध्यावश्यको ६ध्यानलीला-  
कमलकलमरालः स स्म ७भूत्सूरिराजः ॥१४॥

इति पण्डितदेवविमलविरचिते हीरसौभाग्यनामिनि महाकाव्ये वर्षा-शरत्-सूर्यास्त-सन्ध्याराग-तिमिर-  
तारक-चन्द्र-चन्द्रिकादिवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ग्रंथाग्रं १३७ अक्षर १८॥

( १ ) सर्वत्र विजयवतः । ( २ ) नृपस्य । ( ३ ) चन्द्रस्य । ( ४ ) दृष्ट्वा । ( ५ ) समग्रदिशो  
मध्ये दीप्यमाना राजादेयांशाः किरणाश्च यस्य । ( ६ ) निर्मितसमस्तप्रतिक्रमणादिविधिः ।  
( ७ ) प्रणिधानरूपक्रीडापद्मे राजहंस इव । ( ८ ) जङ्गे ॥१४॥

इति सप्तमः सर्गः ॥७॥ ग्रंथाग्रं १७५॥

- हील० विजयि० । चन्द्रोदयं दृष्ट्वावश्यकं कृत्वा ध्याने स्तिमितीबधूव ॥१४॥

हील०→ यं प्रासूत शिवाङ्गसाधुमधवा सौभाग्यदेवी पुनः

पुत्रं कोविदसिंहसी( सिं )हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।  
तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक्-  
सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गोऽभवत्सप्तमः ॥१५॥

इति पं. सीहविमलगणिशिष्यपण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनामिनि महाकाव्ये  
वर्षा-शरत्-सूर्यास्त-सन्ध्याराग-तिमिर-तारक-चन्द्र-चन्द्रिकादिवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ॥१५॥

1. ०टिकरलकोटिघटितेवा० हीमु० । ✖ एतदन्तर्गतः पाठे हीसुंप्रतो नास्ति ।

ऐं नमः ॥  
अथ अष्टमः सर्गः ॥

- हीसुं० १अथो निशीथे द्विजराजराजज्योतिःप्रथाभिर्मथितान्थकारे ।  
२निवातनालीक इव व्रतीन्दुर्ध्यानं दधानः स्तिमितीबभूव ॥१॥  
( १ ) अथो ध्याने मनसो निश्वलीकरणानन्तरम् । ( २ ) मध्यरात्रे । ( ३ ) चन्द्र स्फुरक्तिरणविस्तारे-  
दलितध्वाने । ( ४ ) निर्वातपद्म इव । ( ५ ) सूरिचन्द्रः । ( ६ ) निश्वलो जातः ॥१॥
- हील० चन्द्रद्युता दीप्यमानेऽथ निशीथे त्वर्धयत्रौ निष्कम्प[प]द्यवदध्याननिश्वलो बभूव ॥१॥
- हीसुं० १पर्यङ्कबन्धः स विभोर्वैतश्रीविलासपर्यङ्क इवाबभासे ।  
२कथं भरोऽमुष्य मया विषह्यो हृदेति यस्मिन्समैशेत शेषः ॥२॥  
( १ ) पद्मासनरचना । ( २ ) संयमलक्ष्मीक्रीडापल्यङ्क इव । ( ३ ) केन प्रकारेण । ( ४ ) भारः ।  
( ५ ) सूरीन्द्रपर्यङ्कबन्धस्य । ( ६ ) सोहुं शक्यः । ( ७ ) मनसा । ( ८ ) संशयं कृतवान् ।  
“ध्यानभाजां योगीन्द्राणां ध्यानसमये पर्यङ्कबन्धस्यातिशायी भारो भवती” ति कविसमयः ।  
तथा- “ततो भुजङ्गाधिपतेः फणाग्रैरथः कथश्चिद्दृतभूमिभागः । शनैः कृतप्राणविमुक्तिरीशः  
पर्यङ्कबन्धं निबिडं बिभेद” । इति कुमारसम्भवे ॥२॥
- हील० पर्यङ्क० । महाव्रतलक्ष्मीक्रीडापल्यङ्क इव सूरीन्द्रस्य स पर्यङ्कबन्धः शुशुभे । स कः ?। मया भारः  
कथं सहेति शेषनागो यं दृष्ट्वा संशयं कृतवान् ॥२॥
- हीसुं० १भुजान्तरासन्नशायारविन्दे विभोश्वकासे विशदाक्षमाला ।  
२हृद्ध्यानदुग्धाम्बुनिधिप्रतीरं प्रपेदुषी किं कलहंस॑माला ॥३॥  
( १ ) वक्षसः समीपस्थायिनि करकमले । ( २ ) ध्वलजपमाला । ( ३ ) मनसि यो ध्यानस्तपः  
क्षीरसमुद्रस्तस्य तटम् । ( ४ ) प्राप्तवती ॥३॥
- हील० भुजा० । दक्षिणकरे नवकरवाली शुशुभे । शेषं सुगमम् ॥★३॥
- हीसुं० श्रीसूरिमन्नं विजने व्रतीन्द्रो जपन्स गोत्रत्रिदशीमिव स्वाम् ।  
२दध्यौ हृदा श्रीजिनशासनस्याधिष्ठायिकां निर्जरनीरजाक्षीम् ॥४॥  
( १ ) एकान्ते । ( २ ) ध्यायन् । ( ३ ) कुलदेवतामिव । ( ४ ) ध्यायति स्म । ( ५ ) मनसा ।  
( ६ ) देवीम् । ( ७ ) जिनशासनाधिष्ठात्रीम् ॥४॥
- हील० स्वकुलदेवतामिव शासनदेवतां दध्यौ ॥४॥
- हीसुं० १ध्यानानुभावेन ततो निशीथे सूरीशितुः शासनदेवतायाः ।  
२केतु निकेतस्य रथेन( ण ) वायोरिव क्षणादासनमाचकम्पे ॥५॥

1. सपाइक्तः हीमु० । 2. इति सोर्ध्यानविधानम् हील० ।

( १ ) प्रणिधानप्रभावेन । ( २ ) मध्यरात्रे । ( ३ ) ध्वजः । ( ४ ) गृहस्य । ( ५ ) वेगेन । ( ६ ) वातस्य । ( ७ ) कम्पते स्म ॥५॥

हील० ध्यानानुभावादध्वजवच्छासनदेव्या आसनं कम्पितम् ॥५॥

हीसु० १स्वविष्टैरुं कम्पम् वेक्ष्य २विम्बमिवो त्तरङ्गाम्बुधिविम्बितेन्दोः ।  
३शोणारविन्दायितमी०क्षणेन ४रोषारुणेन ५त्रिदशाङ्गनायाः ॥६॥

( १ ) निजासनम् । ( २ ) कम्पनशीलम् । ( ३ ) दृष्ट्वा । ( ४ ) मण्डलम् । ( ५ ) प्रबलकल्पेलकलितसमुदजले प्रतिबिम्बितचन्द्रस्य । ( ६ ) कोकनदमिवाचरितम् । ( ७ ) नेत्रेण । ( ८ ) कोपरक्तेन । ( ९ ) जिनशासनाधिष्ठायिकायाः ॥६॥

हील० मकरकरक्लोलविम्बितेन्दुविम्बवत्कम्प्रं स्वपीठं समीक्ष्य तस्याम्बकाभ्यामरुणीभूतम् ॥६॥

हीसु० १ध्यानस्थितं २शासनं निर्जरी सा ३निपीय तं ४ज्ञानदृशा ५वशीन्द्रम् ।  
मुदं दधारा०मृतकुण्डमध्यप्रणीतलीलाप्लवनेव ७चित्ते ॥७॥

( १ ) प्रणिधानोपविष्टम् । ( २ ) शासनदेवता । ( ३ ) सादरमवलोक्य । ( ४ ) अवधिज्ञानरूपं नयनेन । ( ५ ) सूरीन्द्रम् । ( ६ ) सुधाकुण्डस्य मध्ये कृतं ऋडया स्नानं यथा । ( ७ ) मनसि ॥७॥

हील० अवधिना तं सूरीन्द्रं दृष्ट्वामृतस्नातेव सा मुमुदे ॥★७॥

हीसु० १अथाविरासीद्वैशिशीतकान्तेः पुरः २स्फुरज्जैनमताधिदेवी ।  
३प्रसादनाभिर्द्यु०निशं ४शमश्रीरिवेयम०ङ्गीकृतकाययष्टिः ॥८॥

( १ ) ध्यानस्थितसूरीन्द्रदर्शनानन्तरम् । ( २ ) सूरीन्द्रस्य । ( ३ ) जिनशासनाधिष्ठायिका । ( ४ ) आराधनाभिः । “प्रसादनां दानशात्रवाणा” मिति नैषधे । ( ५ ) निरन्तरम् । ( ६ ) उपशमलक्ष्मीः । ( ७ ) मूर्त्तिमती ॥८॥

हील० अथेत्यनन्तरं सूरः पुरः शासनदेवी आगता । उत्प्रेक्ष्यते । सेवातः प्रसन्नीकृता । अतो मूर्त्तिमती उपशमलक्ष्मीः ॥★८॥

हीसु० १चान्द्री द्वितीयेव २कलां जनायां ३प्राप्तां ४सुरीं दर्शयितुं ५स्वमस्मै० ।  
निदां दृशा किञ्चन ६चुम्बतापि ७प्रेक्ष्या८मुना९०जायत ११जाग्रतेव ॥९॥

( १ ) चन्द्रसम्बन्धिनीम् । ( २ ) लेखाम् । ( ३ ) आगताम् । ( ४ ) शासनदेवीम् । ( ५ ) आत्मानम् । ( ६ ) सूरीन्द्राय । ( ७ ) धारयतापि । ( ८ ) दृष्ट्वा । ( ९ ) सूरीन्द्रेण । ( १० ) जातम् । ( ११ ) जाग्रदवस्थेनेव ॥९॥

- हील० यथा समग्रलोकाय स्वरूपदर्शनायेन्द्रोर्मण्डलमायाति तद्वत्स्वस्मै दर्शयितुमागतां तां दृष्ट्वा निद्रायिर-  
नेत्रेणाप्यमुना जाग्रतेव जातम् ॥१॥
- हीसुं० प्रवाललक्ष्मीरिव कामितद्रोस्तद्व्यान सिद्धेः किमुताग्रदूती ।  
प्रत्यक्षवत्प्रादुरभूत्पुरोऽस्य स्वप्नेऽपि सा सार्वमताधिदेवी ॥१०॥  
( १ ) प्रवालशोभा । ( २ ) वाञ्छितवृक्षस्य । ( ३ ) प्रथमशासनहारिकेव । ( ४ ) जाग्रदवस्थायां  
प्रकटेव । ( ५ ) प्रकटीभूता । ( ६ ) निद्रायाम् । ( ७ ) जिनशासनदेवता ॥१०॥
- हील० वाञ्छावृक्षस्य पुष्पमिव जिनमतदेवता स्वप्ने आगता ॥१०॥
- हीसुं० सृष्टि १सिसृक्षोः २सुदृशां ३बभूव ४स्वयम्भुवः ५शिल्पगुरुः ३५पुरा यः ।  
६विधाय तां ७बिम्बमिवादसीय८शिक्षाकृते सोऽर्पयति स्म ९तस्मै ॥११॥  
( १ ) कर्तुमिच्छोः । ( २ ) ख्रीणाम् । ( ३ ) विधातुः । ( ४ ) विज्ञानाचार्यः । ( ५ ) पूर्वम् ।  
( ६ ) कृत्वा । ( ७ ) शासनदेवताया मूर्त्तिम् । ( ८ ) शिक्षणाय । ( ९ ) धात्रे ॥११॥
- हील० धातुगुरुमूलरूपं तां कृत्वा तस्मै धात्रे शिक्षाकृतेऽर्पयति स्मेत्युत्रेक्षा ॥११॥
- हीसुं० १महीवियद्वीक्षणकेलिलोलीभवन्मनाः २स्वैरविहारिणीयम् ।  
३जम्बू४नदिन्या ५अधिदेवतेव ६समीयुषी काञ्चनचारिमश्रीः ॥१२॥  
( १ ) भूमिनभोविलोकनऋडया चपलीभवच्चित्ता । ( २ ) स्वेच्छया चारिणी । ( ३ ) जम्बूनद्या ।  
( ४ ) अधिष्ठायिका । ( ५ ) समेता । ( ६ ) स्वर्णवन्मनोज्ञा शोभा यस्याः ॥१२॥
- हील० मही० । यस्या मृज्जाम्बून[द]दम्भात्तस्या जम्बूनद्या अधिष्ठात्री समेतेव ॥★१२॥
- हीसुं० १निर्यत्सुरास्त्राशनिभूषणानि विरेजुरङ्गानि २सुराङ्गनायाः ।  
३स्वस्पर्द्धिनः श्रीभिरिवे४न्द्रचापवज्ञाण्यमीर्भिर्विधृतानि जेतुम् ॥१३॥  
( १ ) निर्गच्छन्ति शक्रधनुषिये येभ्यस्तादृशानि वज्ररत्नाभरणानि येषु । ( २ ) शासन देवतायाः ।  
( ३ ) निजशत्रून् । ( ४ ) इन्द्रधनुर्वज्ञाणीव ॥१३॥
- हील० निः सरन्तीन्द्रधनुं(नू)षि येभ्यस्तादृशानि वज्ररत्नानां भूषणानि येषु तादृशान्यङ्गानि रेजुः । उत्प्रक्ष्यते ।  
अङ्गैर्वज्ञाणि धृतानि ॥१३॥
- हीसुं० १राजीवराजी विजिता यदङ्गै२मृदुश्रिया ३रङ्गदनङ्गरङ्गैः ।  
४तत्तुल्यभावाय तपः सृजन्ती वने वसन्तीव ५कुशोशया६सीत् ॥१४॥  
( १ ) कमलमाला । ( २ ) सुकुमाललक्ष्म्या । ( ३ ) नृत्यं कुर्वतः स्मरस्य नर्तनस्थानैः ।  
( ४ ) तस्या अङ्गानां सदृशतायै । ( ५ ) "वनं कानननीरयो" रित्यनेकार्थः । ( ६ ) दर्भशायिनी ।

1. इति सुरिपुरः शासनदेवतावर्णनारम्भः हील० । 2. पुरा यः हीमु० । 3. ओर्बेभूव हीमु० । 4. हृदिन्या हीमु० ।

( ७ ) ज्ञे ॥४॥

- हील० अनङ्गास्थानभूतैर्यदङ्गैर्जिता रजीविनी तपस्विनीव वने-वने जले वा वसन्ती सती दर्भे शयालुर्जाता ॥४॥
- हीसुं० १अगण्यनैपुण्यमुखान्निर्यन्त्र्य संरक्षितान्प्रेक्ष्य गुणांस्त्रिर्दृश्या ।  
२स्वयन्त्रणोद्भूतभयातिरेकात्तस्याः ३प्रणेशो किमशेषदोषैः ॥१५॥  
( १ ) अतिशायि गणयितुमशक्यं वा दक्षिण्यं तदेवादौ येषाम् । ( २ ) बद्ध्वा । ( ३ ) शासनदेवतया । ( ४ ) निजबन्धनजातभयातिशयात् । ( ५ ) प्रणष्टम् । ( ६ ) समस्तापगुणैः ॥१५॥
- हील० गुणान् बद्ध्वा रक्षितान् दृष्ट्वा स्वबन्धभयादेव्याः सकाशात् दोषैष्किः ( किमितीव प्रणष्टम् ॥१५॥
- हीसुं० १जिनेशितुः शासनदेवतायाः २पादारविन्देऽरुणिमा दिदीपे ।  
३प्रणेमुषीनां ( णां ) ४दिविषद्वधूनां ५सीमन्तसिन्दूरमिवात्र॑ लग्नम् ॥१६॥  
( १ ) महावीरशासनदेव्याः । ( २ ) चरणकमले । ( ३ ) रागः । ( ४ ) प्रणमनशीलानाम् ।  
( ५ ) देवीनाम् । ( ६ ) केशवत्त्वनः शृङ्गारभूषणाम् । ( ७ ) चरणे ॥१६॥
- हील० जिनशासनदेव्याश्वरणकजे पाटलिमा भाति । उत्प्रेक्ष्यते । प्रणतसुरीणां सीमन्तसिन्दूरं लग्नम् ॥१६॥
- हीसुं० १यत्पादपद्मेन पराजितेन २विजृम्भमाणारुणवारिजेन ।  
३शुश्रूषणाया४रुणिमा ५तदङ्के६शङ्के इडौकेऽरुणलक्ष्मिलक्षात् ॥१७॥  
( १ ) शासनदेवताचरणकमलेन । ( २ ) स्मेरत्ताप्रकमलेन । ( ३ ) आराधनाय । सेवनाय ।  
( ४ ) स्वरक्तत्वम् । ( ५ ) चरणोत्सङ्के । ( ६ ) अहमेवं मन्ये । ( ७ ) रक्तकान्तिकपटात् ॥१७॥
- हील० यत्पाद०। अहमेवं मन्ये यद्यच्चरणजितकजेन सेवायै रक्तता मुक्ता ॥१७॥।
- हीसुं० यस्याः १स्फुरत्कान्तिविकाशिताशाः २कामाङ्गुशा३दिद्युतिरे पदाब्जे ।  
४इदंमुखाभ्योजविनिर्जितेन ५राज्ञेवॆरत्नान्युपदीकृतानि ॥१८॥  
( १ ) दीप्यमानदीसिद्योतितदिशः । ( २ ) नखाः । ( ३ ) बभुः । ( ४ ) शासनदेवीवदन-पद्माभिभूतेन । ( ५ ) चन्द्रेण नृपेण च । ( ६ ) तस्य मणीनां सङ्घावात् ढौकनं ढौकितानि ॥१८॥
- हील० तस्या नखा अभुः । उत्प्रेक्ष्यते । पराजितेन चन्द्रेण रत्नानि ढौकितानि ॥१८॥।
- हीसुं० १यदाश्रयीभूय॒किमर्भसूराः राहुं निहन्तुं॓ नखराङ्गभाजः ।  
४प्रणप्रगीर्वाणवधूप्रवेणीच्छायाच्छलाङ्गीकृतचन्द्रहासाः ॥१९॥।

1. इति शासनदेवतासाधारणसर्वाङ्गवर्णनम् हील० । 2. अथ पृथगङ्गवर्णनारम्भः हील० । 3. इति पादतलपाटलिमा हील० ।

( १ ) या देव्येवाश्रयो येषां ते यदाश्रयाः । न यदाश्रया यदाश्रया भूत्वेति । ( २ ) उद्यद्वानवः । ( ३ ) नखा एव काया, तान् भजन्तीति । ( ४ ) प्रणमनशीलसुराङ्गनावेणीप्रतिबिम्बकपटेनाश्रित-खड्गाः सन्ति ॥१९॥

हील० यदा० । नतसुरीवेणि(णी)दम्भात्स्वीकृतखड्गा गहुं हनुमृद्यता नखरूपाञ्चिक(ः किं) बालसूर्याः ॥१९॥

हीसुं० 'इदंपदीभूय 'भवान्तरेऽपि 'लौहित्यलक्षात्कृलितानुरागाम् ।

पद्मद्वयीं प्रेक्ष्य 'नखाङ्गबालारुणा इवैतन्मिलनार्थमींयुः ॥२०॥

( १ ) अस्याः पदौ भूत्वा । ( २ ) अपरस्मिन्जन्मन्यपि । ( ३ ) लौहित्यच्छलात् । ( ४ ) धृतरागाम् । ( ५ ) नखरूपशरीरा उद्यद्वास्कराः । ( ६ ) एतस्याः पद्मद्वयाः अर्थाद्वन्धुत्वेन मिलनार्थम् । ( ७ ) आगताः ॥२०॥

हील० भवान्तरेऽप्येतस्याश्वरणीभूत्वाऽपि स्नेहकुलां कजद्वयीं दृष्ट्वा बालारुणा मिलितुमेताञ्चिक(ः किं)मु ॥२०॥

हीसुं० 'प्रपेदुषीं च्यत्पदतां पयोजद्वयीं विभाव्या र्भकशीतभासः ।

'निजानुरज्यन्मनसं 'प्रणेतुं नखीबभूवुः किमुत्तिरिदश्याः ॥२१॥

( १ ) प्राप्ताम् । ( २ ) शासनदेवीचरणत्वम् । ( ३ ) बालमृगाङ्गाः । "रकामृगाङ्गाः सम्भूय विभान्ति शरणागता" इति पाण्डवचरित्रे । इति कविसमये चन्द्रबाहुल्यम् । ( ४ ) स्वेषु अनुरक्तीभवच्यत्ताम् । "चकास्ति रज्यच्छविरुज्ज्हान" इति नैषधे । ( ५ ) कर्तुम् । ( ६ ) तस्या देव्याः ॥२१॥

हील० यच्चरणरूपां कजद्वयीं प्रेक्ष्य चन्द्राः स्वस्मिन्यगकलितां तां कर्तुम् । उत्प्रेक्ष्यते । नखभूयं गताः ॥२१॥

हीसुं० 'सौन्दर्यपाथःप्लवपादपद्माकरेऽङ्गुलीनालजुषोऽनिमिष्याः ।

\*कामाङ्गुशाः 'शोणसरोजराज्यो 'ज्योतिः<sup>१</sup>परागोपचिता २इवाभुः<sup>२</sup>॥२२॥<sup>३</sup>

( १ ) सुन्दरतैव पयःपूरो यत्र तादृशे चरणरूपे सरसि । पदे आकृतिकमलानां सद्वावात्कमलाकरत्वम् । ( २ ) अङ्गुल्यः पदशाखा एव मृणालानि भजन्ते । ( ३ ) देव्याः । ( ४ ) नखाः । ( ५ ) कोकनदपद्मत्यः । ( ६ ) कान्तिरूपपौष्पव्याप्ताः । ( ७ ) शुशुभिरे ॥२२॥

हील० देव्याः सौन्दर्यमेव पयःपूरो यत्र, तादृशे चरणसरसि अङ्गुलीनालवन्त्यो नखरूपाः कोकनदपद्मत्यः ॥२२॥

1. गतिर्मस्न्दोप० हीमु० । 2. इवाभुः हीमु० दृश्यते । तच्च छन्दोभङ्गकारित्वादयोग्यमाभाति । 3. इति पदनखाः हील० ।

- हीसु० १नखोल्सपत्पल्वशालमानैर्नैग्रामरीनेत्रमिलद्विरेफैः ।  
२शाखाविशेषैः ३पदशाखिनः किं ४तदङ्गुलीभिर्धियते स्म शोभा ॥२३॥  
( १ ) नखा एव विकसन्तः प्रवालास्तैः शोभमानैः । ( २ ) नमनशीलदेवीनेत्रप्रतिबिम्बान्येव  
समागच्छन्मधुकैः । ( ३ ) विशिष्टशाखाभिः । ( ४ ) पादद्वयस्य । ( ५ ) देव्या अङ्गुलीभिः ।  
( ६ ) धियते स्म । “इभूज् धारणपोषणयो”रित्यस्य रूपम् ॥२३॥
- हील० नखो० । तस्या अङ्गुलीभिः शोभा धृता । उत्तेक्ष्यते । नखपल्वकलित्तर्तसुरोनेत्रालियुक्तेश्वरणवृक्षस्य  
शाखाविशेषैः ॥२३॥
- हीसु० १पदं मयेदं २प्रददे शिरस्सु ३दिशां दशानामपि ४सुन्दरीणाम् ।  
इतीव ५रेखा: ६पदयोरमन्त्याङ्गुलीमिषात्तत्प्रमिता बिभर्ति ॥२४॥  
( १ ) अयं चरणः । पदशब्दः पुंक्लीबे । यथा नैषधे- “पदं किमस्याङ्गितमूर्ध्वरेखया” । ( २ )  
दत्तम् । ( ३ ) दशादिग्वर्त्तिनीनाम् । ( ४ ) स्त्रीणाम् । ( ५ ) देवी । “अलम्भ मन्त्याभिरमुष्य  
दर्शने” इति नैषधे । यथा मन्त्या तथा अमन्त्यापि । ( ६ ) अङ्गुलीरूपा रेखा । ( ७ )  
दशादिक्प्रमाणाः । ( ८ ) धत्ते ॥२४॥
- हील० मया दिक्सुन्दरीणां शिरसि पदं दत्तम् । इतीव कारणादङ्गुलीदम्भाद्वशरेखा सा धत्ते ॥\*२४॥
- हीसु० १विलासिबालव्यजना २धृतातपत्रा ३स्फुरद्वारिजराजमाना ।  
४अथीश्वरीवाखिलवारिजानां ५यदीयपादद्वितयी दिदीपे ॥२५॥  
( १ ) आकृतिस्फुरच्यामरा । पुनराकृत्यैव कलितछत्रा । ( २ ) प्रकटीभवद्धिः कमलैराकृति-  
धारिभिस्तैः शोभमाना । ( ३ ) स्वामिनीव । ( ४ ) समस्तकमलानाम् । ( ५ ) देवीचरणयुगली  
॥ २५॥
- हील० तत्त्वतो लाज्जनतश्चामरछत्रकजकलिता ॥\*२५॥
- हीसु० १कथञ्चना॒२ध्यर्थनया॑ ३मृदुत्वं ४रागश्रियं चाप्य पदारविन्दात् ।  
५प्रवालमाला॑६धरणीरुहाणामि॑वाधमर्णीभवति स्म॑७तस्याः ॥२६॥  
( १ ) केनापि प्रकारेण । ( २ ) याचनया । ( ३ ) सौकुमार्यम् । ( ४ ) लौहित्यं च ।  
( ५ ) तरुणाम् । ( ६ ) पल्लवपद्धिक्तः । तरुप्रवालकथनेन विद्वमाणां निरासः । ( ७ ) ग्राहका  
जाताः । ( ८ ) देव्याः ॥ २६ ॥
- हील० पदारविन्दात् मृदुतां रक्तां प्राप्य वृक्षप्रवालश्रेणिस्तस्या ग्राहका जाता ॥२६॥
- हीसु० १यत्पादराजौ॒२परिशुद्धपाण्णी॑३निर्जित्य॑४गत्या॑५खिलराजहंसान् ।  
६उच्चै॒७रु॑८चीस्फ॑९र्तिमिषा॑१ज्जगीषू॑१०प्रस्थातुकामाविव॑११नाकिनागम्॑१२७।१६

1. ऋग्यो० हीमु० । 2. इति देवीपादाङ्गुल्यः हील० । 3. धृतोद्यच्छत्रा० हीमु० । 4. रुचिस्फ० हीमु० । 5. हीमु० २७-२८  
तमश्लोकयोरेषोऽनुक्रमः २८-२७ । 6. इति पाण्णिः हील० ।

( १ ) देव्याः पादावेव भूपौ । ( २ ) परि समन्तान्निर्मलः घुटयोरथः प्रदेशो ययोः । राजा तु निर्दोषपाश्चात्यराजः । “शुद्धपर्णिष्ठायान्वित” इति रघुवंशे । ( ३ ) जित्वा । ( ४ ) गमनेन प्रयाणेन च । ( ५ ) समस्तमरालान् प्रकृष्टनृपांश्च । ( ६ ) ऊर्ध्वं अर्थात्स्वर्गे उच्च्वैः । ( ७ ) रुचीनां कान्तीनां स्फुरणकपटेन । ( ८ ) जेतुमिच्छू । ( ९ ) प्रस्थानं कर्तुमनसाविव । ( १० ) ऐरावणं देवप्रधानं शक्रमित्यर्थः । “स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जरा: सिंहशार्दूलनागाद्या” इति हैम्याम् । तथा—“कारागृहे निर्जितवासवेने” ति रघुवंशे इति ॥२७॥

हील० यत्पा० । शुद्धो लाञ्छनरहितः पार्णिर्घुटयोरथः प्रदेशो ययौः । तथा शुद्धो विरोधादिरहितः पार्णिः—पाश्चात्यः नां ऐरावणम् ॥★२८॥

हीसुं० १प्रसादकान्ती दधती ३सुवर्णालङ्कारिणी ३रम्यतमक्रमा च ।

४संश्लेषदक्षाऽप्रतिमोपमानश्रीः ५श्लोकमालेव सुरी चकासे॥२८॥<sup>1</sup>

( १ ) प्रसन्नतां शोभां च । झगित्यवबोधगोचरत्वं प्रसादगुणः । दीप्तरसत्वं च कान्तिः । ( २ ) हेमभूषणवती । शोभनाक्षरैरूपोपमोत्प्रेक्षाद्यैरलङ्कारैश्च युक्ताः । ( ३ ) मनोज्ञचरणा अनुक्रमा वा । ( ४ ) आलिङ्गनचतुरा तथा शब्दगुणार्थगुणशब्दालङ्कारार्थलङ्काररूपः समीचीनः श्लेषस्तत्र पट्वी । ( ५ ) न विद्यते प्रतिमा सादृश्यं यस्याः । “न तनुखस्य प्रतिमा चराचरे” इति नैषधे । तादूशी उपमा तस्य श्रीर्यस्यास्तथा असाधारणा उपमानैः कृत्वा शोभा यत्र । ( ६ ) अनुष्टुप्पद्गीत्तरिव ॥२८॥

हील० प्रसा० । अनुष्टुभां पद्गीत्तरिव शासनाधिष्ठात्री शुशुभे । किंभूता ?। प्रसन्नभावं कान्ति वपुर्दीर्तिं तथा झगित्यर्थवबोधगोचरत्वं प्रसादगुणस्तथा दीप्तरसत्वं कान्तिस्ते दधाना । पुनः किंभूता ?। कनकभूषणाद्विता वा शोभनाक्षर्य । पुनरलङ्कारवती । पुनः शस्तानुक्रमा पुनरगलिङ्गने वा सम्यक्श्लेषस्तत्र पट्वी । पुनरसाधारणा । पुनरुपमानैरूपलक्षणादुत्प्रेक्षाद्यैः श्रीर्लक्ष्मी शोभा यस्यां ना ॥२७॥

हीसुं० १जम्भद्विषत्कुम्भपराभविन्या ययाऽभिभूर्ति ३गमितः ४स्वगत्या ।

किं ५हंसकस्तां च६रणारविन्दे ७तस्थौ ८प्रसत्तेर्विषयीचिकीर्षुः ॥२९॥

( १ ) ऐरावणविजयिन्या । ( २ ) पराभवम् । ( ३ ) प्रापितः । ( ४ ) निजयानेन । ( ५ ) हंस एव हंसकः । स्वार्थे कः । नूपुरं च । ( ६ ) स्थितः । ( ७ ) पदकमले । ( ८ ) प्राप्रसादगोचरतां नेतुमिच्छुः ॥ २९ ॥

हील० ययाभिभूतो हंस एव हंसको नूपुरः सेवायै स्थितः ॥२९॥

हीसुं० १स्वजिह्वयानेन ३विगानितः सन्नाऽखण्डलः कुण्डलिनामिवै४ताम् ।  
५सिञ्चानमञ्जीरविनिर्मिताङ्गः ६प्रसादय७त्यंह्रिपयोजलग्नः ॥३०॥१२

1. इति देवीचरणः हील० । 2. इति देवीचरणनुप्रम् । हील०।

- ( १ ) निजवक्रगत्या । ( २ ) अवगणितः । ( ३ ) शेषनागः । ( ४ ) देवीम् । ( ५ ) शब्दायमान-  
नूपुरमेव कृतं शरीरं येन । ( ६ ) प्रसन्नीकरोति । ( ७ ) पदपद्मे विलग्नः ॥३०॥
- हील० स्वकुटिलगतेनाभिभूतः शेषनागो रणज्ञणितिरावकृत्रूपुरशरीरेणाश्रित्य प्रसन्नीकरोति ॥३०॥
- हीसुं० यथा 'जग'ज्जित्वरया श्रियांहिगुल्फः परां ३कोटिमवापितः सन् ।  
'पराक्षिलक्ष्यत्वमयांबभूव न चक्रवर्ती २च 'कदाचनापि ॥३१॥
- ( १ ) भुवनजयनशीलया । ( २ ) चरणग्रन्थिः-घुटकः । ( ३ ) उत्कृष्टकाष्ठाम् । ( ४ ) अन्येषां  
नयनयोर्दृश्यत्वं गोचरत्वमिति । वैरिणां दृग्मोचरतां जगाम । "अय गता"वित्यस्यापि रूपत्रयं  
यथा- अयांचक्रे अयामासायांबभूव । ( ५ ) कस्मिन्नपि प्रस्तावे ॥३१॥
- हील० यथा स्वशोभयोत्कर्षतां प्रापिते घुटकः परचक्षुर्गोचरतां न गच्छति स्म । यथा चक्रवर्तीं जैत्रश्रियोत्कृष्टः  
सन्परेषां शत्रूणां नेत्रगोचरत्वं नायते ॥★३१॥
- हीसुं० यज्जङ्ग्याधःकरणादुदीतव्रीडातिरेकांदिदमीयगुल्फः ।  
मन्ये 'न्यमज्जन्नवनिर्यदर्चिरर्णःप्रपूर्णभवदंहिशोणे ॥३२॥<sup>३</sup>
- ( १ ) नीचैर्विधानात्तिरस्करणाद्वा । ( २ ) उत्पन्नलज्जातिशयात् । ( ३ ) देवीघुटकः । ( ४ )  
बुब्रूडः । ( ५ ) अभिनवनिःसरज्जयोतिर्जलप्रपूर्णपदह्रदे ॥३२॥
- हील० जङ्गतोऽधस्तात्स्थितत्वालज्जया गुल्फः नवीनानि निर्यन्ति अच्चर्णीषि एवार्णासि जलानि तैः पूर्णे  
चरणह्रदे ब्रूडति स्म ॥३२॥
- हीसुं० 'श्रीमज्जिनाधीशमताधिदेव्या जङ्गे विभूषांमनधे दधाते ।  
किमु ३प्रगल्भक्रमनामधेयवृन्दारकोर्वीरुहयोः ४प्रकाण्डे ॥३३॥
- ( १ ) शासनदेव्याः । ( २ ) निष्पापे प्रशस्ये । ( ३ ) प्रकृष्टयोश्चरणावेवाभिधानं ययोस्तादृशयोः  
कल्पसालयोः । ( ४ ) वृक्षस्कन्धौ । प्रकाण्डः पुंकलीबयोः ॥३३॥
- हील० श्रीमच्छासनाधिष्ठात्र्या जङ्गे भातः । उत्प्रेक्ष्यते । प्रकृष्टौ ऋमौ तावेव नामधेयं ययोस्तादृशयोः  
कल्पवृक्षयोः प्रकाण्डे मूलाच्छाखावधिप्रदेशौ इव ॥३३॥
- हीसुं० यस्या: ४प्रकाण्डस्फुरदग्रजङ्गसदृक्षलक्ष्मीस्पृहयालवः किम् ।  
विषहय भारं ३भवनव्रजानां स्तम्भा मनुष्यांनुपकुर्वते स्म ॥३४॥
- ( १ ) वृक्षस्कन्धाविव शोभमानयोर्जङ्गयोस्तुल्यशोभाकाङ्क्षाः । ( २ ) गृहगणानाम् । ( ३ )  
उपकारं कुर्वन्ति ॥३४॥
- हील० यस्या: प्र०। स्तम्भा गृहवीवधं सहित्वोपकारं कुर्वन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । गणिडसदृशजङ्गश्रीशोभार्थिनः  
॥३४॥

1. गर्जजैत्रतमश्रि० हीमु० । 2. त्र० हीमु० । 3. इति गुल्फः हील० ।

- हीसुं० १सारङ्गनाभीसुरभे॒रमुष्या॑ जङ्घविभूषाभि॑रथःकृताभिः॑  
 'मृगङ्गनाभि॑र्गिरिगिह्वरोव्वी॑ ७मन्दाक्षलक्ष्याभिरिव॑ 'प्रपेदे॑ ॥३५॥  
 ( १ ) कस्तूरिकासदूशपरिमलायाः । ( २ ) शासनदेव्याः । ( ३ ) जङ्घाशोभाभिः । ( ४ )  
 तिरस्कृताभिः । ( ५ ) मृगीभिः । ( ६ ) शैलगुहाभूमी । ( ७ ) लज्जाकलिताभिः । ( ८ ) प्रपत्रा  
 ॥३५॥
- हील० कस्तूरिकावत्सुगन्धाया अस्या जङ्घाभूषाभिर्जिताभिर्मृगीभिर्लज्जया वनमाश्रितम् ॥३५॥
- हीसुं० जङ्घे॑ 'यदीये॑ प्रणयन्प्र॑यत्नात्प्र॑काण्डसारं॑ पृथिवीरुहाणाम्॑ ।  
 जग्राह धाता किमभावि तेषु॑ 'ततः॑ ७स्फुरत्कोटरकूटरस्थैः॑ ॥३६॥  
 ( १ ) देवीसम्बन्धिन्यौ । ( २ ) कुर्वन् । ( ३ ) आदरात् । ( ४ ) वृक्षाणाम् । ( ५ ) स्कन्धानां  
 सारं वस्तुजातम् । ( ६ ) स्कन्धेषु सारग्रहणानन्तरम् । ( ७ ) प्रकटीभवन्तो ये निष्कुहाः ।  
 "पोलाडि" इति प्रसिद्धाः । त एव कपटं येषां तादृशैश्चिद्दैः ॥३६॥
- हील० यस्या जङ्घे॑ कुर्वन् धाता वृक्षस्कन्धसारं जग्राह । नो चेत् कोटरमिषाद्रन्ध्राणि कर्थं जातानि ॥३६॥
- हीसुं० १कपोलयुग्मेन॑ प्रमुद्युवत्या॑ तिरस्कृते॑ ४दर्पणिके॑ ५विभूत्या॑ ।  
 ६गुसं॑ स्थिते॑ जानुनिभा॑दुपेत्य॑ जेतुं॑ ७द्विषं॑ ८छिद्रदिदृक्षयेव॑ ॥३७॥  
 ( १ ) गण्डद्वन्द्वेन । ( २ ) शासनदेवतायाः । ( ३ ) जिते । ( ४ ) आदर्शिके । "यन्मतो  
 विमलदर्पणिकाया"मिति नैषधे । ( ५ ) श्रिया । ( ६ ) छन्नम् । ( ७ ) आगत्य । ( ८ ) वैरिणाम् ।  
 ( ९ ) अपगुणानां दष्टुमिच्छया ॥३७॥
- हील० यत्कपोलपराभूते दर्पणिके जानुदम्भादेषेक्षणार्थं किं गुसं॑ स्थिते॑ ॥३७॥
- हीसुं० १आदर्शिका॑घानि॑ मिथो॑ मृधेषु॑ यज्जानुना॑ स्पर्द्धितया॑ ५स्वकान्त्या॑ ।  
 ततः॑ किमु॑ प्रापद॑तुच्छमूर्च्छा॑ न चेद॑चैतन्यवती॑ ७किमेषा॑ ॥३८॥  
 ( १ ) आदर्शिका मुकुरिका । लोके "आरसी"ति प्रसिद्धा । ( २ ) हता । ( ३ ) परस्पर युद्धेषु ।  
 ( ४ ) निजशोभया । ( ५ ) बहुमोहम् । ( ६ ) चेतनारहिता । ( ७ ) केन प्रकारेण ॥३८॥
- हील० आद० । यज्जानुना दर्पणिका हता । तस्मादेव मूर्च्छा॑ प्रापत् ॥३८॥
- हीसु० १रम्भास्फुरद्वैभवयत्सुपर्व्वसारङ्गदृक्लिनिकेतनस्य॑ ।  
 २अन्तर्वसत्सालसदूक्स्मरस्य॑ स्तम्भौ॑ ३प्रगल्भौ॑ स्फुरतः॑ किमूरू॑ ॥३९॥  
 ( १ ) रम्भानामप्सरसस्तद्वत्प्रकटीभवन्विलासो यस्यास्तदृशी या चासौ सुराङ्गना सैव केलये  
 क्रीडार्थं गृहं तस्य । अन्यदपि क्रीडार्थं केलीगृहं 'कदलीहर' मिति प्रसिद्धम् । ( २ ) मध्ये  
 क्रीडागृहान्तराले निवासं कुर्वतः॑ रतियुक्तस्य कामस्य । ( ३ ) प्रकृष्टै॑ ॥३९॥

- हील० रम्भा०। अन्तर्वसन् अलसेक्षणया रत्या सह स्मरे यत्र तादृशस्य रम्भाप्सरोवद्वैभवो यस्यास्तादृश्याः  
शासनदेव्याः क्रीडागृहस्य स्थम्भसदृशौ सकथ्यौ स्फुरतः ॥३९॥
- हीसुं० १यदूरुसृष्टै॒ करिणां॑ करेभ्यो मन्ये॑ ४मृदुत्वं॑ ५गृहयांबभूव ।  
स्वयं॑ स्वयम्भूरिति॑ तेषु नो चेदेऽकान्तकार्कशयमिदं॑ ६कुतस्त्यम् ॥४०॥  
( १ ) शासनदेव्या उर्वोर्निर्माणाय । ( २ ) हस्तिनाम् । ( ३ ) शुण्डाभ्यः । ( ४ ) सौकुमार्यम् ।  
( ५ ) गृहीतवान् । ( ६ ) विधाता । ( ७ ) सर्वथा प्रत्यक्षलक्ष्यं काठिन्यम् । ( ८ ) कुतो भवम्  
॥४०॥
- हील० ब्रह्मा गजानां शुण्डादण्डेभ्यो मृदुतां गृहीतवान् । इति नो चेत् करिकरेषु कार्कशयं कुतो भवम् ।  
ततो ज्ञायते सौकुमार्ये गृहीते कर्कशतैव स्थिता ॥४०॥
- हीसुं० १दूसां॑ यदूरुद्वितयो॑ २प्रतीपामन्विष्य॑ ३संहर्षकरी॑ करेण ।  
प्रणश्य भीत्याभ्य॑मुवल्लभः किं॑ ४दम्भोलिपार्णि॑ ५शरणीचकार ॥४१॥  
( १ ) बलिष्ठाम् । ( २ ) वैरिणीम् । ( ३ ) दृष्ट्वा । ( ४ ) स्पर्ढाकारकाम् । ( ५ ) हस्तेन ।  
शुण्डया । ( ६ ) ऐरावणः । ( ७ ) शक्रम् । वज्रहस्तत्वादजेयम् । ( ८ ) आश्रितवान् ॥४१॥
- हील० दूसां०। यस्या ऊरुद्वयों स्पर्ढाकरीं दृष्ट्वा ऐरावणो वज्रिणं शरणं कृतवान् ॥\*४१॥
- हीसुं० १तत्केव वार्ता॑ मम॑ २राजहंसामन्वानिसौ॑ यज्जयति॑ ३स्वगत्या ।  
‘इत्य॑रुकायं किमु॑ ४ताव॑दस्यै॑ ५करं करीन्द्रो॑ ६व्यतरत्विदश्यै॑ ॥४२॥  
( १ ) तर्हि॑ कथैव का ? न काचिदपि वार्ता॑ । ( २ ) मरालान्॑ प्रकृष्टभूपालान्॑ । ( ३ )  
समस्तानपि॑ । ( ४ ) निजविलासगमनेन॑ । प्रयाणेन । ( ५ ) हेतोः॑ । ( ६ ) उरु॑ एव॑ वपुर्यस्य॑ ।  
( ७ ) प्रथमम् । ( ८ ) शासनदेवताय॑ । ( ९ ) दण्डं॑ हस्तं॑ च । ( १० ) ददौ॑ ॥४२॥
- हील० असौ॑ देवी॑ हंसान्॑ जयति॑ । तम्मे का कथा इति कारणादेवोरुमिषात्करं ददाति॑ स्म ॥\*४२॥
- हीसुं० १यस्या॑ बभासे॑ २जघनेन॑ ३रत्या॑ ४सिंसया॑ ५स्वीयविलासवत्या॑ ।  
६विनोदजाम्बूनदमन्दिरेण॑ कृतेन॑ मन्ये॑ ७सुमनः॑शरेण॑ ॥४३॥  
( १ ) देव्याः॑ । ( २ ) स्त्रीकर्त्या॑ अग्रप्रदेशेन॑ । ( ३ ) स्मरपत्न्या॑ । ( ४ ) क्रीडितुकामेन॑ । ( ५ )  
निजजायया॑ । ( ६ ) क्रीडार्थं॑ स्वर्णगृहेण॑ । ( ७ ) स्मरेण॑ ॥४३॥
- हील० यस्या॑ कर्त्या॑ अग्रभागेन॑ शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते॑ । रत्या॑ सह रन्तुं॑ मदनेन॑ कनक॑ मन्दिरेण॑ कृतेन॑  
॥४३॥
- हीसुं० १भस्मीकृतं॑ २धूर्जटिनामन्विष्यीकृत्य॑ ३प्रसूनध्वजजीवितेशम् ।  
मा हन्तु मामे॑ष इतीव॑ रत्या॑ गुसं॑ गृहं॑ ५यज्जघनं॑ ६व्यधायि॑ ॥४४॥

1. ओमकामकः हीमु० । 2. स्या॑ः हीमु० । 3. द्रुश्या॑ः हीमु० । 4. अयं श्लोकः हीमु० नास्ति । टीका तु द्वाचत्वारिंशतमश्लोक-  
टीकायामन्तर्गता मुद्रिता ।

- ( १ ) ज्वालितम् । ( २ ) ईश्वरेण । ( ३ ) नयनयोर्गोचरं कृत्वा । ( ४ ) कामम् । ( ५ ) स्वकान्तम् । ( ६ ) शाभुः । ( ७ ) शासनदेव्या कटेरग्रभागः । ( ८ ) कृतम् ॥४४॥
- हील० ईश्वरेण स्मरं भस्मीकृतं दृष्ट्वा एष मां मा हन्तादितीव हर्तोर्गुप्तगृहं जघनं कामपत्न्या कृतम् ॥४४॥
- हीसुं० 'तीर्थाधिभर्तुर्मृतदेवतायाश्वकास्ति लक्ष्म्या'प्रतिमो 'नितम्बः ।  
'मोघीकृते'षु उमखजिद्विषन्तं जेतुं धृतं 'चक्रमिव स्मरेण ॥४५॥
- ( १ ) जिनस्य । ( २ ) शासनदेव्या: । ( ३ ) शोभया । ( ४ ) असाधारणः । ( ५ ) कटीपृष्ठप्रदेशः ।  
( ६ ) निष्फलीकृतबाणम् । ( ७ ) ईश्वरम् । ( ८ ) आयुधविशेषः ॥४५॥
- हील० तीर्था० । शासनदेव्या: शोभया असाधारणो नितम्बः शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । मोघीकृता बाणा येन तादृशमीशं जेतुं धृतं चक्रम् ॥४५॥
- हीसुं० 'यदङ्गरङ्गन्त्रवराजधानीनिवासिनः 'श्रीसुतभूविवोद्धः ।  
'स्फुटीभवत्युप्परथस्य शङ्के 'रथाङ्गमेत्तित्रदशीनितम्बः ॥४६॥<sup>2</sup>
- ( १ ) शासनदेवीशरीरमेव जङ्गमः स्कन्धावारस्तत्र वसनशीलस्य । ( २ ) स्मरराजस्य । ( ३ ) प्रकटं जायमानम् । ( ४ ) क्रीडार्थरथस्य । ( ५ ) चक्रम् । ( ६ ) इदंदेव्या: कठ्या: पश्चात्तनप्रदेशः ॥४६ ॥
- हील० त्रिदशीनितम्बः शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । यदङ्गराजधानीवसितस्य मदनस्य शताङ्गस्यैतच्चक्रम् ॥४६॥
- हीसुं० 'एतत्कलत्रस्य हरे:३ कलत्रजैत्रस्य 'सौभाग्यमुदीर्यते 'किम् ।  
'गाङ्गेयमप्या'तनुते स्म 'काञ्छीनिभान्नि४जालिङ्गनलालसं 'यत् ॥४७॥
- ( १ ) देव्या: कठ्या: । जायाया इत्यप्यर्थध्वनिः । ( २ ) केसरिकटीजयनशीलस्य । कृष्णपत्न्या लक्ष्म्या जघ( य)नशीलस्येत्यप्यर्थध्वनिः । ( ३ ) सुभगतां सौन्दर्यम् । ( ४ ) किमित्यनिर्वचनीयमाहात्म्यम् । ( ५ ) कथ्यते । ( ६ ) सुवर्ण-गङ्गातनयं भीष्मं च । ( ७ ) अपि शब्देन ब्रह्मचारित्वेन स्त्रीविषयविमुखोऽपीति लक्ष्यते । ( ८ ) चकार । ( ९ ) मेखलाकपटात् । ( १० ) स्वकीयस्यालिङ्गने जातदोहदं लोलुपं वा । अमरस्तु- "इच्छातिरेकस्तु लालसा" । ( ११ ) यस्मात्कारणात् ॥४७॥
- हील० विष्णोः सिंहस्य वा कटीजैत्रस्यैतस्याः कठ्याशातुर्य किं कथ्यते, यत् रसनादभाद् भीष्मपि काञ्छनमपि वा स्वस्यालिङ्गने लोलं कुरुते स्म ॥४७॥
- हीसुं० अस्याः 'कलत्रं 'हरिजित्वरं यन्मा मां 'हरिं तज्जयता'द्वियेति ।  
अढौकि 'काञ्छी कनकस्य तेन 'शश्याब्धिमुक्तामणिमणिडतेव ॥४८॥<sup>3</sup>
- ( १ ) कटिः । ( २ ) पञ्चाननजयनशीलम् । ( ३ ) हरिरिति एकाभिधानेन कृष्णं नामा । ( ४ )

1. उतेषूम० हीमु० । 2. इति नितम्बः हील० । 3. इति कटिः हील०

भीत्या । ( ५ ) ढौकिता । ( ६ ) मेखला । ( ७ ) स्वस्य पल्यङ्कभूतस्य समुद्रस्य मौक्तिकरत्नैर्भूषिता ॥४८॥

हील० अस्याऽ । अस्याः कटिर्हरिजैत्रा, अतो मां हर्ति-सिंहं विष्णुं वा मा जयं कुरुतात् इति भयाद्विष्णुना शश्यारूपसमुद्रस्य मुक्ताद्विक्ता काञ्ची ढौकिता ॥४८॥

हीमुं० १उमोपयामे ३पुनरासजन्म शिशुस्मरस्यैन्द्रगुरो॒रुपान्ते ।

अध्येतुकामस्य॑कलास्त्रिर्दश्याः॒ॄपृष्ठस्थली॑हाटकपट्टिकेव ॥४९॥

( १ ) पार्वतीपाणिग्रहणसमये । ( २ ) द्वितीयवारं प्राप्नोत्पत्तेः लब्धजन्मनः । अत एव बालकस्य कामस्य । ( ३ ) बृहस्पतेः । “इदृशीं गिरमुदीर्य बिडौजा जोषमास न विशिष्य बभाषे । नात्र चित्रमभिधाकुशलत्वे शैशवावधिगुरुर्गुरुरस्ये” ति नैषधे । इन्द्रगुरुर्वाचस्पतिः । ( ४ ) पाशवै । ( ५ ) लिखितगणितप्रमुखाः शकुनरुतान्ता द्वासप्तिः । ( ६ ) देव्याः । ( ७ ) तनोश्चरमप्रदेशः । ( ८ ) स्वर्णपट्टिका ॥४९॥

हील० पृष्ठं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । उमोद्वाहे प्राप्नावतारस्य अतो बालस्य स्मरस्य पुरोऽध्येतुकामस्य सुवर्णपट्टिका ॥४९॥

हीमुं० १सङ्क्रान्तवेणीग्रथितप्रसूनपङ्क्तिर्कर्बभौ पृष्ठतटे तदीये ।

३संवेशनश्रान्तशयालुकामकृते॑र्कतूली किमु॒ॄनिम्नमध्या ॥५०॥<sup>1</sup>

( १ ) प्रतिबिम्बिता केशपाशे सन्दृष्ट्यकुसुममाला । ( २ ) सम्भोगेन श्रमं प्राप्नस्यात् एव शयनशीलस्य कामस्यार्थे । ( ३ ) शश्याविशेषः । ( ४ ) गम्भीरमध्या ॥५०॥

हील० पृष्ठे सङ्क्रान्ता पुष्पपङ्क्तिर्भाति । उत्प्रेक्ष्यते । रतश्रमात्सुसस्य स्मरस्यार्थं शश्या ॥५०॥

हीमुं० १आवर्तविभ्राजितरङ्गितान्तज्यर्थोतिःपयःपूरितनाभिरस्याः ।

समं॑वशाभ्यां॑३स्मरसिन्धुरस्य॑४स्वैरं॑५सिंसोः॒स्फुरतीव॑ॆशोणः ॥५१॥

( १ ) भ्रमरकाकृतिविशेषः । पयसां भ्रमश्चावर्त्तेन शोभनशीलैः कलेलाकारीभूतैः कान्तिरूपजलैः भूता नाभिः । ( २ ) रतिप्रीतिकान्ताभ्यां हस्तिनीभ्यां च । “वशा कान्ताकरिण्योः । ( ३ ) कामगजस्य । ( ४ ) स्वेच्छया । ( ५ ) रन्तुमिच्छोः । ( ६ ) ह्रदः ॥५१॥

हील० आवर्तेण(न)भ्रमरकेण पयः सम्भ्रमेण वा शोभितं तरङ्गितं चान्तर्मध्यं येषां तादृशानि ज्योतींषि कान्तयस्तान्येव जलानि तैः पूरिता नाभिर्भाति । उत्प्रेक्ष्यते । रतिप्रीतिभ्यां युक्तस्य स्मरगजस्य ह्रदः ॥५१॥

हीमुं० प्रसारिशोचिर्मकरन्दसान्दा परिस्फुरत्कामुकदृग्द्विरेफा ।

अनन्यलावण्यजले यदीयनाभिर्बभौ जृम्भितपद्मिनीव ॥५२॥

1. इति पृष्ठप्रदेशः हील० ।

( १ ) प्रसरणशीलकान्तिरूपमकरन्दैः स्निग्धा । ( २ ) परितो निपतन्तः तदभिलाषुकानां( णां )  
नेत्राणयेव भर्मा यस्याम् । ( ३ ) असाधारणलवणिमपयसि । ( ४ ) विकचउकमलम् । "पद्मिनी  
योषिदन्तरे । अब्जेऽब्जिन्यां सरस्यां चे" त्यनेकार्थः ॥५२॥

हील० कान्तिमकरन्द युक्ता पुनर्भूमत्कामिनेत्रभ्रमण, अतो विकसितकमलिनीव नाभी रेजे ॥५२॥

हीसुं० 'यदङ्गगेहे रनिवसन्प्रसूनायुधः' \*सुधाभुक्स्पृहयन्स्ववल्भाम् ।

\*अचीकरत्कूपमिवामृतस्य विरञ्चिना पूर्तकृतेव नाभिम् ॥५३॥<sup>१</sup>

( १ ) देवीशरीरस्तपभवने । ( २ ) तिष्ठन् । ( ३ ) स्मरः । ( ४ ) सुरः । ( ५ ) स्वाहारं सुधाम् ।  
( ६ ) कारयति स्म ॥५३॥

हील० कामदेवः स्वाहारं वाञ्छन् धात्रा खनकेन नाभीरूपाममृतकूपिकां कारयति स्म ॥५३॥

हीसुं० यस्यांवलग्नेन रविगानितेन \*पञ्चाननेनांनुचिकीर्षयास्य ।

वैमुख्यभाजा विषयाद्विशेषात्किं तप्यते भूधरगह्वरान्तः ॥५४॥

( १ ) मध्यप्रदेशेन । ( २ ) जितेन । ( ३ ) सिंहेन । ( ४ ) अनुकर्तुमिच्छ्या । ( ५ ) पराइःमुखेन ।  
( ६ ) शब्दादिकाद् गोचरादेशाच्च । ( ७ ) तपः क्रियते । ( ८ ) गिरिगुहामध्ये ॥५४॥

हील० यन्मध्यजितः सिंहस्तत्सदृशीभवितुं विषयविरक्तः तपष्कु(ः कु)रुते ॥५४॥

हीसुं० २\*पराबुभूषोऽगिरिशं स्मरस्य तपस्यतः शासनदेवतायाः ।

मध्यं \*पुरोऽ \*निर्मितनाभिहोमकुण्डा ४\*तपः साधनवेदिकेव ॥५५॥

( १ ) पराभवितुमिच्छोः । ( २ ) ईश्वरम् । ( ३ ) अग्रे । ( ४ ) कृतं नाभिरेव होमार्थं कुण्डं  
यस्याः । ( ५ ) तपसः साधनार्थं वेदिका ॥५५॥

हील० तप० । मध्यं भातीति सम्बन्धः । उत्त्रेक्ष्यते । शम्भुं दग्धुमिच्छ्या तपः कुर्वतः कामस्य निर्मितं  
नाभिरूपं होमकुण्डं यस्यां तादृशी तपोवेदिः ॥★५५॥

हीसुं० \*सर्वाङ्गसृष्टिं सृजतस्तदीयां धातुर्विलग्नस्य रविधानकाले ।

प्रासः क्षयं \*सारदलस्य \*कोशोऽल्पीयस्ततोऽभूदिव मध्यमस्याः ॥५६॥<sup>५</sup>

( १ ) समग्राणामवयवानां निर्माणम् । ( २ ) मध्यरचनासमये । ( ३ ) प्रकृष्टवस्तुनः । ( ४ )  
भाण्डागारः । ( ५ ) अतिशयेन लघु ॥५६॥

हील० धातुर्भाण्डागारः क्षयं प्रासः तत एव मध्यं किं कृशमभूत् ॥५६॥

हीसुं० 'यदङ्गयष्टीबहलीभविष्णुरोचिष्णुरोचिश्चयनिर्जर्जरिण्याः ।

\*प्रादुर्भवन्ती विवलीविलासिकल्लोलमालेव विभाति \*मध्ये ॥५७॥

1. इति नाभिः हील० । 2. तपस्यतः शम्भुदिधक्षयादिग्रकनिष्ठ्या स्पृष्टभूवः स्मरस्या । हीमु० । 3. पुनर्निं० हील० ।

4. तपोवेदिरिव ऋशिष्ठा हीमु० । 5. इति मध्यम् हील० ।

( १ ) यस्यास्तनूलतायां नि( नी )स्त्वीभवनशीलस्तथा शोभनशीलो यः कान्तिनिकरः स एव नदी तस्याः । ( २ ) प्रकटीभवन्ति । ( ३ ) सङ्घेचलक्षणा त्रिवल्य एवं विलसनशीला तरङ्गश्रेणीव । ( ४ ) मध्ये । उदरे । “मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारुबभार बाला” इति कुमारसम्भवे । मध्येनोदरेणोति तद्वृत्तिः ॥५७॥

हील० यदङ्गयष्ट्याः प्रचुरः शोभनो यो रुचिराशः स एव नदी, तस्या उत्पन्ना कल्पेलश्रेणीरिव मध्ये त्रिवली भाति ॥५७॥

हीसुं० १<sup>१</sup>कीर्त्या च २वाचा च ३कर्चैर्जिताभिः४ज्होर्विधेः५श्वांशुमतः सुताभिः ।  
४मध्ये ८समेत्य त्रिवलीच्छ्लेन ९प्रसन्निपात्रीक्रियते किं०मेषा ॥५८॥

( १ ) कीर्त्या जहुसुता गङ्गा । ( २ ) वचोविलासेन विधिसुता सरस्वती नदी । ( ३ ) केशरचनाभिः अंशुमतः सूर्यस्य सुता यमुना । ( ४ ) उदरे । ( ५ ) समागत्य । ( ६ ) प्रसादस्थानम् । ( ७ ) देवी ॥५८॥

हील०→ चण्डी सपल्नी प्रबला ममास्ते ज्यायानजो वेदजडः पतिर्मे ।

भर्त्रा वियोगो हरिणा ममापि दुःखं जहीदं तिसृणामपीति ॥५८॥←

वकुं जगत्कल्पितकल्पवल्लि ! जहोर्विधेश्वांशुमतः सुताभिः ।

मध्ये समेत्य त्रिवलीच्छ्लेन प्रसादपात्रीक्रियते किमेषा ॥५९॥ युगम् ।

हील० मे-गङ्गायाः सपल्नी चण्डी, पुनर्मे-सरस्वत्याः पतिवैदिकमूर्खः पशुर्वद्धः, मे-यमुनायाः कृष्णेन वियोगोऽस्ति । हे वाञ्छितकल्पलते ! अस्माकं दुःखं जहिहि, इति वकुं गङ्गासरस्वतीयमुनाभिरेषा सुरी प्रसन्ना क्रियते । इत्युत्प्रेक्षा ॥५८-५९॥

हीसुं० १अध्यारुरुक्षोर्दद्धित्यकां२ ३यद्वपुर्गृहस्य स्मरमेदिनीन्दोः ।

४सौवर्णसोपानपरम्परेव ८मध्ये विरेजे त्रिवली ९त्रिदश्याः ॥५९॥

( १ ) अध्यारोदुमिच्छोः । ( २ ) हृत्यरूपामूर्ध्वभूमिकाम् । ( ३ ) देवीशरीरूपसौधस्य । ( ४ ) स्वर्णनिर्मितसोपानपद्मिक्तः । ( ५ ) उदरे । ( ६ ) देव्याः ॥५९॥

हील० देव्यास्त्रिवली रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । कायगृहे स्थितस्य, पुनर्हृदि अध्यारोदुमिच्छोः स्मरस्य सोपानपद्मिकरिव ॥\*६०॥

हीसुं० जगत्रयीस्त्रैणजयार्जितायाः श्वैत्येन कीर्तेनया विजित्य ।

बन्दीकृता निर्ज्ञरिणी सुराणामिव त्रिवेणी त्रिवली चकास्ति ॥६०॥<sup>३</sup>

( १ ) त्रैलोक्यस्त्रीगणस्य विजयेन स्वीकृतायाः । ( २ ) उज्ज्वलतया । ( ३ ) देव्या । ( ४ ) निगृहृ । ( ५ ) रक्षिता । ( ६ ) गङ्गा । ( ७ ) त्रिप्रवाहा । “प्रवाहः पुनरोघः स्याद्वेणीधारा रथश्च

१. वकुं जगत्कल्पित कल्पवल्लि जहो० हीमु० । ✖ एतदन्तर्गतः पाठस्तस्य टीका च हीसुं प्रतौ नास्ति । २. ०त्यकायां वपुः० हीमु० । ३. इति त्रिवली हील० ।

सः ॥ इति हैम्याम् ॥६०॥

हील० जगत्र०। त्रिवली भाति । उत्प्रेक्ष्यते । स्वकीर्तेः श्वेतत्वेन जिता तिस्रो वेण्यः प्रवाहा यस्यास्तादृशी गङ्गेवागता ॥६१॥

हीसु० 'स्तनान्तरीपाङ्कवपुःप्रसर्प्यज्जयोतिःस्त्रवन्तीसलिलप्ररुद्धा ।

लोमावली शैवलवल्लभीव रराज ॥राजीव विलोचनायाः ॥६१॥

( १ ) कुचावेवान्तर्जले तटौ द्वीपावुत्सङ्गे यस्य तादृशे शारीरस्य विस्तरत्कान्तिरूपनदीजले उद्गता ।

( २ ) रोमराजी । ( ३ ) शैवालमाला । ( ४ ) पद्मदृशो देव्याः ॥६१॥

हील० स्तनावेव द्वीपे क्रोडे यस्य तादृशानि कायस्य कान्तिजलानि तेषूदगता ॥६२॥

हीसु० 'विनिद्रनीलोत्पलकेसरश्रीः ॥स्वःसुभ्रुवो राजति रोमराजी ।

किं तुङ्गवक्षोजकलिन्दशृङ्खान्तरोदीत कलिन्दकन्या ॥६२॥

( १ ) विकसितेन्द्रीवर्गकिञ्चल्कानामिव शोभा यस्याः । ( २ ) देव्याः । ( ३ ) अत्युच्चौ कुचौ एव कलिन्दनाम्नः शैलस्य शिखे तयोरन्तराले प्रकटीभूता यमुना । "उदीतमातङ्कितवानशङ्कते"-ति नैषधे ॥६२॥

हील० उत्तुङ्गस्तनावेव शृङ्गे यत्र तादृशो यः कलिन्दशृङ्खी तत्शृङ्गयोर्मध्ये उद्गता यमुना ॥६३॥

हीसु० स्मरद्वीपस्यैणमदाभिरामवक्षोजविन्ध्याचलसन्निधाने ।

नाभीहृदाभ्यर्णविभासिनी यल्लोमावली केलिकृते वनीव ॥६३॥

( १ ) कस्तूरीविलेपन मनोऽस्तनरूपविन्ध्यादिसमीपे । ( २ ) नाभीहृदपार्श्वशोभनशीला । "नाभीमथैष श्लथया समोनु ( ? )" इति नैषधे । ( ३ ) क्रीडार्थम् । ( ४ ) उद्यानम् । "स्ववनी प्रवदत्पिकापि का" इति नैषधे ॥६३॥

हील० मृगाणां मदेन कस्तूर्या क्रीडाभिर्वा रम्ये गिरिनिकटे लोमावली कामगजस्य वनीव ॥६४॥

हीसु० 'निजाक्षिलक्ष्मीहसितैणशावकश्रेण्या व्यभालोमलता त्रिदश्याः ।

मध्यं कृशं वर्धयितुं किमस्या वयःश्रिया नीलमदायि सूत्रम् ॥६४॥<sup>1</sup>

( १ ) स्वकीयनयनशोभापराभूतमृगबालाबालकमालिकया । ( २ ) देव्याः । ( ३ ) उदरम् । ( ४ ) पुष्टं कर्तुम् । ( ५ ) देव्याः । ( ६ ) यौवनलक्ष्म्या । ( ७ ) दवरिका । ( ८ ) दत्ता ॥६४॥

हील० देव्या लोमलता व्यभात् । उत्प्रेक्ष्यते । यौवनलक्ष्म्या किञ्चिदुदरं वर्द्धयितुं नीलं सूत्रं दत्तम् ॥६५॥

हीसु० यस्याः स्तनौ संस्फुरतः स्म चित्तनिवासिमीनाङ्कमहीधनस्य ।

विलासवत्योरिव शातकुम्भसन्दृव्यलीलालयतुङ्गशृङ्गौ ॥६५॥

1. इति रोमावली हील० ।

( १ ) हृदये वसनशीलस्मरराजस्य । ( २ ) रतिप्रीत्योः स्त्रियोः । ( ३ ) स्वर्णनिर्मितगृहोन्त-  
शिखे । शृङ्गशब्दः पुंकलीबलिङ्ग्योः ॥६५॥

हील० यस्या देव्याः स्तनौ भातः स्म । उत्प्रेक्ष्यते । चित्तराजधानीमाश्रितस्य कामभूपतेः पत्न्यो रतिप्रीत्योः  
सुवर्णेन घटितौ ऋडामन्दिरयोस्तुङ्गशङ्गौ उत्रते शिखे ॥६६॥

हीसुं० १त्तन्निर्वृतेः स्थानं मुरोजयुग्मं जागर्ति ४गीर्वाणमृगीदृशोऽस्याः ।  
‘प्रोद्यन्महानन्दरसा ४य॑दस्मि’मुक्ता दृशो नोऽपनमन्ति १०भूयः ॥६६॥

( १ ) तस्मात्कारणात् । ( २ ) सुखस्य मोक्षस्य च । ( ३ ) स्तनद्वन्द्वम् । ( ४ ) शासनदेव्याः ।  
( ५ ) प्रकटीभवन्नतिशायी प्रमोदः मोक्षश्च तस्य तत्र वा रागः स्वादो वा येषाम् ( यासाम् ) ।  
( ६ ) यस्मात्कारणात् । ( ७ ) स्तनद्वये । ( ८ ) निक्षिप्ताः । मुक्तिं प्राप्ता यः ( याः ) । ( ९ )  
आगच्छन्ति । ( १० ) पश्चात् ॥६६॥

हील० तत्समात्कारणादेतस्याः [मुक्तेः ?] मोक्षस्य सुखस्य वा स्थानमस्ति । यत् जातामितानन्दा दृष्टे-  
स्मिन्नेषिताः पश्चात्रागच्छन्ति । मुक्तात्मानः कामुकदृष्ट्यश्च पश्चात्रायान्त्येव ॥६७॥

हीसुं० १मित्रे गतेऽस्तं ३वियुनक्ति ४राजन् ! रात्रिः ‘कलत्रं तव १नः ५कुलानि ।  
इतीव दुःखं ६गदितुं ४प्रपन्नौ १०यद्वक्त्रचन्दं १कुचचक्रवाकौ ॥६७॥

( १ ) सूर्ये सुहृदि च । ( २ ) परद्वीपं मृत्युं च । ( ३ ) वियोजयति । ( ४ ) हे नृप ! हे  
चन्द्र ! वा । ( ५ ) भवत्कान्ता । ( ६ ) अस्माकम् । ( ७ ) गोत्राणि । ( ८ ) कथयितुम् । ( ९ )  
प्राप्तौ । ( १० ) देवीवदनशशिनम् ॥६७॥

हील० मित्रे० । सूर्ये बान्धवे वा गते सति हे राजन् ! तव स्त्री अस्माकं कुलानि वियोजयति, इति वकुं  
यस्मुखचन्द्रश्रितौ चक्रवाकौ ॥\*६८॥

हीसुं० १प्रोत्तुङ्गपीनस्तनवैभवेन ययाभिभूतौ ३सुरकुम्भिकुम्भौ ।  
३ऊहे सहेते ४श्रियमासुमे५त्साधारि६रणीमृद्धुशकीलनानि ॥६८॥

( १ ) अत्युन्नतपुष्टकुचशोभया । ( २ ) ऐरावणशिरःपिण्डौ । ( ३ ) वितर्कक्यामि । ( ४ )  
शोभाम् । ( ५ ) स्तनद्वन्द्वतुल्याम् । “साधारणीं गिरमुष्वर्दुधनैषधाभ्या”मिति नैषधे । ( ६ )  
अङ्गुशानां ताडनानि प्रहाराः ॥६८॥

हील० यत्कुचपराभूतौ गजकुम्भौ अङ्गुशताडनं सहेत । इत्यूहे, अहं मन्ये ॥६९॥

हीसुं० १प्रसूनमालाभिर॒लङ्गताभ्यां ३स्वःसुभ्रुवोऽ४भासि ५पयोधराभ्याम् ।  
६प्रस्थातुकामस्य जगज्जयाय ७श्रेयोनिपाभ्यामिव ८मीनकेतोः ॥६९॥

( १ ) कुसुमहारैः । ( २ ) शोभिताभ्याम् । ( ३ ) शासनदेव्याः । ( ४ ) शुशुभे । ( ५ )

1. किम् चक्र० हीसुं० ।

- स्तनाभ्याम् । ( ६ ) चलितुमनसः । ( ७ ) कल्याणकुम्भाभ्याम् । ( ८ ) कामस्य ॥६९॥  
 हील० देवीस्तनाभ्यां शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । जगज्जयार्थं प्रस्थितस्य स्मरस्य मङ्गलघटाभ्याम् ॥७०॥
- हीसुं० कुम्भीन्द्रकुम्भौ १कुचभूयमूहेऽनुभूय ३यस्याः ४सुखिनावभूताम् ।  
 'सुव्यक्तमुक्ताफलमालिकानां 'सौभाग्यमाभ्यादि( मि )ह लभ्यते ७यत् ॥७०॥
- ( १ ) स्तनभावम् । ( २ ) सम्प्राप्य । ( ३ ) देव्याः । ( ४ ) सातवन्तौ । "प्रियामुखीभूय सुखी  
 सुधांशु" रिति नैषधे । प्रकटं दृश्यमानानां मौक्तिकानां पङ्क्तीनाम् । ( ६ ) सुभगतां सौन्दर्यम् ।  
 ( ७ ) यत्करणात् । ( ८ ) स्तनाभ्याम् ॥७०॥
- हील० ऐरवणकुम्भौ कुचत्वं प्राप्य सुखिनौ जातौ । यतोऽत्र मुक्ताफलसौभाग्यं प्रत्यक्षतो लब्ध्यम् ॥७१॥
- हीसुं० १प्रसूनतारावलिशालितायां २वेणीतमायाः३मुदिते ४मुखेन्दौ ।  
 यन्मा४द्यतस्त्तुचचक्रवाकौ ५श्रीसूनुसौराज्यविजृम्भितं तत् ॥७१॥
- ( १ ) पुष्पाण्येव तारकपङ्गित्तम्भिः शोभितायाम् । ( २ ) कबरीरूपरात्रौ । ( ३ ) उद्धते । ( ४ )  
 वदनचन्द्रे । ( ५ ) मदं प्रु( प्रा )म्बुवतः । ( ६ ) देवीस्तनरथाङ्गौ । ( ७ ) मदनराजस्य शोभा-  
 राज्यविलसितम् ॥७१॥
- हील० प्रसू० । पुष्पाण्ये(ण्ये)व नक्षत्राणि तैः कलितायां वेणीरूपरात्रौ मुखचन्द्रे उदिते कुचावेव चक्रवाकौ  
 यत्प्रमुदितमनसौ संयुक्तौ स्तस्तकामभूपप्रतापः । यदा सुराज्यं स्यात्तदा केषामपि दुःखातङ्गौ न स्तः  
 ॥७२॥
- हीसुं० १पत्रावलीव्याजवती २यदीयवक्षोजदम्भर्षभनामकूटे ।  
 ३विजित्य ४विश्वं विजयप्रशस्ति५लिपीकृता ६श्रीसुतचक्रिणेव ॥७२॥  
 ( १ ) पत्रवल्लय एव कपटं यस्यां । ( २ ) प्रशस्ते स्तनच्छद्य यस्य ताढूशे ऋषभकूटे । क्षुल-  
 हिमवन्निकटस्थाने घटखण्डविजयविधायिचक्रिणः स्वनामलिखनस्थाने । ( ३ ) त्रिभुवनम् ।  
 ( ४ ) स्वाज्ञापालनपरं विधाय । ( ५ ) लिखिता । ( ६ ) स्मरसार्वभौमेन ॥७२॥
- हील० यस्याः स्तनलक्षणे ऋषभकूटे [प]त्रलतादम्भाद्विजयप्रशस्तिः कन्दर्पचक्रिणा विश्वं विजित्य लिखिता  
 ॥७३॥
- हीसुं० १यया॒ २स्ववक्षोरुहयोर्जितेन॑ ३तुङ्गश्रिया॒ ४रोहणभूधरेण ।  
 ५उपायनानीव कृतानि॒ ६लक्ष्मीपुष्पाणि॑ ७पाणयोर्नखरच्छलेन ॥७३॥
- ( १ ) देव्या । ( २ ) निजस्तनयोः । ( ३ ) उच्चत्वश्रिया । ( ४ ) रत्नाचलेन । ( ५ ) द्वैकनानि ।  
 ( ६ ) रक्तमण्यः । ( ७ ) करनखदम्भात् ॥७३॥
- हील० यया स्तनौन्नत्यशोभया जितेन रोहणाद्रिणा करे नखच्छलेन महाश्वरकरत्नानि दनानि ॥★७४॥

1. इति स्तनौ हील० 2. द्रुत्तानि दण्डे किमुदात्तलक्ष्मी० हीमु० ।

- हीमु० १स्वयं विनिर्मापयितुं जयं ३स्वशोभापराभावुक्यन्नखानाम् ।  
४राजानम्०भ्यर्थयते ६स्वकान्तमु०पान्तयाता किमु तारकाली ॥७४॥  
( १ ) आत्मना । ( २ ) कारयितुम् । ( ३ ) निजलक्ष्मीपराभवनशीलदेवीकरकामाङ्गुशानाम् ।  
( ४ ) चन्द्रं नृपं च । ( ५ ) याचते । ( ६ ) निजभर्तारम् । ( ६ ) समीपे समेता ॥७४॥
- हील० ताराली राजान्-चन्द्रं भूपं च याचतीव । यथा वयं नखजयं कुर्मस्तथा कुरु ॥७५॥
- हीमु० २वने १स्व०मद्व( द्व )ध्य॑शिखासु॒॔भूमीरुहां॑ तपोऽतप्यत या॑न्निरन्नम् ।  
यदङ्गुलीभूयमिव प्रवालैः पचेलिमैस्तैः सुकृतैरवापे ॥७५॥  
( १ ) आत्मानम् । ( २ ) ऊर्ध्वं बद्ध्वा । ( ३ ) शाखासु । ( ४ ) वृक्षाणाम् । ( ५ ) निराहारम् ।  
( ६ ) देवीअ(व्य)ङ्गुलीत्वम् । ( ७ ) परिपाकं प्राप्तैः । ( ८ ) पुण्यैः । ( ९ ) प्राप्तम् ॥७५॥
- हील० पल्लवैः शाखान्ते आत्मानमूर्ध्वं बद्ध्वाशाशनरहितं यत्पस्तसं तैरुदयावलिकायामागतैः पुण्यैर्यदङ्गुलीभावो  
वासः ॥७६॥
- हीमु० २१सुपर्वपारिप्लवलोचनायाः॑ श्रियं दधौ धौरणिरङ्गुलीनाम् ।  
४विजृभ्यमाणारुणपाणिपङ्क्रुहे॑ प्रस्त्रद्वा॑ दलमालिकैव ॥७६॥  
( १ ) चपलनेत्रायादेवाङ्गुलायाः । ( २ ) शोभाम् । ( ३ ) श्रेणिः । ( ४ ) विकचरक्तकरनामकमले ।  
( ५ ) उद्रता । ( ६ ) पर्णश्रेणिः ॥७६॥
- हील० अङ्गुल्यः शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । करकोकनदे उद्रता पत्राङ्गिकः ॥७७॥
- हीमु० २१प्रसूनधन्वा॑ निजदेहदाहे॑ निध्याय दग्धा॑न्विशिखान॑शेषान् ।  
४कामाङ्गुशालीकुरुविन्दपुङ्गुन्य॑दङ्गुलीस्ता॑न्थ किं चकार ॥७७॥  
( १ ) स्मरः । ( २ ) दृष्ट्वा । ( ३ ) बाणान् । ( ४ ) समस्तान्पञ्चापि । ( ५ ) अरुणनखश्रेणि-  
रूपहिङ्गुलपुङ्गुन् । ( ६ ) देवीकरशाखाः । ( ७ ) तान्बाणान् । ( ८ ) पुनः ॥७७॥
- हील० स्मरे बाणान्दग्धान् दृष्ट्वा नखा एव कुरुविन्दस्य हिङ्गुलस्य रत्नस्य वा पुङ्गु येषां तादृशानङ्गुलीरूपा-  
न्बाणांश्वकार ॥७८॥
- हीमु० १अजय्ययत्पाणिपयोरुहाभ्यां॑ सहा॑हवे॑ ३संस्ववदस्त्रपूरैः ।  
४शोणीभवद्भिः॑ कमलैर॑वापेऽरुणाम्बुजख्यातिरिव॑ क्षमायाम् ॥७८॥  
( १ ) जेतुपश्चक्याभ्यां देवीकरकमलाभ्याम् । ( २ ) सङ्ग्रामे । ( ३ ) गलद्रुधिरनिकैः । ( ४ )  
अरुणैर्जायमानैः । ( ५ ) प्राप्ता । ( ६ ) रक्तकमलानीति प्रसिद्धिः । ( ७ ) भूमौ ॥७८॥

1. इति पाणिनखा: हील० । 2. हीलप्रतौ हीमु० च यथासङ्ख्यमेतेषां ७५-७६-७७ तमश्लोकानामेषोऽनुक्रमः ७७-७८-७६,  
७६-७७-७५ । 3. इति कराङ्गुल्यः हील०।

- हील० यत्करकमलाभ्यां सह सङ्ग्रामे प्रहारेद्भूतरक्ते रक्तीभूतैः कमलैः कोकनदख्यातिगप्तेव ॥७९॥
- हीसुं० १इयं 'मृणाली र्जडसङ्गमौज्ज्य निजाङ्गजेना'नुगताम्बुजेन ।  
‘एत्याश्रिता किं विवुधाम्बुजाक्षीं यद्वोर्लताशालिशया ‘व्यलासीत् ॥७९॥  
( १ ) कमलनालम् । मृणालशब्दस्त्रिलिङ्गः । ( २ ) मूर्खाणां डलयोरैक्याज्जलानां च गमं  
त्यक्त्वा । ( ३ ) स्वपुत्रेण । स्वोत्पन्नत्वात् । ( ४ ) सहिता पद्मेन । ( ५ ) आगत्य । ( ६ )  
पण्डितां स्त्रियं सुराङ्गनां च । ( ७ ) देवीभुजयष्टिशेभनशीलपाणिः । ( ८ ) शुशुभे ॥७९॥
- हील० रम्यकरा दोर्लता भाति । उत्प्रेक्ष्यते । जलं मूर्खं वा त्यक्त्वाम्बुजयुक्ता मृणाली कमलनालम् ॥८२॥
- हीसुं० 'आबालमु'द्यद्वलयः शिखाश्चाङ्गुल्यः पुनर्यत्र नखाः 'सुमानि ।  
‘ज्योतिर्मरन्दानि करद्मोऽस्या 'यूनां मनोभृङ्गणां 'धिनोति ॥८०॥  
( १ ) स्थानकम् । ( २ ) दीप्यमानकटकः । ( ३ ) शाखाः । ( ४ ) करशाखाः । ( ५ ) पुष्पाणि ।  
( ६ ) कान्तिरूपमधूनि येषु । ( ७ ) देव्याः । ( ८ ) तरुणानाम् । ( ९ ) प्रीणयति ॥८०॥
- हील० यत्र दीप्यमानो वलयः आलवालः, पुनर्यत्राङ्गुल्यः शाखाः, यत्र नखाः पुष्पाणि, पुनर्यत्र कान्तयो  
मकरन्दास्तादृशोऽस्या हस्ततरुणानां मनोभ्रमरैघं प्रीणयति । 'धिवि प्रीणने' इदित्वानुम् ।  
'धिन्विकृण्वोस्थ' आभ्यामुप्रत्ययः स्यादकारान्तादेशश्च स्यात्कर्त्तरि सार्वधातुके । 'उ'प्रत्ययस्या-  
शित्वादलोपः । अलोपस्य स्थानित्वान्त्रोपधागुणः । धिनोतीति सिद्धम् ॥८०॥
- हीसुं० 'मृणालिकाभिर्जलदुर्गभागिभरपि व्यजैत्रीं प्रविभाव्य 'बाहाम् ।  
‘स्वसून( नु)पद्मः ग्रहितः किमेतदुपास्तये पाणिरराजदस्याः ॥८१॥  
( १ ) कमलनालैः । ( २ ) पानीयरूपं विषमस्थानं भजतीति । ( ३ ) आत्मनो जयनशीलाम् ।  
( ४ ) दृष्ट्वा । ( ५ ) भुजाम् । ( ६ ) स्वस्याङ्गजातं कमलम् । ( ७ ) प्रेषितः । ( ८ )  
देवीभुजायाः सेवाकृते । ( ९ ) शोभते स्म । ( १० ) देव्याः ॥८१॥
- हील० जलकोट्टमध्यस्थाभिष्क(ः क)मलनालिकाभिः स्वासां जैत्रीं बाहां दृष्ट्वा स्वपुत्रपदाः प्रेषितः ॥८१॥
- हील०→बभौ भुजाभ्यां मखभुग्मृगाक्षी दग्धायुधस्येव कृते स्मरस्य ।  
रसालवलीमयकार्मुकाभ्यामध्यर्थनादात्मभुवा कृताभ्याम् ॥८३॥  
देवी भुजाभ्यां बभौ । उत्प्रेक्ष्यते । धात्रा स्मरर्थं रसालस्य चापाभ्यां कृताभ्याम् ॥८३॥
- हील० समुच्चरच्चन्द्रुचीचयाम्भा पार्श्वद्वयोद्भूतभुजा मृणाली ।  
जम्बूनदीवोच्चकुचान्तरीपा या भाति दृग्भृङ्गमुखारविन्दा ॥८४॥ इति भुजा ॥८४॥
- हील० प्रादुर्भवति कनककान्त्यैघ एवाम्भांसि यस्याम् । पुनर्भुजा मृणालीवती । पुनरुच्चौ कुचावेव द्वीपे

1. हीलप्रती हीमु० च यथासङ्घ्यमेतेषां ७९-८०-८१ तमश्लोकानामेषोऽनुक्रमः ८२-८०-८१, ८१-७९-८० । 2. इति हस्तः  
हील० → एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

यत्र तादृशी । पुनर्दृभृज्ञाच्छितं मुखकमलं यस्यां सा । अत एव जम्बूनदीव या भाति ॥८४॥

हीसुं० १भुजान्तरानुत्तराजधान्या ३अभ्यण्णभूमौ ५रतिजानिभर्तुः ।

किमु ४स्फुरच्यन्दनचारिमश्रीक्रीडादिकूटौ ६लसत्स्तदंसौ ॥८२॥

( १ ) हृदयरूपाया राजधान्याः ( २ ) समीपस्थाने । ( ३ ) स्मरराजस्य । ( ४ ) प्रकटीभवन्ती श्रीखण्डस्य मनोज्ञत्वलक्ष्मी ययोस्तादृशे क्रीडाकृते शैलशिखरे । ( ५ ) शोभेते । ( ६ ) देवीस्कन्धौ ॥८२॥

हील० तस्याः स्कन्धौ भातः । उत्प्रेक्ष्यते । हृदयरूपराजधानीनिकटे कामस्य चन्दनस्य विलेपनेन वृक्षेण कलितौ क्रीडापर्वतस्य कूटै शिखरे ॥८५॥

हीसुं० १स्वःसुभ्रुवः ३प्रेक्ष्य ५पयोधरौ ४स्वसंस्पर्द्धिनौ ६तुङ्गिमविभ्रमेण ।

जयाय ८तद्वृद्धविधित्सयेव ९कुम्भौ समेतौ स्फुरतस्तदंसौ ॥८३॥<sup>१</sup>

( १ ) देव्याः । ( २ ) दृष्ट्वा । ( ३ ) स्तनौ । ( ४ ) आत्मना स्पर्द्धाकारिणौ । ( ५ ) उच्चत्वलक्ष्म्या । ( ६ ) स्तनाभ्यां सादर्थं सङ्ग्रामं कर्तुमिच्छ्या । ( ७ ) घटौ । ( ८ ) देवी स्कन्धौ ॥८३॥

हील० तस्या अंसौ स्फुरतः । उत्प्रेक्ष्यते । देव्याः स्तनौ संहर्षकरौ दृष्ट्वा जयार्थं स्वयं ताभ्यां युद्धं विधातुमिच्छ्या आगतौ कलशौ भात इव ॥८६॥

हीसुं० १अस्याः ३सदृक्षां ५श्रियमाश्रयन्ती नास्ति त्रिलोक्यामपि ४कापि कान्ता ।

६इतीव ८रेखात्रितयं ९ततान ८त्कण्ठपीठे ९सरसीजजन्मा ॥८४॥

( १ ) देव्याः । ( २ ) तुल्याम् । ( ३ ) शोभाम् । ( ४ ) काचित्स्त्री नास्त्येव । ( ५ ) इति हेतोः । ( ६ ) रेखात्रिकम् । ( ७ ) चकार । ( ८ ) देवीकण्ठकन्दले । ( ९ ) विधाता ॥८४॥

हील० एतत्सदृक्षा कापि कान्ता लोकत्रये नास्तीति विचार्य ब्रह्मा कण्ठे रेखात्रयमकरेत् ॥८७॥

हीसुं० १कण्ठीकृतो यैज्जलजस्त्रिदश्यास्तद्वेधसा ३साधु विधीयते स्म ।

५नैसर्गिंगकानार्जवमात्मनिष्ठृं ९जह्यादैबाह्यं कथं८मन्यैथायम् ॥८५॥

( १ ) शङ्खः । “निवेश्य दधौ जलजं कुमारः” इति रघुवंशे । ( २ ) सम्प्यकृतम् । ( ३ ) स्वाभाविकां वक्रताम् । ( ४ ) त्यजेत् । ( ५ ) आन्तरं मध्यस्थितम् । ( ६ ) अपरेण प्रकरेण । ( ७ ) शङ्खः ॥८५॥

हील० धात्रा शङ्खः कण्ठीकृतस्तस्म्यकृतम् । नो चेदेष अन्तर्गतां वक्रतां कथं जह्यात् ॥८९॥

हीसुं० यत्कण्ठपीठेन १हठादुैपात्तां दृष्ट्वाैत्मभूषामखिलाैस्त्रिरेखाः ।

५पूर्त्कुर्वते किं ६विकलीभवन्तः ७प्रत्यालयं ८भैक्षभुजो भ( भु)जन्तः ॥८६॥<sup>३</sup>

1. इत्यंसौ हील० । 2. हीलप्रतौ हीसु०च यथासङ्ख्येतेषां ८५-८६-८७-तमश्लकानामेषोऽनुक्रमः ८९-९०-८८, ८८-८९-८७ । 3. इति कण्ठपीठः हील० ।

(१) बलात् । (२) गृहीताम् । (३) स्वस्यशोभाम् । (४) शङ्खः । (५) भूषाग्रहणात्  
ग्रथिली जायमानाः । (६) पूत्कारं कुर्वन्ति । (७) गृहं गृहं प्रति । (८) भिक्षासमूहं  
भुजन्तीति । (९) भिक्षुकान् ॥८६॥

- हील० यत्कण्ठेन शोभां गृहीतां दृष्ट्वा शङ्खा विकलाः सांन्यासिकादिकरणातः पूत्कारं कुर्वन्ति ॥९०॥
- हीसु० कण्ठश्रिया 'स्वःकुरविन्ददत्या 'निर्जित्य शङ्खेर्निंगृहीतभूषैः ।  
अरथाङ्गपाणिं प्रति 'पाञ्जजन्यः 'पुत्कर्तुकामैः 'प्रहितः किमेकः ॥८७॥
- (१) देव्या । "स्वे हि दर्शयति कः परेण वाऽनर्घदन्तकुरविन्दमालिके" इति नैषधे । (२)  
हठादगृहीतशोभैः । (३) नारायणं प्रति । (४) नामा शङ्खः । (५) रावां कर्तुमिच्छुभिः ।  
(६) प्रेषितः ॥८७॥
- हील० कण्ठ० । श्रीजिनशासनाधिष्ठात्रा कण्ठशोभया जितैः शङ्खैः कृष्णं प्रति एकः शङ्खः प्रेषित इव ॥८८॥
- हीसु० 'यूनो 'मनोजन्मनृपस्य 'तस्या 'वपुर्लता'वासनिकेतभाजः ।  
'शृङ्गारभूषासुषमां 'दिदूक्षोरिवाऽत्मदर्शः शुशुभे 'तदास्यम् ॥८८॥
- (१) तरुणस्य । (२) स्मरताजस्य । (३) देव्याः । (४) शरीरयष्ट्रेव निवासार्थं गृहं  
भजतीति तस्य । (५) शृङ्गारार्थं भूषणानां सातिशायिशोभाम् । "विना[ऽपि ?] भूषामविः  
श्रियामसौ" इति नैषधे । भूषणानि विनापि दमयन्ती शोभानां सीमा-इति तद्वत्तिः । (६)  
दष्टुमिच्छोः । (७) दर्पणः । (८) देवीवदनम् ॥८८॥
- हील० तदास्यं रेजे । उत्प्रक्ष्यते । तद्वपुःस्थस्मरस्य स्वशोभालोकनार्थं मुकुरः ॥९१॥
- हीसु० 'लःक्ष्मच्छविभूयुगलीं दधानं 'ज्योत्स्नासुधापायिचकोरचक्षुः ।  
'उत्सङ्गसङ्गीकृततारदन्तमास्यं त्रिदश्यां 'शशिबिम्बति स्म ॥८९॥
- (१) लाञ्छनवत्कृष्णा कान्तिर्यस्यास्तादृशी भूवोर्द्वयीम् । (२) चन्द्रिकां सुधां च चन्द्रिकासूपां  
वा सुधां पिबत इत्येवंशीलौ चकोरावेव चक्षुषी नेत्रे यत्र । (३) अङ्गसङ्गमं प्रापिताः तारा एव  
दशना यत्र । "प्रथममुपहत्यार्थं तारैरखण्डिततन्दुलै"रिति नैषधे । (४) चन्द्रमण्डलमिवाचरति  
स्म ॥८९॥
- हील० देव्या मुखं चन्द्रमिवाचरति स्म । किंभूतम् ?। लाञ्छनवद्भ्रुवं दधानम् । पुनः किंभूतम् ?।  
ज्योत्स्नामृतपायिनो(नौ) ये(यौ) चकोरौ ततुल्ये नेत्रे यत्र । पुनः किंभूतम् ?। ऋडे स्थापिता ये  
तारास्तद्वद्वत्ता यत्र ॥९२॥
- हीसु० 'चिकीर्षता 'यन्मुखमा'त्तसारमात्मानम्'न्विष्य 'चतुर्मुखेन ।  
'गलन्मरन्दाश्रुकणाब्जराजीद्विरेफरावैरिव 'रारटीति ॥९०॥

1. निर्जियमानैर्निखिलैस्त्रिरेखैः हीमु० । 2. तायाः स निकेतभाजः हीमु० । 3. कृष्णच्छविं हीमु० ।

( १ ) कर्तुमिच्छता । ( २ ) देवीवदनम् । ( ३ ) गृहीतसप्यगमज्जि समीचीनदलम् । ( ४ ) दूष्ट्वा । ( ५ ) धात्रा । ( ६ ) निष्पतन्मधुरूपबाष्पबिन्दुकमलमालाभृङ्गुज्जारवैः । ( ७ ) रोदिति पुत्कुरुते वा ॥९०॥

हील० यस्या मुखं कर्तुमिच्छता ब्रह्मणा स्वसारं गृहीतमिति ज्ञात्वा गलन्तो ये मकरन्दास्त एवाश्रुकणा यस्यां तादृशी कमलमाला । उत्प्रेक्ष्यते । द्विरेफरावैर्मधुकरगुज्जारवै रारटीति । अतिशयेन रोदितीव पूत्कृतिं वा कुरुते इति तात्पर्यम् ॥९३॥

हीसुं० १० यदीयचेतोवसतौ ३वसन्तं ३स्वमित्रपुष्पास्त्रनृपं ४निरीक्ष्य ।  
किमागतस्तं॑ मिलितुं मृगाङ्को वक्त्रं ४च॑कासे ४सुरकम्बुकण्ठ्याः ॥९१॥

( १ ) देवीमनोगृहे । ( २ ) तिष्ठन्तम् । ( ३ ) निजसुहृदं स्मराजम् । ( ४ ) दूष्ट्वा । ( ५ ) स्मरम् । ( ६ ) बभासे । ( ७ ) सुराङ्गनायाः ॥९१॥

हील० यदी०। देव्या मुखं चकाशे । उत्प्रेक्ष्यते । यन्मनसि स्थितस्य कामस्य मिलनार्थमागतश्चन्द्रः ॥९२॥

हीसुं० यस्या मुखं ३स्वर्वनितार्चितायाः ३संवर्ध्य ३ताराततिमुक्तिकाभिः ।  
४स्वःसिन्धुतरे किमु ५दिग्मृगाक्ष्यो ६र्निर्मित्य ७रात्रीमणि८मुत्सृजन्ति ॥९२॥३

( १ ) देवीजनपूजितायाः । सेविताया इत्पर्थः । ( २ ) वदर्धयित्वा । ( ३ ) तारकश्रेणय एव लघुमुक्तापलानि तैः । “सिता वमन्त्यः खलु कीर्तिमुक्तिकाः” इति नैषधे । ( ४ ) स्वर्गङ्गातटे । ( ५ ) दिग्ङ्गताः । ( ६ ) न्युञ्जनं कृत्वा । ( ७ ) चन्द्रम् । “कथयति परिश्रान्ति रात्रीतमः सह युध्वना”मिति नैषधे । ( ८ ) त्यजन्ति ॥९२॥

हील० यस्या०। दिग्वध्वस्तागमुक्ताभिर्यन्मुखं वर्द्धापयित्वा चन्द्रं न्युञ्जनं कृत्वा स्वर्गङ्गायां त्यजन्ति ॥९५॥

हीसुं० १० अगण्यलावण्यपयस्त्रिदश्या ३आस्यात्प्रै४सर्पद्विलसत्तरङ्गैः५ ।  
४मा स्ताद्वहिस्तादिति ५निम्नभागं चक्रे ६विरञ्चिश्चिबुकं किञ्चन्ते ॥९३॥

( १ ) अमेयलवणिमजलम् । ( २ ) मुखात् । ( ३ ) प्रसरत्सफुरत्क्लोलैः । तरङ्गाकारी-भूतकान्तिभिः । ( ४ ) बहि र्मा निर्गच्छतु । ( ४ ) गमा( म्भी )रविभागम् । “धृत्युद्धवा यच्चिबुके चकास्ति निम्ने मनागङ्गुलियन्त्रणेवे”ति नैषधे । ( ६ ) ब्रह्मा । ( ७ ) प्र( ? )मुखप्रान्ते ॥९३॥

हील० कान्तिकलोलैः कृत्वा देवीमुखाङ्गावण्यजलं बहिर्मा यात्वितीव वेधाश्चिबुकं मुखप्रान्ते निम्नं चक्रे ॥९६॥

हील०→यदाननाभ्योरुहवाससौधे सातं वसन्त्या जलराशिपुत्र्याः ।

विलास वापीव पयोविहारं स्वैरं विधातुं चिबुकस्त्रिदश्याः ॥९७॥ इति देवीचिबुकः । ←

1. ०काशे हील० । 2. निर्मित्य नीरजयित्वा मुखस्यन्युञ्जनं कृत्वा एवमस्ति । हैमधातुपाठे १३४५ ‘मित्यत् उत्पलेशे’ इत्यस्ति । 3. इति मुखम् हील० । → एतदन्तर्गतः पाठे हीसुंप्रतौ नास्ति ।

- देवीचिबुको भाति । मुखारविन्दस्थाया लक्ष्म्या जलक्रीडां कर्तुं क्रीडादीधिकेव ॥१७॥
- हीसु०** रेजेऽधरोऽस्या रेहरिमन्थकालात्प्रैवासिनं ४यन्मुखचन्दसौ॑नुम् ।  
 'हृलेखभाजा मिलितुं ५प्रवालः ६पयोधिना॒हृतुमिव ७प्रयुक्तः ॥१४॥  
 ( १ ) देव्याः । ( २ ) कृष्णोन मेरुणा मन्थनसमयात् आरभ्य । ( ३ ) परदेशं गमनं यातम् ।  
 ( ४ ) देवीवदनमेव चन्दपुत्रम् । ( ५ ) उत्कण्ठावता । ( ६ ) विद्वुमः । समुद्रोत्पन्नत्वात् । अथ  
 च प्रकृष्ट उक्तसन्देशकथकः बालकः । ( ७ ) समुद्रेण । तातत्वात् । ( ८ ) आकारयितुम् ।  
 ( ९ ) प्रहितः ॥१४॥
- हील०** रेजेऽ। अस्या अधरो रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । विष्णुना यो मन्थो मन्थनं तस्य कालाद्वतं पुनरगतं चन्दं  
 सुतं औत्सुक्यभाजार्णवेन मिलितुं प्रकृष्टे बालः प्रेषितः ॥\*१५॥
- हीसु०** १यदाननाङ्गीकृतविग्रहेण रेदच्छदाङ्गः ३क्षणदाकरेण ।  
 ४प्रियौषधेरङ्गभवः किमेष ५प्रपाल्यते ६वसृतया ७प्रवालः ॥१५॥  
 ( १ ) देवीवदनमेव स्वीकृतशरीरेण । ( २ ) अधरकायः । ( ३ ) चन्देण । ( ४ ) स्वप्रियाया  
 औषधे: तनूभवः । चन्दस्यौषधीपतित्वात् प्रवालस्यौषधीजातत्वादौषध्याः पुत्रत्वमेवोपपन्नम् ।  
 ( ५ ) लाल्यते । ( ६ ) पितृत्वेन । ( ७ ) पल्लवः प्रकर्षेण बालश्च ॥१५॥
- हील०** यन्मुखचन्द्रेण स्वपत्न्या औषध्या उत्पन्नत्वा[त्] रेदच्छदरूपः एषः किं प्रकृष्टे बालः सुतो लाल्यते  
 ॥१६॥
- हीसु०** १इदंमुखीभूतै॒मवेत्य चन्दं बालै॒लं तदीयं ३करचक्रवालम् ।  
 ५अन्वागतं ४प्राक्ग्रणयादिवैतद्वैत्तच्छदः स्फूर्तिमि॒र्यन्ति तस्याः ॥१६॥  
 ( १ ) देवीवदनं जातम् । ( २ ) ज्ञात्वा । ( ३ ) लघु । ( ४ ) कान्तिवृन्दम् । ( ५ ) पृष्ठे समेतम् ।  
 ( ६ ) चन्दावस्थास्त्रेहात् । ( ७ ) अधरः । ( ८ ) प्राप्नोति ॥१६॥
- हील०** एतदीयाधरे भाति । उत्प्रेक्ष्यते । एतस्या मुखरूपं जातं चन्दं ज्ञात्वा स्त्रेहात्पश्चादागतं बालकं  
 किरणमण्डलम् । बालत्वात्किरणानामरुणत्वमपि युक्तमेवेति ॥१००॥
- हीसु०** १यद्न्तपत्रेण भविजीयमाना नष्टा प्रविष्टापि ३पयोधिमध्ये ।  
 ३रक्ताङ्गराजी हृदि कृष्णवल्ली॒३ शल्यं किमद्यापि न ४पर्यहार्षीत् ॥१७॥  
 ( १ ) देव्या अथोरेण । ( २ ) समुदजले । ( ३ ) विद्वुममाला । ( ४ ) परिहरति स्म ॥१७॥
- हील०** यद०। यदधरेणाधरिता विद्वुमपङ्किः कृष्णवल्लीरूपं शल्यं त्यजति स्म ॥\*१०१॥
- हीसु०** १बन्धूकबन्धूभवदेतदीयदंतच्छदे ३दन्तरुचिः४श्रृकाशे ।  
 ४निपेतुषी॒५कोकनदच्छदाङ्गे॒६शरत्सुधादीधिति कौमुदीव ॥१८॥

1. पृत्रम् हीसु० । 2. एणोऽभिभृता हीसु० । 3. वल्लीशल्यं हील० । 4. श्रृकाशे हीसु० ।

( १ ) बन्धुजीवस्य 'वपोहरिया' इति प्रसिद्धस्य तरुविशेषस्य सहोदरे जायमानो देव्या अधेरे । ( २ ) दशनद्युतिः । ( ३ ) बभौ । ( ४ ) पतिता । ( ५ ) रक्तकमलदलोत्सङ्घे । ( ६ ) घनात्यय-चन्द्रचन्द्रिकेव ॥१८॥

हील० 'विपोहरीयां' पुष्णं सदृशेऽधेरे पतती(न्ती) दन्तरुचिः शुशुभे । यथा रक्तोत्पले चन्द्रज्योत्सना पतती(न्ती) शोभते ॥\*१०२॥

हीसुं० \*पीयूषपूर्णस्मरकेलिशोणमणीनिबद्धाधरदीर्घिकायाम् ।

\*यस्या विनिदद्विजचन्द्रिकाभिराश्रीयते \*कैरविणीवनश्रीः ॥१९॥

( १ ) अमृतपूरितायां कन्दर्पस्य क्रीडार्थं रक्तरक्तनिर्मितायामोषुरूपवाप्याम् । ( २ ) देव्याः ।

( ३ ) स्फुरहन्तकान्तिभिः । ( ४ ) कुमुद्वतीकाननलक्ष्मीः ॥१९॥

हील० अमृतपूर्णायां स्मरकेल्यर्थं पद्मरग्निबद्धायामधरवाप्यां दन्तकान्तिभिः कुमुदिनीवनश्रीरासा॥ १०३॥

हीसुं० १\*स्मितश्रिया विश्रितदन्तकान्तिश्वर्णकास्ति \*गीर्वाणमृगेक्षणायाः ।

बन्दीकृता चन्द्रमसं विजित्य ज्योत्स्नांस्य दारा वदनेन विद्यः ॥१००॥<sup>2</sup>

( १ ) हसितलक्ष्म्या । ( २ ) व्यास । ( ३ ) भाति । ( ४ ) शासनदेव्याः । ( ५ ) शाशिनम् । ( ६ ) जित्वा । ( ७ ) चन्द्रस्य । ( ८ ) प्रिया । ( ९ ) विद्य इवार्थे ॥१००॥

हील० देव्या दन्तकान्तिः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । चन्द्रं जित्वाऽस्य दारा ज्योत्स्ना बन्दीकृता । इति वयं जानीमः ॥१०६॥

हीसुं० \*स्वर्धाणुभीरो रजनीचरिष्ठोः कलङ्कभाजः क्षयिनः स्मिंसि तांशोः ।

ज्योत्स्ना किमुद्वेगवती यदास्यं भेजेऽपविष्टं दशनांशुदम्भात् ॥१०१॥

( १ ) राहोर्भीरुक्सस्य । ( २ ) निशायां चरणशीलस्य । ( ३ ) सकलङ्कस्य । ( ४ ) क्षयो-रोगः क्षीणता च । ( ५ ) चन्द्रात् । ( ६ ) खिन्ना । ( ७ ) देवीवदनम् । ( ८ ) निरन्तरायम् । ( ९ ) दन्तकान्तिमिषात् ॥१०१॥

हील० चन्द्रात्खेदमासा ज्योत्स्ना यदास्यं भेजे ॥१०४॥

हीसुं० \*यस्याः पृणत्रिर्जरदृक्चकोरान्दन्तप्रभाभिर्वदनं दिदीपे ।

\*शरद्विनिद्रीकृत चन्द्रिकाभिर्विभावरीणामिव सार्वभौमः ॥१०२॥

( १ ) देव्याः । ( २ ) प्रीणयन् । ( ३ ) सुरनयनचकोरान् । ( ४ ) शुशुभे । ( ५ ) घनात्ययेन विकाशितकौमुदीभिः । ( ६ ) रात्रिपतिः । "कन्दर्पेऽनल्पदर्पें विकिरति किरणान्शार्वरीसार्वभौमः" इति नाटकग्रन्थे ॥१०२॥

हील० दन्तकान्तिभिर्दृक्चकोराम्रीणयत् सद्वदनं दिदीपे । यथा चन्द्रः शरनिर्मलीकृतज्योत्स्नाभिर्दीप्ते ॥१०५॥

1. हीलप्रती हीमु० च यथासङ्क्षयमतेषां १००-१०१-१०२ तमश्लोकानामेषोऽनुक्रमः १०६-१०४-१०५, १०५-१०३-१०५

2. इति स्मितदन्तकान्तिः हील० ।

- हीसुं० 'मरु नृगाक्षी वदना बजदन्तै स्तारेशतारै विजितै विभूत्या ।  
 \*आलोच्यते तद्विजिगीषयेव सम्भूय तीरेऽम्बरनिज्ञरिण्याः ॥१०३॥
- (१) देव्याः वदनेन दन्तैश्च । (२) चन्द्रतारकैः । (३) श्रिया । (४) आलोचः क्रियते ।  
 (५) वैरिणो विजेतुमिच्छ्या । (६) एकत्र भूत्या । (७) तटे । (८) आकाशगङ्गायाः ॥१०३॥
- हील० श्रीशासनसुरीदन्तैर्जितैश्चन्द्रतारैः स्वर्गज्ञातीरे सम्भूयैकत्र मिलित्वा तेषां दन्तानां पराबुभूषया आलोच्यते  
 मन्त्र्यते । विचार इव विधीयते ॥१०७॥
- हीसुं० 'अजय्यवीर्यं मुखपद्ममस्याः श्रिया जयन्तं स्वमवेत्य राज्ञा ।  
 \*सर्वं विधातुं प्रहिताः ॥१०प्रथान-द्विजाः समं ॥११तेन ॥१२किमुऽल्लसन्ति ॥ १०४ ॥
- (१) जेतुमशक्यः पराक्रमो यस्य । (२) देव्या वदनकमलम् । (३) लक्ष्म्या । (४)  
 चन्द्रात्मानम् । (५) ज्ञात्वा । (६) चन्द्रेण । (७) परस्परप्रीतिम् । (८) कर्तुम् । (९)  
 प्रेषिताः । (१०) प्रकृष्टा मन्त्रिणश्च द्विजा दन्ता ब्राह्मणाश्च । (११) वदनकमलेन सार्वदम् ।  
 (१२) किमुत्प्रेक्षायाम् । (१३) भास्ति ॥१०४॥
- हील० अज० । द्विजा दन्ताः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । चन्द्रेण मुखपद्मेन सह प्रीतिं कर्तुं प्रधानद्विजाः प्रेषिताः  
 ||★१०८||
- हीसुं० 'पाण्डुः<sup>२</sup> क्षयी शून्यनभश्चरिष्णु र्निरङ्गराहो द्विषतोर्विं ऽपि बिभ्यत् ।  
 \*दोषाकरः श्याममुखो वराकोऽस्माकं पुरस्ताज्जडकस्त्वमेकः ॥१०५॥
- 'रुप्यद्युतोऽक्षीणसुखा मुखस्था जिताहिताः सफीतगुणा विशुद्धाः ।  
 नैकेऽभिरुपाः किमितीन्दुमुद्यद्युता त्रिदश्याः प्रहसन्ति दन्ताः ॥१०६॥युग्मम्॥
- (१) रोगः श्वेतश्च । (२) राजयक्षमा क्षीणता च । तद्युतः । (३) निर्मानुषे गगने सञ्चरणशीलः ।  
 (४) शिरोऽवशेषादपि वैरिणो राहोर्भयं प्राप्नुवत् । (५) रात्रिरपगुणश्च खनिः । (६)  
 लक्ष्मयुतः कृष्णमुखश्च । (७) रङ्गः । (८) जडस्वरूपो मूर्खश्च ॥१०५॥
- (१) रजतवद्वीप्यमानकान्तयः । (२) सर्वाङ्गीणसुखभाजः । (३) सर्वेषामग्रेस्थायुक्ता  
 वक्त्रवासिनश्च । (४) जितवैरिणः । (५) ख्यातगुणाः । (६) निःकलङ्काः । (७) बहवः ।  
 (८) लक्षणयुक्तरूपाः । "अभिर्वीप्सा-लक्षणयो" रित्यनेकार्थः । पण्डिताश्च । (९)  
 प्रकटीभवत्कान्त्या । (१०) देव्याः ॥१०६॥
- हील० दन्ताश्चन्द्रं हसन्ति । यतस्त्वं न भाति इति नभस्तद्वासी, अपगुणानामाकरे निशाकरे वा । पुनःकलङ्की ।  
 वयं तु मुखे सर्वेषामप्यग्रे वक्त्रे च तिष्ठन्ति, तादृशाः । पुनर्जितशत्रवः । द्वात्रिंशत्प्रमाणत्वेनानेके ।  
 पुनरभिरुपाः पण्डिताः । अतो हे जड ! त्वं कः ? ॥१०९-११०॥

1. प्रथाना: द्विजा० हीमु० । 2. हंसद्युतो० हीमु० ।

- हीसुं० १आशानुरागातिशयं ३सृजन्ती ४प्रचेतसः ५स्फारमरीचितारा ।  
६समुज्जिहानद्विजराजराजिवक्त्रा स्म सन्ध्येव विभाति देवी ॥१०७॥  
( १ ) वाञ्छा दिग् च स्त्रेहः अनुगतरक्तिमा च उत्कर्षम् । वाञ्छामोहयोरतिशयिताम् । ( २ )  
कुर्वती । ( ३ ) प्रकृष्टचेतस उत्तमस्यापि वरुणस्य च । ( ४ ) दीप्यमानकान्तिमत्तारा कनीनिका  
तारका च । ( ५ ) उद्गच्छन् द्विजराजश्वन्दः राजदन्तश्च तेन शोभनशीलं वदनं प्रारम्भश्च यस्याः  
॥ १०७॥
- हील० देवी सन्ध्येव भाति । किंभूता ?। प्रकृष्टचेतसो वाञ्छायाः स्त्रेहस्य वा रागाधिक्यं वा वरुणदिशि  
रागं वा कुर्वन्ती(ती) । पुनर्दीप्रा तारे कनीनिके ज्योर्तीषि वा यस्याम् । पुनरुद्गतदन्तैरुदितचन्द्रेण  
राजते । तादृशं वक्त्रं प्रारम्भो मुखं वा यस्याः ॥१११॥
- हीसुं० १शशी ३सुधां प्रेक्ष्य निपीयमानां सुरैः सृजंस्तत्र ४ममत्वमन्तः ।  
५रक्ष ६निक्षिप्य ७रहे ८रसज्ञापात्रामिवैतां ९कृतयन्मुखाङ्गः ॥१०८॥  
( १ ) चन्द्रः । ( २ ) निजाङ्गस्थायि पीयूषं । ( ३ ) सुधायाम् । ( ४ ) मोहमूर्छाम् । ( ५ ) चित्ते ।  
( ६ ) गोपयति स्म । ( ७ ) संस्थाप्य । ( ८ ) एकान्तस्थायाम् । ( ९ ) रसनापात्रिकायाम् ।  
( १० ) निर्मितयद्वदनदेहश्वन्दः ॥१०८॥
- हील० चन्द्रः सुधायां ममत्वान् । उत्प्रेक्ष्यते । एकान्ते जी(जि)ह्नापात्रे गोपयति स्म ॥११२॥
- हीसुं० १यस्या रसज्ञां ३जयिनीं ४निभाल्य ५शोणच्छदं ६तत्तुलनाविलासम् ।  
पितामहं प्रार्थयते ७स्वतातां ८रविन्दगेहे ९निवसन्तमूहे ॥१०९॥  
( १ ) देव्याः । ( २ ) जयनशीलाम् । ( ३ ) दृष्ट्वा । ( ४ ) रक्तपत्रमर्थात्कमलस्य । ( ५ )  
जिह्वासादृश्यलीलाम् । ( ६ ) निजजनकः विधाता च । ( ७ ) आत्मनः जन्मकर्तृत्वेन जनकीभूतं  
कमलम् । तस्य तदेव वा गृहं तत्र । ( ८ ) निवासं कुर्वन्तम् । ( ९ ) ऊहे विचारयामि । इवार्थे  
वा ॥१०९॥
- हील० रक्तोत्पलपत्रं कमलस्थं पितामहं जनकजनकं धातारं वा जी(जि)ह्नासादृश्यं याचतीव ।  
एयन्तत्वादद्विकर्मकत्वम् ॥११३॥
- हीसुं० १स्वं ३निष्ठितं ४नित्यसुपर्व५त्यानात्पीयूषम् ६न्विष्य ७सितत्विषेव ।  
८प्रैषी९दमा१ना२यितुं १०रसज्ञासुधा३हृदेऽस्या११ १२द्विजराजिरा३भात् ॥११०॥  
( १ ) आत्मीयम् । ( २ ) क्षीणम् स्वल्पावशिष्टं वा । ( ३ ) अरोहात्रं देवानां पानवशात् । ( ४ )  
अमृतम् । ( ५ ) दृष्ट्वा । ( ६ ) चन्द्रेण । ( ७ ) प्रेषिता । ( ८ ) पीयूषम् । ( ९ ) आत्मार्थे  
ग्राहयितुम् । ( १० ) जिह्वारूपामृतद्रहे । ( ११ ) देव्याः । ( १२ ) दन्तपडिक्तः । ( १३ ) बभौ  
॥११०॥

1. इति इत्ताः हील० । 2. ०नापयितुं हीसुं० । 3. ०हदो० हीसुं० ।

- हील० दन्तपङ्किग्भात् । उत्प्रेक्ष्यते । पीयूषं क्षीणं दृष्ट्वा चन्द्रेण तदेवानाययितुं जी(जि)ह्नाह्रदे ब्राह्मणश्रेणि:  
प्रेषिता ॥११४॥
- हीसुं० जाने ३यदास्यं ३सरसी सुधाया ३विजृग्भिजिह्नारुणपद्मपत्रम् ।  
४श्रेणीभवन्तः ५पुलिनाऽवतंसा ६हंसद्विजाः स्युः कथम् ८्यथा९स्याम् ॥१११॥  
( १ ) देवीमुखम् । ( २ ) अमृततटाकः । ( ३ ) विकसनशीलं रसनैव रक्तकमलदलं यत्र ।  
( ४ ) पङ्क्त्या तिष्ठन्तः । ( ५ ) जलोज्ज्ञितप्रदेशे तटे च । ( ६ ) शेखरीभूताः । ( ७ )  
हंसवदुज्ज्वलादन्ता हंसपक्षिणो वा । ( ८ ) अन्येन प्रकारेण । ( ९ ) सुधासरस्याम् ॥ १११॥
- हील० जाने य० । अहमेवं मन्ये—यदास्यं पीयूषसरसी । अन्यथा तटशेखरीभूताः हंसपक्षिणो वा हंसवदुज्ज्वला  
दन्ताः कथं भवेयुः ॥११५॥
- हीसुं० १वर्द्धिष्णुदेवीहृदयानुरागवारांनिधे२र्विद्वुमकन्दलीव ।  
३कंठत्रिरेखेण मुखे गृहीता पुपोष भूषां४रसनाऽदसीया ॥११२॥  
( १ ) वर्धनशीलो यो देव्या मनसि । हृदयं-मनो वक्षश्च । रागस्य एव समुद्रस्तस्य । ( २ )  
प्रवालनवाङ्गुरः । “कन्दली तूपरागेऽपि कलापे च नवाङ्गुरे । मृगजातिप्रभेदे चे”ति  
लिङ्गानुशासनचूर्णो । ( ३ ) कण्ठरूपशङ्कृन । ( ४ ) देवीसम्बर्धिनी । ( ५ ) जिह्ना ॥११२॥
- हील० जी(जि)ह्ना भाति । उत्प्रेक्ष्यते । स्नेहार्णवाद्विद्वुमकन्दली कण्ठशङ्कृन मुखे गृहीता ॥११६॥
- हीसुं० १जडीभवन्ती२रिपुनिर्जये३यद्वाचा जिता४हीविधुरा५विपञ्ची ।  
६वियासया७शैवलिनीशपारे तुम्बद्वयं किं८बिभराम्बभूव ॥११३॥  
( १ ) प्रतिकर्तुमशक्नुवन्तीत्यर्थः । ( २ ) वैरिपराभवनाय । ( ३ ) देवीवाण्या । ( ४ )  
लज्जाव्याकुला । ( ५ ) वीणा । ( ६ ) गन्तुमिच्छ्या । ( ७ ) समुद्रस्य परे तीरे । ( ८ )  
धृतवती ॥११३॥
- हील० यद्वाण्या जिता स्वास्यं दर्शयितुमशक्नुवन्ती वीणार्णवपारे गन्तुम् । उत्प्रेक्ष्यते । तुम्बे विभर्ति स्म  
॥ ११७॥
- हीसुं० १स्त्र(श्र)वः॒सुधायै३जगतां४यदीयवाचे पिकेन४स्पृहयालुनेव ।  
५अभ्यस्यते६भै७क्ष्यभुजा८तस्योऽनिशं वने पञ्चमगीति९रूच्यैः ॥११४॥  
( १ ) कर्णयोरमृतभूतायै । पीयूषतोषक( ? )सदृशायै । ( २ ) जगज्जनानाम् । ( ३ ) देवीगिरे ।  
( ४ ) इच्छनशीलेन । ( ५ ) अभ्यासः क्रियते । ( ६ ) भिक्षासमूहाहारेण । ( ७ ) वृक्षेभ्यः  
सकाशात् । ( ८ ) निरन्तरम् । ( ९ ) बाढ़स्वरेण ॥११४॥
- हील० श्रवः० । कर्णामृतरूपायै वाण्यै वाञ्छता । अतो वृक्षेभ्यो मञ्जरीकलिकादिभुजा कोकिलेन

1. इति रसना हील० । 2. भैक्ष. हीसु० ।

पञ्चमध्वनिरुद्धोष्यते ॥११८॥

हीसुं० रस्वैकसारं परवादिनीभ्यः ३सङ्गृह्य जाने ४जलजासनेन ।  
५विधीयते स्म ६ध्वनिं त्रिदश्यास्ता७भ्योऽतिरिच्येत न चेत्कुतस्तत् ॥११५॥  
( १ ) सप्ततन्त्रीकवीणाभ्यः । ( २ ) खडगादिसप्तस्वराणामद्वैतसारम् । ( ३ ) आपूर्य । ( ४ )  
विधात्रा । ( ५ ) कृतम् । ( ६ ) देव्या वाग् । ( ७ ) स[ वर्त? ]वीणाभ्यः । ( ८ ) अधिकीभवेत्  
॥११५॥

हील० वीणाभ्यो ध्वनिं गृहीत्वा धात्रा देवीस्वरो विहितः । न चेत्ताभ्योऽधिकत्वं कथमिति अहं जाने ॥११९॥

हीसुं० यद्वाक्पुरस्तादिव पाण्डुराभिर्विलीयते स्म त्रपथा सुधाभिः ।  
सितोपलाभिश्च तपस्विनीभिस्तृणं किमादाय मुखेन तस्थे ॥११६॥  
यद्वाचमद्वैतमाध्युर्या निजनित्वर्गे च वीक्ष्य लज्जयेव सुधा विलीयगता पाण्डुरा च जाता  
शक्कराभिरपि तथैव वक्त्रे तृणं गृहीत्वा स्थितः ॥११६॥

हील० यद्वाचा जितममृतं द्रवीभूतम् । पुनः सिताभिर्मुखे तृणं दत्तम् ॥१२०॥

हीसुं० १स्वप्रीतिरत्योरि॒दमोष्ठधाम्नोः ३सापत्यतः ४संस्थितिवादभाजोः ।  
स्परस्ता॒ददर्ढे ५विबभाज ६सीमां रेखामिषालिंक ७विनिनीषुरा॒जिम् ॥११७॥<sup>१</sup>  
( १ ) आत्मनः प्रीतिरत्नामपत्योः । ( २ ) देव्या अधर एव धाम गृहं ययोः । ( ३ ) सपत्नीत्वेन ।  
( ४ ) स्थानस्य विवादकारिण्योः । ( ५ ) तयोरदर्ढे । तत्स्थानकयोर्मध्ये । ( ६ ) विभागीकृतवान् ।  
( ७ ) अवधिः । ( ८ ) निवारयितुमिच्छुः । ( ९ ) परस्परकलहम् ॥११७॥

हील० स्वप्री०। रतिप्रीत्योः सपत्न्यो रणं विनेतुमिच्छुः कामः सीमां विभागीकृतवान् ॥१२१॥

हीसुं० ता॑त्साधु॒३मन्ये मलयानिलेन ४यदेतदीयस्व( श्व )सिती बभूवे ।  
५सर्वत्तुपुष्पोद्द्रव ६सौरभस्य सौभाग्यमाप्नोति ७किमन्यथासौ॑ ॥११८॥  
( १ ) समीचीनम् । ( २ ) विचारयामि । ( ३ ) देवीसम्बन्धिस्वा( श्वा )सेन जातम् । ( ४ ) घट  
ऋतुकुसुमसञ्चातामोदस्य सुरभिताया वा । ( ५ ) चारुताम् । ( ६ ) केन प्रकारेण । ( ७ )  
मलयानिलः ॥११८॥

हील० तदहं सम्यग्जाने ॥१२२॥

हीसुं० १निमीलनोन्मीलनदूषितेभ्यो नित्यं दधद्वयो २मधुपानुषङ्गम् ।  
३निर्वेदवान्यॄद्यकुमुद्वनेभ्यः स्थितः किमा॑मोद ५इदंमुखाब्जे ॥११९॥  
( १ ) सङ्क्लेचविकाशाभ्यां पीडितेभ्यः । ( २ ) मद्यपा भ्रमराश्च तैः सङ्गं कुर्वद्दयः । ( ३ )

1. इति नासा (वाणी) हील० । 2. इत्यधरोष्ठमध्येरेखा हील० ।

- उद्गेगकलितः । ( ४ ) कमलकैरवकाननेभ्यः । ( ५ ) परिमिलः । ( ६ ) अस्या देव्या वदनकमले ॥१९॥
- हील० सङ्कोचविकाशाभ्यां दूषितेभ्यो मद्यपैर्भ्रमरैर्वा प्रसङ्गवद्द्यः सर्वकमलेभ्यः खेदवान्यासमलाऽदामुख स्थितः ॥२३॥
- हीसुं० १विश्राणयित्वेव ३पुरा ३स्वसार सौरभ्यमेतद्वदनाम्बुजाय ।  
५शोभा सहस्रांश ५इतः ०पयोजपरम्पराभिर्ग्रहयांबभूवे ॥१२०॥  
( १ ) दत्वा । ( २ ) पूर्वम् । ( ३ ) आत्मनः सारभूतां सुरभिताम् । ( ४ ) अस्या वक्त्रपद्माय ।  
( ५ ) देवीवदनस्य शोभानां सहस्रसङ्ख्याकः भागः । ( ६ ) देवीमुखकमलात् । ( ७ ) पद्मपद्मिक्तभिः । ( ८ ) गृहीतः ॥१२०॥
- हील० विश्रां० । अस्या मुखकमलाय स्वसौरभ्यं दत्वा । उत्त्रेष्यते । कमलैरितो देवीवदनाच्छेभाया दशशतसङ्ख्योऽशो भागो गृहीतः ॥१२४॥
- हीसुं० १व्यर्थीकृतां ३शक्तिमवेत्य ०पूषद्विषा ५विरक्तेर्निःजहेतिहातुः ।  
७तूणीरमादाय ०मनोभवस्य १विरञ्चिनाऽस्या १०व्यरचीव १२नासा ॥१२१॥  
( १ ) निष्फलीकृताम् । ( २ ) स्वबलम् । ( ३ ) ज्ञात्वा । ( ४ ) शम्भुना । ( ५ ) वैराग्यात् ।  
( ६ ) निजप्रहरणानि त्यजनशीलस्य । शीले 'तृन्', 'ओहाक् त्यागे' इत्यस्य होनं शीलो हाता, तस्य हातुः । ( ७ ) निषङ्गम् । ( ८ ) स्मरस्य । ( ९ ) विधात्रा । ( १० ) कृतम् । ( ११ ) देव्याः ।  
( १२ ) नासिका ॥१२१॥
- हील० ईश्वरेण स्ववीर्यं व्यर्थीकृतं ज्ञात्वा विरागात्रिजशत्रत्यजनशीलस्य कामस्य रित्कं तूणीरं गृहीत्वा १०त्रा तस्या नासा विहिता ॥१२५॥
- हीसुं० १यन्नासिकां वीक्ष्य ३जगन्निरीक्ष्याऽमेतत्पुरः श्रीर्मम का ०ह्रियेति ।  
शङ्केऽनिशं ५न्यकृतिकैतवेन स्वं ४गोप्यते ०कीरसृपाटिकाभिः ॥१२२॥  
( १ ) देव्या नासाम् । ( २ ) जगज्जनानां निरीक्षणयोग्याम् । ( ३ ) एतस्या देवीनासाया अग्रे ।  
( ४ ) लज्जयेति । ( ५ ) अथःकरणकपटात् । ( ६ ) गुरुं क्रियते । छन्नं रक्ष्यते । ( ७ ) शुकचञ्चुभिः ॥१२२॥
- हील० यन्नां० यन्नासिकायाः पुरो मम का शोभेति ब्रीडात् । अहमेवं मन्ये । नीचैषकः करणकैतवेन शुकचञ्चुभिः स्वं गोप्यते ॥१२६॥
- हीसुं० १मुक्त्वा ३द्विषः ३पञ्चमुखीं प्रति ३स्वान्यञ्चापि ०रोषाऽस्मरथन्विनाजौ ।  
७यदङ्गवासौकसि किं ०निषङ्गो ०रिक्तो ०विमुक्तोऽ११जनि नासिकाऽ१२स्याः ॥१२३॥  
( १ ) क्षिप्त्वा । ( २ ) शम्भोर्वैरिणः । ( ३ ) पञ्च वक्त्राणि प्रति । ( ४ ) आत्मीयान् । ( ५ ) बाणान् । ( ६ ) मदनधानुष्केन । ( ७ ) देव्याः शरीरप्रेव वसनार्थं गृहं तत्र । ( ८ ) तूणीर् ।  
( ९ ) वारव्यत्ययात् बाणरहितः । ( १० ) स्थापितः । ( ११ ) जाता । ( १२ ) देव्याः ॥१२३॥

1. इति वदनपरिमिलः हील० ।

- हील० स्मरेण शम्भोः पञ्चवदनानि प्रति पञ्चबाणान् मुक्त्वा यदङ्गे रिक्स्तूणो मुक्तो नासिका जातः ॥१२७॥
- हीसुं० **‘स्वमन्दिरे यद्वदनारविन्दे लावण्यलक्ष्म्या प्रकटीकृतेव ।**  
**‘धूकैतवात्कज्जलं मुद्ग्रिन्ती प्रदीपलेखा विललास नासा ॥१२४॥’**  
 (१) निजगृहे (२) देवीवक्त्रपदे । (३) लवणिज्ञः श्रिया । (४) उद्घोधिता । (५) श्यामा भूमिषादञ्जनरेखाम् । (६) मुञ्जन्ती । सृजन्ती । (७) दीपकलिका ॥१२४॥
- हील० दीपसमाना नासा भाति ॥१२८॥
- हीसुं० **‘निजप्रतिद्वन्द्विधुन्तुदस्य निरीय भाग्याभ्युदयेन वक्त्रात् ।**  
**‘पुनस्तदातङ्गितचेतसेव यद्गण्डभूयं विधुना नुसस्ते ॥१२५॥’**  
 (१) स्वशत्रुराहोः । (२) निर्गत्य । (३) पुण्यपरिपाकेन । (४) द्वितीयवारमणि । (५) तस्माद् रार्भीतियुक्तचित्तेन । (६) देवीगळभावम् । (७) अनुसृतम् ॥१२५॥
- हील० गहुमुखादभाग्येन निर्गत्य पुनस्तद्वयादिव यत्कपोलतां श्रिता ॥१२९॥
- हीसुं० **‘यदास्यतोऽभ्यर्थयितुं विभूषाभरं त्रियामादयितात्मदर्शो ।**  
**‘तत्रित्यसेवाविधये कपोलपालीद्वयीभावमिवाभजेताम् ॥१२६॥’**  
 (१) देवीमुखात् । (२) याचितुम् । (३) शोभातिशयम् । (४) चन्द्रदर्पणौ । (५) देवीमुखस्य सदा पर्युपास्तिकृते । (६) गण्डद्वन्द्वत्वम् । “कपोलपालीजनितानुबिम्बयो” रिति नैषधे ॥१२६॥
- हील० यदास्यतो विभूषां याचितुम् । अत एव देवीवदनसेवार्थं चन्द्रदर्पणौ कपोलभावं प्राप्तौ ॥१३०॥
- हीसुं० कपोलभित्तौ भूगनाभिपङ्कश्चित्रीकृतोऽस्या मकरश्चैकाशे ।  
**‘यद्वेशमनोऽदृश्यतनोरनङ्गतयात्मयोनेरिव लक्ष्म लक्ष्यम् ॥१२७॥’**  
 (१) कस्तूरी द्रवैः । (२) मच्छय(त्य)विशेषः । “कपोलपत्रान्मकरात्सकेतु” रिति नैषधे । (३) देवीरूपगृहस्य । (४) न नयननिरीक्षणीयशरीरस्य । (५) कायरहितत्वेन स्मरस्य । (६) केतनं चिह्नम् । (७) दृश्यम् ॥१२७॥
- हील० कपोले कस्तूर्या कृतो मगर इति लोकप्रसिद्धः । स शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । अनङ्गत्वेनाङ्गेश्यस्य स्मरस्य दृग्दृष्टं चिह्नम् ॥१३१॥
- हीसुं० **‘हिरण्यगर्भः प्रणयन्सुरीं तां विद्योऽरविन्दं वदनीचकार ।**  
**‘मरन्दलुभ्यन्नयनद्विरेफौ न चेद्वेतां कथमन्यथा स्मिन् ॥१२८॥’**  
 (१) धाता । (२) कुर्वन् । (३) जानीम इवार्थो वा । (४) मकरन्देषु लोलुपौ भवन्तौ नेत्रे एव भृङ्गौ । (५) वदनपदे ॥१२८॥
- हील० ब्रह्मणा कमलेन मुखं कृतम् । इदं नो चेदस्मिन्नेत्रे इव भ्रमरै कथं भवेताम् ॥१३२॥

1. इति नासिका हील० । 2. ०कासे हीमु० । 3. इति कपोलः हील० ।

- हीमु० 'स्फुरन्महोगोचरिताखिलाशौ' भूपाविवास्या भवतः स्म नेत्रे ।  
 'अथारिषातां कथमा' तपत्वे 'पक्ष्मोपधे' 'मूर्द्धनि चेन्न 'ताभ्याम् ॥१२९॥  
 ( १ ) दीप्यमानद्युतिभिर्लक्षीकृत समग्रदिशौ । तेजसां सर्वत्र व्यापित्वात् । पक्षे- प्रसरत्प्रतापैर्विष-  
 यो[ कृ ]तसपस्तहस्तितौ । ( २ ) राजानौ । ( ३ ) धृते । ( ४ ) छत्रे । ( ५ ) नेत्ररोमच्छलात् । ( ६ )  
 मस्तके । ( ७ ) नेत्राभ्याम् ॥१२९॥
- हील० दीप्रेण महसा तेजसा प्रतापेन वा दृष्टा दिशो याभ्यां तौ(ते) नेत्रौ(नेत्रे) भूपाविव जातौ । अन्था  
 नेत्ररोमदभाच्छत्रे कथं धृते ॥१३३॥★
- हीमु० 'असूयया' स्वीयपराभविष्णुं दृशं यदीयां 'प्रविभाव्य भृङ्गः' ।  
 स्पद्धा 'न दध्मोऽथ वयं कदाचिदितीव चक्रुः कज्जकोशपानम् ॥१३०॥  
 ( १ ) ईर्ष्यया । ( २ ) निजस्य पराभवनशीलाम् । ( ३ ) दृष्ट्वा । ( ४ ) न वदामः । ( ५ )  
 अद्यतः प्रारभ्य । ( ६ ) शपथम् ॥१३०॥
- हील० असू० । पराभविष्णुं यद्युष्टि दृष्ट्वा भ्रमणः कोशपानं चक्रुः ॥१३४॥
- हीमु० 'सारैर्दलैः शासनदेवतायाः' प्रणीय नेत्रे किमु 'पद्मयोनिः' ।  
 'शेषरशेषैर्दलिकैरकार्षीत्पुनश्चकोराम्बुजखञ्जरीटान् ॥१३१॥  
 ( १ ) विशिष्टैर्वस्तुभिः । ( २ ) कृत्वा । ( ३ ) धाता । ( ४ ) अवशिष्टः । ( ५ ) कृतवान् । ( ६ )  
 कमलखञ्जनान् ॥१३१॥
- हील० धाता सारदलैनेत्रे निष्पाद्य शेषैर्दलैश्चकोरार्दीश्चकार ॥१३५॥
- हीमु० 'जेया त्रिलोक्येव' शैरस्त्रिभिस्तत्त्वोषा 'द्विकाण्डी' किमिति स्मरेण ।  
 'त्यक्ता'थ सा 'पद्मभुवा' कृतार्थीकृतेव देव्या नयने 'प्रणीय ॥१३२॥  
 ( १ ) जेतुं योग्या । ( २ ) त्रिसङ्ख्यैरेव बाणैः । ( ३ ) अवशिष्टा उद्धृता । ( ४ ) बाणद्वयी ।  
 ( ५ ) किमिति न किञ्चित्कार्या इति हेतोः । ( ६ ) उज्जिता । ( ७ ) पश्चात्मदनत्यजनानन्तरम् ।  
 ( ८ ) धात्रा । ( ९ ) सफलीकृता । ( १० ) कृत्वा ॥१३२॥
- हील० त्रिभिः शैरस्त्रिलोकी एव जेया । ततो द्वयोः काण्डयोर्बाणयोः समाहारो द्विकाण्डी स्मरणोज्जिता सती  
 धात्रा देवीनेत्रे निष्पाद्य सत्या कृता ॥१३६॥
- हीमु० 'श्रिया' सुधाभुवृपरमाणुमध्या-चक्षुर्विभूषामनुकर्तुकामैः ।  
 'गुमं क्वचित्प्रावृषि' खञ्जरीटैराराध्यते मन्त्र इवा सदत्तः ॥१३३॥  
 ( १ ) स्वशोभया । ( २ ) देवाङ्गनानयनविभवम् । "अध्यापयामः परमाणुमध्या" इति नैषधे ।  
 ( ३ ) छन्नम् । ( ४ ) वर्षाकाले । ( ५ ) खञ्जनपक्षिभिः । ( ६ ) इष्टविश्राणितः ॥१३३॥
- हील० शोभया चक्षुःसदृशो भवितुं खञ्जरीटैर्मन्त्र आराध्यते ॥१३७॥

1. नेत्रौ हीमु० । 2. धाभाक्षर० हीमु० ।

- हीसुं० चन्द्राच्चकोरोऽमृतपानदम्भाद्यानस्थितो रेणन्धवहात्कुरङ्गः ।  
 ४पितामहात्पङ्कजमासनस्थं ५यदक्षिलक्ष्मीमिव मार्गयन्ति ॥१३४॥  
 ( १ ) सुधापानार्थागमनमिषात् । ( २ ) वाहने स्थितः । ( ३ ) पृष्ठदश्वो वायुस्तथा-“कर्तुं  
 शशाङ्कभिमुखं न भैम्यां मृगं दृगम्भोरुहनिर्जितं यत् । अस्या विवाहाय यदौ विदर्भासद्वाहनस्तेन  
 न गन्धवाह” इति नैषधे । वातात् । ( ४ ) विधातुः । ( ५ ) कमलम् । ( ६ ) विष्णुः पीठमासनम् ।  
 सरोरुहासनत्वात् । ( ७ ) देवीनयनश्रियम् । ( ८ ) याचन्ति ॥१३४॥
- हील० चन्द्राच्चकोरो यच्चक्षुषः शोभां याचतीव । पुनर्वाहनत्वेन स्थितो मृगो वायोर्मार्गयति । पुनरासनरूपं  
 पङ्कजं ब्रह्मणो याचति ॥१३८॥
- हीसुं० १स्मितं २निशाङ्कोरपि ३नित्यरङ्गङ्कङ्कितं स्याद्यपि पुण्डरीकम् ।  
 ४प्रस्यन्दमानान्तरतारिकायास्ततोऽनुकुर्यात्विदिशीदृशस्तत् ॥१३५॥  
 ( १ ) विकसितम् । “स्मितं दिवा निश्यपि” इत्यपि सूत्रपाठः । ( २ ) अविरहितभ्रमदभ्रम-  
 कलितम् । ( ३ ) चलन्ती विचाले कनीनिका यस्याः । ( ४ ) देवीनयनस्य । ( ५ ) श्वेतकमलम्  
 ॥१३५॥
- हील० यदि पुण्डरीकं सदा विकसितं, उत च भृङ्गङ्कितं भवेत्ततो भ्रमत्कनीनिका एतस्या दृशमनुकुर्यात्  
 ॥★१३९॥
- हीसुं० १प्रीत्या च रत्या सह २मीनकेतोऽर्न्दोलनादोहदपूरणाय ।  
 विनिर्मिते ३नाभिभुवेव लीलादोले तदीये ४स्त्र( श्र )वसी विभातः ॥१३६॥  
 ( १ ) प्रीतिरतिनाम्न्यौ स्मरपत्यौ ताभ्यां सार्द्धम् । ( २ ) स्मरस्य । ( ३ ) ऐङ्गेलनस्पृहापरिपूर्त्ये ।  
 “दोहदोऽपि च चलद्वीचीचयैः पूर्यते” इति हंसाष्टके । ( ४ ) विधिना । ( ५ ) कण्णौ ॥१३६॥
- हील० तस्याः कण्णौ भातः । उत्प्रेक्ष्यते । स्वपत्नीभ्यां सह स्मरस्य दोलनेच्छापूर्तये धात्रा केलिप्रेङ्गेले विहिते  
 ॥१४०॥
- हीसुं० १मोघीकृताशेषशरं २गिरीशं ३प्रत्यर्थिनं ४पाशयितुं ५कथञ्चित् ।  
 ६अधारि पाशो ७विषमायुधेन ८यद्वेशमनेव ९श्वपणच्छलेन ॥१३७॥  
 ( १ ) विफलीकृतसमग्रबाणम् । ( २ ) ईश्वरम् । ( ३ ) शत्रुम् । ( ४ ) पाशयन्त्रितं कर्तुम् ।  
 ( ५ ) केनापि प्रकारेण । ( ६ ) धृतः । ( ७ ) मदनेन । ( ८ ) देवीशरीरवासिना ।  
 ( ९ ) कण्णकपटात् ॥१३७॥
- हील० मोघी०। या देवी एव वेशम यस्य तादृशेन स्मरेणेशं पाशयितुं श्रोत्रदम्भात् । उत्प्रेक्ष्यते । पाशो धृतः  
 ॥१४१॥
- हीसुं० १धृतैकपाशेन २पयोधिधाम्ना ३स्वाङ्कप्रभुत्वेन किमात्मयोनिः ॥  
 ४स्पद्धर्दा दधानः ५स्त्र( श्र )वसी त्रिदश्याः पाशद्वयीमाकलयांचकार ॥१३८॥<sup>४</sup>

1. दिने निश्यपि हीमु० । 2. ०कां तत्तनोतु कुर्याद्विशमेतदीयाम् हीमु० । 3. इति लोचनम् हील० । 4. इति कण्णौ हील० ।

( १ ) अङ्गीकृत एक एव बन्धनग्रन्थिर्येन । ( २ ) वरुणेन । ( ३ ) स्वस्याङ्गश्चिह्नं मकरो  
यादोऽपरनामा तस्य स्वामित्वेन । 'यादः पतिपाशिमेघनादा' इति हेमचन्द्रवचनात् । ( ४ )  
स्पर्ढा-स्वस्य तस्य च मकरप्रभुत्वे तुल्ये स्पर्ढाम् । ( ५ ) कर्णौ । ( ६ ) दधारः ।

हील० देव्याः श्रोत्रे भातः । उत्त्रेक्ष्यते । मकरपतित्वेन कृत्वा वरुणेन सह स्पर्ढया सङ्कल्पयोनिः पाशद्वयं  
दधार ॥१४२॥

हीसु० 'स्वपृष्ठलग्नागतकेशकायस्वर्भाणुमालोक्य जिनाधिदेव्याः ।

'त्रायस्व नौ 'वक्तुमिती'न्दुभानू 'श्रुत्योर्विलग्नाविव कुण्डलाङ्गौ ॥१३९॥<sup>2</sup>

( १ ) आत्मनोः सूर्याचन्द्रमसयोः पश्चाद्विलग्न एवागतो यः केशपाश शारीरः स्वर्भाणुः राहुस्तम् ।  
( २ ) दष्ट्वा । ( ३ ) त्रैलोक्यनाथस्याधिष्ठात्री देवी तस्याः ( ४ ) अचिन्त्यसामर्थ्यात् हे देवि !  
त्वं नौ-आवयोः प्रबलशत्रोः सकाशात् रक्ष-जीवितदानं देहीति । ( ५ ) कथयितुम् । ( ६ )  
चन्द्रसूर्यौ । ( ७ ) कर्णयोः ( ८ ) अन्यावपि वक्तुमिच्छू श्रवणयोर्विलग्नाविव [ ल ] गतः ॥१३९॥

हील० शासनाधिष्ठात्र्याः केशरूपं बाहुं दृष्ट्वा नौ आवयोस्त्रायस्वेति वकुं चन्द्रभानू कुण्डलरूपेण शरणं  
श्रितो ॥१४४॥

हीसु० 'श्रिया'भ्यश्चून्त मया समग्रा नवद्वयद्वीपमहीमहेलाः ।

इतीव वकुं जगतः स्म धत्ते सुरीस्त्र( श्र )वःसङ्गिनवाङ्ग्युगमम् ॥१४०॥<sup>3</sup>

( १ ) लक्ष्म्या । ( २ ) पराभूताः । ( ३ ) अष्टादशद्वीपानां महीसमुत्पन्नवनिताः । "नवद्वयद्वीप-  
पृथग्जयश्रिया"मिति नैषधे । ( ४ ) श्रवणयुगलमङ्गतनवाङ्ग्दद्वन्द्वम् । "कर्णान्तरुत्कीर्ण-  
गभीरलेखः किं तस्य सङ्घृतैव नवा नवाङ्गः" इति नैषधे ॥१४०॥

हील० मयाष्टादशद्वीपाङ्गनाः अभिभूताः । इति वकुं या देवी श्रोत्रयोर्नवसङ्घृत्याकद्वयं धत्ते ॥१४३॥

हीसु० नीलोत्पले कर्णयुगे चकासांबभूवतुः 'स्त्रैणमणेः सुराणाम् ।

'युयुत्सुनी तन्नव( य )नोत्पलाभ्यामिव प्रतिस्पर्धितया'भ्युपेते ॥१४१॥

( १ ) सुराणां स्त्रीणां समूहे रत्नभूतायाः । ( २ ) योद्धुमिच्छुनी । ( ३ ) देवीविलोचनकमलाभ्याम् ।  
( ४ ) मिथः स्पर्धनशीलतया । ( ५ ) आगते ॥१४१॥

हील० कर्णयुगस्थे नीलोत्पले भातः स्म । उत्त्रेत्रे एवोत्पले ताभ्यां सह योद्धुकामे इवागते  
॥१४५॥

हीसु० 'अभ्यस्यतास्याः 'स्त्र( श्र )वसी मनोभूधनुधीरणेव धृते शरव्ये ।

न चेद्दवेतां कथम् न रालेऽनयोर्विनीले कमले 'कलम्बौ ॥१४२॥<sup>4</sup>

( १ ) अभ्यासं कुर्वतः । ( २ ) देवीश्रवणौ । ( ३ ) वेध्ये । ( ४ ) मध्ये । ( ५ ) शरव्ययोः ।  
( ६ ) बाणौ । ( ७ ) नीलोत्पलौ( ले ) । "कर्णयोः कुण्डले नीलोत्पले च" । नैषधे दमयन्ती-  
शृङ्गाराधिकारे दृश्यते ततोऽत्रापि ॥१४२॥

1. हीलप्रती हीमु० यथासंख्यमेतयोः १३९-१४०तमश्लोकयोरेषोऽनुक्रमः १४४-१४३, १४३-१४२ । 2. इति कर्णान्तरुत्तनवाङ्गः  
हील० । 3. इति कण्डले हील० । 4. इति कर्णयोरुत्पले हील० ।

- हील० अस्याः श्रवसी । उत्प्रेक्ष्यते । अभ्यासं कुर्वता कामधनुदधीरण वेध्ये मणिडते एव । चेन्त तहि  
अनयोर्मध्ये कजबाणौ कथं वर्तते ॥१४६॥
- हीसुं० कटाक्षबाणांग्रगुणांग्रणीय ईस्वःसुभ्रुवो भ्रूः ४कुटिलीभवन्ती ।  
धनुर्लंता ५श्रीसुतधन्विनेव ६प्रसाधिताभात्त्रिजगज्जयाय ॥१४३॥  
( १ ) सज्जान् । ( २ ) विधाय । ( ३ ) देव्याः । ( ४ ) वक्रा जायमाना । ( ५ ) मदन-  
धानुषेन । ( ६ ) सज्जीकृता ॥१४३॥
- हील० देवीभ्रूभास्ति । उत्प्रेक्ष्यते । कटाक्षबाणान्सज्जान् कृत्वा कामेन जगज्जयार्थं धनुः प्रगुणीकृतम्  
॥१४७॥
- हीसुं० १उज्जृभवक्त्राम्बुजमन्दिराया २लीलाप्रवालोऽयमिवेऽन्दिरायाः ।  
३उसा ४तया वा ५फलिनीव ६भालाजिरे विरेजे ७सुरसुभ्रुवो भ्रूः ॥१४४॥  
( १ ) देव्याः विकसितवदनकमलवसतेः । ( २ ) ऋडाकृते पङ्कवः । ( ३ ) लक्ष्म्याः । ( ४ )  
प्ररोपिता । ( ५ ) श्रिया । ( ६ ) प्रियङ्गुलता । ( ७ ) ललाटस्तप्राङ्गणे । ( ८ ) देव्याः ॥१४४॥
- हील० भ्रू रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । यन्मुखस्थलक्ष्म्यास्तमालसालपङ्कवः । पुनस्तया भालाङ्गणे रोपिता प्रियङ्गुलता  
॥१४८॥
- हीसुं० १मिथो २मुनीन्द्रेण ३मृथे ४मनोभूभूमीपति ५र्जर्जस्तिङ्गयष्टिः ।  
६सुपर्वसुभ्रूभ्रुवमा ७श्मगर्भयष्टिमिवा ८लम्बकृते ९ततान् ॥१४५॥  
( १ ) परस्परम् । ( २ ) हीरविजयसूरिशक्रेण । अपरवर्णनसमये मा वर्णनीयनायको विस्मृतः  
स्यादिति तदन्तराले मुनीन्द्रपदोपादानम् । यथा नैषधेऽपि कुणिडनपुरवर्णनाधिकारे - “पयसा  
नैषधशीलशीतल”मिति । ( ३ ) सङ्ग्रामे । ( ४ ) स्मरनृपः । ( ५ ) भग्नास्थिपुञ्जा वपुर्लंता  
यस्य । ( ६ ) देवीभ्रुवम् । ( ७ ) मरकतमणिमयदण्डम् । ( ८ ) शरीराधारकृते । ( ९ ) चकार  
॥१४५॥
- हील० श्रीहीरविजयसूरिणा सह युद्धे जर्जरीभूतां भ्रूरूपाम् । उत्प्रेक्ष्यते । आधारार्थं मरकतमयं दण्डं कामः  
कृतवान् ॥१४९॥
- हीसुं० १नीलारविन्देन २पुरा ३प्रणीय दृशं त्रिदश्याः ४सरसीजजन्मा ।  
५किञ्चल्कवृन्दैर्वृदने ६तदीये ७प्रणीतवान्भ्रूलतिकामि ८वास्याः ॥१४६॥  
( १ ) कुवलयेन । ( २ ) पूर्वम् । प्रथमम् । ( ३ ) कृत्वा । ( ४ ) विधाता । ( ५ ) तत्कुवलयकेसर-  
निकौः । ( ६ ) देवीवदने । ( ७ ) चकार । ( ८ ) देव्याः ॥१४६॥
- हील० धाता नीलकमलेन नेत्रे कृत्वा पश्चात्केसरैर्भूलतामकरेत् ॥१५०॥

- हीसुं० 'संस्पर्दिधभावं दधता स्वलक्ष्म्या खण्डेन चण्डेतरकान्तिनेव ।  
जग्राह योद्धुं त्रिदशीललाटं भूयुगमकायां करवालयष्टिम् ॥१४७॥  
( १ ) स्पर्द्धनशीलताम् । ( २ ) निजश्रिया । ( ३ ) अदर्थेन । ( ४ ) शीतकान्तिना । चन्द्रेणोत्थर्थः ।  
( ५ ) युद्धं विधातुम् । ( ६ ) देवीभालम् । ( ७ ) कर्तृभूद्धन्दरूपाम् । ( ८ ) खडगलताम् ।  
॥१४७॥
- हील० संस्प० स्वशोभया स्पर्द्धावताऽदर्थचन्द्रेण सह योद्धुम् । उत्प्रेक्ष्यते । त्रिदश्या भालं भूयुगमेव कायः  
शरीरं यस्यास्तादृशीं निशितनिर्स्त्रिशलतां ग्रहयांबभूव ॥१५१॥
- हीसुं० स्परं रतिप्रीतिनितम्बिनीभ्यां सहा भिषेकुं भुवनाधिपत्ये ।  
यद्वालदम्भाज्जलजासनेन मन्ये प्रणिन्ये कलधौतपटुः ॥१४८॥  
( १ ) रतिप्रीतिसंज्ञाभ्यां प्रियाभ्याम् । ( २ ) समम् । ( ३ ) त्रैलोक्यराज्ये । ( ४ ) अभिषेकं  
कर्तुम् । ( ५ ) देवीललाटच्छलात् । ( ६ ) ब्रह्मणा । ( ७ ) अहमेवं जाने । ( ८ ) कृतः । ( ९ )  
स्वर्णपटुकः ॥१४८॥
- हील० रतिप्रीतिभ्यां सह श्रीनन्दनं त्रैलोक्यराज्ये अभिषेकुं, अभिषेकं कर्तुम् । अहमेवं मन्ये यल्लाटछिदाता  
वेधसा काञ्छनपटुको विनिर्मित इव ॥१५२॥
- हीसुं० त्रैलोक्यमा क्रम्य पराक्रमेण सुखं निषत्र(ण)स्य इष्टव्यजस्य ।  
व्यथत्त वेमनः फलकं विधाताऽवष्टम्भनायेव तदीयभालम् ॥१४९॥  
( १ ) पराभूय । ( २ ) बलेन । ( ३ ) सुखेनोपविष्टस्य । ( ४ ) चकार । ( ५ ) स्वर्णस्य । ( ६ )  
पृष्ठदानाय । ( ७ ) देवीसम्बन्धिललाटम् ॥१४९॥
- हील० तदीयभालं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । मीनकेतोः पृष्ठप्रदानार्थं हेमफलकम् ॥१५३॥
- हीसुं० अधृष्यमन्विष्य यदीय भालं द्वेष्यं निःजं(ज)स्पर्दिधतया जिगीषत् ।  
अद्वामृतांशुः प्रपलात्य्य पूषद्विषो जटाजूट इव प्रविष्टः ॥१५०॥  
( १ ) अनाकलनीयम् । ( २ ) दृष्ट्वा । ( ३ ) वैरिणम् । ( ४ ) स्वस्य स्पर्द्धनशीलत्वेन । ( ५ )  
जेतुमिच्छत् । ( ६ ) अदर्थचन्द्रः । ( ७ ) नंष्ट्वा । ( ८ ) ईश्वरस्य ॥१५०॥
- हील० अधृष्य० । यस्या भालं जेतुमिच्छत्तद्वादर्थचन्द्रो नंष्ट्वा शर्वजटायां प्रविष्ट इव ॥★१५४॥
- हीसुं० अद्वैतलक्ष्मीकमवेक्ष्य यस्या भालं तदीयश्रियमीहमानः ।  
विश्वाम्भरस्येव पदे लगित्वा तां मार्गयत्यर्भ इवादर्थचन्द्रः ॥१५१॥  
( १ ) असाधारणशोभाभासुरम् । ( २ ) दृष्ट्वा । ( ३ ) भालसम्बन्धिशोभाम् । ( ४ ) काङ्क्षन् ।

1. इति भ्रवोद्द्युयम् हील० । 2. ऊणिन्ये हीमु० । 3. निजं प्रति स्पर्दितया जिगीषत् हीमु० ।

(५) जगत ईप्सितदानेन पोषकस्य कृष्णास्य । (६) चरणे । (७) विष्णुपदे विलग्य । (८) भालश्रियम् । (९) याचति । (१०) बालक इव ॥१५१॥

हील० बालश्रन्दस्तद्वालशोभां दृष्ट्वा विष्णुपदे विलग्य तां मार्गयतीव ॥१५५॥

हीसुं० ॑यद्वाललक्ष्म्या॒धरितोऽर्द्धचन्द्रस्तैत्साम्यमिच्छन्व॑रुणालयस्थाम् ।

अभीष्टदां॑ कामदुधां॑ प्रतीचीमस्तच्छलाद्याति किमा॑रित्सुः ॥१५२॥<sup>१</sup>

(१) देवी ललाटलक्ष्म्या । (२) धिङ्कृतः । (३) देवीभालशोभासादृश्यम् । (४) वरुणगृहवासिनीम् । (५) कामधेनुम् । “ऋतोः कृते जाग्रति वेत्ति कः कवि प्रभोरपां वेशमनि कामधेनवः” इति नैषधे । (६) पश्चिमदिश्या(शा)म् । (७) आराद्वूमिच्छुः ॥१५२॥

हील० अर्धचन्द्रोऽस्तच्छलात्प्रतीचीं याति । उत्प्रेक्ष्यते । वरुणगृहवासिनीं कामधेनुमाराधयितुमिच्छुः ॥१५६॥

हीसुं० ॑यदाननश्रीजितमै॒ब्जबन्धोः पद्मं॑ करक्रोड इवै॒त्य बन्धोः ।

॑निर्वेद॑मावेदयते स्वमेतत्पुरो भ्रमद्व॑ङ्गणाणक्वणेन ॥१५३॥

(१) देवीवदनलक्ष्मीपरिभूतम् । (२) सूर्यस्य । (३) हस्तोत्सङ्घम् । (४) आगत्य । (५) पराभवोद्भूतखेदम् । (६) कथयति । (७) भ्रमसंगुञ्जितेन ॥१५३॥

हील० मुखश्रिया जितं पद्मं मित्रस्य सूर्यस्य स्वं दुःखं वक्ति[स्म] ॥१५७॥

हीसुं० ॑वक्रं त्रिदश्या॑ विजितात्मदर्शनिशामर्णि प्रेक्ष्य॑ हिरण्यगर्भः ।

सृष्टि॑ सिसृक्षुः किं॑मदोऽनुरूपां॑ विनिर्मिमीतेऽ॑म्बुजहस्तलेखम् ॥१५४॥

(१) मुखम् । (२) शोभाभिभूतदर्पणपार्वणेन्दुम् । (३) धाता । (४) कर्तुमिच्छुः । (५) अस्य देवीवदनस्यानुरूपां तुल्याम् । “अदःसमित्संमुखवैरियौवतत्रुटद्वुजा कम्बुमृणालहारिणी” इति नैषधे । (६) करोति । (७) कमलानां हस्तलेखम् । ‘हस्तोलक’ इति प्रसिद्धः ॥१५४॥

हील० जितम(मु)कुर चन्द्रं मुखं दृष्ट्वा विधिस्तसदृशरूपं शिक्षितुम् । किमुत्प्रेक्ष्यते । कमलैर्हस्तलेखम् । लोकोक्त्या ‘हथोलो’ । अकरोत् ॥१५८॥

हीसुं० मन्ये॑ कुमुदन्धुरिदं॑मृगाङ्कमुखीमुखीभूय॑ सुखीबभूव ।

॑नियन्त्र्य य॑त्तेन नमः॑ स्वदस्युं॑ प्राक्षेपि पृष्ठे॑ स्फुटकेशकायः ॥१५५॥<sup>२</sup>

(१) चन्द्रः । (२) इयं चासौ मृगाङ्कमुखी च । तस्या मुखं भूत्वा । “इदं नृप-प्रार्थिभिरुज्जितोऽर्थिभि”रिति नैषधे । (३) निश्चिन्तो जातः । (४) बद्वा । (५) यस्मात्कारणात् । (६) राहुः निजशत्रुः । (७) प्रक्षिप्तः । (८) प्रकटं कुन्तलसूपवपुर्यस्य ॥१५५॥

1. इति दे[वीभालम्] हील० । 2. इति वदनम् हील० ।

- हील० [चन्द्र] एतस्या मुखरूपे भूत्वा सुखी जातः । यद्यस्मातेन बद्ध्वा राहुः पृष्ठभागे स्वरिपुत्वा-  
त्रक्षिसः । बद्ध्वा क्षिसः ॥१५९॥
- हीसुं० 'अहो ३महीयान्मृहिमा ४सुपर्व्वसारङ्गचक्षुश्चिकुरच्छटायाः ।  
निर्जित्य यस्मात्पृशुनापि पश्चाद्दीकरौद्या ५चमरान्प्रतीपान् ॥१५६॥
- ( १ ) अहो इत्याश्रये । यथा नैषधे - "अहो अहोभिर्महिमा हिमागमे" इति । ( २ ) अतिशायी ।  
( ३ ) माहात्म्यम् । ( ४ ) देवीकुन्तलकलापस्य ।" तटान्तविश्रान्तरङ्गमच्छटे" ति नैषधे । छटा  
श्रो ( श्रो )णीति तद्वत्तिः । ( ५ ) चमरगवा कर्ता( अर्णा ) । तिर्यङ्गमात्रः पशुरुच्यते । तया  
नैषधेऽपि "पशुनाप्यपुरस्कृतेन तत्तुलनामिच्छतु चापरेण कः" । ( ६ ) कारयति स्म । ( ७ ) या  
देवी । ( ८ ) कच्छटाः । ( ९ ) स्वस्पर्द्धिनः ॥१५६॥
- हील० [अहो०। देवीकेश]पाशस्य महान्महिमा विद्यते । यदसौ देवी पशूनां पृष्ठभागे चमरान् बधाति स्म  
॥१६०॥
- हीसुं० स्पर्द्धा विधत्ते १सुमनःसुकेशीकेशच्छटाभिर्यदसौ २कलापः ।  
३अनौचितीयं तमितीव ४केकी ५जहाति कोपादपि ६पश्चभूतम् ॥१५७॥
- ( १ ) शासनसुराङ्गनाकेशश्रेणिभिः । ( २ ) केकिपिच्छम् । ( ३ ) न योग्यता । "सानौचिती  
वेतसि नश्चकास्तु" इति नैषधे । ( ४ ) मयूरः । ( ५ ) त्यजति । ( ६ ) पक्षः सहायः । पिच्छम् ।  
"पक्षो मासाङ्गे पिच्छे विरोधे देहाङ्गे सहाये राजकुञ्जे" इत्यनेकार्थः ॥१५७॥
- हील० असौ कलापः देव्याः केशपाशेन सह स्पदर्धा धते । इदमनुचितम् । इति कृधा पक्षः-सहायष्णिः पि)च्छं  
च तत्समानमपि केकी त्यजति ॥१६१॥
- हील० → श्रीस्पर्द्धया यच्चिवकुरान्विजेतुं व्यवस्यमानान्स्वमवेत्य बर्हः ।  
त्रासात्प्रणश्यन्निव नीलकण्ठः पृष्ठे प्रविष्टः शरणाभिलाषी ॥१६२॥ इति केशपाशः ॥←  
कलापो मयूरं शरणीचकार ॥१६२॥
- हीसुं० १सीमन्तदण्डः २सुरपद्मदृष्टे रूप्न्मादयामास मनांसि ३यूनाम् ।  
४सहावरोधश्चरतः स्मरस्य ५व्यक्तीभवन्ती ६पदवी किमेषा ॥१५८॥
- ( १ ) केशेषु वर्त्मदण्डाकृतित्वाद्विष्टः । ( २ ) देव्याः । ( ३ ) उन्मादश्चित्तविप्लवस्तद्युक्तानि  
करोति । ( ४ ) तरुणानाम् ( ५ ) स्त्रीभिः सार्द्धम् । अवरोधशब्देनात्र पतीग्रहणम् । यथा नैषधे  
स्त्रीवर्णे- "स्मरावरोधभ्रममावहन्ती" ति । ( ६ ) प्रकटा जायमाना । ( ७ ) जनसञ्चारेणामार्गोऽपि  
मार्गः स्यात् । ( ८ ) एषा प्रत्यक्षलक्ष्यमाना( णा ) सीमन्तरूपा ॥ १५८ ॥
- हील० सीमन्तदण्डो वयस्थानां मनांसि उन्मादयामास । उत्प्रेक्ष्यते । अन्तःपुरेण सह सञ्चरतः स्मरस्य स्फुटो  
मार्गः । यतो घनजलसञ्चारेण मार्गः स्यादिति ॥१६३॥

- हीसु० १प्रेक्ष्य स्वदाहे ज्वलितास्त्रमालां २जेयं कथं ३विश्वम् थो मयेति ।  
४पितामहोऽदान्मदनस्य तस्याः ५सीमन्तदण्डं ६विमनायितस्य ॥१५९॥  
( १ ) दृष्टवा । ( २ ) शम्भुना स्वस्य भस्मीकरणानन्तरे । ( ३ ) भस्मीभूतां प्रहरणश्रेणीम् ।  
( ४ ) जेतुं शक्यम् । ( ५ ) प्रहरणानि विना । ( ६ ) स्वजनकजनको विधाता च । ( ७ )  
दत्तवान् । ( ८ ) देवीसीमन्तरूपं दण्डरत्नम् । ( ९ ) विस्फूर्णनस्कीभवतः । “चिराय तस्ये  
विमनाअ( य )पानया” इति नैषधे ॥१५९॥
- हील० ज्वलिताख्येण मया जगत्कथं जेयमिति विमनस्कीभूतस्य स्मरस्य ब्रह्मा पौत्रप्रेम्णा दण्डरत्नं दत्तवल्न  
॥१६४॥
- हीसु० सिन्दूरपूर प्रचितेन तस्याः सीमन्तदण्डेन शिरोरुहाली ।  
विद्युद्धिलासेन पयःप्रपूर्णः ( १ )पयोमुचां पद्मिक्तरिव व्यराजत् ॥१६०॥  
( १ ) पूरशब्दो लक्षणाया समूहवाची । ( २ ) व्यासेन । ( ३ ) केशश्रेणी । ( ४ ) तडिद्वितानेन ।  
( ५ ) सलिलसम्पूरितमेघानाम् । ( ६ ) मालिकेव ॥१६०॥
- हील० सिन्दूरपूरितेन सीमन्तदण्डेन कच्छटा भाति स्म । यथोन्नतजीमूतपद्मिक्तव्यिद्धिजृम्भतेन  
विराजते ॥१६५॥
- हीसु० १प्रफुल्लमल्लीकुसुमावनद्वयत्केशपाशः २स्फुरयाम्बभूव ।  
३अपूजि पुष्पैरिव ४चामरादिद्विषज्जयस्यावसरे ५दिगीशैः ॥१६१॥  
( १ ) विकचमल्लिकापुष्पग्रथितवेणी । ( २ ) भ्राजते । ( ३ ) कुसुमैर्चिता । ( ४ ) चामर-  
कलापप्रमुखवैरिविजयप्रस्तावे । ( ५ ) दिक्पतिभिः ॥१६१॥
- हील० प्रफु०। मलीपुष्परचितः केशपाशो भाति । उत्प्रेक्ष्यते । चामरादिजये कृते सति दिक्पालैः पुष्पैः  
पूजितः ॥१६६॥
- हीसु० १सन्दर्भितान्तर्मुचकुन्दमल्लीकच्छटायाः कपटादमुष्प्याः ।  
२वक्त्रेन्दुना ३मैत्र्यविधित्सयेव ४ताराङ्किते५यं कुहुराऽजगाम ॥१६२॥  
( १ ) ग्रथिता अन्तर्मध्ये कुन्दमल्लिका अर्थात्तकुसुमानि यस्यां तादृश्यां केशश्रेणीमिषात् ।  
( २ ) देवीवदनचन्द्रेण सार्वम् । ( ३ ) सरिखितायाः कर्तुमिच्छ्या । ( ४ ) ग्रहनक्षत्रतार-  
कल( क )लिता । ( ५ ) अमावासीव( स्या ) । ( ६ ) समेता ॥१६२॥
- हील० मुचकुन्दमल्लीकुसुमकलितकेशपाशमिषात्कुहुः । उत्प्रेक्ष्यते । मुखेन्दुना सह मैत्रं कर्तुमागता ॥ १६७॥
- हीसु० १वेणीकृपाणा २भुजकर्णपाशा नासा३निषङ्गा ४नयनाशुगा च ।  
भूकार्मुका५चारुनितम्बचक्रा६स्मरास्त्रशालेव सुरी चॄकाशे ॥१६३॥  
( १ ) कबरीरूपखड्गा । ( २ ) बाहू कण्ठो च पाशा यस्याम् । ( ३ ) तूणीरः । ( ४ ) नेत्रबाणा

1. विश्वमिदं हीमु० । 2. इति सीमन्तः हील० । 3. इति केशपाशे कुसुमस्वना हील०। 4. ०कासे हीमु० ।

धनुः (५) विशिष्टं नितम्ब एव रथाङ्गं यस्याम् । (६) मदननृपस्यायुधगृहम् ॥१६३॥

हील० भुजौ कर्णौ पाशौ यस्यां तादृशी कामस्य शत्रुशालेव सुरी शुशुभे ॥★१६८॥

हील०→**विभूषणैः** स्वर्णमणीप्रणीतैर्वसन्तलक्ष्मीरिव नैकपुष्पैः ।

**विदिद्युते सा मलयानिलैरिवामोदैर्दिशः** सौरभयन्त्यहर्निशम् ॥१६९॥←

काञ्चनरत्नघटिताभरणैः सा भाति । यथा वसन्तो विविधपुष्पैः शोभते । किंकुर्वन्ती(ती)?। स्वाभाविक-  
कायसुरभिताभिर्दिशः सौरभयन्ती । यथा दक्षिणात्यवायुभिर्दिशः सुगच्छीकरोति ॥१६९॥

हील०→**दिव्यैर्दुर्कूलाभरणैर्विभूषिता सम्पूरयन्ती जगतामपीहितम् ।**

आकृष्य भाग्येन विभोर्मस्त्वता नीता पुरस्तादिव देवता बभौ ॥१७०॥←

देवता बभौ । उत्प्रेक्ष्यते । सूरीन्द्रभाग्येनाकृष्य आनीता कल्पवल्ली ॥१७०॥

हीसुं० **‘निखिलदिविषदो( द्यो )षालेखाकुमुद्वनकौमुदी,**

**‘श्रिततनुलता तद्बाग्यश्रीरिवा॑मरसुन्दरी ।**

**‘नखरशिखरादारभ्येति क्रमा॑च्चिकुरावधि,**

**‘प्रथितसुषमा॑ मा ]शिलष्यन्ती पुरः शुशुभे प्रभोः ॥१६४॥**

इति पं. देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये शासनदेवता समागमन-  
तत्सर्वाङ्गवर्णनो नामाष्टमसर्गः ॥ ग्रन्थाग्रं ॥२२५॥

( १ ) समस्तसुखविनितापडिक्तकैरवकाननेन आह्नादचन्द्रचन्द्रिका । ( २ ) अङ्गीकृता शरीरयष्टिर्यया ।

( ३ ) तस्य सूरीन्दस्य भाग्यलक्ष्मीरिव । ( ४ ) शासनदेवता । ( ५ ) चरणनखाग्रात् । ( ६ )  
केशपाशं यावत् । ( ७ ) त्रिजगद्विख्यातां सातिशायिनीं शोभामाश्रयन्ती ॥१६४॥

इत्यष्टमः सर्गः ॥ ग्रन्थाग्रं ॥३२५॥

हील० सकलस्वर्गाङ्गनानां लेखा श्रेणी सैव पङ्कजवनं तत्र चन्द्रज्योत्स्ना सदृशी पुनः सूरीशभाग्यलक्ष्मी-  
[रिव चरणनखा]दारभ्य केशपाशान्तं यावत्सातिशयशोभां पुष्पन्ती सा शासनामरसुन्दरी सूरिपुरः  
शुशुभे इति ॥१७१॥

हील०→**यं प्रासूत शिवाह्वासाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः**

पुत्रं कोविद सिंहसी( सिं )हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।

तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक्-

सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गोऽजनिष्ठाष्टमः ॥१७२॥←

इति श्रीपं.सी(सिं)हविमलगणिशिष्यपं.देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये ध्यान-शास-  
देवतागम-[ देवीः ?]सर्वाङ्गवर्णनो नामाष्टमः सर्गः ॥



## परिशिष्ट-१

( भूमिका )

(पण्डित श्री देवविमलगणिना पोताना स्वहस्ते खरडारूपे लखायेली 'हीरसुन्दर'- महाकाव्यनी प्रति उकेलीने अत्रे रजू करी छे. प्रति कुल छ पत्रनी छे. बनता प्रयत्ने सम्पूर्ण सर्ग-पाठान्तरे साथे उकेलवा प्रयत्न कर्यो छे. मूळ श्लोको व्यवस्थित अने सुधड होई उकेली शकाया छे. ते श्लोकोना ज पाठान्तरे तरीके हाँसियामां चारे बाजु लखाण छे. प्रतिना पत्रनी जमणी बाजुना हाँसियाना अक्षरे कपायेला होवाथी तेनी नकल थई शकी नथी. ते सिवाय पण ज्यां सम्पूर्ण स्पष्टता थई नथी त्यां जग्या खाली राखीने अथवा प्रश्नचिह्न मूकीने जेवुं ऊकल्युं तेवुं मूक्युं छे. अमारी पासे प्रतिनी झेरेक्षमात्र छे. पण मूळ प्रति तपासतां आथी पण वधु सारुं परिणाम नीपजे तेवी शक्यता छे.

पाठान्तरेमां कर्त्ताए नंबर आप्या छे. पण ते मूळ श्लोकोनी साथे बंधबेसता आवता नथी. घणा बधा श्लोको, कोनां पाठान्तर छे ? ते निश्चित थई शक्युं नथी. कदाच एकज वात ने सविस्तर कहेवा माटे श्लोको बनाव्या होय एवुं समजाय छे.

प्रतिना पत्र ३/२ सुधी पाठान्तरेमां ६४थी आगळ सुधी अंको आप्या छे. वच्चे क्यांक-क्यांक घणा श्लोकोमां १-२, एवा पण अंको आप्या छे. पछी पत्र ३/२ थी आगळ १ थी ३६ अने १ थी २२ एम सळळं श्लोकांक आप्या छे. ए श्लोकोमां पण घणां मूळ श्लोकोनां पाठान्तर तरीके मेळवी शकाया छे. शेष तो अर्थ विस्तार होय एम ज समजाय छे.

मूळ श्लोकोमां शब्दो उपर पण क्यांक-क्यांक कर्त्ताए टिप्पण करी छे. ते, ए ज पत्रमां टिप्पणरूपे मूळी छे.

प्रथम सर्ग पूर्ण थया बाद १८ पद्धिक मां १ थी २३ श्लोको छे. तेनो छंद बदलाय छे तेथी अने आ पुस्तकमां मुद्रित हीरसुन्दरना द्वितीयसर्गना छंद अने एना श्लोकोमां समानता छे तेथी घणे भागे ते बीजा सर्गनो अंश होवानुं समजी शकाय छे.

हीरसौभाग्य-मुद्रित, हीरसुन्दर, हीरसौभाग्य उपरनी लघु टीका अने खरडारूप आ प्रत-आ चारनी समानता तथा तरतमतानी एक तालिका बीजा विभागमां मूकवानो अत्योरे ख्याल छे.)

### ईडरसत्कहीरसुन्दरकाव्यप्रतिगतवाचना

श्रेयांसि पुष्णातु स पाश्वदेवो विश्वत्रयीकलिपतकल्पशाखी ।

पिण्डीभवद्यस्य विभासते स्म यशःप्रतापद्वयमिन्दुभानू ॥१॥

उदीतपीयूषमयूखलेखे-वाजीहृदया कविदृक्चकोरन् ।

तमस्तिरस्कारकरीं सुरीं तां नमस्कृतेगोचरयामि वाचम् ॥२॥

यददृष्टिपातादपि मन्दमौलि-र्विशेषविद्येखरतामवाप्य ।

गुरुं सुराणामधरीकरोति र्मयि प्रसन्ना गुरवो भवन्तु ॥३॥

'व वृत्तमेतन्मुनिमेदिनीन्दोः क्षेषोमुखी( थी ) वा तनुगोचरा मे ।  
 'मोहादिवाहं निखिलाभ्वीथी प्रमातुमीहेऽद्गुलिमण्डलेन ॥४॥  
 योऽमन्दगन्धैरिव गन्धसारे दिशो यशोभिः सुरभीकरोति ।  
 तस्यैष काव्यं प्रथयामि नाथी-'देवीतनूजन्मयतिक्षितीन्दोः ॥५॥  
 'ऋडन्मस्नागरानागयुग्मै-रिव त्रिलोकी सुषमां दधानः ।  
 इलातलालङ्कृतिस्ति जम्बू-द्वीपो महीमण्डलमध्यवर्ती ॥६॥  
 'यं स्तो( स्तौ )ति रङ्गदगजवाहिनीकं कुमुद्वतीकान्तसितातपत्रम् ।  
 गभीररावैरिह सार्वभौमं वैतालिकालीव पयोधिवेला ॥७॥  
 'द्वीपश्रियाः श्वेतमरीचिच्छण्ड-रोचिर्द्वयीमण्डलकुण्डलायाः ।  
 स्म द्योतते तारकतारहार-स्तनान्तरे रत्नमिवामरादिः ॥८॥  
 'अन्तः प्रतिच्छायिततारमुक्ता-मणीमरीचिस्फुरदिन्दचापा ।  
 'काञ्छीपदे द्वीपमहीन्दिरायाः सौवर्णकाञ्छीव चकास्ति सालः ॥९॥  
 'पुन्नागनारंगरसालसाल-निष्ठातिपौधप्रसरत्रवाहः ।  
 द्वीपेन्दिराया इव रत्नसानुः खेलायितुं पद्मभुवा व्यथायि ॥१०॥  
 ज्योर्तीषि यस्मिन्सुरराजशैलं प्रदक्षिणप्रक्रयणं नयन्ति ।  
 सुवृत्तकल्याणमयः क्षमाभृ-त्सुर्थो महात्मायमितीव बुद्धेः ॥११॥  
 'प्रदक्षिणीभूतवतां ग्रहणां वृन्दानि वृन्दारकसानुमन्तम् ।  
 व्याजेन जाने प्रसरत्करणा-मध्यर्थयन्ते तपनीयजातम् ॥१२॥  
 जागर्ति तस्मिन्भरताभिधानं क्षेत्रक्षितिश्रीतिलकायमानम् ।  
 उच्चत्वं सारं विधिनेव जम्बू-द्वीपस्य निक्षिसमिहैकदेशे ॥१३॥  
 'वैताळ्यशैलेन विभक्तमन्त-र्विद्योतते भारतभूमिपीठम् ।  
 सीमन्तदण्डेन यथा सुकेशी-कैश्चं यमीरङ्गितरङ्गदेश्यम् ॥१४॥  
 वैताळ्यभूमीधविभक्तभाग-द्वयस्य दम्भादिव भारतस्य ।  
 'द्वीपावनीपालमुपेत्य लक्ष्या स्वर्णगलोकौ विजितौ भजेते ॥१५॥  
 क्रीडारसादुत्तरलीभवन्त्या यद्भारताभ्योनिधिनन्दनायाः ।  
 'स्वसं शिरसः सितमुत्तरीय-मिवास्ति विस्तारिनभःश्रवन्ती ॥१६॥  
 तस्मिन् श्रिया 'स्वर्गसमृद्धिगर्वं निर्वासयनूजर्जरनीवृदास्ते ।  
 रन्तुं रमायाः पुरुषोत्तमेन लीलालयोऽप्योजभुवेव सृष्टः ॥१७॥  
 'स्फुरन्मणीकर्मविनिर्मितान्त-र्निकेतना यत्र बभुर्नगर्यः ।  
 अनै( ने )करूपैरमरावती य-मुपेयुषी कौतुकिनीव भूमौ ॥१८॥  
 'यत्राबभुर्भूललनाललाट-ललामलीलायितकेलिशैलाः ।  
 इवेयिवादेशदिदृक्षुरिन्द्र-शैलः स्वमूर्तीर्बहुधा विधाय ॥१९॥

“अशेषदेशेषु विशेषितश्री-यों मञ्जिमानं वहते स्म देशः ।  
ज्योतिः समुद्यत्परिवेषरेखं मुक्ताकलापेष्विव मध्यरत्नम् ॥२०॥

यत्राभितश्चन्दनपत्रभङ्गि-समुक्तसदगन्धफलीविलासि ।  
शैलद्वयं शेखरचुम्बिजम्बु-क्षितिस्तनद्वन्द्वमिव व्यराजन् ॥२१॥

“यत्रोम्मदिष्णुद्विपदानवारि-सिक्तद्वुमः सानुमदन्ववायः ।  
इयत्तदा मातुमिवान्तरिक्ष-मुतुङ्गशृङ्गैवगाहते स्म ॥२२॥

“क्षताहितोर्व्वीधरवाहिनीकाः कासालिवालव्यजनोपवीज्याः ।  
माकन्ददम्भादिह सानुमन्तो भूभृत्स्पयाच्छ्रिमिवावहन्ते ॥२३॥

“विद्युन्मणीमण्डलमण्डिताङ्गा कादम्बिनीकैतवतः स्वमौलौ ।  
पटीव भिन्ना जनिका विनीला यत्रादिलक्ष्म्या कलयाम्बभूवे ॥२४॥

निरावलम्बाम्बरवीङ्ग्यासौ श्रान्तः स्थितोऽम्भोद इवादिशृङ्गम् ।  
मरन्दलुभ्यमधुपौघघोषा न मेरवो मेचकयाम्बभूवुः ॥२५॥

यत्रोन्नमद्वारिदर्विर्मिताङ्गाः ३३शिखाकरोपात्ततिडित्कृपाणाः ।  
स्वशात्रवं गोत्रभिदं निहन्तुं मन्ये व्यवस्यन्ति धराधरेन्द्राः ॥२६॥

३४श्रान्तातिवाहाद्विगतावलम्बे-उम्बरेम्बरद्वीपवती चिरेण ।  
भूमीमिवाभ्येति इरज्जराम्भो-दम्भान्नभस्तो नगवर्त्मनेह ॥२७॥

मन्दारकुन्दागुरुगन्धसार-राजीविराजदिरिराजलक्ष्मीः ।  
यस्मिन्निभेनेव इरज्जराणां मुक्ताकलापं कलयाङ्गकार ॥२८॥

यस्मिन्समाक्रम्य समुद्रकाञ्ची-चक्रं इरनिर्जर्वरवारिधाराम् ।  
कुन्देन्दुकादम्बकदम्बकान्तां भूमीभृतः कीर्त्तिमिवोद्घहन्ति ॥२९॥

प्रचण्डचण्डद्वयुतिदीमिताम्य-तनूभिरुर्व्वीधरथोरणीभिः ।  
यस्मिन्निरन्निर्जर्वरवारिधारो-पथेरिव स्वं स्नपयाम्बभूवे ॥३०॥

स्फुरद्विभूतिर्द्विजराजाराजद्-दुर्गाङ्गम्भुस्वाम्युदयत्प्रमोदः ।  
अहीनभूषो वृषभप्रचारो हिरण्यरेता इव अदिव्युते यः ॥३१॥

स्वकन्दरद्वारिविहरिहरि-मृगेन्द्रमन्दधवनितेन शैलाः ।  
इतीव गर्वात्कुदं गिरीणां हुङ्गारावं प्रणयन्ति यत्र ॥३२॥

न्यक्षमाभृद्विजयोद्यतस्य सवाहिनीकस्य महीधरस्य ।  
कुत्रापि इत्कारिद्विरप्रवाहै-भर्जारिभेरि निनदैरिवासे ॥३३॥

कवचिद्बभे बन्धुरभिलपल्ली किरातथात्रीशकृशोदरीभिः ।  
कौतुहलादभूतलमागताभिः खेलायितुं कुण्डलिनीभिरुहे ॥३४॥

1. ०शाली इति टिं । 2. ०तः केलिचलत्कुमारः [?] इति टिं । 3. यो बभासे इति टिं ।

भिलाधिपातां परमाणुमध्या अध्यासत क्वापि परां विभूषाम् ।  
 गारुन्मतोदात्तमरीचिरुच्या: सङ्केतगेहा इव मीनकेतोः ॥३५॥

लक्ष्मीः क्वचित्पुञ्जितपामरीभिः शुभ्राम्बरभिर्भराम्बभूवे ।  
 ज्योत्स्नावदातीकृतकज्जलोर्व्वी-धरस्य शङ्के शिखरावलीभिः ॥३६॥

क्वचिच्चकासे शबराङ्गनाभि-मुक्तासरश्रेणिपरिस्कृ( ष्टृ )ताभिः ।  
 नक्षत्रताराग्रहसङ्गग्रहाभिः कुहूभिरुहेऽङ्गपरिग्रहाभिः ॥३७॥

कुत्रापि कर्णीकृतदन्तपत्रा बभुः शबर्यः श्रितमञ्जुगुञ्जाः ।  
 मिलदब्लाकाजलबालिकाङ्गा इवोन्नम्नेदुरपेघमालाः ॥३८॥ इति

१८नीलोत्पलश्यामलितान्तरालै-र्यस्मिन्विरेजे सरसीसमूहैः ।  
 बिभ्यद्विरेतैरिव सैंहिकेयात् भूमौ दशश्वेतहयैरुपेतम् ॥३९॥

१९शाङ्कदेश्यैः स्मयमानकोशैः सहस्रपत्रैः शुशुभे सरस्सु ।  
 नन्दीसरःश्रीजयिनामिवैतैः २०सरो नृपाणां विशदातपत्रैः ॥४०॥

२१मरन्दलुभ्यन्मधुपानुष्ठङ्गे - हेमारविद्वैः कमला ललम्बे ।  
 महेन्द्रनीलाङ्गितभूषणानां गणैरिवामुच्य तडागलक्ष्म्याः ॥४१॥

२२उत्तालतालं करतालिकाभि-गीति जर्गे क्वापि कुटुम्बिनीभिः ।  
 श्रीनन्दनक्षोणिपुरन्दरस्य जगज्जयोपार्जिज्ञत कीर्तिरुहे ॥४२॥

२३क्वचिच्च्युकूजे कलमानदद्विः फलादैः १कर्णसुधायमानम् ।  
 बालैः प्रभिन्नाङ्गनिकाविनील - केदारलक्ष्म्या इव केलिलोलैः ॥४३॥

२४क्वचिद्विनीला विललास यस्मिन् - केदारभूर्भूधरयुग्मसीम्नि ।  
 उत्तुङ्गपीनस्तनसविधाने महीन्दिराया इव रोमराजी ॥४४॥

२५उन्मादिकादम्बकदम्बकेन कैदारिकेन स्फुयाम्बभूवे ।  
 अन्तर्मिलन्मौक्तिकमालिनेव नीलोत्तरीयेन महीरमायाः ॥४५॥

२६गोपालबालाभिरखेलि लीलाहलीसखं यत्र सुखं सखीभिः ।  
 गीति सृजन्तीभिरनन्यजन्म-महीहिमांशोरिव नर्तकीभिः ॥४६॥

२७कुत्रापिदम्बैनुगम्यमाना गोधुगणैर्दोणदुधा निकुञ्जम् ।  
 यस्मिन्ननीयन्त वनं सुराणां मरुत्कुमारैरिव कामगावः ॥४७॥

२८कुत्रापि दम्बैनुगम्यमाना मरुत्कुमारैरिव गोपबालैः ।  
 गवां गणाः कामदुघोपयेयाः यस्मिन्ननीयन्त वनप्रदेशम् ॥४७॥ पाठान्तरम् ॥

२९सुधासुधासिन्धुसुधांशुलक्ष्मी-मुषां मिषाद्यत्सुरभीभराणाम् ।  
 इवाल्पशेषैः सुकृतैः सुराणां स्वःसौरभेयीभिरहिवतीर्णम् ॥४८॥

१९ यस्मिन्नृणां क्रीडितुभागतानां हंसस्वनैः स्वागतवादिनीभिः ।  
 आदाय पद्मानि तरङ्गहस्तैः सरिद्विरर्थः किम् कलयने मम ॥४९॥  
 २० कुरङ्गनाभीकृतपत्रभङ्गे-निस्तन्दसान्दद्विजचन्द्रिकाङ्गे: ।  
 क्रीडन्महेलावदनारविन्दर्जजे श्रवन्ती शतचन्द्रितेव ॥५०॥  
 खेलायितुं यत्र विलासभाजा-माजगमुषां चन्द्रमुखीसखीनाम् ।  
 चक्राङ्गचक्रध्वनितेन जाने स्म शैवलिन्यः सप्तमाह्यन्ति ॥५१॥  
 २१ निभाल्य फुलद्वलपुण्डरीकं मध्ये प्रवाहं शशभृदध्वमेण ।  
 ज्योत्स्नाप्रियैर्यत्र विमुग्धचित्तै-रभ्राम्यताभ्यर्ण इवामृतार्थम् ॥५२॥  
 २२ श्रेणीभवन्ती कलहंसमाला लीलायते यत्र सरित्प्रवाहे ।  
 निर्दूतमुक्ताफलमालिकेयं श्रिया श्रवन्त्या इव पर्यथायि ॥५३॥  
 २३ उज्जृभिमजाम्बूनदपद्मानिर्य-न्मरन्दनिःस्यन्दपिशङ्गिताङ्गम् ।  
 पयोधरद्वन्द्वमिव श्रवन्ती श्रिया रथाङ्गद्वयमाबभासे ॥५४॥  
 स्ववल्लभं वारिनिर्थिं व्रजन्त्याः कूलङ्गक्षायाः कलहंसशब्दैः ।  
 रणजङ्गणत्रूपुरङ्गाइ-कृतीनां ध्वानैरिवाभूयत यत्र देशे ॥५५॥  
 २५ अशोभि यस्मिन्मितहेमपुष्टै-र्मधुव्रतब्रातनिपीतपौष्टैः ।  
 गाङ्गेयगेहैरिव रन्तुमेतैर्वसन्तकान्तेन निकुञ्जलक्ष्म्याः ॥५६॥  
 २६ दद्व्यन्यमानद्विजराजिराव-तूर्या स्फुरत्कुइमलकोटिहतिम् ।  
 यस्मिन्नजगज्जेतुमनन्यजन्मा ससज्ज सेनामिव चूतपद्मिक्तम् ॥५७॥  
 २७ सर्वतुर्भिर्यत्र पुरोपकण्ठ-क्रीडावनान्तर्वसतिर्वितेने ।  
 यदभाविनं हीरकुमाराजं सप्त्वय सुश्रूषयितुं किमेतैः ॥५८॥  
 प्रेष्ठोलितैर्यत्र जलेन स्वर्णैः सुधांशुदेशीयविकाशिकासैः ।  
 श्रिया निकुञ्जस्य वसन्तकान्तः प्रकीर्णकौघैरुपवीज्यते स्म ॥५९॥  
 केलीवने यत्र पिकद्विरेफध्वानोपथेः पुष्पधनुर्वसन्तौ ।  
 विनिर्मिमाते स्म मिथः प्रवृत्ति मृत्युञ्जयं जेतुमिव प्रतीपम् ॥६०॥  
 २८ भृङ्गेक्षणाश्वन्दनपत्रभङ्ग-बिम्बाधराः कोकिलबालरावाः ।  
 मत्तेभयाना इव गन्धवाहै-र्यस्मिन्नसेव्यन्त निकुञ्जलक्ष्म्याः ॥६१॥  
 २९ वसन्तभर्त्रा सह संसृजन्त्या वनश्रिया यत्र मुदं वहन्त्याः ।  
 कुन्दतुमाणां कलिकाकलापै-र्दन्तैरिवैतैः प्रकटीबभूवे ॥६२॥  
 ३० यस्मिन्विभान्ति स्म विलासदोलाः स्मितावनीजन्मशिखाप्रणद्वाः ।  
 समं रतिप्रीतिनितप्तिनीभ्यां ससज्जरे रन्तुमिव स्मरेण ॥६३॥  
 ३१ अगायि यस्मिन्मधुरं निकुञ्जे प्रसूनलुभ्यन्मधुपावलीभिः ।  
 वसन्तकान्तप्रथमानुषङ्गे वनश्रिया मङ्गलगर्भगीतिः ॥६४॥  
 ३२ पुष्पायु धो ]ब्र्वीतलशीतलांशोः सम्प्रस्थितस्येव जगद्विजेतुम् ।

अदुन्दुभीयन्त पिकाङ्गनानां यस्मिन्नवना: पञ्चमगीतिगर्भाः ॥६५॥  
 पदे पदे यत्र रसालमाला निभात्य कूजत्कलकण्ठबालाः ।  
 स्मरावनीन्दुस्तृणवत्तिलोकी-मजीगणनिस्तुलशङ्खलाभात् ॥६६॥ इति ।  
 ४९प्रह्लादनाह्वा नगरी चकास्ति हिरण्यमया तत्र हरेः पुरीव ।  
 श्रीगूर्जरक्षोणिपुरन्दरस्य माणिक्यगर्भेव कुनाभिकुम्भी ॥६७॥  
 भर्ता मरुत्वान्मम कौशिकक्ष गोत्रस्य हन्तेति जुगुप्समाना ।  
 मिषादमुष्याः परिहृत्य नाकं पुरी किमागादिह पौरुहूती ॥६८॥  
 ५०यस्यां मणीकर्मविनिर्मिताना-मध्रंलिहानां गृह्येणीनाम् ।  
 मध्यंदिने शृङ्गगणाङ्गणेषु मार्त्तण्डबिम्बं कलशायते स्म ॥६९॥  
 ५१छायापथोऽभ्रंलिहमन्दिराणां दण्डायते च शिखान्तरेषु ।  
 ध्वजायते सिद्धधुनी ध्वनन्त्यो-ज्यकिङ्गणीयन्त तदीयहंस्यः ॥७०॥  
 ५२अखेलि खे यदगृहशृङ्गवात्-वेल्पताकापटपङ्कवौधैः ।  
 यदर्शभिर्विष्णुपदीप्रवाहैः सहस्रकायैः कुतुकादिवासे ॥७१॥  
 यद्वर्णनाकर्णनतद्वृक्षा - रत्नाकुलीभूतहृदार्णवेन ।  
 अस्थायि यस्यां परिखामिषेण, जाने लघूभूतवता समेत्य ॥७२॥  
 ५३रोपाङ्गिता वीचिच्छयेन मीनैः, स्मितेक्षणा दर्दुररावचाटुः ।  
 विलासिभिर्वारविलासिनीव, प्रभञ्जनैर्यत्परिखा न्यषेवि ॥७३॥  
 ५४चिराशनायाकुलितं कुरङ्गं, सुधात्रहच्च चारयितुं नभस्तः ।  
 उपान्तसंरूढविनीलनीले, बिम्बच्छलाद्यत्सलिलेऽवतेरे ॥७४॥  
 ५५उदस्तहस्ते पवनावधूत-वीचिच्छलाद( त् ) खातिकयेव यस्याः ।  
 एतत्पुरस्ते कियती विभूति-वर्स्वोक्तसारेति विगीयते स्म ॥७५॥  
 ५६मातङ्गिनी पुष्पकरम्बिताङ्गी, कृतानुषङ्गा मधुपैरितीव ।  
 विगानधूत्यै कुरुते वनश्री-र्बिम्बेन दी( दि )व्यं परिखाप्रवाहे ॥  
 ५७आरामलक्ष्मीरभिसारिकेव, सालेन यूना सह संसिसृक्षुः ।  
 बिम्बोपथेः शासनहारिकां स्वां, चिकीर्षुरागात्परिखामिवैषा ॥७७॥  
 ५८यद्वप्ननानामणिराजिनिर्य-ज्ज्योतिःप्ररोहैर्दिवि संचरद्धिः ।  
 प्रपञ्च्यते स्म प्रसरत्पयोदं, विनाऽपि सङ्करन्दनचापचक्रम् ॥७८॥  
 वहन् हरिं यद्वरणः स लक्ष्मीं, कपाटपक्षोऽथ सुवर्णकायः ।  
 विगाहमानो गगनं कथं न, लभेत ताक्ष्येन( ण ) सदृक्षभावम् ॥७९॥  
 प्रियं बुवाणा जनतारवेण, सारङ्गनाभीसुरभीभवन्तम् ।  
 गजेन्द्रयानां वरणो युवेव, पुरीमहेलां परिरथ्य तस्थौ ॥८०॥  
 जगत्रयीसंभवशस्तवस्तु-विस्तारसम्पूरितमध्यदेशैः ।  
 यत्रापणैः कुत्रितयापणानां श्रेणी सगोत्रैरिव भूयते स्म ॥८१॥

५९ बाह्लीककालागुरुगन्थसार-कर्पूरपारीमृगनाभी( भि )गन्यैः ।  
 आशा अवास्यन्त यदीयहृष्टे-र्यशःप्रसारैरिव सज्जनानाम् ॥८२॥  
 गभीररावैर्व्यवहारभाजां, घनोपलाङ्कैः स्फटिकावलीभिः ।  
 अन्तर्निबद्धारुणरत्नविद्यु-द्विलम्बिमुक्तालतिकाबलाकैः ॥८३॥  
 इतस्ततो निष्पत्तिन्दुकान्त-कान्ति प्रतानाङ्गुरवासिधारैः ।  
 महेन्द्रनीलोपलबद्धहृष्टैः, पयोदवृन्दैरिव यत्र जन्मे ॥८४॥ युगम् ॥  
 स्वलोकभूलोकभुजङ्गलोक-पुरीः पराभिभूय( पराभूय ) यथा विभूत्या ।  
 मौलौ जयाङ्ग इव तुङ्गगेहे, शृङ्गप्रणद्वां कुटका धियन्ते ॥८५॥  
 परस्परेण( परेण ) प्रतिबिं( बिम्बि )ताभि-र्यस्यां मणीमन्दिरमण्डलीभिः ।  
 रहस्यवृत्तिः स्थितभित्तिगर्व-जनस्वनेनेव वितन्यते स्म ॥८६॥  
 यदालयैर्हेलितहेलिमालै-रभंलिहेनि( निं )द्विलिताङ्गुकारैः ।  
 मन्ये मणीलोचनमालिकाभि-र्विजेतुमालोक्यत नाकलोकः ॥८७॥  
 श्रिया जयन्त्या जगदङ्गकारान्, यथा स्म याचे शवशीभवन्त्या ।  
 स्वसौधशुद्धध्वजधोरणीभिः, प्रहस्यते पूरिव पौरुष्टी ॥८८॥  
 ६० कुत्राऽपि चन्द्रोपलचन्द्रबाङ्गु - सौधोपथेः केलिशुककणेन ।  
 सुरद्विषं हत्तुमिवद्विषन्त-मालोच्यते चन्दनभोमणीभ्याम् ॥८९॥  
 ६१ स्वशात्रवादगोत्रभिदो भयार्ते-र्हिमाद्विहेमाद्विमुखेगिरीन्दैः ।  
 लघूभवदभिर्भवनच्छलेन, यस्मिन् शरण्ये शरणीबभूवे ॥९०॥  
 सादृश्यसंस्पर्धितयाऽवलेपात्, कपोतहुङ्कारगिरेव यस्याम् ।  
 परस्परं विग्रहमादधानैः, शोणाशमगैरुपणीबभूवे ॥९१॥  
 गाङ्गेयगारुतपदाराग-सन्दर्भगर्वभालयमालिकाभिः ।  
 भूकान्तकान्तेन सहानुषङ्गे, पुरीश्रिया क्लृप्त इवाङ्गरागः ॥९२॥  
 ५५ विलासवापीजलकेलिलोल-विलासिनीनां पटलच्छलेन ।  
 प्रादुर्बभूवुः पुरकौतुकानि, दृग्गोचरीकर्तुमिवाम्बुदेव्यः ॥९३॥  
 विद्योतिताऽशेषदिग्न्तराभि-मणीमयीभिर्भवनावलीभिः ।  
 धिक्कारितध्वान्तमिवाङ्गदम्भा-दुवास राजः शरणार्थमङ्गे ॥९४॥  
 \*नीलाश्मवेशमप्रतिबिम्बमन्त-दधदभिरेतत् तपनीयगेहैः ।  
 गमेण नीलं ३वहता दुकूलं, श्रिया समालम्ब्यत तुल्यभावः ॥९५॥  
 वृन्दारकालीभिरलङ्घकृताया, असूययेवामराजपुर्याः ।  
 तृणीकृतश्रीतनयावनीप-स्त्रपानसौ धारयति स्म मत्त्यान् ॥९६॥  
 प्रभापराभावुकवैभवायाः, यस्याः स्वपुर्याश्च परस्परेण ।

1. कुम्भनिकेतयोश्चन्दनभोमणीभ्याम् । इति टि० । 2. केलिशुककणेन इति टि० । 3. दधता इति टि० ।

उत्तीर्णगीर्वाणगणैर्जनानां, व्याजादिवाविःक्रि( क्रिक )यते स्म साम्यम् ॥१७॥  
 लघूकृतस्वर्ललनाविलासा, विलासिनीर्यत्र निभालयित्वा ।  
 विहाय गेहं स्वमिवादितेयै-रिहावतीर्ण व्यवहारिदभात् ॥१८॥  
 सर्वानुवादैरिव मीनकेतो-लीलालसैर्यत्र विलासिष्टैः ।  
 निर्भर्तिस्तैर्भूमितलं भूजङ्गे-र्मदाक्षलक्ष्यैरिव विश्यते स्म ॥१९॥  
 विगानितानङ्गकुरङ्गनेत्रा-शकासिरे यत्र गजेन्द्रयानाः ।  
 अपोधशक्तीर्मकरध्वजोव्वी-पुरन्दरस्येव जगद्विजेतुम् ॥२०॥  
 त्यक्त्वा श्रुतीन् कञ्चुकिनो द्विजिहान्, प्राणग्रिधान् धीवतकैतवेन ।  
 पुरी किमेतद्युवकामुकीभिः-रथ्यास्यते नागनितम्बनीभिः ॥२१॥  
 मदालसा यत्सरसीरुहाक्ष्य, श्रीमन्मनोजन्मदहीन्द्रोनः ।  
 इवाग्रदूत्यः परिकल्पयन्त्य-स्तदेकतानानि मनांसि यूनाम् ॥२२॥  
 पदे पदे यत्पुरुषोत्तमौधान्, वीक्ष्य श्रिया चन्द्रमुखीमिषेण ।  
 पतिव्रतौचित्यमिवोद्भूत्या, स्वयं बभूवेव कुमूर्तिमत्या ॥२३॥  
 कुमारगौरीगणपर्शुपाणि-महेश्वरादीनिदमङ्गमासान् ।  
 इवावमन्यस्फटिकाचलेन, प्रापेऽनुनेतुं सितसाललक्षात् ॥२४॥  
 १८निरीक्ष्य यस्यां मणिवेशमभित्तौ च्छायां विमुग्धेन युवद्वयेन ।  
 निखेलता पुष्पधनुर्मतेऽपि, भ्रान्त्येव यूनोः परयोर्न्यवर्त्ति ॥२५॥  
 १९विधूदये शृङ्गशाशाङ्ककान्त-निष्पातिपाथःप्रसरत्प्रवाहैः ।  
 निर्वज्ञराः सानुमतां समूहा, यस्यां व्यङ्ग्यन्वत् विलाससौधैः ॥२६॥  
 संज्ञानदानादिव सौधलोल-दध्वजोपथैः पाणिपयोरुहेण ।  
 वियोगवत्या वसुधायुवत्या-भ्योवाह आहूयत यत्र कान्तः ॥२७॥  
 यत्कौतुकानीव दृशा निपीय, क्रीडागताभिस्त्रिदशाङ्गनाभिः ।  
 पाञ्चालिका नाकिभवान् निमेषे निःस्वेक्षणाभिः [ : ] स्तिमिताभिरासे ॥२८॥  
 आर्योपयामे घुनरङ्गभाजा, कौतूहलेनेव मनोभवेन ।  
 रत्या स्वमूर्तीर्बहुधा विधाय, रेमे युवद्वन्द्वनिभेन यस्याम् ॥२९॥  
 नभेऽतिवाहाद्विगतावलम्ब-श्रमाकुलीभूततयानयेव ।  
 यनुङ्गेहोपरिक्षण्ड-धवजोपथैः स्वःसरिता ललम्बे ॥२१०॥  
 १८दिवोबलेवेशमनि यातविष्णोः, पदादिव भ्रष्टसुरेन्द्रसिन्धोः ।  
 ज्यौत्सनीषु यच्चान्द्रगृहच्युताभ्यो-निभादवापे पृथिवीप्रवाहैः ॥२११॥  
 कुत्रापि सन्दूष्यमहेन्द्रनील-निकेतनानामिह कैतवेन ।  
 महीमहेलामिव विप्रयुक्तां, चिरादवापे मिलितुं घनेन ॥२१२॥  
 १९चिरात्स्वविश्लेषवतीं धरित्रीं, पयोमुच्चा स्थासयितुं नभस्तः ।  
 प्रस्थापिता यत्र मणीसुवर्ण-प्रासाददभाजजलबालिकेव ॥२१३॥

कुत्रापि जागत्तिं पुरीतडाको-दरे प्रतिच्छायितमुद्भवती ।  
 यद्वैभवेनेव पराभिभूता, प्रदत्तस्तपा नगरी सुराणाम् ॥११४॥  
 शोचिर्निशुम्भिततमस्तिसान्दचन्द्र-सम्बद्धसौधनिवहा अवहन् विभूषाम् ।  
 भक्तिप्रसन्नहरलब्धवरक्षताङ्गां, शीतांशवः किमु महीमवतीर्णवन्तः ॥१५॥  
 १६बालारुणज्योतिरखर्वगर्वं-१ सर्वङ्गैः शोणमणीनिकेतैः ।  
 धरा तुरासाहमिवस्वकान्त-मुद्गीर्णरागप्रसैरनगर्याः ॥१५॥ इति॥  
 १७अस्ति स्म तस्यां महमूदनामा, म्लेच्छावनीन्द्रः ककुदं नृपाणाम् ।  
 रामः पुनः शास्तिमध्यनेमी-मिवावतीर्णः कलिपीड्यमानाम् ॥१६॥  
 १८कृपाणगीर्वाणिगिरीन्द्रमथ्य-मानाहवक्षीरनिधेर्भवन्त्या ।  
 जयश्रियाऽश्रीयत वारिशि-शायीव भूचक्रशतक्रतुर्यः ॥१७॥  
 १९पराभिभूतैरिव कामवर्ष लीलायितैरुन्नतवारिवाहैः ।  
 उम्भत्तमातङ्गणच्छलेना-नुकूल्य वे( वै )मध्यमलोकपालः ॥१८॥  
 २०इदं महैजः प्रसभाभिभूय-मानैरिवामुष्य विपक्षलक्षैः ।  
 क्षेत्रस्य वृत्तिर्विनितासहायैः स्वक्षत्रवृत्तीरपहाय भेजे ॥१९॥  
 २१भूमी[ न्द ]चन्द्रप्रबलप्रतापै-जैतुं प्रवृत्ते जगदङ्ककारान् ।  
 प्राकारगुप्तपरिवेषदभात्, बिष्यन्निव स्वं विदधे विवश्वान्( स्वान् ) ॥२०॥  
 २२माद्यत्पदोदानपयःप्रवाह-जम्बालितोपान्तमहीमतङ्गाः ।  
 दिग्जैत्रयात्रासु जितैर्दिगीशै-र्दिग्वारणेन्द्रा उपदीकृताः किम् ॥२१॥  
 २३आपूर्वापरवासिराशिपुलिनाऽलङ्कारहारोपम-  
 क्षोणीभृत्रिकुरम्बचुम्बितपदद्वन्द्वारविन्दश्चिरम् ।  
 द्यां स्वर्णाचलसार्वभौम इव यो निःशेषविश्वम्भारं  
 शास्तशात्रवगोत्रजिद्विजयते श्रीगूर्जरोर्व्वीपतिः ॥२२॥

॥ इति सकलमहीवलयकमलालङ्कारहीर

श्रीसी( सिं )हविमलपादादारविन्दद्वन्द्वभृदङ्गायमान( ण )देवविमलविरचिते  
 हीरसुन्दरनान्नि काव्ये प्रथमप्रारम्भे देशनगरादिवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥

### टिप्पणी

१. शरत्सुधादीधितिमण्डलीव०॥२॥ पा० ।
  २. भवन्तु ते मे गुरवः प्रसन्नाः ॥३॥
  ३. कववृत्तमे[ त ]द्वितिवासवस्य० ।
  ४. अस्मि प्रमाणीविषयीचिकीर्षु-मोहादहं व्योम निजाङ्गुलीभिः ॥४॥
  ५. देवीतनूजश्रमणाब्जबन्थोः ॥५॥
  ६. प्रियासहायैः सुमनःसुमुख्यै-लीलालासैः कुण्डलिभिर्जनैर्यः ।  
 त्रैलोक्यलक्ष्मीं वहतीव जम्बू-द्वीपः स भूमेरिव नाभिरस्ति ॥६॥
१. निर्वासि शोणाश्मगृहैर्बेभासे इति टिं ।

७. लीलायमान द्विर०[ ? ] । यं स्तौति गप्थीर् र ]वैरिवाच्छ्य-वेला महीन्द्रं पगधावलीव ॥७॥
८. यदद्वीपलक्ष्म्याः सरसीजबन्धु-सुधारुचीमण्डलकुण्डलायाः ।  
तारावलीमौक्तिकहारल-मिवोरसि स्वःशिखरे बभासे ॥८॥
९. सङ्क्रान्तताराततिमौक्तिकाङ्क्षा० ।
१०. काञ्चीपदे काचन मेखलेव, द्वीपश्रियोऽस्या जगती चकास्ति ॥९॥
११. पुन्नागनारङ्गलवङ्गपूग-रसालसालावलसालमानः ।  
सुर्वणशैलो विललास यस्या, द्वीपस्य लक्ष्म्या इव केलिशैलः ॥१०॥
१२. प्रदक्षिणप्रक्रमणप्रगल्भा, ग्रहा इवैते प्रसरत्कैः स्वैः ।  
अभ्यर्थयन्तैर्विजना महेभ्य-मिवार्थजातं सुरसानुमन्तम् ॥११॥
१३. विभज्यमानेव विभाति तदभाति तदभारतभूतधात्री [ ? ] ।  
सीमन्तदण्डेन चलच्चकोर-विलोचना कुन्तलवली( ल्ल )रीव ॥१४॥
१४. सुरासुराणां सदने समेत्य, द्वीपं भजेते विजिते स्वलक्ष्म्या ॥१५॥
१५. यदृच्छ्या यद्वरतस्य लक्ष्म्या, भूमौ नभःसिन्धुनिभादिवास्ते ॥१६॥
१६. सुस्वामिभाजो विबुधाभिरामा, सजिष्णवो यत्र बभुर्गर्यः ।  
धृता अनेका इव देवसद्य-संस्यदर्थया येन सुपर्वपुर्यः ॥१८॥
१७. यस्मिन्सुलोकोपमकौतुकानि लक्षा निरीक्षा क्षणलालसेव ।  
सरस्वतीसिन्धुनिभादुपेत्य, स्वयं सरस्वत्यधितिष्ठति स्म ॥१९॥
१८. प्रभाप्रतिस्पर्द्धितपद्मबन्धु-शूडामणीवन्मणिभूषणेषु ।  
आक्रान्तदिक्चक्र इवाखिलेषु वसुन्धराभर्तुषु चक्रवर्ती ॥२०॥
१९. शृङ्गे नभःसिन्धुकृतावगाहै-रियत्रमागोचरतां प्रणेतुम् ।  
प्रगल्भमाना इव यद्गिरीन्द्रा, जगाहिरे निर्जराजमार्गम् ॥२२॥
२०. सवाहिनीकाः सहकारहारिच्छत्राश्वलत्काससरोमगुच्छाः ।  
अनिहनुवाना धरणीधरत्व-मिवात्मनो यत्र बभुर्गिरीन्द्राः ॥१॥
२१. विद्युन्मणीमण्डनमण्डिताङ्का, मिलद्वलाका सुसुमावनद्वा ।  
गिरीन्द्रलक्ष्म्या कबरीव शृङ्गे, कादम्बिनी यत्र विभर्ति शोभाम् ॥१॥
२२. तडिल्लतोपात्तनिशातशस्त्राः ॥२६॥
२३. गतावलम्बे पवमानमार्गे, श्रान्तातिवाहा त्रिदशश्रवन्ती ।  
भूभागमध्येति झरज्जराणां, दम्भाद्विवो यन्नगवर्त्मनेव ।  
कवचिद्वपुःकञ्जुकिभिः प्रणीत-हस्तावलाम्बाः शबराम्बुजाक्ष्यः ।  
नागाङ्गनानां न गृहेष्येव, भुवा धृता नागमदाभिरामाः ॥  
कुत्रापि कृष्णा जनिका विनीलाः, पल्लीषु खेलन्ति किरातबालाः ।  
विन्ध्याञ्चनोर्वीधरयोरिवाधि-देव्यो धरायां कु[ तु ]काद् भ्रमन्त्यः ॥२॥  
राज्ञी कवचित्पुञ्जितपामरीणां, वासांसि शुभ्राणि बभौ वहन्ती ।

- सुधारुचीचन्द्रिकयावदाता, शृङ्गवलीवाञ्छनभूधरस्य ॥१॥
२४. क्रीडत्तुरङ्गद्वीपपद्मनेत्रा, यस्मिन्सरस्यः श्रियमुद्घहन्ते ।  
उच्चैःश्रवःस्वद्विरदाप्सरस्का, मन्ये वयस्यो हरिवारिराशेः ॥२९॥
२५. मुक्तायितप्रान्तविलग्नपाथः कणैर्बंधे स्मेरसहस्रपत्रैः ॥
२६. पद्माकराणां ॥४०॥
२७. यस्मिन्विलभ्यन्मधुपानुष्ठै—हेमारविन्दैविकचैर्विलेसे ।  
कासारलक्ष्म्या स्फुरदिन्दनील-मणीविमिश्राभरणैरिवैतैः ॥४१॥
२८. सृजन्ति गीतीरिह शालिगोप्यः, जगत्वयीनिजयनार्जिताभिः ।  
जी [ ? ] .....त् [ ? ], कीर्तीरिव श्रीतनयावनीन्दोः ॥४२॥
२९. व्वचिच्छुकूज० । केदारलक्ष्म्या इव बन्दिवृन्द-वृन्दारकैः संस्तवमुच्चरद्धिः ॥४३॥
३०. कैदारिकं क्वापि नदोपकण्ठे, शालिवृजैर्मञ्चितैश्वकासे ।  
प्रिया इवाम्भोनिधिमेखलायाः, रोमावली नाभिसवेशदेशे ॥१॥
३१. कैदार्यमुज्जृभितशालिशालि, यस्मिन्नशोभिष्ठ चरन्मरालैः ।  
सन्दूष्यमन्तर्नवमुक्तिकाभिः क्षितिश्रिया नीलमिवान्तरीयम् ॥१॥
३२. आभीरपल्लीषु सुखं सखीभिः, सगीतहल्लीसखखेलिनीभिः ।  
गोपालबालाभिरभासि यस्मिन्, स्मरावनीन्दाविव नर्तकीभिः ॥१॥
३३. कुत्रापि दम्यैरनुगम्यमानाः, कैलासकेलीशिखरायमाणाः ।  
सुधाभुजो द्रोणदुघाश्चरन्ति, मूर्त्ति समाज्ञा इव [ म ]ण्डलस्य ॥१॥
३४. गोपालबालैर्दिविष्टकुमारै-रिवानुयाताः सुरभीसमूहाः ।  
दिवोवशेषैः सुकृतैः सुराणा-मिवावनौ कामदुघाः समीयुः ॥१॥
३५. ब्रह्मण्डभाण्डोपरिभित्तिभाग-प्रोत्तानयानोद्भवदर्त्तिभाजः ।  
स्वःसौरभेवीनिवहा इवोर्वा, चरिष्णवो यत्र विभान्ति गावः ॥१॥
३६. यूनो रिंसोपगतान्सकान्तान्, किं स्वागतं हंसरुतैः सृजन्त्यः ।  
तरङ्गहस्तस्थितवारिजैर्वा, किमर्थमस्मिन्नग्रणयन्ति नद्यः ॥५०॥
३७. कपोलपालीस्फुरदेणनामी-पत्राङ्गितैश्व द्विजचन्द्रिकाङ्गैः ।  
क्रीडन्मृगाक्षीवदनैः सहस्र-चन्द्रेव यस्मिन्नदिनी दिदीपे ॥५०॥
३८. विधोर्धिया यत्र सरित्प्रवाहै-लीनालिफुलदलपुण्डरीकम् ।  
प्रेक्ष्याभितो मुग्धचकोरडिभा, भ्रमन्ति पीयूष पिपासयेव ॥५२॥
३९. मुक्तालताङ्गेव निजोपकण्ठ-श्रेणीभवत्सारसमालिकाभिः ।  
सिः ( शि )ञ्जानमञ्जीरवतीव रावैः, स्वकूलकूजत्कलहंसिकानाम् ॥५२॥
४०. भ्राम्यद्विरेफस्मितवारिजेन प्रफुल्लोलन्नयनाननेव ।  
रथाङ्गयुग्मेन गलन्निवाल-पयोधरं द्वन्द्वमि ज्वोद्घहन्ती ॥५३॥
४१. रन्तुं वसन्तेन समं प्रियेण, गाङ्गेयगैरिव कुञ्जलक्ष्म्याः ॥५६॥
४२. वसन्तकान्तेन निकुञ्जलक्ष्म्या, विलासहासा इव भान्ति कासाः ।  
यद्वा पराभूतमरुद्वनाया-स्तस्या जयाङ्गा इव रोमगुच्छाः ॥५७॥

४२. निश्चानरावं तु मुलैरलीनां शाखाशयालम्बित( सून )पुष्पशस्त्रा ।  
स्मरस्य विश्वस्य जयाय यस्मि-ब्रनीकिनी वाजनि शाखिलेखा: ॥५५॥
४३. यद्भाविनं हीरकुमारराजं स्वस्वप्रसूनादिनभोपदाधिः ।  
प्रभूय शुश्रूषयितुं किमत्र सर्वत्तवः केलिवने वसन्ति ॥५४॥
४४. प्रसूननेत्रा कलकण्ठकण्ठी बिम्बाधरा मत्तगजेन्द्रयाना ।  
भुजङ्गवेणी स्तबकस्तनी च भुक्ता वनश्रीरहि गन्धवाहैः ॥५३।
४५. स्वःकाननश्रीसखितां वहन्त्याः स्वविभ्रमैश्वैत्रथं हसन्त्याः ।  
आरामलक्ष्म्या मुचकुन्दवृन्द-दम्भादिवास्मिन्दशनाः स्फुरन्ति ॥६३॥
४६. स्मरावनीजन्मशिखावनङ्गा यस्मिन्लसन्ति स्म विलासदोलाः ।  
रन्तुं रतिप्रीतिनितम्बनीभ्यां वितेनिरे चित्तभुवेव यूनाम् ॥६२॥
४७. लीलायमानाः सहकारशाखा-शिखान्तरे केलिशुकाः क्वणन्ति ।  
न व्यानुषङ्गे मधुनेव भर्त्रा वनश्रीया मङ्गलगर्भगीतिः ॥६१॥
४८. यस्मिन्प्रवालप्रबलायुधानां संवर्मितानां स्मितताच्छ्लेन ।  
महीरुहां स्वर्दु [ मतुल्य ? ]काना-मदुन्दु भीयन्त ] पिकाः क्व[ णन्तः ] ॥६४॥
४९. तत्रास्ति पौलस्त्यपुरायमाणं, प्रह्लादनं नाम पुरे प्रथानम् ।  
निःशेषनृवृद्धितयेर्जितस्य, श्रीगूर्जरस्येव निधानकुम्भः ॥१॥
५०. हिरण्यं सूरिकुलाभिरामं, विलासिरामं पुरुषोत्तमश्री ।  
श्रीनन्दनानन्दि समीक्ष्य ताक्ष्य-पुरं मुरारेव यच्चकास्ति ॥२॥
५१. भुजङ्गमानां च सुधाशनानां, निवासयोः सारदलैर्गृहीतैः ।  
व्यथायि यद्वारिजनन्दनेन, न चेत्किमाभ्यामतिरिच्यते तत् ॥३॥
५२. नानामणीकर्मविनिर्मिताना-मध्रंलिहानामिह मन्दिराणाम् ।  
महानिशायां शिखरान्तरेषु, शीतांशुबिम्बं कलशायते स्म ॥४॥
५३. दण्डायते च त्रिदशाध्वदण्डा, ध्वजायते सिद्धधुनीप्रवाहः ।  
अकिङ्गिणीयन्त पुनस्तदभ्यो-विलासि हंस्यो मधुरं ध्वनन्त्यः ॥५॥ युग्मम् ॥
५४. अखेलि खे मारुतवेगवेल-द्यौजयन्ती पटपल्ल [ वोधैः ] ।  
सह [ स्त ]कायैरिव कौतुकाद्य-द्विदक्षुभिर्विष्णुपदीप्रवाहैः ॥६॥
५५. रोमाञ्चिता वीचिच्चयैर्डुलीनां स्वनैः स चाटुः शफरैः स्मिताक्षी ।  
व्यालोकि लोकैः परिखानिलेन, चलीकृता वारविलासिनीव ॥६॥
५६. अयं पयः पाययितुं किमस्या-मागान्मृगं चारयितुं च शष्पान् ।  
बिम्बं विधोर्यत्परिखाजलान्त-व्यालोक्य लोकैरिति कल्प्यते स्म ॥७॥
५७. यद् ( त् ) खातिवात् ( तेन ) लुलत्तरङ्ग-हस्तादुदस्य प्लव[ न ]स्वनेन ।  
एतत्पुरस्ते कियती विभूति-र्वस्वोकसारामिति निन्दतीव ॥८॥
५८. मातङ्गिनी पुष्पवती च नित्यं, कृतानुषङ्गा मधुपैरितीह ।  
निन्दाछिदे यत्परिखाभ्यसीव, बिम्बेन दिव्यं कुरुते वनश्रीः ॥९॥

५७. आगामलक्ष्मीरिह पांशुलेव सालेन यूना सह संसिसृक्षः ।  
बिम्बोपथे: शासनहारिकां [ स्वां ], यद् त् ) खातिकां कर्तुमुपेयुषीव ॥१०॥
५८. यदीयवप्रेण मणीमयूखे-नीलीविनीले नभसि स्फुरद्धिः ।  
अकाण्डमेवाम्बुधरो.....प्रपञ्चते.....चापचक्रम् ॥११॥
५९. यत्रापणेष्वेणमदभ्रमेण नाशा( सा )पुटे दत्तमणि द्विरेफः ।  
लोकाखां गोचरमञ्जुगञ्जी- वेद स्म दण्डशताथया ध्मार्ण [ ? ] ॥१७॥  
यददृ( द्रि )कोट्यां हिमवालुकानां क्षोदेषु सिञ्चोरिव वालुकासु ।  
खेलन्ति मुग्धाः शिशवश्च काच-गोलैरिवानल्पतरङ्गनीलैः ॥१८॥
६०. शत्रोभिया गोत्रभिदो गिरीन्द्रै-हिमाद्रिहैमाद्रिमुखैः समेत्य ।  
नानामणीहर्यनिभादिवास्य लघूभवद्धिः शरणं प्रपेदे ॥१९॥
६१. यच्चान्द्रचामीकरबद्धसौधो-पथर्मिथो रात्रिनिशामणिभ्याम् ।  
आलोच्यते हन्तुमिव द्विषत्तं सुरद्विषं केलिशुकववणे ॥२०॥  
[ विरे ]जिरे चान्द्रमवेक्ष्य बिम्ब-मम्बा विमुग्धा इह याचमानान् ।  
लीलामरालेन विलुभ्य बाला-नाशासयन्ति स्म कथञ्चनापि ॥२१॥  
वेशमार्हगर्भाननचान्द्रकुप्तं, दृष्ट्वाऽत्र मुग्धाऽभ्रधुनीरथाङ्गयः ।  
रुषेति विश्लेषयिताऽयमिन्दु-ने शत्रुराघन्ति किमिङ्ग्रघातैः ॥२२॥  
अयं मदुत्सङ्गमृगं स्वकुक्षि-क्षिसं सुधामाकुरतामियाय[ ? ] ।  
समीक्ष्य यस्मिन्नृहशृङ्गसिंहं-मध्रादभ्रे सभयो मृगाङ्गः[ ? ] ॥२३॥  
माणिक्यकुप्तं गृहतुङ्गशृङ्गे, दृष्ट्वा नभःशैवलिनी रथाङ्गयः ।  
नित्योदयादित्यधियापि योगात्, पथां वहते स्म कदापि नास्मिन् ॥२४॥  
नित्योदितव्योमणीयमानै-यस्मिन्मणीमण्डलबद्धसौधैः ।  
तिरस्कृतं सन्तमसं किमेतत्, राजाङ्गदभात्याशरणं बभाज ॥२५॥
- ॐ प्रादुर्बर्भूवुः पुरकौतुकानि, दृग्गोचरीकर्तुमिवाम्बुदेव्यः ।  
वापीषु केलीरसिका मृगाक्ष्यः समीक्ष्य लोकैरिति तवर्यते यत् ॥२६॥
६२. दृष्ट्वा मणीवामगृहे विमुग्ध-युवद्वयेनात्र निजानुबिम्बम् ।  
निखेलता पुष्पधनुर्मतेऽपि, न्यर्वत्ति यूनोः परयोर्धियेव ॥२७॥
६३. चन्दोदये मन्दिरचान्दशृङ्ग-निष्प्रातिपाथःप्रस[ र ]त्रिवाहैः ।  
निर्यज्जरा: सानुमतां समूहा, यस्मिन्व्यडम्ब्यन्त विलाससौधैः ॥२८॥  
स्ववेशमवातूललुलत्पत्ताका - करेण रावेण च किङ्किणीनाम् ।  
स्पद्धोदया वोद्मिवात्मना यत्पुरीं सुरस्याह्वयतीव दृष्टम् ॥२९॥
- \* अभ्यर्णसौवर्णगृहानुबिम्बं बिध्रदभिरत्राऽसितरत्सौधैः ।  
पीतं दुकूलं दधताऽच्युतेन संश्रीयते साम्यमिवात्मलक्ष्म्या ॥३०॥  
निमेषनिःस्वैर्नयनैः सुरीभि-र्विभावयन्तीभिरदः समृद्धिम् ।

- सौधेषु दत्तादिव पुत्रिकाणां रक्षातिरेकैः स्तिमितीबभूवे ॥३१॥
६४. यातस्य विष्णोनरकं निहनुं भ्रष्टा तदेहर्नभसा..... ।  
ज्यौत्त्वीषु यच्चान्दगृहच्युताभ्यो-दम्भेव भूपीठमिवोपयाताम् ॥३२॥
६५. ज्योतिःपयःपूरतरङ्गितैतन्निवासनीलाशमशिखामिषेण ।  
एतत्पथेनार्कसुता स्ववसुः सम्प्रस्थितोच्चैर्मिलितोत्सुकेव ॥३३॥
- <sup>१</sup>गाङ्गो(ङ्गे)यगारुम्तपद्मराग-चन्द्राशमसंदृष्ट्यगृहच्छलेन ।  
स्वभूपभर्त्रा सह सङ्गरङ्गे पुरश्रिया क्लृप इवानुरागः ॥३४॥
६६. बालारुणज्योतिरखर्वगर्व-सर्वङ्गैः शोणमणीनिकेतैः ।  
धरातुरा साहमि नु(?) स्वकान्तं पुरश्रियोदगीर्ण इवानुरागः ॥३५॥  
भक्तिप्रसन्नादगिरिशादवासां, गलत्कलङ्गां बहुस्तपविद्याम् ।  
यच्चान्दसद्वच्छलतः सितांशुः किं कौतुकीव प्रथयाञ्छकार ॥३६॥  
यत्पौरुंसै रतिजानिगर्व-निर्वासिभिः श्रीभरिवाभिभूतः ।  
मन्दीभवन्भूभूदधित्यकाया-मावासमालम्बत नारकारिः ॥१॥  
यन्नागरैर्भर्त्सितमच्छय(त्य)केतु-श्रीभिः पराभूतिमयाप्यमाना।  
विहस्तचित्तेव ततिः सुराणां, स्वःसार्वभौमं शारणीचकार ॥२॥  
पौरश्रियं प्रेक्ष्य तदेकतानी-भूतां स्वकान्तामवलोक्य यत्र ।  
लक्ष्मच्छलेनाऽपररागशीका, शङ्के शशी श्याममुखीबभूव ॥३॥  
यत्पौरलोकानवलोक्य मा स्ता-तङ्गुञ्चचेता गिरिनन्दनाऽसौ ।  
स्वाङ्गं तदङ्गेन तदन्यसङ्ग-शङ्कीव शाभुर्व्यतिसीव्यते स्म ॥४॥  
हराक्षिवहौ ज्वलदात्मयोनेः सारं गृहीत्वेव सरोजजन्मा ।  
यत्पौररागो रचयाञ्छकार, न चेत्कुतस्तत्र तदीयलक्ष्मीः ॥५॥  
<sup>२</sup>विगणितानङ्गकुरङ्गनेत्रा-शकासिरे मत्तचकोरनेत्राः ।  
अमूरमोघा इह शक्तयः किं जगद्विजेतुं मकरध्वजस्य ॥६॥  
श्री सूनुभूभर्तुरिवाग्रदूत्यः स्वर्विणीनां किमुतानुवादाः ।  
नागाङ्ग[ ना ]नां किमु वा वयस्यो-उलङ्घुर्वते यन्नगरं मृगाक्ष्यः ॥११॥
६७. तत्रास्ति बाहादर( भूमिभानु )पाठिसाहि-सूनुर्महीन्दो महमून्दनामा ।  
वधूर्नवोढेव दिने दिने भूः, श्रियं दधौ यत्करपीडिताऽपि ॥१२॥
६८. प्रजाप्रशास्तारमितात्मतानं, नीर्तेनिकेतं तमवेक्ष्य विज्ञैः ।  
स्वयं पुनः शास्तिमेष विश्वं, रामोऽवतीर्णः किमिति व्यतर्किः ॥१३॥
६९. निस्त्रिशमन्थानघनव्यमान- महाहवक्षीरतरङ्गिणीशो ।  
प्रसूतया यो बलिशासतोऽब्धि-शायीव व्रते विजयस्य लक्ष्या ॥१४॥
७०. पराजितैरप्रतिमैः स्वदान-लीलायितैरुव्रमदम्बुवाहैः ।

1. अयं श्लोकः ९२तमश्लोकस्य पाठान्तरोऽस्ति । 2. अयं श्लोकः १००तमश्लोकस्य पाठान्तरोऽस्ति ।

- मातङ्गतुङ्गाङ्गदधैरिवेत्या-उनुकूल्य [ वै ]मध्यमलोकपालः ॥१५॥
७०. हन्तुं व्यवस्थ्यन्तमवेत्य भूयं, द्विषद्व्यात्मानमदः प्रतीयैः ।  
स्वक्षत्रवृत्तीरपहाय भेजे, क्षेत्रस्य वृत्तिः कृषिकैरिवात्र ॥१६॥
७१. भूपालमौलैः प्रबलप्रतापे, जेतुं प्रवृत्ते जगदङ्ककारान् ।  
भयेन भानुः परिवेषवज्ज-प्राकारगुप्तं कृतवानिव स्वम् ॥१७॥
७२. यत्प्रावृषेण्याम्बुदमञ्जुगर्जिं-गजा व्यराजन्त सदानधाराः ।  
दिग्जैत्रयात्रासु जितैदिगीशै-ईृढौकिरे दिग्द्विरदा इवास्य ॥१८॥
७३. विकचविटपिवल्ली छन्नलीलागिरीन्द्रा, गलितनिलयमालाप्यात्मना राजधानी ।  
यदरिधरणियालैः वप्रकान्तारचारै-र्गिरिगहनमहा वाश्रीयते निर्विशेषम् ॥१९॥
७४. यस्य द्वेषिनिषूदनव्रतजुषस्त्रासाद् द्विषद्व्युभजां  
सन्तानस्य कलिन्दभूधरगुहालीनस्य लोलदृशाम् ।  
अश्रान्तां नतमेचकीकृतगलद्वाष्पाम्बुपूरैरिवा-  
विर्भूता प्रस[ र ]द्विरङ्गरुहिणीप्राणेशितुर्नन्दना ॥२०॥
७५. यत्रासातिशयेन काना॒ न ]चरा॑ः प्रत्यर्थिष्युथ्वीभुजा॒  
निद्रां येषु नितम्बिनीभुजलतां प्रेक्ष्यात्मकण्ठस्थिताम् ।  
यत्प्राशस्य धियेव मुग्धमनसो हाहारवव्याकुला-  
स्तदभूवस्त्रिनिभालनाङ्गनुरपि व्याशङ्ग्य मूर्च्छामंगुः ॥२१॥
७६. सुत्रामाम्बुधिधामदिगिगरिकुचद्वन्द्वावनीश्रीधवः  
क्षमाभृदभालविशेषकापिलनखज्योतिःपदाभ्योरुहः ।  
क्षेणीपालशिरोवतंसितलसत्पादारविन्दद्वय-  
द्योस्वर्णांचल सार्वभौम इव यो निःशेषविश्वम्भरां  
शासत्प्रावगोत्रभिद्विजयते श्रीगूर्जरोर्वीश्वरः ॥२२॥

[ द्वितीयः सर्गः ? ]

कुमुदस्मिता षट्पदपद्गत्कुन्तला, स्मिता॒( तो )त्पलाक्षी कजकुड्मलस्तना ।  
प्रियेव केलीसमये सहंसका, तरङ्गहस्तैः सरिदालिलिङ्गत ॥१॥  
सकाकतुपडैणमदद्रवाङ्गितो-रसोपरिक्षालनतः कदापि नौ ।  
सुतामिवार्कस्य विहारगेहिनीं विनिर्मिमाते जलकेलिशालिनौ ॥२॥  
स्मितारविन्दोदयदिन्दुमण्डली-धियेन यूनो प्रमदेमिषमुखे ।  
विमुग्धचित्ता स्म नयन्ति चुम्बन-क्रियां द्विरेफांश्च चकोरशावकाः ॥३॥  
प्रफुल्लकिङ्गलिरसालमल्लिका-कदम्बजम्बूनिकुरम्बचुम्बते ।  
अलीव साकं प्रियया स निष्कुटं कदापि रेमे श्रितसूनशीलनः ॥४॥  
कदापि लीला कलधौतभूधरे समं स चिक्रीड कुरङ्गेत्रया ।  
मृगाङ्गमौलिः स्फटिकावनीधरे, शतक्रतोर्नन्दनयेव भूभृताम् ॥५॥  
..... कदापि निद्रां परिरथ्य तस्थुषी ।  
..... ॥६॥

निष्पादितं यत्तनुजन्मनः कृते गजेन्द्रयानस्य शतक्रतोरिव ।  
 प्रमथ्य दुरधाम्बुधिमध्मप्रियं परं पुनः कं स जितेव कर्षितम् ॥७॥  
 विजित्य लक्ष्म्याखिलदिग्गजानिवा-मितैर्जयाङ्गैश्च( व? )ैर्विराजितम् ।  
 किमस्तसन्ध्या परसौ( शौ )र्यभास्वतां, स्वमूर्धिं सिन्दूरुरुचिं च बिभ्रतम् ॥८॥  
 मदाम्बुभिः घड्रसभोजनैरिव स्वगण्डयोर्दाननिकेतयोरिव ।  
 मधुव्रतानामिव मार्गगामिनां, सृजन्तमद्वैत मुदं वदान्यवत् ॥९॥  
 जलं करं प्रणवं ( ? ) निर्गतं शरद्-विभावरीवल्लभबिम्बमध्यतः ।  
 महीतलेऽभ्यागतया कथञ्चना-वतिष्ठमानं किमु वा सुधारसम् ॥१०॥  
 सृजन्तमुच्चैः स्वकरं मदोदया, कुलाद्रिसान्द्रप्रतिनादमेदुरैः ।  
 ध्वनिप्रतिस्पर्द्धितयात्मगर्जिते - रुषावगायन्तमिवाम्बुदान्वयम् ॥११॥  
 कुतूह[ ले ]नैव महीविहारिणं, महीथरं कैर[ व ]बन्धुधारिणः ।  
 शरत्सुधांशोरिव पिण्डितं महः, किमेतयोर्भाग्यनभोमणोरहः ॥१२॥ आदि सप्तभिः कुलकम् ॥  
 अमोचितं स्वप्नमवेक्ष्य संलये विलोचनाभ्योरुहमुदणानया ।  
 पयोरुहिण्येव पुलोमशा सना-वनीधरे वारिजबान्धवोदयम् ॥१३॥  
 असौ प्रसुप्ता सुखनिद्रयाङ्गना, समीक्ष्य स्वप्नं तमवाप संमदम् ।  
 यथा परब्रह्म समीरुन्धनै-र्निबद्धवीरासनयोगिपण्डली ॥१४॥  
 गभीरताबन्धुरितोपकाननं स्मितप्रसूनव्रजराजितान्तरात् ।  
 स्वहंसतूली शयनोदरादसौ क्षणादुदस्तात्करिणीव सैकतात् ॥१५॥  
 मरालबालेव विलासगामिनी क्षितौ क्षिपन्ती [ पद ]पद्मयामलम् ।  
 नितम्बिनी मन्थरमन्थरं ततो ययो समुद्दिश्य पर्ति पतिव्रता ॥१६॥  
 क्षणादथोर्वीवलयोर्वीसीमणी-विभूषणप्रोषितरोदसीतमाः ।  
 असौ पुरस्तात्प्रकटीबभूषुषी प्रियस्य मूर्त्तेव कुलाधिदेवता ॥१७॥  
 तथा ऋमादिभ्यविभावरीवरो विनिद्रणागोचरतामवापितः ।  
 वचोविलासैरुणांशुभिर्यथा-रविन्दविन्दं दिवसाननश्रिया ॥१८॥  
 सुमध्वजोर्वीधरजैत्रशङ्क्रया, रहस्यवत्स्वप्न उदात्त नेत्रया ।  
 विनिद्रतां लोचनयोर्वितन्वते, न्यवेदि तस्मै व्यवहारिभास्वते ॥१९॥  
 गिरं सुधापामिव जामिमुदतां, सुधासमुदादिदमाननाद्विधोः ।  
 निपीयकर्णैः पुटकैरिवान्तरा स कूणिताक्षः परमां मुदं दथौ ॥२०॥  
 किमावयोरेष फलं प्रदास्यति स्वपाणिसिक्तस्मयमानशालिवत् ।  
 इदं निगद्य प्रमदाद् वसुन्धरा-प्सरा अनाध्यायमवासयनुखे ॥२१॥  
 द्विजावलीचन्द्रिकयानुविद्धया स्मितश्रिया सेवितसृक्वदेशया ।  
 भुजान्तराभोगविलासमौक्तिका-वलीसरश्रेणिमिवोपचिन्वता ॥२२॥  
 निगद्यते स्म व्यवहारिणा क्षणं, विमृश्य तेनाथ विलोललोचना ।  
 रथाङ्गनाम्नेव रथाङ्गबान्धवो-दये रथा[ झी ] स्वसपीपमीयुषी ॥२३॥



## परिशिष्ट - २

हीरसुन्दरकाव्यसत्कपद्यानां अकाराद्यनुक्रमः ॥

सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
अ			
अखण्डचण्डेतरधाममण्डला०	२	६७	अथो पुरासन्धरते वृषाङ्क०
आगण्यनैपुण्यपुखान्नियन्व्य०	८	१५	अथो मिथः प्रीतिपरीतदम्पती०
अगण्यलावण्यतरङ्गचङ्गिमा०	२	४६	अदसीयविलासवत्यभू०
अगण्यलावण्यपयस्त्रिदश्या०	८	९३	अद्रिजार्द्धघटनाङ्कितमूर्त्या०
अङ्गाच्युताया रभसेन बाल्या०	७	५०	अद्वैतलक्ष्मीकमवेक्ष्य यस्या०
अङ्गजाभिलषणोद्भवकोपा०	५	१८१	अधिगत्य ततः श्रुतं त्रित०
अङ्गनाङ्गपरिम्बहसन्ती०	५	६१	अधिपौ निखिलक्षमाभृतां०
अङ्गराग इव सदगुरुशिक्षा०	५	६९	अधृष्यमन्विष्य यदीयभालं०
अजय्ययत्पाणिपयोरुहाभ्यां०	८	७८	अध्याप्य तेन विधिवत्सकलाः स विद्या०३
अजय्यवीर्य निजनिर्जयायो०	१	१३३	अध्यारुक्षोर्हदधित्यकां यद्०
अजय्यवीर्य मुखपद्ममस्याः०	८	१०४	अनक्षिलक्ष्मीभवति स भास्वान्०
अजय्यवीर्य मृडमन्यहेतिभिं०	२	४७	अनयेत्थमध्यन्यत प्रभु०
अजिह्वता सुह्वानृपैविले विले०	२	१०७	अनिशं वरिवस्यितस्य तत्०
अतिस्मरैस्तत्तनुकामनीयकैः०	२	९	अनीदृशीं व्योमणेदिनश्री०
अथ तत्पुरि देवसीत्यभूद०	६	३८	अनेकपस्वननिरीक्षणात्प्रिये०
अथ तत्र समर्थनामभृद०	६	११६	अनेन गोष्ठीमनुतिष्ठतात्म०
अथ दक्षिणोदेशतो महा०	६	६६	अन्तःस्फुरन्मौकिकरलराजी०
अथ देवगिरावगम्यता०	६	४७	अन्यार्द्धरचितात्मकलापा०
अथ नारदनामिं पत्तेन०	६	७२	अपास्यति स्माळ्यसुतां सरागां०
अथ पृथुकपुरोगः संमदेन ब्रतीन्दो०	६	१८०	अपि तत्र कमाख्यनैगमो०
अथ भावडसूनुसूरिग्द०	६	१३४	अपि पार्श्वजिनान्तरिक्षकां०
अथ व्यधत्प्रणिधानमिच्छन्०	७	४	अभजन्त यतिक्राजा विभुं०
अथ शिल्पचण्डैरचीकरत्०	६	१०२	अप्यस्यतास्याः श्रवसी मनोभू०
अथ साधुसुधाशनाधिपः०	६	९४	अप्युदगतैर्मुखखनेरिव वज्ररत्नै०
अथ सूरिपुरन्दरान्तिके०	६	१	अभ्रे मनाक्षसन्तमसैः प्रदोषः०
अथाविरासीद्विशशीतकान्तेः०	८	८	अमन्दगाम्भैरिव गन्धसारे०
अथैष वेलातटः समं भटै०	२	११०	अमन्दानन्दसन्दोह०
अथोददीप्यन्त नभःपदव्यां०	७	५५	अमुनाऽध्ययने समापिते०
अथो दधे चण्डके प्रयाते०	७	६६	अमुष्य नाभेयजिनावनीनभो०
अथो निशिथे द्विजराजराजज्०	८	१	अमूदशाम्भोजदृशा स्म भूयते०

सर्गांकः	श्लोकांकः		सर्गांकः	श्लोकांकः	
अमोचि तं स्वप्नमवेक्ष्य संलये०	२	७०	आ		
अम्बरे विरुद्धे सुधारुचे०	७	८२	आकण्ठमम्भस्सु निमज्ज्य काम०	७	६८
अम्भोधिमध्येऽर्थितबिम्बमम्भो०	७	२१	आगतेऽह्नि सुहृदीव तदुक्ते०	५	९४
अयं जयं यतः कर्ता०	६	१७०	आगमं गणधरस्य कुमारे०	५	६
अयमेव हि हीरवाचको०	६	९१	आगन्तुकस्योदयशुङ्गिशृङ्गा०	७	५८
अणिकेतुं नवभोगसङ्ग्निनं०	२	२	आगामुकं कामुकमक्षिलक्ष्यं०	७	३८
अकांशुसम्पर्कचर्याकंकान्तो०	१	१०९	आचाम्लकैद्वादशहायनान्ते०	४	१०९
अर्जितानि गरुडस्य च गत्या०	५	१३८	आजगाम विहरन्स धर्मिण्यां०	५	१
अर्थिव्रजेन मिलितुं स्वककामुकेन०	३	५३	आजन्म यद्विधुरिवेष उदेति कीर्ति०	३	३७
अलकायितपूः परम्पराः०	६	१३७	आज्ञां यस्य निधाय मूर्द्धनि मुदा		
अलंचकार प्रभवप्रभुस्तत्०	४	१९	शीर्षामिवासप्रभोः०	४	१४४
अलम्भिदम्भोलिशयेभशालिनी०	२	५	आत्मकामितमुखानिव मूर्तान्०	५	९२
अलम्भि याभ्यां दिशि येन काली०	४	१२६	आत्मफेनहरिचन्दनसान्द्र०	५	१३५
अवधार्य तदाग्रहं हिता०	६	१००	आत्मनामिव वतंसविधित्सा०	५	५
अवधेनुभावतो गुणै०	६	८८	आदर्शिकाधानि मिथो मृधेषु०	८	३८
अवापितो गोचरतां स मागधै०	२	१०८	आनन्दमेदुरितमानसपद्वचक्षु०	३	५८
अशीतिरस्मिन्नधिकाश्वतुर्भिं०	१	७८	आनन्दाद्वयवादमेदुरमना मध्ये		
अशोषदेशेषु विशेषितश्री०	१	२४	सखीनामिति०	२	१४०
अश्यमितास्य कमलातिदानै०	१	१३०	आप्लाविते किं सुरसिस्युभृवः०	७	८८
अश्रोत्रैः श्रोतुकामै-			आबालमुद्यद्वलयः शिखाश्चा०	८	८०
भुजगपरिवृद्धैर्यज्जगद्गीतकीर्ति०	४	१४१	आमुष्मिकामैहिकवत्समीहां०	१	८२
असमान महा दिनेशवन्०	६	५	अमोदमम्बुरुहिणीव विजृम्भमाणा०	३	३०
असाराद्देहिनां देहात्०	६	१८१	आरुरोह जितजिष्युहयं तं०	५	१३९
अस्यया स्वीयपराभविष्यु०	८	१३०	आवर्त्तविभ्राजितरङ्गितान्त०	८	५९
असौ जयन्ती जलजं स्वपाणिना०	२	५५	आवासविस्मेरमहीरुहाणां०	७	२५
असौ प्रकाम प्रमदं ददानया०	२	११७	आशानुरागातिशयं सृजन्ती०	८	१०७
अस्ति कथन न कस्यचनापि०	५	२४	आसाद्य तत्प्रसववेशम समं सगोत्रै०	३	४७
अस्तु वामनिशमभ्युपगम्यो०	५	१११	आसीत्ततः श्रीनरसिंहसूरि०	४	८२
अस्मात्ततः प्रादुरभूतपाख्या०	४	११०	आसीत्सुधर्मा गणभृत्सु तेषु०	४	११
अस्याः कलत्रं हरिजित्वरं यत्०	८	४८	आसीदसौ कलियुगे युगवाहरस्म०	३	४०
अस्याः सदृक्षां श्रियमाश्रयन्ती०	८	८४	आस्वादयन्त्वर्णिमामृतमेतदास्या०	३	४९
अहिता अमुना पराहता०	६	३७	आस्वादितस्वादुमृणालकाण्डा०	७	९
अहो महीयान्महिमा सुपर्व०	८	१५६			

सर्गांकः	श्लोकांकः	सर्गांकः	श्लोकांकः
इ		त्रिष्णा०	२ १३९
इक्ष्वाकुवंश इव नाभिमहीमघोना०	३ ७०	उपचक्रमिरे महामहा०	६ ११७
इक्ष्वाकुवंशाम्बुधिशीतभासां०	४ २	उपप्लवो मन्त्रमयोपसर्ग०	४ २९
इच्छता हृदि महोदयलक्ष्मी०	५ ३८	उपमातुमिवामरवती०	६ १४१
इतः श्रिया निर्जित विश्वयौवते०	२ १३३	उपवीतमुरास्थलान्तरे०	६ ५२
इति प्रणीय श्रुतिगोचरं वचः०	२ ८३	उमोपयामे पुनरासजन्म०	८ ४९
इथं गुरुं स्वं विमनायमान०	४ ७२	ऊ	
इदंपद्मभूय भवान्तरेऽपि०	८ २०	ऊर्जस्वलत्वं कलयन्कलौ यो०	१ ४१
इदं पुरु सारदलैः प्रणीय०	१ ६८	ए	
इदंमुखीभूतमवेत्य चन्द्रं०	८ ९६	एकातपत्रमिह यत्तनुजो विधाता०	३ ५
इदं वदन्त्यामरविन्दचक्षुषः०	२ १२१	एकादशासनाणधारिधुर्या०	४ ६
इदं विमृशयेयमजूहवन्मुदा०	२ ८९	एकांशवानपि कलौ शिशुनामुनाह०	३ ४१
इदमीयमहामहेक्षणो०	६ १०५.	एतज्जग्निज्ञत्वरलक्ष्मीक्षा०	१ ११४
इदमेव दिनं जगत्पते०	६ ११०	एतत्कलत्रस्य हरेः कलत्र०	८ ४७
इन्द्रियाण्यनिशमुत्पथगानि०	५ ७४	एतदालपितमात्मभगिन्या०	५ ८६
इन्द्रवारणिमवेयमसारा०	५ १५	एतदीयवदनामृतभासा०	५ १२१
इयत्यानन्तमपि प्रमातुं०	१ ५३	एतदगुणाभिनवगानविधानपूर्व०	३ ४२
इयं मृणाली जडसङ्गमोज्ज्य०	८ ७९	एतद्यशः क्षीरधिनीरपूरै०	४ २५
इवेक्षुद्गम्भान्धितरक्षणो महौ०	२ १०६	एतया ध्वनिनिरस्तविपञ्च्या०	५ ८८
इह जीवत आदिमप्रभो०	६ २०	एनं हिरण्यमणिभूषणभूषिताङ्ग०	३ ६३
इह नीवृति नारदाभिदा०	६ १४०	एवमुक्तवति हीरकुमारे०	५ ३१
इह शंकरभूमिभृत्सुखं०	६ १६	क	
उ		कंसारेत्रिव रुक्मिण्या०	६ १६४
उज्जृभवक्त्राम्बुजमन्दिराया०	८ १४४	कजपाणितमो द्विषज्जगन्०	६ १२७
उज्जांचकारैष महेभ्यकन्या०	४ १६	कटाक्षबाणान्प्रगुणान्प्रणीय०	८ १४३
उत्तातर तुणात्स कुमारे०	५ २०५	कण्ठश्रिया स्वःकुरविन्ददत्या०	८ ८७
उत्तालतालं करतालिकाभिः०	१ ५९	कण्ठीकृतो यज्जलजस्त्रिदश्या०	८ ८५
उत्तुङ्गतारङ्गशिखावलम्बि०	७ १८	कथञ्चनाऽर्थर्थनया मुदुत्वं०	८ २६
उत्तुङ्गभावमथ वर्तुलतां दधान०	३ ८५	कथं लभेतास्य तुलां सुरुद्ध०	४ १०
उद्दामदुर्गतिपुरेऽर्गलतां गमी य०	३ १०५	कथानुषङ्गेषु मिथः सखीजनो०	२ ९३
उद्धृत्य कण्टकगणान्किमु वारिजन्म०	३ १०२	कदाचिदिद्धोरुहिणीव निद्रया०	२ ६५
उद्गेभावं स्वमिवापकर्तुं०	१ ७७	कदाचिदिद्ध्यः कलधौतभूधरे०	२ ६४
उन्मज्जलधरदिव जामे०	५ ४१	कदापि मन्दार इव स्पितद्वुमे०	२ ६३
उपगतमिहान्यस्मादद्वीपात्प्रगेऽधिपति०		कदाप्यदर्शि तत्पत्न्या०	६ १५९

## 'श्री हीरसुन्दर' महाकाव्यम्

संगाङ्कः	श्लोकाङ्कः	संगाङ्कः	श्लोकाङ्कः		
कपालिमित्रं त्रिशिराः कुबेरः०	१	७१	कार्यकाल इतरोऽपि नरेणा०	५	२६
कपोतपालीतटसन्निविष्टा०	७	३३	कालं कियन्तमुदयान्तरितं तपस्या०	३	१२८
कपोलपालीमृगनाभिपत्र०	१	४६	कालागुरुद्रवकराम्बितगन्थधूली०	३	१५
कपोलभितौ मृगनाभिपङ्क्तौ०	८	१२७	किं वर्ण्यते वर्ण्यगुणस्य चौर्य०	४	२०
कपोलयुमेन मरुद्युवत्या०	८	३७	किमग्रदूत्यो मदनावनीन्दोः०	२	१२६
कमनः कमनात्रसेदुषः०	६	४०	किमपास्य जिनांह्लिसेवया०	६	१५९
कमलान्मधुपानुषज्ज्ञिनः०	६	४२	किमध्यर्थयमानाना०	६	१६१
कम्भेण वप्रेण वसुप्रभेण०	१	९८	किमावयोरेष फलं प्रदास्यति०	२	७७
करटाभिधपार्श्वनायको०	६	२१	किमिच्छता पाशयितुं जगत्वयो०	२	२४
करवीरगृहत्वमुग्रतां०	६	१५२	कियद्विहायः कियती क्षितिर्वा०	७	५३
करीन्द्रहस्तात्कदलीप्रकाण्डतो०	२	४८	कियम्भाणीवल्लभविप्रयुक्तां०	७	२८
करेणु कुम्भस्तनि ! पश्य दीप्तते०	२	१२५	कीर्त्या च वाचा च कर्चैर्जिताभिः०	८	५८
कर्मसन्ततिरेहितभावः०	५	८३	कीलतैकललितं कलयन्ती०	५	४०
कलङ्कवानिन्दुरथाभ्युदेता०	७	१६	कुंराह्यस्य हरति स्म मनो मनोऽ०	३	६९
कलभो यूथनाथेन०	५	२१३	कुक्षिम्परि क्षोणिनभः पदव्यो०	७	५६
कलयन्त्रिभामनुत्तरा०	६	५५	कुण्डले कलयती प्रतिबिम्बे०	५	११६
कल्पद्वमाङ्कुरमिवामशैलभूमी०	३	१	कुतुकाढ्हुरुपिणं स्मरं०	६	१४५
कल्पेलिकारुण्यरसान्वितस्य०	४	६५	कुतूहलेनेव महीविहारिणं०	२	६९
कवित्वनिष्कं कषितुं कवीनां०	१	४	कुत्राणि दस्यैरुगम्यमानाः०	१	६०
कविना च बुधेन सन्निधि०	६	७०	कुनयनान्नयता विनप्रता०	६	१३०
काचन व्यधितकाञ्जनकाञ्जी०	५	१६७	कुन्दकुइमलजयं सृजतेवा०	५	६७
काचनातिरभसान्वृगनाभी०	५	१६५	कुबेर इत्यात्मजनावमानां०	२	३
काचिच्चकोरनयना व्यवहारिसूनो०	३	६२	कुमुतिस्मता षट्पदपदिक्तकुन्तला०	२	५८
काचिदर्भकमपास्य धयन्तं०	५	१७३	कुम्भीन्द्रकुम्भो कुचभूयमूहे०	८	७०
काचिदीक्षणरसेन बबन्धो०	५	१५८	कुर्वन्निवासं गवि गौवश्री०	४	९९
काचिद्वशा विकचम्पकसूनशाली०	३	६४	कुलाद्रिवाद्विप्रतिनादमेदुरी	६	११०
कादम्बिनीव सलिलैः सुशैलशृङ्गं०	३	१३०	कुशेशयादर्शसुधांशुजित्वरे०	२	३१
कान्ते निमानेऽम्बुनिधौ प्रणश्य०	७	६३	कुशेशयामोदिनि ! वीक्ष्यतामसौ०	२	१२४
कापि मौक्तिकलतां स्वकटीरे०	५	१६८	कृत्वा विलासमवनीवलये यथेच्छं०	३	१२४
कापि वीक्षणरसत्वरमाणा०	५	१५९	कृत्वोदर्धवेहिकमसौ विधिना विधिज्ञो०	३	१२५
काप्यलक्षकधियोत्सुकिताङ्गी०	५	१७६	कृशाङ्गि ! राजन्यपयातवैभवे०	२	१३०
कामद्विपेश इवोद्भवितायमेत०	३	११५	केचिदुच्चवमणिपीठनिषर्णं०	५	९५
कामनीयकमशेषममुष्या०	५	१९८	केशोच्चयः स्फुरति तस्य स नीलकण्ठ०३	८३	
कार्कश्यसंहृतिलघूकृतहस्तात०	३	१११	कैदारिकं क्वापि समञ्जरीक०	१	५८

सर्गांक्षः	श्लोकांक्षः	सर्गांक्षः	श्लोकांक्षः		
कैदायमुज्जृभितशालि यस्मि०	१	५७	गाङ्गेयगारुत्मतपद्मराग०	१	११७
कोडाईत्यस्य कान्ताभू०	६	१५३	गाधा व्याधाद्याम्बरचुम्बिरङ्गात्०	७	८
कोरण्टके वीरजिनेन्द्रमूर्ति०	४	६७	गायनैरयमगायि समेतैः०	५	१४८
कौतुकादभुवमुपेत्य वसन्तौ०	५	१९४	गावः क्वचिद्द्रव्णिति सुधामुधाकृत्०	१	६१
क्रीडत्तुरङ्गद्वीपपद्मनेत्राः०	१	९२	गिराथ नेमेरविन्दनाभिं०	१	३५
क्रीडन् जयन्त इव यज्ञभुजां कुमारैः०	३	१२२	गिरिराज इव क्षमाधरो०	६	६
क्रीडितुं रतिपतेरिव गेहाः०	५	६३	गुरु नन्दिमहेऽङ्गनासखै०	६	१२०
क्वचिज्जगत्साक्षिणमेक्ष्य यातं०	७	४८	घ		
क्वचिचित्पुरं प्रत्यफलत्तटको०	१	७०	घूकैरक्मिव द्विषद्दिरुदये हन्तुं परैः		
क्वचिदिन्द्रमणी मिथो मिलद०	६	२७	प्रेषितं०	४	१२२
क्वचिदिन्द्रमणीनिकेतन०	६	२८	घोषणास्य यशस्सामिव भेरी०	५	१४९
क्षणादथोर्वावलयोर्वसी मणी०	२	७४	च		
क्षयात्सुधायाश्विरकालपानात्०	७	७५	चकोरिके चन्द्रकले लवद्विके०	२	९१
क्षत्रियैरिव सुतैर्युवराजो०	५	१५३	चक्रस्य चक्रवतुदित्वरदीप्रदीपि०	३	४३
क्षीरकण्ठः कृतोत्कण्ठः०	६	१६९	चक्रीब रलानि चतुर्दशापि०	४	३४
ख			चण्डी सपली प्रबला ममास्ते०	८	५८
खञ्जनाम्बुजचकोरमुखारीन्०	५	११२	चत्वार एतत्तनुजा विनेया०	४	६१
खण्डेन चण्डद्युतिमण्डलेन०	७	२०	चन्द्रचन्दनशिरोरुहशय्या०	५	६२
ग			चन्द्राच्चकोरोऽमृतपानदम्भाद्०	८	१३४
गगनात्मरसेन्दुहयने०	६	१०७	चन्द्राननेऽमन्दमरन्दबाष्या०	२	१३८
गङ्गावज्जलजन्मबन्धुतनया स्वः-			चन्द्राक्चक्रद्वयभृत्प्रभूत०	१	१३
कुम्भिवत्कुञ्जरो०	७	९०	चन्द्रावतीस्य नृपस्य नेत्रे०	४	९८
गणपुङ्गवमन्त्रमन्वहं०	६	८२	चन्द्राशमवेशमस्मितमुद्घहन्ती०	१	१०२
गणपूर्वगिरौ महोदयि०	६	१२५	चन्द्रोदये चन्द्रिकान्तगर्भ०	१	१११
गणाधिराजे प्रणिधानदुग्ध०	७	१३	चमूध्वनिः प्रागिग्रिकन्दरोदरे०	२	१०३
गणितं हनुरागिरागवन्०	६	६३	चमूभिर्वीन्द्र इवामरीभि०	४	७३
गणिनन्दिमहेऽप्सरो गणै०	६	१२९	चलेति विश्वे वचनीयता श्रुतेः०	२	१५
गणीन्दुना पट्टरमा गणीन्दुः	४	१४	चान्द्रीं द्वितीयेव कलां जनाय०	८	९
गते गवां स्वामिनि नाभ्युदीते०	७	५२	चापल्यकेलिकलिते असिताशयेय०	३	९२
गन्तुं ततः स्पृहयता प्रति पत्तनं स्व०	३	१२६	चिकीर्षता यन्मुखमात्तसार०	८	९०
गन्धसिभुराजस्य०	६	१६६	चित्रामिवेन्दुरनवद्यतमां स विद्यां०	३	७९
गभीरताधः कृतवार्द्धनेबो०	१	२९	चिरं विनोदैर्दिननायकेना०	७	५७
गभीरिमाणं दधतः सपलव०	२	७२	चूडामणिखिभुवनस्य यदेष भावी०	३	६५
गभीरिमाणा पाथोनिधिरिव महिमा परम्रु४	४	१३७	चूतप्रोहायुधकिंशुकार्ध०	१	८५

## 'श्री हीरसुन्दर' महाकाव्यम्

संगाङ्कः	श्लोकाङ्कः		संगाङ्कः	श्लोकाङ्कः
चूर्णेः प्रपूर्णा किमु मौक्तिकानां०	७	८७	जैनार्चाश्रमणाद्यभावभणनाम्भः-	
चूलक्रियामहमयाङ्गभवस्य तस्य०	३	७२	प्लाव्यमानात्मनां०	४ १३४
चैत्येन चूडामणिनेव शीर्ष०	१	३०	जैमनीयमनुजा इव दैवे०	५ ७३
चैत्येऽश्मगर्भाङ्गसिताशमकुम्भं०	१	१०८	ज्ञायन्ते वसुधासुधाकरण्हा गर्जार्खैः	
छ			कुम्भनां०	७ ९२
छायां तनोरिव न लङ्घयतापि वाचं०	३	७६	ज्ञेतिस्तरङ्गीकृतयन्निकेत०	१ ११६
ज			उ	
जगञ्जनावाङ्मनसावगाहिना०	२	७	डिम्भलम्भितविडम्बनभाजा०	५ ४६
जगत्त्रयीजन्मजुर्वां मृगीदृशां०	२	१७	त	
जगत्त्रयी स्त्रेणजयार्जितायाः०	८	६०	तं जङ्गमं त्रिदशासालमिव स्वपुण्य०	३ १२९
जगत्पुनानः सुमनःस्वनन्ती०	४	१०५	तं पारियानिकमसावधिरुद्धा भूमी०	३ १२७
जङ्घे यदीये प्रणयन्प्रयत्नात्०	८	३६	तं साक्षिणं प्रणयवान् स्वगुरुं प्रणीय०	३ ७७
जडीभवन्ती रिपुनिर्जये यद्०	८	११३	ततं वचो यस्य घनं पदाङ्ग०	२ १६
जन्मुरेष इह जामिकलत्र०	५	५५	ततोऽजनि श्रीजयदेवसूरि०	४ ७९
जन्मिनामयमकृत्रिमित्रं०	५	२७	ततो जरा येन यदूद्धहानां०	१ ३६
जन्मोत्सवं विदधता तनयस्य तेन०	३	५१	ततो नमस्तिं सूरि०	६ १७७
जम्बालयद्विर्जलदैरिक्वोर्व०	१	१३२	ततो वयस्योऽन्तिकमागता मधु०	२ ९०
जम्भट्टिष्ठत्कुम्भिपराभविन्या०	८	२९	ततोऽस्य सङ्ख्यातिगपटृपद्धिक्भिः	२ ११९
जयन्तवज्जम्भनिशुम्भभामिनी०	२	८२	तत्कर्णयोर्मणिविनिर्मित कर्णपूर०	३ ६६
जयविमल इदं तन्नामधेयं विधिज्ञो०	६	१८३	तत्कलाकुशलमानवर्गा०	५ ९८
जलकेलिगलद्विलेपनी०	६	३३	तत्क्वेव वार्ता मम राजहंसान्०	८ ४२
जहिरे मिहिरैजसा मही०	६	९६	तत्पटृपद्धेरुहमानसौकाः०	४ ८७
जहे महेलया निद्रा०	६	१६३	तत्साधु मन्ये मलयानिलेन०	८ ११८
जहेऽम्बरं सायमशीतभासा०	७	१५	तत्सुमानि सुरवैभवलम्भः	५ ३४
जानुस्पृशौ शिशुभुजौ विनियन्त्रणाय०	३	१०७	तत्र तद्वत्तमहोपनतानां०	५ १४३
जाने यदास्यं सरसी सुधाया०	८	१११	तत्र भावयति नः पुलकोद्यत०	५ १४०
जितस्मगन्यौरजनात्रिपीय०	१	१२२	तत्र सस्यभरगौरवभागिभः	५ १९७
जिनवद्गणधारिणः पदं०	६	१२२	तत्राऽपि च स्फूर्तिमियर्त्यपूर्वा०	१ ४२
जिनावनीन्द्रोः किल धर्मकर्मणो०	२	९६	तत्राऽस्ति भूमान्महमुन्दनामा०	१ १२७
जिनेशितुः शासनदेवतायाः०	८	१६	तत्रैकदेशे वपुषीव वक्त्रः०	१ ६६
जीवितं कुशशिखास्यमिवाम्भः०	५	५३	तथा चतुर्विंशतितीर्थकृद्धृहं०	२ ११४
जृम्भणादाननं काशा०	६	१६२	तथा तवाप्यस्तु यथा त्रियामे०	७ ६१
जृम्भमाणजलजद्वितीयां०	५	६४	तथा प्रथन्तां कथका यथा कथा०	२ ९२
जेया त्रिलोक्येव शरैस्त्रिभिस्तत्०	८	१३२	तदाननेन्दोरमृतोर्मिम्मालिनो०	२ ७८

सर्गांक्षः	श्लोकांक्षः		सर्गांक्षः	श्लोकांक्षः	
तद्विद्विक्षुरपराङ्गनयष्ट्या०	५	१६४	तां निपीय मुनिवासववाचं०	५	३६
तदीयपट्टाम्बरभानुमाली०	४	७४	ताण्डवं व्यरचि वारवधूभि०	५	१५१
तदुपान्तभुवं व्यभूषयत्०	६	५०	ताभ्यां पुनः स्थापितमुज्जयन्ते०	१	३४
तदगजादिभरभारमसहां०	५	१५६	तिलकं हरितामसौ हरिद०	६	११
तदगवेषणरसोत्सुकचेता०	५	१७१	तीर्थनाथमिव चैत्यतरोस्तत्०	५	२०४
तद्वक्षिणार्थे सुरोहगर्व्य०	१	२३	तीर्थाधिभर्तुर्मतदेवताया०	८	४५
तद्वोहदप्रकरपूर्तिविधौ सुपर्व०	३	११	तीर्थानि तीर्थाधिपपावितानि०	१	४४
तद्यशोधरणिभर्तुरितोऽन्य०	५	१९२	तूर्णमस्ति यदि तत्र यियासा०	५	२१
तद्वचो विरचितं सहजेन०	५	४५	तेनाथ मुक्तं गिरिसारिशृङ्गे०	१	३३
तद्विभावनरसव्यवसाया०	५	१६६	तेनापि सोमतिलकाभिध सूरिगात्म०	४	१२०
तद्विभूषणमणीनिकुरम्बैः०	५	१२९	तेषे तपो भूधरगह्वरात्त०	७	५४
तद्विलोकनरसस्तिमितानो०	५	१५७	त्यक्तपूर्ववपुषा निजयोषा०	५	१८३
तनूजन्माननज्योत्स्ना०	६	१६८	त्यक्ताश्रवः कञ्जुकिकामुकाभिः०	१	१२४
तनूभवत्तारकतारभूषणा०	२	१३१	त्यक्त्वावतीर्णा पुरुषं०	६	१५६
तनूलतातागाधतरङ्गितप्रभा०	२	४२	त्यक्त्वाशेषकुपाक्षिकांश्च कुटृशः		
तन्निवृत्तैः स्थानमुरोजयुग्म०	८	६६	किपाकभूमीरुहा०	४	१३२
तपसः सितपञ्चमीदिने०	६	७४	त्रिजगद्विजयोद्यतस्य यद०	६	१३८
तमःसप्तलः प्रितशम्भुशीलनः०	२	४	त्रिजगत्रयनामुताञ्जनं०	६	११३
तमःस्तोमप्राये कुनयनगणौर्दारुणतमे०	४	१३६	त्रिदिवोज्जयिनीं पुरीं तदाजनि०	६	७९
तमस्त्विनीशोऽस्तमिते प्रकाशतां०	२	१३२	त्रिनेत्रेत्रानलभस्मितात्म०	२	३४
तमोगणालिङ्गिनभोङ्गणश्रीः०	७	४५	त्रिशलातनुजन्मशासना०	६	१०६
तमोभरोर्वाधरभेदवज्जि०	४	५०	त्रैलोक्यमाक्रम्य पराक्रमेण०	८	१४९
तथा क्रमादिभ्यविभावरी वरो०	२	७५	त्वदीयवाणीतपनास्तमुद्रिता०	२	१२६
तयोः पदे श्रीमुनिचन्द्रसूरि०	४	१०२	त्वद्वधूमुखसुधाशुसुधायाः०	५	५१
तरुणी तपनात्मजन्मनो०	६	७	त्वया स्वकीर्त्या सुमनस्तरङ्गिणी०	२	४४
तस्मिन्यदं प्रविदधे गुणधोरणीभिः०	३	११९	द		
तस्य लोचनपथे पृथुकेन्द्र०	५	१३	दंशादहेग्रहितकाष्ठभार०	४	११८
तस्य वीचिभिरिवामर सिम्बो०	५	७९	दत्वाधिपत्यं निखिलाचलानां०	७	७०
तस्य स्फुरदद्युतिपयः परिपूर्णबाहुः०	३	१०६	दम्भोलिभूषणभरेद्वदंशुचाप०	३	२३
तस्याङ्गजास्य शशिदर्शनतोऽम्बुराशे०	३	४८	दर्पणेष्विव गवेषयति स्वं०	५	१२७
तस्यानुजो गजगतेः शतकेटिपाणे०	३	१२३	दर्शयन्त्यपर पद्ममुखी तं०	५	१७७
तस्या भवल्लवणिमातिशयः स कोऽपि०	३	८१	दशामवास्यन्ति यदन्तिमामिमे०	२	१०२
तस्यार्थं शक्र इव चित्रशिखण्डसूनो०	३	७५	दस्तयोः किमयमन्यतमोऽस्मिन्०	५	१८४
तस्याः सुतो रविरिवाम्बुजपाणि विश्व०	३	९	दिग्नन्तवासं किमपास्य काशयपी०	२	११८

सर्गांकः	इलोकांकः		सर्गांकः	इलोकांकः	
दिवावाससो येन विजित्य वादे०	४	८४	धर्ममार्हतमतो जनिमन्तो०	५	१९
दिव्युते मणिकरम्बितयास्ये०	५	१०७	धर्मोपदेशच्छलतः स्वपाणि०	४	३५
दिशां चतुर्णामयमर्णवावधी०	२	१०९	धवः सुधाधमसगोत्रवक्त्रये०	२	८४
दिशि विभ्रति यत्र भूभृतः०	६	२३	धात्रीभः प्रेमपात्रीभिः०	६	१७१
दीप्यते किमधिकं सुषमा नो०	५	१२८	धात्र्योदातां प्रथमतः पृथुकप्रकाण्डः०	३	७१
दुधाम्भोनिधि निर्जरा इव नराः			धारिणीसुत इवाद्य सुधर्म०	५	३९
सर्वेऽपि संज्ञिरे०	७	९३	धिया जयश्चित्रशिखण्डिसूनु०	४	७०
दुन्दुभिध्वनितिभिर्जयशब्दं०	५	१५२	धुनीधवं येन गभीरनिःस्वनै०	२	१२
दुर्भिक्षके पायसमेक्य लक्षो०	४	६०	धृतैकपाशेन पयोधिधामा०	८	१३८
दुर्भिक्षकवर्षेषु सुभिक्षभूमी०	४	५३	ध्यातुवरं श्रीश्रुतदेवतेव०	४	५५
दृक्कर्णवेणी कलकण्ठकण्ठी०	१	९५	ध्यानस्थितं शासननिर्जरी सा०	८	७
दृगदानदासीकृतदेववन्या०	१	९१	ध्यानानुभावेन ततो निशीथे०	८	५
दृग्दोषखण्डनकृते भ्रमरं तदीये०	३	९१			
दृसां यदूद्वितीयीं प्रतीपा०	८	४१	नकं नलिन्यादिमगुल्मनाम०	४	४०
दृष्ट्वा पर्ति रतं रत्यां०	६	१५५	नखोल्लस्त्पल्लवशालमानै०	८	२३
देवेन्द्रकण्ठभरणीभवद्विद०	४	१११	नगरे नगरम्बृकृद्यतो०	६	२९
देशानां शमवतां शतमन्युः०	५	१४	नभः परीरम्बणलोतुभैर्यद०	१	९९
देशे पुनस्तत्र समस्ति शङ्खे०	१	३१	नभः श्रियास्तारकमौकिकस्वजः०	२	१२७
दैत्यमर्त्यमरुतां विजये त्वं०	५	१८६	नभोङ्गणान्निर्जरहस्तमुक्ता०	५	२११
दोषामुखेन द्विषतेव वाद्धौ०	७	३२	नभोङ्गणे सान्द्रित साम्यरागै०	७	३६
दोषोदयोदीततमः प्रपञ्च०	४	१००	नभोङ्गसारङ्गदृशां रतीशा०	७	५९
द्युसदामिव मेदिनीरुहो०	६	११४	नवोदयं हीरकुमारचन्द्रं०	१	४५
द्रविणार्पणहृष्टमानसाद०	६	५६	नाभीभवेन तदुदाहरणैः कृतैः किं०	३	८०
द्रवीभवद्वृसिताभ्रचन्दन०	२	४३	नारकादिगतयोऽन्न चतस्र०	५	१६
द्राविंशताजनि रदैरपि लक्षणानि०	३	१०१	नार्हती व्रतविधौ तव तेना०	५	७७
द्राविंशदाशावसनैरभेद्यो०	४	१०८	निःशेषभूवलयकुण्डलिवेशमनाकिं०	३	१०३
द्वारं स्वसिद्धेरिव सूरिण्जो०	७	५	निःस्वादिवैश्वर्यमनाप्य झंझू०	१	४०
द्विजाधिपत्यं मुख एव मुख्यतो०	२	२८	निखिलदिविषयोषा-		
द्विजावलीचन्द्रिकयानुविद्या०	२	७९	लेखाकुमुद्वनकौमुदी०	८	१६४
द्वीपे परस्मिन्नितरोऽपि कश्चिद०	७	२३	निगद्यते स्म व्यवहारिणा क्षणं०	२	८०
द्वे महोदयपुरस्य पदव्यौ०	५	२०	निजगाद गुरुर्भीरिमा०	६	८७
द्वेषिणामिव गणाः क्षितिमानं०	५	७२	निजधैर्यवदान्यता श्रिया०	६	१३२
ध			निजप्रतिद्वन्द्विधुत्तुदस्य०	८	१२५
धर्म एव मनुजैर्हि मन्त्रो०	५	३५	निजाक्षिलक्ष्मीहसितेणशाव०	८	६४

संगाङ्कः	श्लोकाङ्कः		संगाङ्कः	श्लोकाङ्कः	
निजाक्षिलक्ष्मीहसिताब्जखञ्जने०	२	१२८	न्यक्षरुक्षनिकरेषु गुरुत्वं०	५	१९९
निजाङ्ग्नोदीतयदीयकीर्ति०	४	११२	न्यगदन्निति ते पुरो गुरो०	६	९८
निजास्यदासीकृतशारदोदय०	२	१२९	प		
नित्यातिवाहाद्विग्रातवलम्बा०	१	५६	पक्षद्वयं भिन्नतमोभरेण०	४	४५
निपातुकेन द्विजकान्तिमिश्रित०	२	२६	पदिक्तप्ररूढैः प्रचलतपतङ्ग०	१	९०
निमीलनोन्मीलनदूषितेभ्यो०	८	११९	पञ्चाशुगान्यः समितीर्विधाय०	४	४७
निम्नगेव परिसर्प्ति निम्न०	५	५७	पटीष्ववोद्घामकलामकौघा०	७	१२
निरधामि मुहूर्तमान्मना०	६	१०१	पट्टश्रियास्य मुनिसुन्दरसूरिशक्रे०	४	१२३
निरमापयदस्य पूर्वजो०	६	८१	पट्टिकाऽर्भकविभोः कनकस्य०	५	१०६
निरिक्तरीभिर्मधुपीभिरुल्लस०	२	१३४	पट्टेऽथ तस्यार्यमहागिस्थिा०	४	३६
निरीक्ष्य लक्ष्मीं निजभर्तुमातरं०	२	४५	पठता सह धर्मसागर०	६	४८
निर्गतायुरखिलद्रविणास्ते०	५	१८	पठति स्म स धर्मसागरः०	६	५४
निर्जितेन यशसा सितभासा०	५	१३१	पण्याङ्गनायाष्विकः किलकिञ्चित्तानि०	४	३२
निर्जीयते स्म क्वचनापि नायं०	४	१०४	पत्तौ गवां क्वापि गतेऽस्य	७	४२
निर्मृष्टनिःशेषनिष्टुराया०	७	१०	पत्रान्तराजज्जलबिन्दुवृद्धैः०	१	९४
निर्यत्सुग्रस्वाशनि भूषणानि०	८	१३	पदपदमविलासलालस०	६	९०
निशाने श्रीसुतकान्तमत्तै०	७	३९	पदप्रदानावसरे समीक्ष्य०	४	७१
निश्चिकाय वचनैरथ तैस्तैः०	५	५९	पदं मयेदं प्रददे शिरस्सु०	८	२४
निश्चिकाय विनयानतकाय०	५	३७	पदमस्य हृदि व्यतन्तनीद्	६	६२
निष्कुहान्तरितविष्किरवार०	५	२०२	पदमाप्यत पण्डिताह्यम्०	६	७३
निष्पतन्मदविलोलकपोला०	५	१४४	पदारविन्दोन्नतताभिरात्मनः०	२	५१
निस्तीर्य दोहदभवार्तिमथैनचक्षु०	३	१३	पदे तदीये विबुधप्रभेण०	४	८६
निञ्चिशमन्थानगमथ्यमान०	१	१२९	पदे पदे यत्पुरकौतुकानि०	३	१३३
नीरदोऽवनिभृतमिव तांपं०	५	१९१	पद्मावतीप्राणपतिः प्रसूना०	१	३९
नीराजयन्तीष्विव चित्रभानु०	१	११	पद्मिनीप्रियतमो दिवसादौ०	५	१४२
नीलारविन्दनयना कमलावदाता०	३	१७	पयोधिपुत्रीतनयावनीपते०	२	९८
नीलारविन्देन पुरा प्रणीय०	८	१४६	पयोधिरोधःस्थलरोधिर्भिर्विभोः०	२	१०५
नीलांशुकाक्लितबालकामपाल०	३	६१	परशासनशास्त्रमालिका०	६	४६
नीलोत्पले कर्णयुगे चकासां०	८	१८१	परजितद्वीपतिप्रतीष्ट०	१	१९
नूपुरं निजभुजे रभसेना०	५	१७०	परनवाप्यान्निजवासपत्तना०	२	३९
नृत्यच्चन्द्रकिचक्रमुन्मदनद्वप्पी-			परान्परः कोटिजिनालयानयम्०	२	११५
हबालाकुलं०	६	१९२	पराबुभूषोर्गिरिशं स्मरस्य०	८	५५
नृपोऽयमाद्योऽजनि सङ्घनायकः०	२	११६	परिशीलितशीललालया०	६	१३१
नेत्रामृताञ्जनमसौ जगतां यदस्या०	३	६७	पर्यङ्कबन्धः स विभोव्रतश्री०	८	२

## 'श्री हीरसुन्दर' महाकाव्यम्

सर्गांक्षः	श्लोकांक्षः	सर्गांक्षः	श्लोकांक्षः		
पशोरिवोर्वीदिवगोचरस्य०	७	४९	पूर्वादिपाटलशिलाबलये शशीव०	३	५०
पश्यन्तु वैतुष्यमपुष्य जम्ब०	८	१८	पूर्वादिमौलेरथ मन्दमन्दम०	७	७७
पाणिना विरुद्धे पविरेचि०	५	१२४	पूर्वापराम्बुनिधिबन्धुरमेखलाया०	३	५५
पाण्डुः क्षयीशून्यनभश्रिष्णु०	८	१०५	पृथक् पृथक् पञ्चमुखद्विषमुखा०	२	३७
पातालभूतलसुरालयलोककोटी०	३	५४	प्रगल्भफालैर्गणे नखैः पुन०	२	१०४
पातुमप्रभु कुमारविभूषाम०	५	१६२	प्रजां द्विजिहैरिव पीड्यमानाम०	१	१२८
पादारविन्दयुगलोपरिलम्बिनीनाम०	३	६८	प्रणिगद्य पुरे गुरेरिदम्	६	९२
पारे गिरं वृत्तमिदं वव सूरे०	१	६	प्रतिपञ्चमुखं द्विषं व्ययी०	६	३१
पिकपञ्चमकूजितकवणा०	६	११२	प्रतिभाविभवैः पठम्कमात०	६	५७
पिकाश्वकूजुः सहकारकुञ्जे०	७	३४	प्रदेहि नः साक्षरतामबाह्याम०	१	७५
पितामहस्य व्रतिराद् चरित्रै०	७	७३	प्रद्युम्नदेवोऽथ पदे तदीये०	४	९०
पित्रोर्मनोरथगणान्कुटजावनीजा०	३	५७	प्रद्योतनाह्वप्रभुणाप्यमुष्य०	४	६८
पिपासितं रेचकितं च रङ्गुम०	१	९७	प्रपेदुषीं यत्पदतां पयोज०	८	२१
पिबतान्मुनिरेष नोऽपि मा०	६	२५	प्रफुल्लकङ्गेलिरसालमलिका०	२	६९
पीतादुपास्त्याधिगता गिरीशा०	१	११९	प्रफुल्लमल्लीकुसुमावनद्ध०	८	१६१
पीनस्तनद्वयममेचकितं पयोभि०	३	२२	प्रबुबुधे प्रभुदेशनया तया०	६	१८१
पीयूषकान्तिमिव दुग्धपयोधिवेला०	३	३१	प्रबोधयन्धव्यसरोजराजी०	४	६९
पीयूषपूर्णः कलथौतकलूप्तो०	७	७४	प्रभो प्रभावादथवा कथं न०	१	९
पीयूषपूर्णस्मरकेलिशोण०	८	९९	प्रभोरूपान्ते सममस्या महा०	६	१८२
पुत्रावतीव्याजवती यदीय०	८	७२	प्रवालमुक्तामणिमङ्गिमश्री०	४	३१
पुनः सृजन्त्यां मयि मुद्रणां दृशो०	२	८८	प्रवाललक्ष्मीरिव कामितद्रो०	८	१०
पुपोषाऽवयवैर्वद्धिम०	६	१७२	प्रविभाव्य भवेन भस्मित०	६	१४४
पुरसङ्घजनैः प्रणोदितै०	६	४९	प्रससार महीविहायसोः	७	८४
पुराभवत्राभि महीहिमद्युते०	२	९४	प्रसादकान्ती दधती सुवर्णा०	८	२८
पुरारिकंसारिपदप्रसत्ते०	७	४७	प्रसारिशोचिर्मकरन्दसान्दा०	८	५२
पुरि जानपदीयमानव०	६	११८	प्रसूनतारवलिशालितायाम०	८	७१
पुरि तत्र निजामसाहिना०	६	३४	प्रसूनधन्वा निजदेहदाहे	८	७७
पुरेऽथ तस्मिन्व्यवहारिपुङ्क्वो०	२	१	प्रसूनमालाभिरतङ्कृताभ्याम०	८	६९
पुष्पपल्लवपलानि दधाना०	५	१९६	प्रस्थातुकामेन तमो जिधांसो०	७	६२
पूज्येषु रञ्जितमना यदसौ कुमारः०	३	९९	प्रह्लादनाच्चन्द्र इवाङ्गभाजा०	१	७३
पूरे समुद्रस्य बभस्ति बिम्बम०	७	१९	प्रह्लादनाहनगरं पुनरप्यमुष्य०	३	४२
पूर्णामृतैररुणरत्नमनोऽमध्या०	३	९८	प्रागिदग्मृगाक्ष्या प्रणयेन पत्यौ०	७	७६
पूर्वनिर्मितपतस्परतकैः०	५	१२	प्राग्निर्जितश्रीरथनेमिमुख्य०	४	३३
पूर्वमेव नियमस्थितिकालात०	५	८०	प्राचीपयोरशीपयःप्लवान्त०	७	७९

सर्गांक्षः	श्लोकांक्षः	सर्गांक्षः	श्लोकांक्षः
प्रातः साधुवृत्स्वचदापणपुरो यो		ब्रह्माण्डभाण्डोपरिभित्तिभाग०	१
याति सूरीशिता०	४	४	६२
प्राप्तमरूपविभवं वहते यः०	५	भक्तामराहस्तवनेन सूरि०	४
प्राप्य तावककरादिह दीक्षा०	५	भयादिमेनाथ हरस्तवेन०	४
प्राबोधयत्वौद्धुरप्रभुं य०	४	भर्ता सुराणामिव लोकपाले०	४
प्राबोधयद्दुःशकनैकतीत्र०	४	भवति स्म विचक्षणः क्षणाद०	६
प्रामाण्यमस्य वहतो महतां सदस्य०	३	भस्मीकृतं धूर्जटिनाक्षिलक्ष्यी०	८
प्रीणाति या प्राज्ञदृशशकोरो	१	भागीरथीव यद्ब्राह्मी०	४
प्रीतिर्जनेषु वृजिनेषु न तस्य ज्ञेऽ	५	भाग्यभाजि जलजन्मगृहेवा०	५
प्रीतिवापीपयः पूरो०	६	भाति तत्पदरजोऽस्य ललाटे०	५
प्रीति सृजन्ती पुरुषोत्तमानाम्०	४	भाति मुक्तपलिके रभसेना०	५
प्रीत्या च रत्या सह मीनकेतो०	८	भानोर्बधौ मण्डलखण्डमब्द्यौ०	७
प्रेक्ष्य स्वदाहे ज्वलितास्तमालाम्०	८	भान्ति स्म यस्मिन् सुमनोभिरामा०	१
प्रेम्णा गुणाननुगुणीकृतवेषुवीणा०	३	भारतीमिति निशम्य शमीन्दोः०	५
प्रेम्णा प्रेणतुमजरामरतां प्रसद्य०	३	भारती श्रुतियुगाङ्गलिना त्वाम्०	५
प्रोतुङ्गपीनस्तनवैभवेन०	८	भारसासहितया जितशेषः०	५
फ		भालमण्डलममण्डयत राज०	५
फणभृद्धगवत्रिभालना०	६	भालस्थलप्रसृमरांशुपयः प्रवाहो०	३
ब		भावी यदेष पृथकः सुमनो निषेव्य०	३
बन्धूकबन्धुभवदेतदीय०	८	भावी यदेष वृषवज्जिननर्धमधुर्य्यः०	३
बभूवतुद्वौ भुवनप्रदीपौ०	४	भास्वन्मयूखविजिगीषुयदङ्गजातः०	३
बभूव नाभेयाविभुः स आदिमः०	२	भियाभ्रमूवलभवाहनारेः०	१
बभूव मुख्यो वसुभूतिसूनु०	४	भीतेः स्विकायाः दिवसस्य लक्ष्मी०	७
बभूवुरिक्षवाकुकुले सहस्रशः	२	भुजान्तरानुत्तराजधान्या०	८
बभे नभस्याम्बुधरायमाण०	१	भुजान्तरासनशयारविन्दे०	८
बभौ भुजाभ्यां मखभुग्माक्षी०	८	भुवि मङ्गलतूर्यनिस्वनो०	६
बहुना किमु तन्मनस्विनो०	६	भूचरानिव विधेरनुवादान्०	५
बहुना महिमाभिनन्द्यते०	६	भूपीठखण्डानिव चक्रवर्ती०	४
बालसाल इव कोरकभूषा०	५	भूमीनभोमण्डलमेदुर श्री०	७
बालारुणज्योतिरखर्वगर्व०	१	भूरुहैर्विहसितैरिव कुञ्जः०	५
बाल्येऽपि रशमीन्सरसीजबन्धु०	४	भूरेषा किमु चन्द्रचन्द्रनरसैरालिप्यते	४
बाल्येऽपि हेमाद्रिकम्पि येन०	४	सर्वतो०	४
बाहीककालागुरुगन्धसार०	१	भूविहारिहयवाहनशस्या०	५
बिन्बाधे निपतिताभिरभासि यस्य०	३	भूषणैः कनकरत्ननिबद्धै०	५

## 'श्री हीरसुन्दर' महाकाव्यम्

सर्गांकः	श्लोकांकः	सर्गांकः	श्लोकांकः		
भूषाशनिस्फुरितशक्रधनुः समुद्दद०	३	१२१	माहात्म्यनप्रीकृतसर्वदेवः०	४	९६
भृङ्गसङ्गतवतंससरोजे०	५	११३	मित्रे गतेऽस्तं वियुनकि राजन०	८	६७
म			मिथः परस्पर्धितया वदान्यता०	२	१०
मण्जत्कुफ्कुञ्जरिवन्दुवृन्दा०	७	३७	मिथः प्रथाभिर्वचसां वचस्विनौ०	२	८५
मणिकल्पितशिल्पकौतुक०	६	१०३	मिथो मुनीद्रेण मृधे मनोभू०	८	१४५
मणिकाञ्चनकल्पनन्दनै०	६	२६	मिथ्यामतोत्सर्पणबद्धकक्षं०	४	११३
मणीघृणिश्रेणिघृतान्धकरै०	१	१०१	मिलद्वलाकाम्बरमुद्धहन्ती०	७	२
मण्डयत्यमरमन्दिरं गुरै०	६	१८६	मुक्तालताङ्केव निजोपकण्ठ०	१	४९
मधुप्रधावन्मधुक्तिरुद्धै०	१	९३	मुक्त्वा द्विषः पञ्चमुखीं प्रति स्वान०	८	१२३
मनः समुत्कृष्टयतस्तनुभासां०	२	१४	मुदमादधिरे मुमुक्षव०	६	१२४
मन्महे सकलशीतलभासां०	५	११५	मुदाथ नाथी शयनीयमन्दिरं०	२	८६
मन्ये कुमुदबन्धुरिदं मृगाङ्क०	८	१५५	मुरवैरिपुरीव माधवो०	६	१४६
मरन्दनिस्पन्दितमालताली०	७	२६	मुहूर्तमद्वैतमवेत्य हेली०	४	९४
मरालबालेव विलासगामिनी०	२	७३	मूर्त्तेरिव स्वस्य गुणैः प्रफुल्लत०	४	५६
मरुतामिव पद्मतीः पुरी०	६	६७	मूर्धनि तस्य मुकुटेन दिवीपे०	५	१०५
मरुदेशमभूषयत् क्रमाद०	६	६९	मृगाक्षि ! पश्यामरसन्धु सारणी	२	१२२
मरुद् गृहादार्थसुहसितमूर्तिं०	४	३७	मृगाक्षि ! सोपारककुलपाकयो०	२	११३
मरुन्मृगाक्षीवदनाङ्गदन्तै०	८	१०३	मृगीदृशमञ्जनमञ्जलाभिं०	६	३०
मर्त्यजन्मनगरीमधिगत्य०	५	१७	मृगीदृशो हेलितकेलतीश्रियो०	२	१९
मलयो बलिवेश्मवद् बभौ०	६	१३	मृगेन्द्रमध्ये मृगयस्व तारकान०	२	१२३
मलयो मलयद्वमेदुरः०	६	१२	मृडमूर्ध्नि निवास सौहृदान०	६	५१
मलयो मलयद्वसौरभैः०	६	१४	मृणालथवलास्कर्ष्ये०	६	१६०
मलीमसीभूतमशेषमभ्रमा०	७	७	मृणालिकाभिर्जलदुर्गभाग्भिं०	८	८१
महर्घ्यमाणिक्यमिवाङ्गुलीयं०	४	८३	मेरोः शिखाग्रावसथव्यथाभिं०	१	१२१
महसां निवहे महीशितुः०	६	३६	मोघीकृताशेषशरं गिरीशं०	८	१३७
महाब्रती कालमनोभवारि०	५	२१२	मौक्तिकेन किल सोदरसर्वैः०	५	५०
महीवियद्वीक्षणकेलिलोली०	८	१२	य		
मा कृथाः क्वचन तत्प्रतिबन्धं०	५	३२	यं प्रासूत शिवाहवसाधुमघवा		
मागधा मधुरमङ्गलवाचः०	५	१४७	सौभाग्यदेवी पुनः०	१	१३८
माणिक्यभूषणगर्णैर्न तदा कदाचिं०	३	१८		२	१४२
माद्यसि स्मरजगज्जयनीभिः०	५	१८५		३	१३६
मानमाननसरोहवत्यां०	५	१८९		४	१४९
मानवान्स्वयमसौ च्छलदर्शी०	५	७५		५	२१८
माननीजनमनोनयनस्वं०	५	१०३		६	१९४
				७	९५
				८	१७२

संगाङ्कः	श्लोकाङ्कः	संगाङ्कः	श्लोकाङ्कः		
यं शम्भुशैलच्छविरोमगुच्छ०	१	१२	यदीयपृष्ठे कनकत्विषि स्मित०	२	३८
यः पञ्चमोऽभूद् गणपुङ्गवानां०	४	१२	यदीयमूर्तिर्निरमापि भक्त्या०	१	७४
यः शैशवादेव जहौ निजाम्बां०	४	५१	यदीययात्रासु चमूसमुत्थितै०	२	९९
य आदिमोद्धारकरो जिनालयं०	२	११२	यदीयराजद्विभवाभिभूतया०	६	१८८
यच्चक्षुषा मातृमुखोऽप्यशेष०	१	३	यदीयलक्ष्या विजितेव लङ्का०	६	१८९
यज्ज्ञयाऽधः करणादुदीत०	८	३२	यदीयवाचं विधिना विधित्सुना०	२	३०
यत्कण्ठपीठेन हठादुपात्तां०	८	८६	यदीयहृत्केलिनिकेतखेलिनम्०	२	४०
यत्कर्तिंगङ्गां प्रसृतां त्रिलोक्या०	४	३०-१४६	यदुदीतसमीरणोन्वितः०	६	१५
यत्तसुतोमधुरिवावनिजब्रजानां०	३	८	यदूरुसृष्टै करिणां करिभ्यो०	८	४०
यतुङ्गतारङ्गिरौ गिरीश०	१	२७	यदगमिष्यति ममार्भकभावो०	५	५८
यत्पर्वते कल्पितसप्तभूमी०	१	२८	यदेहशृङ्गाङ्गणनद्वमारुत०	६	१८७
यत्पाणिपद्मः स पुनर्भवोऽपि०	४	८	यदन्तपत्रेण विजीयमाना०	८	९७
यत्पादपङ्गजयुग्माङ्गुलीभिः स्वकीय०	३	११४	यद्वाललक्ष्याऽधरितोऽर्धचन्द्र०	८	१५२
यत्पादपद्मेन पराजितेन०	८	१७	यद्भूतजङ्गयुग्मोर्विवृत्सतोः०	२	४९
यत्पादराजौ परिशुद्धपार्ष्णो०	८	२७	यद्वाक्पुरस्तादिव पाण्डुराभिं०	८	११६
यत्र गीतय इवागमघोषां०	५	७०	यद्वाचा गलराजमन्त्रिमुकुये निर्माण्य		
यत्र भ्रमद्भृत्तरसालमाला०	१	८४	बाणमासिकीम्०	४	१४५
यत्रार्थिनोऽर्थेशमिव प्रसार्य०	१	१७	यन्नभस्वदितपातिरथेन०	५	१३२
यत्रार्हताऽध्यायि निजध्वजिन्या०	१	३७	यन्नासिकां वीक्ष्य जगन्नरीक्ष्या०	८	१२२
यत्रोन्नमद्वारिदिवर्मिताङ्गा०	१	५२	यन्मूर्तिदीधितिङ्गेषु किमु प्रोहो०	३	११६
यत्रोल्लसद्वैरिमितुङ्गमत्री०	१	१४	यया जगज्जत्वरया श्रियांह्रिं०	८	३१
यदङ्गोहेनिवसन्प्रसूना०	८	५३	यया स्ववक्षोरुहयोर्जितेन०	८	७३
यदङ्गयष्टीबहलीभविष्यु०	८	५७	यशःश्रियाधःकृतकुन्दकम्बु०	४	१५
यदङ्गरङ्गनवराजधानी०	८	४६	यश्चन्द्रिकाङ्गितचतुर्द्विराजराज०	३	८६
यदनन्यहिरण्यशीतरुग्०	६	१४३	यशान्द्रचामीकरवेशमचन्द्र०	१	१०६
यदानन्त्रीजितमञ्जबन्धोः०	८	१५३	यः पुष्पदः पल्लवलीलयेव०	४	५२
यदाननाङ्गीकृतविग्रहेण०	८	९५	यस्माद्विदीपे चरणस्य लक्ष्मी०	४	११९
यदाननान्तर्वसतेः सुधारसा०	२	२९	यस्मिन्दिवीपे मधुदीपरूप०	१	१२०
यदाननाम्भोरुहवाससौधे	८	९७	यस्मिन्विभान्ति स्म विलासवत्यः०	१	१२३
यदापणश्रेणिषु सान्द्रचान्द्र०	१	१०५	यस्मिंश्च राज्यायशोमरन्द०	१	६३
यदाश्रयीभूय किमर्भसूरा०	८	१९	यस्य चान्दन उपभू बभासे०	५	११०
यदास्यतोऽभ्यर्थयितुं विभूषा०	८	१२६	यस्य द्वेषिनषूदनव्रतजुषः		
यदीयचेतोवसतौ वसन्तं०	८	९१	प्रत्यर्थपृथ्वीभुजाम्०	१	१३४
यदीयपादौ सरलाङ्गुलीद्युता०	२	५२	यस्य प्रशस्ययशसः श्रुतिपाशमध्य०	३	९४

## 'श्री हीरसुन्दर' महाकाव्यम्

सर्गांकः	श्लोकांकः		सर्गांकः	श्लोकांकः	
यस्य भालतलचन्दनबिन्दो०	५	१०९	र		
यस्याः पृणत्रिर्जरदृक् चकोरन्०	८	१०२	रक्ताङ्कपद्मिकरिव कृष्णालताप्ररोह०	३	४
यस्याः प्रकाण्डस्फुरदग्रजङ्घा०	८	३४	रक्ताङ्कपलवमुखाद्विष्टो जिगीषु०	३	१००
यस्याः समेचकिमचूचुकचञ्चुरेण०	३	२०	रक्ताङ्करक्तमणिपलवपाटलश्री०	३	९५
यस्याः स्तनौ संस्कुरतः स्म चित्त०	८	६५	रघुद्वाहेपक्रममध्यमध्य०	१	६९
यस्याः स्फुरत्कान्तिविकाशिताशाः०	८	१८	रज्यते स्म दशनप्रचूरेणा०	५	११९
यस्याननं चन्द्रति दन्तकान्ति०	४	८८	रतिकान्तकलावहेलियत०	६	३०
यस्या बधासे जघनेन रत्या०	८	४३	रतीशगेहेऽजनि यत्र जङ्घयो०	२	५०
यस्या मुखं स्वर्वनितार्चितायाः०	८	९२	रत्नानामिव रोहणोऽम्बुरुहिणी-		
यस्या रसज्ञां जयिनीं निभाल्य०	८	१०९	प्रेयानिवज्योतिषाम्०	४	१४७
यस्याऽवलानेन विगानितेन	८	५४	रथाङ्गनामां दिवसावसानें०	७	५१
यस्योपदेशान्त्रूपमन्त्रिपृथ्वी०	४	११७	रथाङ्गलीला दधतो प्रभाम्भसि०	२	४१
यः संप्रति क्षेणिपतिः सपाद०	४	३९	रम्भा दम्भादिवामुष्या०	६	१५४
या जहाति न कदाप्यनुषङ्गम्	५	५८	रम्भास्फुद्दैभवयत्सुपर्व्य०	८	३९
यादसां भवधुनीधवमध्ये०	५	८१	रसालमालस्य तले विलासिना०	२	६२
युवतीयुवराजिराजिते०	६	१४२	राग सागर इवासि निपीतो०	५	१८८
युवतीव युवानमङ्गजा०	६	१४७	रागसङ्ग्रहदनच्छदराजत०	५	११८
युवसंमदकन्दलीघनैः०	६	४५	रागिणः प्रणयतोऽखिललोका०	५	२००
यूनो मनोजननृपस्य तस्या०	८	८८	राजतः श्रुतिपदे धृतमेकम्०	५	१६३
यूनो रिंसोपगतान् सकानतान्०	१	४७	राजा स्वयं राजनतं सदोषो०	४	६३
यूपादधस्तः प्रतिमां जिनेन्द्रो०	४	२२	राजीवराजी विजिता यददङ्ग०	८	१४
ये कर्णाभरणीबभूवरनिशं विश्वत्रयी-			रामणीयकविधेरवधेम०	५	२०६
जन्मिनाम्०	४	१४०	रामणीयकहृतापरचित्तम्०	५	१२५
यैरवर्द्धिं जिनर्थमसुरदुः०	५	३३	रामायुतैस्तार्क्ष्यशतै रमाभिः०	१	७२
योगिनीजनितमार्युपलवा०	४	१२४	राशिना सुमनसामिव सर्पिः०	५	६६
योगिनेव वहतात्मनि मुद्रा०	५	१२३	राहौ पुनः सुकृतिनीव धनं प्रपन्ने०	३	२७
यो दक्षिणावर्त इव स्ववन्ती०	४	१३८	रुप्यद्युतोऽक्षीणसुखा मुखस्था०	८	१०६
यो दृशा भुवि पुर्नर्दिवि फालै०	५	१३३	रेजेऽधरोऽस्या हरिस्मन्थकालात्०	८	९४
यो ध्वंसतेऽष्टपि दण्डनराणाम्०	१	४०	रेजे स्तनाननविनीलम मञ्जुलेन०	३	१९
यो योगिनं पुष्पकरण्डनीस्थम्०	४	११६	रेजेऽस्य पट्टे स्मररूपधेयः०	४	९३
यो रामसेनाह्वपुरे ब्रतीन्दु०	४	९७	रेणुभिः समुदडीयत रङ्गा०	५	१५५
यो वालुका हैमवतीप्रतीरे०	१	७	रोमर्हषणमिषात्तदनुज्ञो०	५	८७
यो विजेतुमिव वारिजराजीम्०	५	७१	रोमावलीं शैवलवल्लरिभिः०	१	५१
यौवनेऽर्जय यशोगुणलक्ष्मीः	५	४९	रोहिणी कमलिनीरमणाश्वान्०	५	१३७

सर्गांकः	श्लोकांकः	सर्गांकः	श्लोकांकः		
ल					
लक्ष्मच्छर्वं भ्रूयुगलीं दधान०	८	८९	वाङ्मयैविरचितैरिदमाद्य०	५	५२
लक्ष्मीवतामधिपतेरनुजीविवृन्दैः०	३	४६	वाचंयमेन्नाद्विमलादिवन्द्रात०	४	९२
लक्ष्मीसागरसूरिसीलमहसालक्ष्मीरवापे			वाचस्पतेर्दिवि विधाय सुरान्विनेयान०	३	७४
ततो०	४	१२८	वातातिवेष्टदध्वजपल्लवाग्र०	१	११२
लग्नं गुरौशिखिनि शीलति युग्मगेहं०	३	२६	वाता वान्ति स्मितकजससिद्धारि		
लग्नोदयेऽस्य शुभशंसिनि सार्वमौभः	३	२९	कष्ठोलयन्तो०	२	१३७
लब्धिश्रियानुसरता वसुभूतिपुत्र०	३	३५	वारिराशिरशनाविहायसोः०	७	८५
लावण्यनीरनयनाब्जयदीयवक्त्र०	३	८८	विकालवेलामनुसूत्रकण्ठा०	७	२७
लिता द्रवैरिव विलीनहिरण्यराशे०	३	११८	विजयदानमुमुक्षुपुरन्दरः०	४	१४३
लीलाचलदलगणा विगलन्मर्न्द०	३	१६	विजयदानविभुविटपल्लिका०	६	१४४
लूतास्यतन्तूनवलम्ब्यवज्ञा०	४	९	विजयिन इव राज्ञः श्वेतभासो विभाव्या०	७	९४
व			विजित्य कान्त्या जगृहे कृधा यदा०	२	३२
वंशयैः सुधाशनचिकित्सकयोरिवार्भ०	३	२५	विजृम्भजाम्बूनदपद्मानिष्ठतत्०	२	५९
वक्रं त्रिदश्या विजितात्मदर्श०	८	१५४	विज्ञातपूर्वजननीजनकप्रवृत्तेः०	३	१३१
वक्रवारिजिधिया समुपेतां०	५	६५	विडम्बिताखण्डमृगाङ्कमण्डले०	२	२३
वक्षःशिलाकलितमञ्जुलजातरूपो०	३	१०८	विद्याधरेन्द्रौ विनमिर्निश्च०	१	३२
वगाह्य शास्त्रं मनकाह्वसूनोः०	४	२३	विद्यापुरे योऽखिलशाकिनीना०	४	११५
वत्सवस्तलतया तव किञ्चिं०	५	६०	विद्युन्मणीभूषण भूष्यमाणा०	१	५५
वनं स्वमुद्बध्य शिखासु भूमी०	८	७५	विद्वेषिभावमपहाय परस्परेण०	३	८९
वपुःश्रियाभार्तिर्तमत्यकेतु०	१	७९	विधिना वचसामधीश्वरी०	६	६०
वर्णिनीव विरतिः कृतसङ्गा०	५	६८	विधुं द्विधाकृत्य विधिर्व्यधत्त यत्०	२	१८
वर्द्धमानः क्रमेणाथ०	६	१७४	विधुवदण्पुङ्कवं नवो०	६	९९
वर्द्धिष्णुदेवीहृदयानुराग०	८	११२	विधेनियोगेन निजास्तपश्यान०	७	१४
वर्द्धिष्णुयत्कीर्तिसुधार्णवेन०	४	८९	विधोर्धिया मन्दमरन्दलीन०	१	४८
वल्कलैः कलयतात्मनि भूषां०	५	२०१	विनिद्रनीलोत्पलकेसरश्रीः०	८	६२
वल्लभीभवति यद्वभाजां०	५	२५	विनोदमेवं सृजतोरहर्निशं०	२	६५
वशंवदीभूतजगत्रयस्य०	४	१७	विन्द्यनिपालन्तरमिव द्विरदेन्द्रबाल०	३	५९
वशिनोऽस्य ततो वशंवदां०	६	१२३	विपिनानि पदे पदे मुदं०	६	२४
वसति स्म घटेद्वचो मुनि०	६	८	विपुलां विपुलाहवाहता०	६	१४८
वसतीरिव वल्लुविष्टग०	६	६८	विबुधावथ राजपूर्वको	६	७६
वसुन्धरायामिव वैजयत्तं०	१	३८	विभवैः सह माधवादयः	६	२२
वहन् सुपर्वदुमरामणीयकं०	२	६	विभाति यत्रोपवनं विनिद्रत्०	१	८१
वाङ्मयैर्जितसुधामधुदुधै०	५	७६	विभाति यद्भ्रूयुगभासिनासिका०	२	२२

सर्गांकः	श्लोकांकः		सर्गांकः	श्लोकांकः	
विभ्राजिसन्ध्या भ्रपरम्पराभिः०	७	४४	श		
विभूतिभाकालभिदङ्कुर्ग०	१	६५	शत्रुञ्जयाद्रेस्तलहट्टिकायाम्०	१	२६
विभूषणैः स्वर्णमणीप्रणीतै०	८	१६९	शमनस्य मृगीदृशो दिशो०	६	१०
विभूषामद्वैतामकलयदथानन्दविमल०	४	१३१	शत्यंभवोऽभूषयदस्य पट्टम्०	४	२१
वियोगवत्योधियोषया यदा०	२	२५	शशाङ्कविम्बं कुलिशाङ्गान्त०	१	१०७
विलसत्यथ मेदपाटका०	६	१३५	शशी सुधां प्रेक्ष्य निपीयमानाम्०	८	१०८
विलासिबालव्यजनाधृतात०	८	२५	शाखाप्रशाखाभिरमुष्य वृद्धिं०	४	९५
विलीयमानैस्तुहिनावनीभृत०	७	८९	शाखाविशेषोन्निषतप्रसूनान्०	१	८९
विविधाभरणप्रभाङ्कुर०	६	१७	शारिकाशुकशिखण्डिकपोती०	५	१९५
विश्राणयित्वेन पुरा स्वसार०	८	१२०	शावः शुभैरवयवैः सवितुः प्रयत्ना०	३	७३
विश्वं विशन्तीं द्विष्टीमुषां स्वां०	५	१०१	शिरसीव शिवस्य जाहनवी०	६	५९
विश्वत्रयीश्रुतिपुटैकवतंसिकाना०	३	३६	शिलीमुखाश्लेषिसरोरुहेव०	१	५०
विश्वनेत्रमिव मोहमहीन्द०	५	१०१	शिववाइमयवार्द्धिपारागो०	६	५३
विश्वावनीधर ८ शीलीमुख ५ पूष १			शिश्रिये विजयादानमुनीन्दः०	५	२०३
संख्ये (१५८३)	३	२८	शिष्यार्थनानिर्मितसंस्तवस्या०	४	११४
विश्वैकधन्वी शरसान्त्रपोऽसौ०	१	१३१	शुक्लीरसेद्विमिवाम्बु घनावलीव	३	३
विषयेऽप्यखिले तदा पुरी०	६	८३	शुद्धिक्रियामुदधरतोऽस्य भाविनी०	४	१३३
विष्णोर्निहन्तुं नरकं गतस्यौ०	१	११५	शुद्धां क्रियां विदधतामधिभूयदेष०	३	१४
विहरन् सह वाचकेन्दुना०	६	७८	शुश्रूषयासनतयानिशमाप्रसादा०	३	११३
वृत्तं विभोभाषितुमप्रभुर्यद्०	१	८	शुद्धरयोनिमिव नीरजनाभपत्नी०	३	३२
वृत्रशात्रवतुरङ्गममुख्या०	५	१३६	शैशवे मदनमोहमहेभान्०	५	७८
वृषभध्वजगोधिलोचना०	६	४३	शौण्डीर्य चड्कमणवारिमदानलीला०	३	७
वेणीकृपाणा भुजकर्णपाशा०	८	१६३	श्यामीकृतानि कुदृशामपकीर्तिपङ्कै०	३	३३
वैताद्यशैलेन विभज्यमाना०	१	२१	श्रमणद्युमणी मणीव तौ०	६	११५
वैताद्यशैलो विपुलां द्विफालां०	१	२०	श्रमणधरणीभर्तुः पादारविन्द०		
वैभुख्यभाग् यो विषयात् कुरङ्ग०	४	६६	निषेवना०	५	२१६
व्यमोचि नामुष्य कदाचिदनिकं०	२	१३	श्रुवः सुधायै जगतां यदीय०	८	११४
व्यर्थोकृतां शक्तिमवेत्य पूष०	८	१२१	श्रितनागसगन्धसारभू०	६	१३९
व्यलीलसत्पाटलिमा पदाम्बुज०	२	५४	श्रियं स पाश्वाधिपितिः प्रदिश्यात्०	१	१
व्यालवल्लिदलखण्डनजन्मा०	५	११७	श्रियमाश्रयते स्म वाचक०	६	७७
व्याहृतामितमधुस्पृहयद्धिः०	५	३	श्रियाभ्यभूयन्त मया समग्रा०	८	१४०
व्रतिनामिव तथ्यभाषिणा०	६	९७	श्रिया सुधाभुक्परमाणुमध्या०	८	१३३
व्रतिवारिधिनेमिनायकाः०	६	१०८	श्रियेव निर्जित्य समग्रदिग्जान्०	२	६६
व्रतिशीतरुचः कदाचन०	६	८५	श्री इन्द्रदिनव्रतिसार्वभौम०	४	४४

सर्गांक्कः	श्लोकाङ्कः	सर्गांक्कः	श्लोकाङ्कः
श्रीचन्द्रसूरेरथ चन्द्रगच्छ०	४	६४	संस्पद्धिभावं दधता स्वलक्ष्म्या०
श्रीदिन्नसूर्युणभूरिस्मात्०	४	४६	संहर्षरोषात्त्वजिधांसुमेतत्०
श्रीनन्दनं हीरकुमाररूपं०	१	८३	सकाकतुपैडैणमद्रवाङ्कितो०
श्रीमज्जगच्चन्द्र इदंपदश्री०	४	१०७	सकुञ्जैतद्वदनेन निर्जितं०
श्रीमज्जिनाधीशमताधिदेव्या०	८	३३	सक्तः श्रूतौ शिशुशशी यदसावितीव०
श्रीमत्सुहस्तिप्रतिवासवस्य०	४	४२	सइकान्तवेणी ग्रथितप्रसून०
श्रीमद्यशोभद्रगणावनीन्द्रः०	४	१०१	स चक्रिणां भारतभूमिभामिनी०
श्रीमन्महेश्यपुरुहूतपयोरुहाक्षी०	३	२	सचिवः पुनरस्य भूभुजो०
श्रीमन्मुनिनिशारलं०	६	१७९	स चुचुम्ब पदाम्बुजं गुरो०
श्रीमानतुङ्गः करणेन भक्ता०	४	७६	सज्जातिलोचनचकोरनिपीयमानै०
श्रीमानदेवेन पुनः स्वकीर्ति०	४	९१	सञ्चारि निर्दण्डमिवातपत्रं०
श्रीवज्रसेनोऽथ तदीयपट्ट०	४	५९	स तत्सतीर्थ्योऽजनि भद्रबाहु०
श्रीवत्सरामाङ्गजकम्बुताक्षर्य०	१	११३	स तदीयगिरं निपीय तां०
श्रीविक्रमः सूरिपुरन्देऽभूत०	४	८१	सद्ध्याननगेश्वररशिमसाम्य०
श्रीसूरिमन्त्रं विजने ब्रतीन्द्रेः०	८	४	सन्ततोपाचितकर्मगणस्या०
श्रीस्तम्भतीर्थं पुष्टभेदनं च०	१	६४	सन्दर्भितान्तर्मुचकुन्दभली०
श्रीस्थूलभद्रेण निजान्ववाय०	४	३०	सन्ध्यारुचीकुञ्जमपङ्किलाङ्क०
श्रीस्पर्द्धया यच्चकुरान्विजेतुं०	८	१६२	स पतिव्रतयेव वल्लभो०
श्रीहीरवीक्षोत्सुकिता इवान्त०	१	८७	सपच्छदान्स्पर्द्धितदानगन्धान०
श्रुतमत्रगणेन्दुनाऽमुना०	६	२	स प्राक्चद्वक्रमणैः पित्रो०
श्रोत्रपत्रयुगमाश्रितवत्या०	५	११४	सफलीकुरु किङ्गिकरीमिव०
ष			स बभाज समाजमात्मना०
षद् ६ ग्रहे ९ षु ५ शशि १-			समाप्य कामान्मरुतां स्वदारुतां०
संख्यमितेऽब्दे	५	२०७	समं यदास्येन मृथे महोजसा०
स			समयेऽथ तथा रत्या०
संयमं विजयदानमुनीन्द्रो०	५	२०८	स मानदेवोऽजनि तस्य पट्ट०
संयमश्रियमवाप्य कुमारः०	५	२०९	समीरे निहतारि निष्पत्तद्०
संयमाध्यवसितिप्रथमान०	५	१२०	समुच्चरच्चन्द्ररुचीच्याम्भा०
संयमाय समियाय कुमारः०	५	१९३	समुल्लासाऽभ्रपथेऽथ सन्ध्या०
संसृज्य रज्यद्वितेन पत्नी०	७	६७	स मुहूर्तदिने गुरुः समं०
संसृतेर्मतिमतां वर तस्याः०	५	८५	सम्प्रिती कामितमुत्सुकाना०
संसृते ब्रतरमानिरतोऽसौ०	५	१८७	सम्पूरयन्कीर्ति नभोनदीभिं०
संसृतौ सुखमरेषममुष्यां	५	८४	सम्पूर्णपीयुषमयूखविम्बे०
संस्थापितो निजपदे प्रभुणाथ तेन०	४	१२१	सम्भूतिपूर्वो विजयो गुरुस्तत्०

सर्गांकः	श्लोकांकः	सर्गांकः	श्लोकांकः		
सरस्वतीशालिलसज्जनश्री०	४	१३	द्वन्द्वाब्धिनेमीधवः०	१	१३५
सरितो दिशि यत्र निमग्ने०	६	२५	सुधान्धसामध्वनि सान्ध्यरागो०	७	४६
सरेजिनीकोशकुचौ नीपङ्क्य०	७	२९	सुपर्वपारिष्ठवलोचनायाः०	८	७६
सर्वाङ्गसृष्टि सृजतस्तदीयां०	८	५६	सुपर्वभिर्भोगिभिरङ्गसङ्गै०	९	१०
सवाङ्गवे श्री पुरुषोत्तमाङ्गे०	९	६७	सुपात्रसन्नेहगुणाग्रवृत्ति भृत्०	२	११
सवाहिनीकाः स्मितनूतचूत०	१	५४	सुभ्रुतामिह महे जगृहे किं०	५	१७८
स विचार्य विचारज्ञो०	६	१६५	सुमतिसाधुभूदथ तत्पदे०	४	१२९
सविधेः सगुरोः सगौरवं०	६	६५	सुमध्वजोर्वाधरजैत्रशक्त्या०	२	७६
सवेशकेश्यायितकूलिनीशो०	१	१८	सुरमन्दिरजित्वरश्रिया०	६	१३६
स सार्वभौमो ध्वजदण्डेशखरी०	२	१०१	सुरयौवतजैत्रकान्तिया०	६	३९
सहैव देहेन समग्रसङ्घं०	४	५४	सुरायुधधूलितिकात्मनि०	७	३
साङ्गजे प्रबलमोहमहीन्द्रे०	५	१५०	सुरेन्द्रदिग्भूधरमूर्धिं बिम्ब०	७	७१
सा दोहदोदयकृशीकृतत्प्रपूर्ति०	३	१२	सुस्वामिभाजो विबुधामिरामा०	१	२५
सान्द्रद्वृमोल्लासिनि पूर्वशैल०	७	६९	सुहृदेव समेत्य शोभिते०	६	७५
सान्द्रचन्द्रनिकुरम्बकरम्बी०	५	९९	सूनसङ्गतशिलीमुखतेखा०	५	१०४
सान्द्रीभवतनुविभाभरनिज्जरिण्यां०	३	११०	सूनोर्जनिं निगदतामुनग्रजानां०	३	४५
सान्ध्यराग इव जीवितमास्ते०	५	२२	सूनोर्जनेरुपनतेरिव सेवधीना०	३	४४
सा पूर्णचन्द्रवदना प्रसवोनुखत्वं०	३	२४	सूनोर्जनेरुपनसौ विभवानुरुपं०	३	५२
साम्प्रतं कथममुष्य जडेना०	५	९६	सूरिभर्तुरमृतादपि वाचो०	५	४२
साम्प्रतं तदिह शैशवशेष०	५	१८०	सूरिगाजचरणाम्बुजयुग्मे०	५	११
साम्प्रतं भगिनि तेन मुनीन्दो०	५	४३	सूरिक्वाविधुवीक्षणजन्मा०	५	१०
साम्प्रतं व्यतिकरस्तव कोऽयं०	५	४७	सूरिवासवसमागमस्फुरत्०	६	१९१
साम्प्रतीनयुगजन्तुपवित्री०	५	२	सूरिशक्रपरिषत्कृतभूषै०	५	४
सारङ्गनाभी सुरभेरमुष्या०	८	३५	सूरिसिन्धुपुरः स कुमारे०	५	२९
सारैर्दलैः शासनदेवतायाः०	८	१३१	सूरीन्द्रानन्दयति स्म तस्मिन्०	७	१
सालोऽदसीयः ससनातनश्रीः०	१	१००	सूरीन्दोः सत्रिधौ श्रीमान्०	५	२१५
सिद्धार्थभूकान्तसुतो जिनाना०	४	४	सूरीन्द्रहीरविजयः प्रतिपद्य पट्ट०	६	१८५
सिद्ध्यध्वानं प्रतिष्ठासु०	६	१७६	सूरीश्वरः सिंहगिरिः क्रमेण०	४	४८
सिन्दूरपूरप्रचितेन तस्याः०	८	१६०	सूरेस्ततोऽजायत रत्नशेखरः०	४	१२७
सीमन्तदण्डः सुरपद्मदृष्टेः०	८	१५८	सृजन्तमुच्चैः स्वकरं मदोदया०	२	६८
सुकृतं प्रविधाय सक्तिया०	६	११९	सृष्टिं सिसृक्षोः सुदृशां बभूव०	८	११
सुखं शयाना निशि निद्रियाऽङ्गना०	२	७१	सेतुबन्धमिव संसृतिसिन्धो०	५	४४
सुखं स्वकीये शयने निषेदुषी०	२	८७	सोऽनवद्यास्ततो विद्याः०	६	१७५
सुत्राम्बुधिधामदिग्गिरुच-			सोमप्रभः श्रीमणिरत्नसूरी०	४	१०६

संगाङ्कः	श्लोकाङ्कः	संगाङ्कः	श्लोकाङ्कः		
सोमादिमः सुन्दरसूरीसिंहः०	१	८०	स्वःसानुमन्तमधिरेदुमथात्मदर्शी०	३	१०
सौन्दर्यपाथः प्लवपादपद्मा०	८	२२	स्वःसुध्रुवः प्रेक्ष्य पयोधरौ स्व०	८	८३
सौरभं सुमनसां समुदायो०	५	१००	स्वकान्त वक्त्रामृतकान्तिर्दर्शनात्०	२	२७
सौरभेण मलयद्विवात्मा०	५	५६	स्वकामिनीकैरविणीतनूभवे०	२	२१
स्कन्धोपधे॒ ककुदढोकनकं विधाय०	३	११७	स्वकारितेशाचलरुचैत्ये०	१	३९
स्खलति स्म न कुत्रिच्छिद्वचो०	६	४	स्वक्षासतां सूनुकलद्वितां च०	१	४३
स्तनान्तरीपाङ्कव्युः प्रसर्प०	८	६१	स्वचोक्षभावेन जिता जिनेन०	१	७६
स्थाणो॒ शिरोनिवसनानशनाम्बुपानं०	३	९३	स्वच्छन्दकेलीतरलीभवन्त्या०	१	२२
स्थाने गतस्य त्रिदिवं स्ववसु०	४	४१	स्वजिद्यानेन विगानितः सन०	८	३०
स्पर्द्धयाकंतुरगान्स्वजिगीषून्०	५	१३४	स्वध्यानलोपभवकोपपिनाकिजाग्र०	३	८४
स्पद्धयेव दिवा दम्भा०	६	१५७	स्वपदाभिकुम्भसम्भवं०	६	३२
स्पद्धी विधत्ते सुमनः सुकेशी०	८	१५७	स्वपृष्ठलग्नागतकेशकाय०	८	१३९
स्पद्धोदयादिव मिथः प्रवयं सुजद्धिः०	३	८२	स्वमन्दिरे यद्वदनारविन्दे०	८	१२४
स्पद्धोदयान्निजविवृद्धिकृतौ यदूरू०	३	११२	स्वयं विनिर्मापयितुं जयं स्वशोभा०	८	७४
स्फटिकावनिषु वेशमनि यान्त्या०	५	१७५	स्वयमेव शिवं गमी परा०	६	१२६
स्फुरत्प्रभातैलकरम्बतान्तरे०	२	५३	स्वरागिणीमञ्जनकुम्भकुम्भ०	७	१७
स्फुरत्प्रभापूगतरङ्गचङ्गतां०	२	३५	स्वरैकसारं परवादिनीभ्यः०	८	११५
स्फुरन्महोगोचरिताखिलाशौ०	८	१२९	स्वर्गं गता क्रतुभुजां प्रभवामि तृप्त्य०	७	८३
स्मरं रत्नीतिनितम्बनीभ्यां०	८	१४८	स्विजिष्ठुपुर्या॑ परिखाप्रवङ्ग०	१	९६
स्मरद्विपस्यैषमदाभिराम०	८	६३	स्वर्णजालकविमानगतानाम्०	५	१९०
स्मरविष्टपूजैत्रशस्त्रित०	६	९	स्वर्णपलययनपल्लविताङ्गाः०	५	१४६
स्मितं निशाहोरपि नित्यरङ्गद०	८	१३५	स्वर्णरूप्यमणिमौकिकदानै०	५	९३
स्मितश्रिया मिश्रितदत्तकान्ति०	८	१००	स्वर्णाद्रिशृङ्ग इव चन्द्रिकयाऽनुविद्धम्०	३	६०
स्मितारविन्दोदयदिनु विभ्रमा०	२	६०	स्वर्दण्डदण्डं दधता तमिस्त्र०	७	६०
स्मितेषु पद्मेषु मुखेष्विवास्या०	७	११	स्वर्भाणुभीतैः शरणीकृतेन०	७	७८
स्मेरकैरवशङ्क्या कुवलयान्यु- तंसयत्यङ्गना०	७	९१	स्वर्भाणुभीरो रजनीचरिष्णोः०	८	१०१
स्यन्दनान्मणिहिरण्यवरेण्य०	५	९	स्वयोंवतांहिप्रतिकर्मसज्ज०	७	४०
स्यन्त्नै॑ स्यदविगानितवातै०	५	१४५	स्वव्यालवेशमावनिवास्तुशस्त०	१	१०३
स्वं क्षणात्क्षयमवेक्ष्य सृजद्धि०	५	१०२	स्वविष्टरं कम्प्रमवेक्ष्य बिष्व०	८	६
स्वं निष्ठितं नित्यसुपर्वपानात्०	८	११०	स्वर्ष्यद्विनः शरभवप्रमुखानशेषा०	३	१२०
स्वःकामिनीकीर्तिकीर्तिदेवा०	४	८०	स्वां निष्ठितं प्रेक्ष्य सुधां सुधांशैः०	७	६५
स्वः कूलिनीकूलविलासिनीनां०	७	६४	स्वानुजन्मभगिनीकूलवृद्धा०	५	२८
स्वः कूलिनीजलविलोलनक्लृपकेलिः०	३	३९			

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः		सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
स्वानुजादिनिखिलस्वजनेभ्यः०	५	८९	हारचारिमकुचौ परया नौ०	५	१६९
ह			हिरण्यगर्भः प्रणयन्सुरीं ताम्०	८	१२८
हंसपादभरितार्द्धमहासी०	५	१६०	हीरहर्षे इति नाम तदीयम्०	५	२१०
हरिरिव गिरिकुञ्जे मानसे मानसौका०	३	१३४	हृदि हीर इवैष विष्टपे०	६	१०९
हरेर्महिष्यां हरिति प्रयातवा०	२	१००	हेषितैर्हयगणस्य गजानाम्०	५	१५४
हले ! हिमाभ्यः पतितं विहङ्ग०	२	१३५	हैमाब्जनिर्यासपिशङ्गितैः सित०	२	१३६



## शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पदिक्तः अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पदिक्तः अशुद्धम्	शुद्धम्
८	१५ महाकाय	महाकाव्य	२९	१२ ०ध्वजयल्लवाग्र०	०ध्वजपल्लवाग्र०
९	२९ विशेताओनो	विशेषताओनो	३०	२९ तद्वत्तिः	तद्वत्तिः
१०	१२ अपिरिचित	अपरिचित	३१	१३ रूपाहङ्कार	रूपाहङ्कारं
२	टिप्पण हीमुवदृदृश्यन्ते	हीमुवद् दृश्यन्ते	३५	२७ ब्राह्म्या	ब्राह्म्या
५	१४ निशावशश्वन्दः	निशावशश्वन्दः	३९	टिप्पण जनुः परंप्रपेऽ	जनुः परं प्रपेऽ
६	१० 'चिरल०	'चिरल०	४०	४ ॥१६॥ <sup>4</sup>	॥१६॥ <sup>3</sup>
६	१९ वैताढ्य०	वैताढ्य०	४१	१२ यशासि	यशांसि
६	२३ वैताढ्य०	वैताढ्य०	४१	१५ ०मवायिते	०मवायिते
६	२७ वैताढ्य०	वैताढ्य०	४१	२४ ०सद्भ्रूयुगल०	०सद्भ्रूयुगल०
८	४ शत्रुं० ।	हील० शत्रुं० ।	४२	४ पूर्ण चन्द्रबिम्बं	पूर्णचन्द्रबिम्बं
९	७ तात्स्थात्तद्व्य०	तात्स्थ्यात्तद्व्य०	४२	१५ वियोगवत्योषधि० <sup>4</sup>	वियोगवत्योषधि० <sup>4</sup>
१०	१ नारायणः	नारायणः ।	४४	५ दशा	दृशा
१२	२३ 'स्वयंभू०	'स्वयंभू०	४५	२४ ०वारापत्तना०	०वासपत्तना०
१६	२१ गाव० ।	हील० गाव० ।	४६	१५ ०शरी(र)यष्टेः	०शरी[र]यष्टेः
१६	टिप्पण १, २, ३	१, २, ३	४६	२८ वली(र्वि)लिप्य	वली[र्वि]लिप्य
१६	टिप्पण ०यैरिवावतीर्ण	०यैरिवावतीर्णा	४८	९ ०युग्योयद्वैराज्यं	०युग्योर्यद्वैराज्यं
१९	१४ (द्व)	(द्व)	४८	२२ गजगमतया	गजगमनया
१९	२१ पृथकवर्णनम्	पृथक् वर्णनम्	४८	२३ पानीय	पानीये
२०	२७ चतुरशीति०	चतुरशीति०	४९	७ भिन्नतमः समूहाः	भिन्नतमःसमूहाः
२१	२२ वास्तुगृहं	वास्तु गृहं	४९	२२ पुनर्लक्ष्मी	पुनर्लक्ष्मी
२२	१३ कुर्वन्त्यः	कुर्वन्त्यः(र्वत्यः)	५३	२६ दद्ध्वा	दद्ध्वा
२५	श्लोक ९६-९७-९८मां दृष्टिदोषना कारणे	५५	१८ उर्वसी सदृशा	उर्वसीसदृशा	
हीलटीकानो ऋम बदलाई गयो छे. त्यां श्लोक ९६मां हील	५७	१९ तादृशौ	तादृशौ		
टीका ९९, श्लोक ९७मां हील टीका १०० अने श्लोक ९८	५८	९ कुर्वन्त्याम्	कुर्वन्त्याम्(र्वत्याम्)		
मां हीलटीका ९८ समझवी.		५८	२० ०न्तिक३मागता	०न्तिक३मागता	
२७	४ उज्जवल०	उज्ज्वल०	५८	२२ (भृइम्यः)	(भृइम्यः)
२७	२३ वालकासु	वालुकासु	६१	२७ गूद्यालिङ्गय	०गूद्यालिङ्गय
२७	२७ जेतुम(श)क्यः	जेतुम[श]क्यः	६४	१५ ॥११४॥	॥★११४॥
२८	४ हारकरचित०	हीरकरचित०	६५	२४ ०रसङ्घृयश्रेणि०	०रसङ्घृयश्रेणि०
२८	१० कुर्धेति	कुर्धेति	६५	२७ सङ्ख्यामतिं०	सङ्ख्यामतिं०
२८	२७ कुर्वतः	कुर्वतः	७२	१५ विज्ञतिजिनेन्द्र०	विज्ञतिर्जिनेन्द्र०

## 'श्री हीरसुन्दर' महाकाव्यम्

पृष्ठम्	पदिक्तः अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पदिक्तः अशुद्धम्	शुद्धम्
७५	१०	पल्लवैनिबडा	पल्लवैनिबिडा	१३५	२७
७६	२७	ऋडागता०	ऋडागता०	१३६	१३
७७	१	समेत सुरैः	समेतसुरैः	१३७	१९
८०	१	(गो)त्रशैलाः	[गो]त्रशैलाः	१३९	१७
८०	२५	चन्द्रवदना	चन्द्रवदना	१४०	५
८३	१	आ० ।	हील० आ० ।	१४३	१०
८७	१५	दान दया पूजा	दान-दया-पूजा०	१५४	८
८९	२०	कर्तुमिच्छरिव	कर्तुमिच्छरिव	१५४	१४
९१	१३	मनोजां	मनोजाम् ।		विजयसिंहमहेभ्या०
९१	२०	०कोरकितने	०कोरकितने	१५४	टिप्पण 2.
९४	१३	तमीप्रिय तमः	तमीप्रियतमः	१५६	२७
९५	१५	०श्चतुः सङ्ख्या०	०श्चतुःसङ्ख्या०	१५७	१
९६	२	द्विषेषु	द्विषेषु	१६१	७
९६	८	कर्णयोर्न वेति	कर्णयोर्नवेति	१६३	२०
१००	१८	सहमुद्रया	सह मुद्रया	१६४	१
१०१	११	शोभिताङ्गाः	शोभिताङ्गाः	१६६	६
१०४	५	॥११९॥	॥★११९॥	१६८	१
१०६	६	०द्वीपविमानमिव	०द्वीपं विमानमिव	१७०	२०
१०९	१७	तमः-पङ्कं	तमःपङ्कं	१७२	२
१०९	टिप्पण	०पवाये	०पवाये	१७२	४
११३	टिप्पण	त्रिदिवानायाः	त्रिदिवाङ्नायाः	१७२	२०
११४	२५	"ङ्ग्राम०	"सङ्ग्राम०	१७३	२६
११६	१४	०र्जित श्रीरथ०	०र्जितश्रीरथ	१७५	१५
११९	२६	दिन्नसूरि	दिन्नसूरि	१७७	६
१२१	२४	०षणाक्षणेषु	०षणाक्षणेषु	१७७	१०
१२२	टिप्पण	इति वज्रसेनः४	इति वज्रसेनः १४	१७७	१५
१२३	६	सौदर्य०	सौदर्य०	१७८	२०
१२६	१	दृष्ट्वा ? किं स्त्रीयुक्तोऽसौ,		१७९	१४
		दृष्ट्वा, किं स्त्रीयुक्तोऽसौ ?		१९१	४
१२८	२०	येनाभिभूत(ः)	येनाभिभूत[ः]	१९४	६
१३४	८	यावन्निरतं[न्तरं]	यावन्निरतं(न्तरं)	१९४	७
१३५	२५	चतुः षष्ठि०	चतुःषष्ठि०	१९५	१९

पृष्ठम्	पटिक्तः अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पटिक्तः अशुद्धम्	शुद्धम्	
१९६	४	वाचस्यतिरिव	वाचस्पतिरिव	२१३	२६	उक्ता
१९६	टिप्पण	पठनगुणवत्त्वम्	पठनगुणवत्त्वम्	२१४	२०	साधुनां
१९७	१	०विनोदविभ्रमात्	०विनोदविभ्रमात्	२१५	१३	सूरिपदार्पणा०
१९७	२३	क्रीडितुम्	क्रीडितुम्	२१६	१	श्रीसूरिणा
१९८	२	धुर्जटि०	धूर्जटि०	२१६	१	इलोच्योत्सवः
१९८	९	रसयुक्तोभूत०	रसयुक्तीभूत०	२१७	१	मूर्तिमन्त०
१९९	१३	दक्षिणास्यां	दक्षिणस्यां	२१७	१५	ना परस्येति
१९९	१६	फणि	फणी	२१७	२७	हीविजयसूरिण्यः
१९९	२१	प्रतिवर्षं यमुयेत्व	प्रतिवर्षं यमुपेत्य	२१८	११	यशः सुमनो०
१९९	२२	तनुमतां	तनूमतां	२२०	१४	श्री सूरीश०
१९९	२६	०भक्तपुरषपात्र०	०भक्तपुरुषपात्र०	२२०	२५	मूकवदा०
२००	६	यत्रोत्तुङ्गशृङ्ग	यत्रोत्तुङ्गशृङ्ग	२२१	४	प्रापयितुम्
२००	१५	दक्षिणदिस्थायुक्त०	दक्षिणदिक्-	२२२	२३	किम् ?
		स्थायुक्त०		२२४	५	०श्वन्दनवृक्ष०
२०१	१४	तद्वितिः	तद्वितिः	२२४	१६	नन्दनसूता०
२०४	४	नराणाम्	नरणाम्	२२५	२४	शरीरनिः सर०
२०४	५	स्त्रीरभूत्	स्त्रीरभूत्	२२६	१४	त्वक्त्वा
२०४	१६	लम्भितया	लम्भितया	२२६	२२	तत्
२०४	२४	देवदेवाविव	देवीदेवाविव	२२७	२०	०चूडामणि०
२०५	१०	गम्	गम्	२२९	२७	निर्तितम्
२०५	१२	पठितुं	पठितुं	२३०	१८	शरीरङ्गोपाङ्गैः
२०५	१४	पठता	पठता	२३०	२६	वर्षन्
२०५	२५	द्रष्टिमिच्छ्या	द्रष्टुमिच्छ्या	२३१	१०	मुखपुंसां
२०६	२०	०भागिनेयो	०भागिनेयौ	२३३	८	प्रत्तवान्
२०७	४	चन्तामणि०	चिन्तामणि०	२३७	१५	०सूरीष्टसिद्ध्यै
२०८	२५	ब्रतीशीता	ब्रतीशिता	२३८	६	०निः शेष०
२१०	९	सुगमम्	सुगमम्	२४५	७	०सन्ध्याभ्र०
२१०	२२	वाचकाह्वयम्	वाचकाह्वयम्	२४६	३	शोभाप्सते
२११	६	शिवपूर्या	शिवपुर्या	२५०	१३	निजपरिदृढं
२११	१०	पूरी	पुरी	२५०	१४	नयननिः सर०
२१२	२९	सुरिसन्ध्युर०	सुरसन्ध्युर०	२५१	२	मुखेऽपुष्टप्या०

पृष्ठम्	पदिक्तः अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पदिक्तः अशुद्धम्	शुद्धम्
२५२	२६	०मृत कुम्भः	०मृतकुम्भः	२७२	१०
२५३	६	०चल शिखरात्	०चलशिखरात्	२७३	२५
२५३	१२	०तस्मा-दस्ताचल०	०तस्मादस्ताचल०	२७३	२६
२५३	२१	पश्चिम समुद्रे	पश्चिमसमुद्रे	२७४	१२
२५४	२०	०दीधिति दीधिति०	०दीधितिदीधिति०	२७४	४
२५५	४	॥८३॥	॥८६॥	२७४	१५
२५५	१९	पत्न्य	पत्न्या	२८२	१९
२५६	१	०श्रेणीशशाङ्का०	०श्रेणी शशाङ्का०	२८३	२४
२५७	२२	शिवाहसाधु०	शिवाहसाधु०	२८५	२०
२५७	टिप्पणि	हीसुंप्रतो	हीसुंप्रतौ		०पुष्पोद्धव 'सौरभस्य
२६०	२२	निः सरन्ती०	निःसरन्ती०	२८६	१
२६१	टिप्पणि	०सर्वारङ्गवर्णनम्	०सर्वारङ्गवर्णनम्	२८६	८
२६३	१५	०व्यजना ३धृतात्	०व्यजना३धृतात०	२८७	१०
२६४	१२	०क्षरैरूपमो०	०क्षरैरूपमो०	२९०	९
२६४	१३	शब्दालङ्कारार्थलङ्काररूपः	०शब्दालङ्कारार्थालङ्काररूपः	२९३	२२
२६७	टिप्पणि	३. दृश्याः	३. ०दश्याः	२९४	६
२६८	३	हर्तोर्गुसगृहं	हेतोर्गुसगृहं	२९६	२३
२७०	२	विकचकमलं	विकचकमलं	२९६	२४
२७०	टिप्पणि	स्मरस्या	स्मरस्य		कोविद सिंह०





D. Raj. Rana

तिताराहायैः स्वकृतवृत्तीरपहायतेऽ॥१॥ ठीन्हम् ॥ चक्रपुबलपतायैऽउद्देश्ये  
संपरिवेष्टनात्पित्यन्तिवाच्चिकिदध्यविवशाच॥२॥ माद्यत्यदोदातपयः प्रव  
दिग्जेवयास्तुजितैदिघौरोदिग्वारणोऽपदाऽन्तांकिः॥३॥ वालोरुण्डज्ञै  
सुलिनालंकारहारोपसंज्ञोलीत्तक्षिकरंबचुंचि पदार्द्धवारंविदथिरांगो  
न्त्रयापविश्वस्तरात्मासद्वाबवगोवजिद्विजयत्वंश्रागृज्ञरोद्धीप्रभाऽ४॥४॥  
मल्लालोकारद्वारश्रीमीढविमलपादारविट्टमुक्तलंगायमानदेव